केदारनाथ अग्रवाल का रचना संसार

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
की
पी-एच.डी. (हिन्दी)
उपाधि के लिये प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

वर्ष २००८

शोध निर्देशिका
डॉ. (श्रीमती) मनोरमा अग्रवाल
रीडर, हिन्दी विभाग

शोधार्थी
जितेन्द्र कुमार वाजपेयी
एम.ए.

अनुसंधान केन्द्र
परास्नातक हिन्दी विभाग,
पं० जवाहरलाल नेहरू पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, बाँदा (उ०प्र०)

केदारनाथ अग्रवाल जी का यह चित्र उनके ८६वें जन्म दिवस पर लिया गया

दुख ने मुझको
जब जब तोड़ा,
मैंने
अपने टूटेपन को
कविता की ममता से जोड़ा,

जहाँ गिरा मैं,
कविताओं ने मुझे उठाया,
इन दोनों ने
वहाँ प्रात का सूर्य उगाया.

केदारनाथ अग्रवाल.
बाँदा।

15.6.85.

डॉ. मनोरमा अग्रवाल
एम०ए०, डी०फिल०
(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)
रीडर, हिन्दी विभाग
पं० जवाहरलाल नेहरू पी०जी० कॉलेज, बाँदा

अदिति
बी-6, आवास विकास कालोनी
सिविल लाइन्स, बाँदा (उ०प्र०)
दूरभाष- 05192-221557

दिनाँक : ... ...

प्रमाण-पत्र

मैं प्रमाणित करती हूँ कि **जितेन्द्र कुमार बाजपेयी** पुत्र श्री मुरलीधर बाजपेयी ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी के अन्तर्गत हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि हेतु 'केदारनाथ अग्रवाल का रचना संसार' शोध प्रबंध विश्वविद्यालय की नियमावली के अनुसार निर्धारित अवधि में पूर्ण कर लिया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मूल्यांकन हेतु विश्वविद्यालय में प्रेषित करने की संस्तुति करती हूँ।

शोध निर्देशिका

दिनाँक : 03.04.08

(डॉ. मनोरमा अग्रवाल)

प्राक्कथन

हिन्दी साहित्य में छायावादी कविता जब रूढ़ियों से मुक्त हो रही थी, तब उसी सन्धिकाल में प्रगतिवादी चेतना से युक्त कुछ महत्वपूर्ण कवियों का प्रवेश हुआ, जिनमें केदार, नागार्जुन व शमशेर का भी प्रवेश हुआ। केदार जी की कविताओं में एक गहन चिन्तन और सुदृढ़ वैज्ञानिक वैचारिकता के दर्शन होते हैं, इन्होंने प्रगतिशील कविता के आन्दोलन में महत्वपूर्ण भागेदारी की है और कविता को जीवन और मनुष्य के निकट लाने का काम किया। रूप के साथ सौन्दर्य की सत्ता जड़-जगत से लेकर सब कहीं विद्यमान है। अच्छी कविता में हृदय व मस्तिष्क का सही सन्तुलन होता है। केदार की कविता में ऐसे क्रियाशील ऐन्द्रिक बिम्बों का संचयन मिलता है।

साहित्यकार केदारनाथ अग्रवाल का सम्पूर्ण साहित्य मानवीय मूल्यों का पोषण करने वाला है, जीवन जगत की सार्थक अभिव्यक्ति ही केदार जी की विशेषता है केदार जी प्रगतिशील कविता के प्रसव, शैशव, तरूणाई यौवन और उसके अद्यतन विकास के साक्षी हैं। एक और कवितायें जीवन जीने की कला सिखाती हैं वहीं निबन्ध उच्च विचारों को सम्प्रेषित करते हैं। उपन्यास में आदर्शवादिता हावी न होकर यथार्थवादिता का उभार ज्यादा देखने को मिलती है। यात्रा वृतान्त व संस्मरण भी सजीव दृश्यांकन करने में सफल हुये हैं और कविताओं की तो बात ही निराली है, एक-एक कविता से मानों वीणा के सुन्दर स्वर प्रस्फुटित हो रहे हों।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में केदार नाथ अग्रवाल जी की युगीन परिस्थितियाँ, स्पष्ट की गयी हैं जिनमें राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है। क्योंकि इनका केदार जी के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान है। दूसरे अध्याय में प्रगतिवादी आन्दोलन तथा इसमें केदार जी के महत्व उनके व्यक्तित्व को स्पष्ट किया गया है, तीसरे अध्याय में केदार जी की काव्य रचनायें, प्रकृति चित्रण सौन्दर्य व बिम्ब विधान आदि को दर्शाया गया है। चतुर्थ अध्याय में केदार के कथा साहित्य व पांचवे अध्याय में केदार जी के समीक्षात्मक निबन्धों का विवेचन किया गया है। छठवें अध्याय में पत्र साहित्य के साहित्यिक महत्व का अध्ययन है। सप्तम

अध्याय में उपसंहार एवं मूल्यांकन कार्य किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की पूर्णता पर सर्वप्रथम मैं उक्त शोध-प्रबन्ध की निर्देशिका डॉ. श्रीमती मनोरमा अग्रवाल जी (रीडर, हिन्दी विभाग, पं. जवाहरलाल नेहरू, पी.जी. कालेज, बाँदा) के प्रति विनयावत हूँ तथा 'करहूँ प्रमाण जोरि जुग पानी' के भाव से ओत-प्रोत हूँ। जिनके विद्वतापूर्ण निर्देशन में उन्हीं की प्रेरणा एवं उन्हीं के निरन्तर प्रोत्साहन के फल स्वरूप उक्त कार्य को पूर्ण कर सका। सहज, स्नेहिल व आशीषमयी छाया ने ही सम्बल प्रदान किया है। वस्तुतः यह शोध-प्रबन्धन उन्हीं के अनुग्रह व प्रोत्साहन का परिणाम है। मैं आजीवन इनका ऋणी रहूँगा।

कृतज्ञता व्यक्त करने के इस अवसर पर डॉ. राम गोपाल गुप्त जी (विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग) के प्रति भी सादर निवेदित हूँ जिन्होंने समय-समय पर मुझे अमूल्य सुझाव दिये हैं। इसी क्रम में डॉ. चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' डॉ. ज्ञान प्रकाश तिवारी डॉ. अश्वनी कुमार शुक्ल को भी प्रमाण करता हूँ। डॉ. देवलाल मौर्य व डॉ. सुमन सिंह के प्रति भी विनताभार व्यक्त करता हूँ।

जिन पुस्तकालयों से मुझे ग्रन्थों व अन्य सम्बन्धित तथ्यों की जानकारी हुयी उनमें से पं. जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय के अतिरिक्त, राजकीय जिला पुस्तकालय बाँदा, नागरी प्रचारिणी व केदारनाथ शोध पीठ, विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके अलावा उ.प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ व हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद से मुझे महत्वपूर्ण सहायता मिली है। इन सभी संस्थानों के अधिकारियों व कर्मचारियों का मैं आभारी हूँ।

इसके अतिरिक्त आकाशवाणी छतरपुर के अधिकारी श्री शेखर शर्मा का भी ऋणी हूँ जिन्होंने मुझे महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। इनके साथ ही श्री नरेन्द्र पुण्डरीक जी ने भी मेरे इस कार्य में बहुत सहायता की है, मैं हृदय से श्रद्धावत हूँ।

इस अवसर पर अपने जनक-जननी को स्मरण न करना स्वयं को ही भूलना होगा, मैं अपने पूज्य पिता श्री मुरलीधर बाजपेयी व पूज्य माता श्री श्रीमती विमला बाजपेयी के प्रति नत मस्तक हूँ जिन्होंने सुन्दर संस्कारों के बीच मेरा पालन पोषण कर-शोध कार्य जैसे उच्च सोपान तक पहुँचाया। मैं अपने अनुज प्रिय शिव प्रकाश बाजपेयी तथा बहिन कु. प्रतीक्षा के प्रति आभार व्यक्त करने में संकोच अनुभव करता हूँ क्योंकि एक तो वो मुझसे

छोटे हैं और दूसरा कहीं वे इसे मात्र लौकिक शिष्टाचार न मान बैठें। इनसे प्राप्त सखाभाव का मैं आदर व सम्मान करता हूँ। बड़े भाई साहब डॉ॰ नन्द किशोर बाजपेयी 'प्राध्यापक महाराणा प्रताप विश्वविद्यालय, राजस्थान' को भी नमन करता हूँ। परिवार के सभी सदस्यों का शुभाशीष चाहते हुये उन्हें प्रणाम करता हूँ।

जीवन संगिनी नीलम (नीलू) का भी विशेष ऋणी हूँ कि उसने मेरे इस कार्य में मानसिक योगदान दिया और मुझे प्रेरित करती रही।

अपने ईष्ट देव प्रातःस्मरणीय श्री बाला जी महाराज के श्री चरणों में कोटि-कोटि दण्डवत प्रणाम करता हूँ जिनकी असीम कृपा से इसकी निर्विघ्नं समाप्ति हो सकी है। वैसे मुझ अकिंचन के पास प्रभु को देने के लिए कुछ भी नहीं है फिर भी मैं यह शोधप्रबन्ध आपके ही (श्री बालाजी महाराज, मेहदीपुर, राजस्थान) के चरणों में अर्पित करता हूँ।

प्रिय मित्रों में डॉ॰ अमित अवस्थी, सतीश निगम, के सहयोग व सुझावों का ऋणी हूँ।

अन्त में इस शोध प्रबन्ध के आकर्षण टंकण के लिये श्री जयन्त गोरे जी, वीर सिंह राना, अजय त्रिवेदी को हृदय से धन्यवाद ज्ञापित करता हैं। जिन्होंने इसे इतना सुव्यवस्थित आकार प्रदान करनें में सहायता प्रदान की।

शोधार्थी

जितेन्द्र कुमार बाजपेयी
(जितेन्द्र कुमार बाजपेयी)

स्थान : बाँदा

दिनाँक : 03.04.08

विषय सूची

अध्याय प्रथम

केदारनाथ अग्रवाल की युगीन परिस्थितियाँ

इस सृष्टि का अभ्युदय 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम' की मौलिक उद्‌भावना से माना जाता है, और इस सृष्टि रूपी नीड़ में मानव ने जब से अपने चक्षु खोले, तभी से उसे रसमय मनोरम जीवन के लालित्य के दर्शन हुये। मानव विकास के प्रथम सोपान से लेकर अद्यतन स्वरूप तक साहित्य के कोमल भावों ने उसे पुर्नसंयोजित किया है। 'हितेन सह साहित्यम' की मूल अवधारणा से अभिसिंचित, अनुप्राणित साहित्य ने मानव जीवन को नव्य आशा, नूतन चेतना तथा नयी ऊँचाइयाँ प्रदान की हैं और जीवन को एक सार्थक, सम्यक दिशा दी है।

साहित्य समाज का ही नहीं अपितु संस्कृति का दर्पण भी होता है इसलिये उसमें व्यक्ति से लेकर ब्रह्माण्ड तक की समालोचना (समीक्षा) निहित होती है। संस्कृति और सभ्यता के विकास के साथ-साथ जीवन के विकास में भी साहित्य की महती भूमिका रही है, मानव अर्न्तमन में साहित्य ने न सिर्फ प्रेम व मनुहार के बीज बोये वरन समता, समानता व 'विश्वबन्धुत्व' के भाव भी अभिसिंचित किये हैं।

भारतीय साहित्यकारों ने प्रारम्भ से ही उच्च साहित्यिक अवदान देकर जीवन मूल्यों एवं मानवीय दृष्टिकोण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी है, धार्मिक ग्रन्थों, पौराणिक आख्यानों के अलावा वैदिक ऋचाओं से ऐसा स्पष्ट होता है कि मानव का कल्याण ही साहित्य के मूल में निहित है, साहित्य हितपूर्ण चिन्तन का दूसरा नाम है, साहित्य भावों और विचारों की पूँजी भूत अभिव्यक्ति है। सच्चे अर्थों में साहित्य जीवन की संजीवनी है। वह जीवन को गति एवं आवश्यक ऊर्जा प्रदान करता है।

संस्कृति साहित्यिक क्रियाकलापों (साहित्य रचना) की प्रेरणा स्रोत रही है, साहित्यकार समाज की परिस्थितियों से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता, वह लिखते समय मनीषी होता है और अभिव्यक्ति के समय कलाकार हो जाता है। वह जीवन जगत का सचेत दर्शक होता है।

हमारे वेद, पुराण, उपनिषद, दर्शन शास्त्र आदि हमारी हित चिन्ता में ही सृजित हैं अर्थात ये मानव के व्यापक लक्ष्य को परिलक्षित करते हैं। संस्कृति द्वारा संचालित होकर ही

साहित्य 'लोकमंगल' की भावना से परिपूर्ण होता है और यह साहित्य व्यापक परिप्रेक्ष्य में जीवन-दर्शन को व्यंजित करता है।

प्रकृति के सुकुमार कवि पंत जी के शब्दों में-

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप, हृदय में बनता प्रणय अपार।
लोचनों में लावण्य अनूप, लोक सेवा में शिव अविकार।।

हिन्दी साहित्य सरोवर विभिन्न धाराओं में प्रवाहित हुआ तथा युग सापेक्ष परिस्थितियों से प्रभावित भी हुआ है, साहित्य की यह कालजयी यात्रा इसी का परिणाम है। हिन्दी साहित्य के प्राचीन स्वरूप से लेकर अधुनातन स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये हैं इससे साहित्यिक मूल्यों में गुणात्मक अभिवृद्धि हुयी है व सर्जना के क्षेत्र में श्रेष्ठतम मानदण्ड स्थापित हुये हैं।

केदारनाथ अग्रवाल की युगीन परिस्थितियाँ

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में होने वाली प्रत्येक क्रिया पर उसकी प्रतिक्रिया होती है। साहित्यकार चाहे वह लेखक हो अथवा कवि, एक संवेदनशील प्राणी होने के अलावा युगदृष्टा एवं महान विचारक भी होता है तथा जीवन जगत से अत्यन्त गहराई से सम्बद्ध होता है, एक ओर वह जहाँ अपने देश के अनेक परिदृश्यों, राजनीतिक उथल-पुथल, सामाजिक आन्दोलनों एवं धार्मिक अंधविश्वासों का दृष्टा एवं साक्षात प्रमाण होता है वहीं दूसरी ओर वह अपने साहित्य के रचना कर्म रूपी माध्यम से उसे सार्थक स्वर प्रदान कर समाज को नयी दिशा प्रदान करता है तथा जीवन में मानवीय मूल्यों की सृष्टि करता है।

साहित्यिकार समाज में घट रही घटनाओं से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता क्योंकि वह समाज का सक्रिय तत्व होने के साथ-साथ तीसरी आँख भी होता है। रचनाकार का समाज के साथ साथ उस परिदृश्य से भी सीधा सम्बन्ध बन जाता है जिसका वह दृष्टा होता है। इसीलिये समाज और उसके बीच तादात्म्य स्थापित हो जाता है और वह प्रतिक्रियावादी बनता है तथा वैश्विक घटनाओं का प्रस्तुतीकरण करता है, वह राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से अनुप्राणित होकर अपने काव्य में उसे व्यंजित करता है तथा युगबोध

कराता है। 'जनकवि' होने के नाते वह अपने सम्पूर्ण साहित्य में विश्व की दलित, शोषित, उत्पीड़ित एवं क्रान्तिरत जनता की वेदना को आत्मसात कर उसे सम्प्रेषित करता है।

तत्कालीन युगीन परिस्थितियाँ साहित्यकार पर गहरा प्रभाव डालती हैं, वास्तव में कहा जाए तो युगीन परिस्थितियाँ रचनाकार को आन्दोलित करती हैं। युगीन परिवेश रचनाकार के व्यक्तित्व का विधायक होता है। कवि केदार भी युगीन परिवेश से खासे प्रभावित हुए हैं।

युगीन परिवेश का अभिप्राय हम उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक परिस्थितियों से समझते हैं जो कवि के जन्म के बाद बाल्यकाल, किशोरावस्था यौवन काल तथा उसके लेखन के समय विद्यमान थीं। सच में कोई भी रचनाकार अपने आस-पास के वातावरण और परिवेश से अप्रभावित रहकर साहित्य-सृजन नहीं कर सकता है, इसलिए यह भी सत्य है कि युगीन परिवेश को अलग रखकर किसी भी रचनाकार के साहित्य का यथोचित मूल्यांकन सम्भव नहीं हो सकता है, साहित्यकार का सम्बन्ध समाज की जड़ों अर्थात सामाजिक मूल्यों से होता है। साहित्य का अपने समाज के भूत और वर्तमान से अटूट सम्बन्ध होता है। सत्य है कि साहित्यकार अपनी युगीन परिस्थितियों से प्रेरित और प्रभावित होता है। रचनाकार मूलतः युग सापेक्ष ही होता है उसकी रचनाओं में इसका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

प्रख्यात आधुनिक हिन्दी आलोचक डॉ. सरोज प्रसाद के अनुसार-

"साहित्य अपने व्यापक अर्थ में समाज के मूक इतिहास का मुखर सहोदर भाई है।"[१] रचनाकार अपने साहित्यिक कौशल से सामाजिक चेतना में अभिवृद्धि करता है, समाज में आदर्शवाद के बजाए यथार्थवाद को मुखरित करना उसका ध्येय होता है। जन-जीवन की समस्याओं का अपने साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत कर वह उनके हल की कोशिश यथा-सम्भव करता है। साहित्य में प्रधानतः साहित्यकार की युगीन परिस्थितियों का ही चित्रण होता है।

१- डॉ. सरोज प्रसाद : प्रेमचन्द के उपन्यासों में समसामयिक परिस्थितियों का प्रतिपादन, पृ.सं. ४

प्रगतिशील उपन्यासकार, कथा सम्राट मुंशी प्रेमचन्द जी के शब्दों में-

"साहित्यकार बहुधा अपने देश-काल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यकार के लिये उससे अविचलित रहना असम्भव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश बन्धुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता से वह रो उठता है, पर उसके रुदन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है।"[1]

साहित्यकार युगदृष्टा व युगसृष्टा होता है एक ओर अतीत उसे जहाँ अनुभव प्रदान करता है, भविष्य उसमें आशा का संचार कर उसे प्रगतिशील बना देता है। तत्कालीन युग साहित्यकार का निर्माण करता है, साहित्यकार जिस युग में जीवन यापन करता है, उसकी व्यक्ति और समाजनिष्ठ समस्याओं से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। चूँकि साहित्य अपने युग का प्रतिबिम्ब होता है इसलिये साहित्यकार अपने दायित्व से मुकर नहीं सकते। अतः उसके साहित्य में इन समस्याओं का प्रतिबिम्बित हो उठना सहज ही है। यह सत्य है कि कोई भी रचनाकार युग-निरपेक्ष नहीं रह सकता, वह उससे अवश्य प्रभावित होता है, तत्कालीन युग की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और साहित्यक गतिविधियों से पृष्ठ पोषण पाकर रचनाकार का व्यक्तित्व संवर्द्धित होता है। अपनी अभिव्यक्ति के प्रति पूर्ण इमानदार हुये बिना कोई रचनाकार काव्य-सृजन नहीं कर सकता इसलिये यदि कवि अपनी अभिव्यक्ति के प्रति ईमानदार है तो निश्चित रूप से उसकी रचनाओं में पुष्ट एवं समर्थ व्यक्तित्व की छाप मिलेगी। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि उसकी रचनाओं में तत्कालीन युग का समग्र चित्र बिम्बित होगा। इस दृष्टिकोण से कवि केदार के साहित्य का रहस्य (निहितार्थ) समझने के उद्देश्य से उनकी युगीन परिस्थितियों का विवेचन आवश्यक है। तभी उसके रचना-संसार के प्रति निष्पक्ष दृष्टिकोण प्रस्तुत हो सकेगा।

१. राजनितिक परिस्थितियाँ :-

विश्व के हर राज्य की अपनी नीति होती है जिससे उसके विकास की अवधारणा परिपुष्ट होती है, सामान्य रूप से राज्य में सबका विकास, सुरक्षा व स्थायित्व निहित होता

१- 'कुछ विचार', लेखक : प्रेमचन्द, पृ.सं. ६

है। लोक कल्याणकारी राज्य का तात्पर्य ऐसे समाज से होता है, जिसके अन्तर्गत शासन की शक्ति का प्रयोग किसी एक वर्ग विशेष के कल्याण हेतु नहीं, वरन सम्पूर्ण जनता के कल्याण के लिए किया जाता है।

भारत में प्राचीन काल से 'रामचरित मानस' एक ऐसा ही ग्रन्थ है जिसमें कहा गया है कि राजा के सभी कार्य लोक कल्याण की दृष्टि से ही किया जाना चाहिये। अगर ऐसा नहीं होता, तो राजा नरक का गामी होता है-

"जासु राज नृप प्रजा दुःखारी। सो नृप अवस नरक अधिकारी।।"

'महाभारत', 'पाराशर की स्मृतियाँ,' 'मार्कण्डेय', 'मनु' और 'याज्ञवलक्य' आदि की विचारधारा में यह बात स्पष्टतया देखी जा सकती है। उदाहरणार्थ वेद व्यास ने 'महाभारत' में लिखा है कि- "जो नरेश अपनी प्रजा को पुत्र के समान समझकर उसकी चतुर्मुखी उन्नति का प्रयत्न नहीं करता, वह नरक का भागी होता है"। लगभग इसी प्रकार की धारणा यूनान के नगर राज्यों में प्रचलित थी। 'प्लेटो' और 'अरस्तु' के द्वारा राज्य एक नैतिक संगठन माना गया हे, जिसका उद्देश्य किसी वर्ग के हित में नहीं, वरन सभी नागरिकों के हित में कार्य करना है।

१८वीं सदी के उत्तरार्द्ध और १९वीं सदी के प्रारम्भ में विश्व के अधिकांश राज्यों द्वारा व्यक्तिवादी 'यदभाव्यम् नीति' (Laisez faire) को अपना लिया गया था और इस नीति के अनुसार राज्य के कार्य-क्षेत्र को सीमित कर दिया गया था। जिसके परिणाम स्वरूप यूरोप के राज्य अधिकाधिक शक्तिशाली बन गये लेकिन इसके साथ ही सम्पत्ति का केवल कुछ ही हाथों में केन्द्रीयकरण भी होने लगा। एक ओर तो अत्याधिक सम्पत्तिशाली वर्ग उत्पन्न हो गया, वहीं दूसरी ओर ऐसा श्रमिक वर्ग था, जिसके पास अपनी क्षमता से अधिक कार्य करनें पर भी जीवन-यापन के साधन नहीं थे, ऐसी स्थिति में बहुसंख्यक जनता में विद्यमान व्यवस्था के प्रति असंतोष हुआ और 'रस्किन', 'कार्लाइल' एवं 'विलियम गॉडविन' आदि पाश्चात्य विद्वानों द्वारा इस व्यवस्था के प्राति 'असंतोष की अभिव्यक्ति' की गयी। बुद्धिजीवियों के एक बड़े भाग द्वारा यह माँग की गयी कि राज्य के द्वारा अपने बहुसंख्यक वर्ग की दुर्दशा एक शान्तदर्शक के रूप में देखने के बजाय इस स्थिति में सुधार करने के

सक्रिय कदम उठाये जाने चाहिये।

इस व्यक्तिवादी व्यवस्था को नष्ट करने के उद्देश्य से ही १८४८ में कार्लमार्क्स और एंजिल्स ने 'साम्यवादी-घोषणा पत्र' (Communist Manifesto) प्रकाशित किया। जिसमें शोषण के विरुद्ध प्रमुखता से आवाज उठाई गयी और शोषित वर्ग को एक जुट कर नयी चेतना प्रदान की गयी। साम्यवादी विचारधारा से प्रेरणा ग्रहण करते हुये ही १९१७ में सोवियत रूस में सर्वहारा-वर्ग द्वारा एक सफल क्रान्ति की गयी। यह प्रसिद्ध ऐतिहासिक क्रान्ति महान साम्यवादी नेता 'लेनिन' के नेतृत्व में २४ अक्टूबर १९१७ को हुयी जिसमें सोवियत रूस के शासक 'जार' के विरुद्ध क्रान्ति में विजय प्राप्त हुयी। तमाम आन्तरिक एवं बाह्य विरोधों के बावजूद सोवियत रूस में सुव्यवस्थित रूप से साम्यवादी शासन व्यवस्था स्थापित हो गयी। समूचे विश्व के नवयुवकों ने नूतन प्रेरणा ग्रहण की, ब्रिटिश सरकार भी इस क्रान्ति की सफलता से खासी प्रभावित हुयी। आम जन-मानस में भी इस क्रान्ति से खुशी की लहर दौड़ गयी तथा नवयुवकों व राजनेताओं के मन में क्रान्ति की भावना का संचार हुआ व आगे बढ़ने की प्रेरणा प्राप्त हुयी। दूर से ही सही उन्हें आजादी की सोंधी गन्ध आने लगी थी।

सन् १९१८ में प्रकाशित 'Encyclopaedia of Social Sciences में स्पष्ट करते हुये कहा गया है-

"लोक कल्याणकारी राज्य वह है, जो अपने सभी नागरिकों को न्यूनतम जीवन-स्तर प्रदान करना अपना अनिवार्य उत्तरदायित्व समझता है।"

सन् १९१९ में माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड ने भारत के राष्ट्रवादियों तथा जनता को शान्त करने के लिए ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा राजनीतिक सुधारों का एक कानून पारित करवाया जिससे देश में द्वितन्त्र शासन प्रणाली प्रारम्भ हुयी। गृह सरकार व केन्द्रीय शासन के कुछ विभाग प्रान्तीय सरकारों को सौंपे गये, परन्तु राजस्व, कानून और व्यवस्था तथा न्याय आदि विभागों पर ब्रिटिश सरकार का कब्जा बरकरार रहा, इन्हें आर्थिक आजादी नहीं दी गयी और राजस्व के लिए इन भारतीय मंत्रियों को 'अंग्रेजी हुकूमत' पर ही निर्भर रहना पड़ा। इस व्यवस्था में केंद्रीय सरकार का ही दबदबा बना रहा और प्रान्तीय स्वशासन

सुचारू रूप से स्थापित नहीं हो सका, इससे भारतीय जनता की मनोदशा बिगड़ गयी और उसे गम्भीर आघात पहुँचा तथा उसकी आशाओं में वज्रपात हो गया। इससे आहत होकर भारतीय कांग्रेस के नेताओं ने अपने आन्दोलन को गति देते हुये व्यापक स्वरूप प्रदान किया। जिससे देश के हर तबके का व्यक्ति इससे जुड़ा और आन्दोलन को राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक गति व अपार जन समर्थन मिला जिससे राष्ट्र में आजादी की मांग परवान चढ़ी।

इस घटना ने देश में मकड़जाल फैलाये ब्रिटिश शासन के प्रति लोगों में 'दायित्व बोध' की भावना जगाई। वर्ष १९१९ भारत के स्वतन्त्रता संग्राम की इतिहास की दृष्टि से खासा महत्वपूर्ण है। महात्मागाँधी ने इसी वर्ष भारतीय राजनीति में प्रवेश कर इस 'जंग ए आजादी' को नयी दिशा प्रदान की। इन्होंने अंग्रेजी सत्ता के साथ सशस्त्र संघर्ष का मार्ग न अपनाकर 'अहिंसा' व 'सत्याग्रह' का सहारा लिया तथा अंग्रेजी राज्य की चूलें बिना शस्त्र के ही हिला दीं।

ब्रिटिश हुकूमत हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के विकराल रूप को देखकर भयभीत हुयी और ऐसे स्वतंत्रता से जुड़े राष्ट्रीय आन्दोलनों को कुचलनें के लिए इस सरकार ने १९१९ में ही 'रौलट एक्ट' पारित कर दिया। इस एक्ट के अनुसार-किसी भी व्यक्ति को राजद्रोह के महाभियोग से दंडित किया जा सकता है यह वास्तव में एक 'काला कानून' था जिसका पुरजोर विरोध किया गया जिसके फलस्वरूप ८ अप्रैल सन् १९१९ को सारे देश में व्यापक हड़ताल हुयी और जगह-जगह पर सभायें आयोजित की गयीं, कई बड़े-बड़े भारतीय नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया, इन नेताओं की गिरफ्तारी का विरोध करने वाले लोगों को जलियाँवाला बाग में हुयी एक सार्वजनिक सभा में धोखे से छल-पूर्वक नर पिशाच अंग्रेज अधिकारी जनरल डायर ने अन्धाधुन्ध फायरिंग कराकर असंख्य नारियों और पुरुषों को गोलियों से छलनी करा दिया। इस क्रूर अंग्रेजी अफसर को महान क्रान्तिकारी सरदार ऊधम सिंह ने १९४० में इंग्लैण्ड जाकर गोली से उड़ाया।

जलियाँवाला बाग (अमृतसर) में हुयी इस अमानवीय घटना से जन-सामान्य के अलावा महात्मा गाँधी का हृदय भी विदीर्ण हो उठा, उन्होंने प्रतिज्ञा की कि- "वह ब्रिटिश हुकूमत को पुनः सहयोग न देगें, इस पैशाचिक सरकार को किसी रूप में सहयोग देना पाप

है।" महात्मागाँधी के विचारों से प्रभावित होकर सन् १९२० के नागपुर अधिवेशन में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कांग्रेस ने असहयोग आन्दोलन छेड़ने का निर्णय लिया। इस असहयोग आन्दोलन ने एक ओर जहां देश की जनता को हृदय से उद्वेलित किया वहीं ब्रिटिश मानसिकता को तीव्र धक्का पहुंचा। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात अंग्रेजी सरकार ने अपने मित्र राष्ट्रों के साथ तर्किश (टुर्किश) साम्राज्य को आपस में बाँट लिया और वहाँ के खलीफा के कार्यालय को समाप्त कर दिया, तब मुसलिमों ने उसके विरोध में 'अलीब्रदर्स' के नेतृत्व में आन्दोलन शुरू किया महात्मा गाँधी के द्वारा इस आंन्दोलन को व्यापक समर्थन दिया गया। जब इनके नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तो सारे देश की जनता ने इसे भव्य समर्थन दिया। समूचे देश ने इस आन्दोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया एक ओर विद्यार्थियों ने स्कूलों व महाविद्यालयों का त्याग किया वहीं दूसरी ओर वकीलों ने न्यायालयों का त्याग किया। लोगों के अन्दर तीव्र असहयोग की भावना उत्पन्न हुयी। इस तीव्र विरोध के फलस्वरूप लोगों ने सरकार द्वारा प्रदत्त पदवियों और उपाधियों को लौटा दिया। पंजाब की इसी घटना के फलस्वरूप ही गुरूदेव कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी 'सर' की पदवी वापस कर दी तथा वी॰ शंकर नैय्यर ने गर्वनर जनरल की कार्यकारिणी परिषद से इस्तीफा दे दिया। तथा २० जून १९२० को हिन्दू-मुसलमानों की एक सम्मलित सभा इलाहाबाद में हुयी जिसमें वायसराय को उचित चेतावनी देते हुये 'असहयोग के शस्त्र' का प्रयोग करने का निश्चय किया गया तथा ३१ अगस्त १९२० को 'खिलाफत दिवस' मनाया गया। इससे लोगों के अन्दर एकजुट होकर ब्रिटिश हुकूमत से लोहा लेने का संकल्प दृढ़ हुआ।

खिलाफत दिवस के थोड़े ही दिन बाद १९२० में ही ४ से ९ सितम्बर तक कलकत्ता में लाला लाजपत राय के सभापतित्व में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ जिसमें अंग्रेज हुकूमत के साथ कठोर असहयोग का संकल्प लिया गया जिसके तहत उनके द्वारा प्रदत्त उपाधियों के त्याग के अलावा सरकारी या सहायता प्राप्त स्कूलों और कालेजों के बहिष्कार का निर्णय लिया गया।

ब्रिटिश हुकूमत के विरोध में इस असहयोग आन्दोलन में सबसे प्रमुख संकल्प

विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया जाये, उपर्युक्त बातों के अलावा कांग्रेस ने कुछ रचनात्मक कार्यक्रम भी घोषित किया जिसमें स्वदेशी माल का अधिकाधिक प्रयोग करना, चरखे तथा कताई-बुनाई का व्यापक प्रचार के अलावा अस्पृश्यता को दूर करने में अधिकाधिक जोर दिया गया।

असहयोग आन्दोलन बड़ी तीव्र गति से बढ़ने लगा, आन्दोलन के कार्यक्रम को जनप्रिय बनाने के लिये महात्मा गाँधी जी ने पूरे देश का व्यापक दौरा किया साथ ही अंग्रेजी हुकूमत द्वारा प्रदत्त अपनी "कैसरे हिन्द" उपाधि को वापस कर दिया। इसका प्रभाव यह हुआ कि सैकड़ों व्यक्तियों ने अपनी उपाधियाँ त्याग दी, वकीलों ने अपनी वकालत छोड़ दी। कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन के पश्चात ही देशबुन्ध चितरंजनदास ने अपनी वकालत छोड़कर विद्यार्थियों को आन्दोलन में भाग लेने के लिये आह्वान किया। इस आह्वान के फलस्वरूप नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, प्रफुल्लचन्द्र घोष इस आन्दोलन में सम्मिलित हो गये उत्तर प्रदेश में पं॰ जवाहर लाल नेहरू आन्दोलन के नेता थे, सहस्त्रों विद्यार्थियों ने कालेजों का बहिष्कार कर दिया और देश के प्रत्येक भाग में राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना हुयी।

काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, महाराष्ट्र विद्यापीठ, बंगाल के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय आदि की स्थापना इस आन्दोलन के दौरान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[१] इसके अतिरिक्त पंचायतों की स्थापना हुयी, खद्दर व स्वदेशी का खूब प्रचार हुआ, कांग्रेस में ४० लाख स्वयंसेवक भर्ती किये गये तथा २० हजार चरखे बनवाये गये। मादक द्रव्यों का बहिष्कार किया गया और लगभग ३०,००० व्यक्ति जेल गये। १९२१ में असहयोग आन्दोलन अपनी चरमावस्था में पहुँच गया, ब्रिटिश हुकूमत इस आन्दोलन से खासी प्रभावित हुयी तथा इसके प्रभाव को कम करने के लिये भरसक प्रयत्न किये। इसी समय लार्ड रीडिंग वाइसराय होकर भारत आये। उनके आते ही देश में दमन-चक्र प्रारम्भ हो गया और पं॰ मोतीलाल नेहरू, चितरंजन दास, लाला लाजपत राय, मौलाना आजाद, डा॰ अन्सारी, राजगोपालचारी, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल आदि बड़े-बड़े नेता बन्दी बना लिये गये महात्मा गाँधी की नीति अहिंसात्मक थी। उनके दो अमोघ अस्त्र- "सत्य और

१- भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन, पृ.सं॰ ३२६

अहिंसा" थे। गाँधी जी का विश्वास था कि यदि सब लोग अहिंसात्मक ढंग से असहयोग आन्दोलन चलावें तो एक ही वर्ष में भारत को आजादी मिल जायेगी, परन्तु सरकार के दमन-चक्र के सम्मुख अहिंसाव्रत का पूर्ण-रूपेण पालन करना सम्भव नहीं था। आन्दोलन उसी गति से पूर्ववत् चल रहा था, मद्य-निषेध आन्दोलन में भाग लेने वाले सहस्त्रों भारतीयों को जेल में डाल दिया गया। स्थिति यह थी कि अंग्रेजी हुकूमत भारतीय जनता को निरीह पशु की भाँति रखना चाहती थी कि वह जुल्मों के प्रति उफ तक न करे।

जब नवम्बर १९२१ में 'प्रिन्स ऑफ वेल्स' ने भारत की यात्रा की तो उनका सब स्थानों पर काले झण्डों से स्वागत किया और 'प्रिन्स आफ वेल्स गो-बैक, गो-बैक' के नारे लगाये गये। दिसम्बर १९२१ में अहमदाबाद में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हकीम अजमल खाँ की अध्यक्षता में हुआ जिसमें असहयोग नीति का पुनः एक बार समर्थन किया गया। इसके बाद जनवरी १९२२ में देश के प्रमुख नेताओं का एक सम्मेलन बम्बई में हुआ जिसमें कांग्रेस की ओर से केवल महात्मा गाँधी सम्मलित हुये, इस सम्मेलन में असहयोगियों तथा अन्य बन्दियों को छोड़ने का प्रस्ताव पारित हुआ तथा सरकार की दमनपूर्ण नीतियों का विरोध किया गया। इसके अतिरिक्त गोल मेज सम्मेलन बुलाने की माँग की गयी, जिसके द्वारा पंजाब हत्याकाण्ड व स्वराज्य का प्रश्न हल किया जा सके किन्तु वायसराय ने इस प्रस्तावों को मानने से इंकार कर दिया, जलियाँवाला बाग के मुख्य आरोपी नर पिशाच जनरल डायर को उल्टे पुरस्कृत किया गया। अंग्रेजों की नीतियाँ अत्यन्त कुटिल थी, कोई अंग्रेज ऑफिसर जितना अधिक भारतीय जनता को उत्पीड़ित करता था या उनकी हत्यायें करता था उतना उसे सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था तथा पुरस्कृत किया जाता था, यह इससे स्पष्ट हो जाता है कि जब राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन, जिसे 'जंग-ए आजादी' कहा गया है को कुचलने के लिये सरकार ने रौलट एक्ट (१९१८) पारित किया तो विरोध के बावजूद २१ मार्च १९१९ को ही इसे भारत में लागू कर दिया गया इसके विरोध में गाँधी जी ने ३० मार्च को देश व्यापी हड़ताल की तिथि निश्चित की किन्तु बाद में यह ७ अप्रैल हो गयी इस तिथि परिवर्तन की सूचना दिल्ली नही पहुंच सकी वहां ३० मार्च को ही स्वामी श्रद्धानन्द के नेतृत्व में जुलूस निकाले गये तथा हड़ताल हुयी। पुलिस, जिसे इस 'एक्ट' के

तहत बिना वारन्ट संदिग्ध व्यक्तियों को गिरफ्तार करने का अधिकार मिल गया था, ने गोलियाँ चलाई जिसके फलस्वरूप १५ व्यक्ति मारे गये तथा सैकड़ों घायल हुये, १० अप्रैल को अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर ने दो क्रान्तिकारियों डॉ॰ सत्यपाल तथा डॉ॰ किचलू को धोखे से गिरफ्तार कर इन दोनों को फौजी गाड़ी में धर्मशाला भेजकर नजरबंद कर दिया। महात्मा गाँधी को भी पंजाब जाते समय बंदी बना लिया गया था और उन्हें वापस बम्बई ले जाया गया, इन नेताओं की रिहाई के उद्देश्य से ११ अप्रैल को नागरिकों का एक जुलूस डिप्टी कमिश्नर के पास जा रहा था, किसी के पास कोई हथियार नहीं था। रेल के फाटक के पास इस जुलूस को रोका गया था और 'महात्मा गाँधी की जय' 'हमारे नेताओं को रिहा करो', के शान्त नारे लगाने वाले जुलूस पर पुलिस ने गोली चलाई। ४५ व्यक्ति मारे गये और लगभग तीन सैकड़ा व्यक्ति घायल हुये, क्रुद्ध भीड़ ने नेशनल बैंक में आग लगा दी तथा उसका अंग्रेज अफसर (मैनेजर) भी मार डाला गया। टाउन हाल व अन्य सरकारी इमारतों को आग के हवाले कर दिया गया। तत्कालीन गवर्नर माइकेल ओडायर ने समझा कि स्थिति नियंत्रण से बाहर हो गयी है, उसने तुरन्त सेना बुला ली और अमृतसर का शासन जनरल डायर की अध्यक्षता में सेना को सुपुर्द कर दिया जिसने शहर में ढिंढोरा पिटवाकर सभा, जुलूस आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया। किन्तु इस गोलीकाण्ड की निन्दा करने के उद्देश्य से १३ अप्रैल १९१९ को लगभग २०,००० जनता ने जलियाँवाला में एक सार्वजनिक सभा की। जब सभा में हंसराज का भाषण हो रहा था तो जनरल डायर ने ५० अंग्रेज तथा १०० भारतीय सैनिकों के साथ सभा को चारों ओर से घेर लिया और बिना उचित चेतावनी दिये मशीनगनों द्वारा निरीह जनता पर अंधाधुन्ध गोलियाँ चलाने की अनुमति दे दी, बाग से बाहर जाने का एक ही रास्ता था लेकिन वहाँ भी सैनिक डटे हुये थे। फलतः जनता बाग से बाहर नहीं निकल पायी, लोग प्राण बचाने की दृष्टि से जमीन में लेट गये। इस पर जनरल डायर ने पुनः आदेश दिया कि 'ऊपर नहीं नीचे चलाओ, चारों ओर लाशों का ढेर लग गया। मार्ग में एक कुआँ था, घबड़ाये लोग उसमें कूद पड़े। बाग के पास रहने वाले परिवार की स्त्रियों ने लोगों को बचाने के लिये रस्सियाँ डाल दी तो उन्हें चढ़ने नहीं दिया गया और गोली मार दी गयी। दस मिनट के अन्दर १,६५० राउण्ड गोलियाँ चलाई गई, अंग्रेजी सरकार के

अनुसार ३३७ आदमी ४१ बच्चे मारे गये और १,५०० घायल हुये। जबकि इसके विपरीत मरने वालों की संख्या १,००० से कम नहीं थी घायलों को निर्दयतापूर्वक असहाय अवस्था में उसी स्थान पर छोड़ दिया गया।

अंग्रेज जनरल डायर ने उक्त सारी कार्यवाही बदले की भावना से ही की थी, यदि वह चाहता तो बाग के मार्ग में कुछ सिपाही खड़ा करके सभा-स्थल पर जनता को जाने से रोक सकता था, किन्तु ऐसा नहीं किया और बर्बरता पूर्वक इस क्रूरतम कार्यवाही को अन्जाम दिया। जब हन्टर कमीशन (जिसे सरकार ने इसकी जाँच के लिये नियुक्त किया था) के एक सदस्य ने जनरल डायर से पूछा कि- "क्या यह एक आतंक का रूप न था?" उसने र्निभीकता से उत्तर दिया कि- "नहीं यह बहुत भयानक कर्तव्य था जो मुझे पूरा करना था, मैंने सोचा था कि मुझे गोलियां अच्छी तरह और ठीक निशाने पर लगानी चाहिये जिससे मुझे और किसी सिपाही को दोबारा गोली चलाने की आवश्यकता न पड़े। मैं समझता हूँ कि मैं भीड़ को बिना गोली चलाए तितर-बितर कर सकता था परन्तु हो सकता था कि लोग दोबारा एकत्रित हो जाते और मेरी हँसी उड़ाते और मैं स्वयं बेवकूफ बनता। अगर मेरे पास और गोलियाँ होती तो मैं और चलाता। मैंने १६५० गोलियाँ चलवाईं क्यों कि मेरे पास और गोलियाँ नहीं थीं।"[१]

यहाँ यह स्मरणीय है कि जनरल डायर द्वार किये कुकृत्य जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड को पंजाब के गवर्नर माइकेल ओडायर ने इन शब्दों में अनुमोदन किया था- "आपकी कार्यवाही सही है, लेफ्टिनेंट गवर्नर उसका अनुमोदन करता है।" यही नहीं, ब्रिटिश संसद के उच्च सदन 'हाउस आफ लॉर्ड्स' ने जनरल डायर के अपराधों की लीपापोती कर दी।

इंग्लैण्ड की तानाशाही जनता ने चंदा करके उसे थैली भेंट की। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटिश सरकार भारतीयों को गुलामों की भाँति रखने पर विश्वास करती थी और यही चाहती थी कि भारतीय जड़वत् रहे तथा उनके दमन चक्र के खिलाफ उफ तक न करे। लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन के गत्यात्मक प्रभाव से देश की जनता आन्दोलित थी।

१- जंग-ए-आजादी : पुर्नमूल्यांकन, लेखक डॉ. रामनिहोरे सान्घवी, पृ.सं. १२७

१ फरवरी १९२२ को महात्मा गाँधी ने वाइसराय लार्ड रीडिंग को एक पत्र लिखकर सूचित किया कि मेरा विचार बारदोली में सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरु करने का और मंतूर में चल रहे टैक्स विरोधी आन्दोलन को स्वीकृति दे देने का है। किन्तु यदि अब सभी अहिंसक आन्दोलनकारियों को छोड़ दिया जाय ओर सरकार अहिंसक कार्यों में तनिक भी हस्तक्षेप न करने की घोषणा करे तो वह सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित करने को तैयार है। उन्होंने यह माँगे स्वीकार करने के लिए सरकार को सात दिन का समय दिया, परन्तु सात दिन की अवधि के पूर्व ही जब असहयोग आन्दोलन जोरों पर था उसी समय गोरखपुर जनपद में स्थित 'चौरीचौरा' पुलिस स्टेशन पर पुलिस ने एक जुलूस को अस्त्र बल पर भंग करना चाहा, फलतः जनता ने क्रोध में आकर थाने में आग लगा दी जिससे एक थानेदार व २१ सिपाही सहित २२ लोग मारे गये। इस दुर्घटना से गाँधी जी को बहुत कष्ट हुआ और उन्होंने आन्दोलन स्थगित कर दिया। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन के स्थगन के निश्चय का सभी नेताओं ने विरोध किया, पं॰ मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतराय ने जेल से ही लम्बे-लम्बे पत्र लिखे। उन्होंने गाँधीजी की किसी एक स्थान पर घटना का सारे देश को दण्ड देने की आलोचना की। पं॰ जवाहर लाल नेहरू ने कहा- "हम सबको बड़ा दुःख हुआ, जब हमने सुना कि हमारी लड़ाई उस समय बन्द की दी गयी जब हम सफलता की ओर बढ़ रहे थे।" इसी प्रकार सी॰आर॰ दास ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये कहा- "गाँधी जी आन्दोलन को बहुत साहस से प्रारम्भ करते हैं, कुछ समय तक कुशलता से चलाते हैं और अन्त में साहस खोकर बहक जाते हैं।"

महान देशभक्त नेताजी सुभाषचन्द्र बोस कहते हैं- "उस समय जनता का उत्साह बहुत ऊँचा था, तब पीछे हटने का आदेश देना राष्ट्रीय संकट से कुछ कम नहीं था।"

इन नेताओं की इस प्रकार की आलोचना से लाभ उठाकर सरकार ने गाँधी जी को ३१ मार्च १९२२ को गिरफ्तार करके ६ वर्ष का कारावास दण्ड दे दिया। किन्तु स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण ६ मई १९२२ को उन्हें छोड़ दिया गया। वैसे तो इस देशव्यापी आन्दोलन को सारे देश का समर्थन प्राप्त था पर गाँधी जी के आग्रह पर जब सविनय अवज्ञा आन्दोलन को स्थगित कर दिया तो सारे देश में निराशा की लहर व्याप्त हो गयी। सभी

महत्वपूर्ण नेता जेल की दीवारों के अन्दर कैद थे। देश की जनता को सही मार्गदर्शन करने वाला कोई अच्छा नेता बाहर नहीं था। ब्रिटिश सरकार जिसकी नीति ही 'फूट डालो और राज्य करो' की थी ने जिन्ना के माध्यम से साम्प्रदायिक दंगे करवाये, जिससे हिन्दू और मुसलमानों का भीषण रक्तपात हुआ और हिन्दू-मुस्लिम एकता हवा हो गयी और 'गंगा जमुना मयी संस्कृति मिट्टी में मिल गयी'। राष्ट्रीय एकता व अखण्डता की दीवार तार-तार करने का कुत्सित प्रयास किया गया।

असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के बाद कांग्रेस में फूट पड़ गयी, देशबन्धु चितरंजन दास तथा मोतीलाल नेहरू कांग्रेस से अलग हो गये और उन्होंने एक नवीन राजनीतिक पार्टी की नींव सन् १९२२ में डाली जिसे स्वराज्य पार्टी का नाम से अभिहित किया गया। यद्यपि यह पार्टी राष्ट्रीय हितों को ही परिभाषित करती थी जिसका प्रमुख उद्देश्य था भारत को स्वराज्य प्राप्ति में सहयोग देना और ब्रिटिश साम्राज्यवादी पारिपाटी का अन्त करना। महात्मा गाँधी ने कांग्रेस की एकता को कायम रखने का भरसक प्रयास किया पर इसके बावजूद कांग्रेस के दो दल बन गये और सन् १९२३ के चुनाव में स्वराज्य पार्टी के नेताओं ने ४२ सीटों पर कब्जा कर लिया। स्वराज्यपार्टी का यह विश्वास था विधान मण्डल चुनावों में भाग लेकर अधिकाधिक सदस्य जीतें ताकि सरकार के स्वेच्छाचारी तरीकों का नियन्त्रण किया जा सके। साथ ही ऐसे कार्यों की कटु आलोचना की जाये जिससे देश का अहित और शोषण होता हो। बंगाल के विधान मण्डल में इस दल के नेता चितरंजनदास थे और केन्द्रीय विधान मण्डल में इस दल के नेता पं० मोतीलाल नेहरू थे। उन्होंने अपने प्रभाव व योग्यता से कुछ राष्ट्रवादियों एवं स्वतन्त्र सदस्यों को अपने साथ मिलाकर अपना बहुमत बना लिया।

केन्द्रीय विधान मण्डल में स्वराज्य दल के नेताओं ने अपने प्रयास से ८ फरवरी १९२४ को १९१९ के अधिनियम में संशोधन करते हेतु अपना निम्नलिखित प्रस्तांव पारित कराया-

"यह असेम्बली (केन्द्रीय विधान मण्डल) गवर्नर जनरल को भारत के लिये उत्तरदायी सरकार स्थापित करने की दृष्टि से १९१९ के अधिनियम में परिवर्तन करने का परामर्श देती है और आग्रह करती है कि निकट भविष्य में भारत के लिए एक संविधान का निर्माण

करने हेतु जिसमें अल्पसंख्यक जातियों के हितों का भी उचित ध्यान रखा जाय, भारत के प्रतिनिधियों का एक गोलमेज सम्मेलन बुलाया जाय। इस केन्द्रीय विधान मण्डल को भंग करके नये केन्द्रीय विधान मण्डल के समक्ष इस नव निर्मित संविधान को स्वीकृति के लिए रखा जाय और फिर अधिनियम का रूप देने के लिए ब्रिटिश संसद के समक्ष रखा जाय।"[1]

उपर्युक्त प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने के बाद भी सरकार ने इसे अस्वीकार कर दिया तब स्वराज्यवादियों ने निश्चय किया कि वे सरकारी कार्यों में असहयोग करेंगे, उन्होंने विधान मण्डलों में अपना विरोध प्रकट करने के लिए 'वाक आउट' नीति का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। इस नीति को सर तेज बहादुर सप्रु ने उत्कृष्ट देश-भक्ति का नाम दिया, तत्सम्बन्ध में श्री सी॰आई॰ चिन्तामणि ने लिखा है, "मार्च १९२६ से विधान मण्डल की समाप्ति तक के बीच में यह आम दृश्य था कि कांग्रेसी स्वराज्यवादी व्यवस्थापिका सभाओं में जाते थे और तुरन्त ही बाहर चले जाते थे।"

विधान मण्डल में स्वराज्य पार्टी की बार-बार मांग के कारण ब्रिटिश सरकार ने नवम्बर १९२६ में भारत की राजनीति का अध्ययन करने के लिए सर जान साइमन की अध्यक्षता में एक आयोग भेजा इस 'साइमन कमीशन' के सभी सात सदस्य अनुदार विचार के अंग्रेज थे, एक भी भारतीय सदस्य नहीं था। अतः सभी पार्टियों ने इसका बहिष्कार किया। जनता ने 'साइमन वापस जाओ' के नारे लगाये तथा लगभग प्रत्येक स्थान पर काले झण्डे दिखाये गये। सरकार ने भी प्रदर्शनकारियों का कठोरता से दमन किया। अंग्रेजों को यह विश्वास था कि हिन्दू व मुसलमान कभी एक नहीं हो सकते हैं, इसलिए उस दौरान अंग्रेजों ने कुटिलता से कहा कि आप लोग एक होकर अपनी माँगों को पेश करें। ब्रिटिश हुकूमत की दमनकारी हिंसात्मक उग्रनीतियों के कारण १० अक्टूबर १९२८ को पंजाब केसरी लाला लाजपतराय पुलिस की लाठियों से बुरी तरह घायल हो गये और आगे चलकर १७ नवम्बर को उनका देहान्त हो गया। इस लाठी प्रहार पर उन्होंने कहा 'मेरे शरीर पड़ी

१- भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन, पृ.सं. ३२३

२- 'राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम और लाला लाजपत राय', लेखक सी॰पी॰ वैद्य, पृ.सं. १०९

एक-एक लाठी की चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की एक-एक कील होगी।'[२]

पंडित गोविन्द वल्लभ पन्त तथा पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी लखनऊ के जुलूस में लाठियाँ खायीं। 'साइमन कमीशन' के तीव्र विरोध के बावजूद अंग्रेजी सरकार ने मनमाना रवैया अख्तियार किये रखा। १९२८ की एक दूसरी महत्वपूर्ण घटना बारदोली किसानों का सत्याग्रह था जिसे सरदार वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में चलाया गया। गोरी सरकार ने बारदोली के किसानों के लगान में २५ प्रतिशत की वृद्धि कर दी, सरदार पटेल ने इस वृद्धि का तीव्रतम विरोध किया साथ ही किसानों के साथ इसकी अहिंसात्मक जंग लड़ी। अन्त में इस आन्दोलन के सम्मुख सरकार को ही झुकना पड़ा और सत्याग्रहियों की विजय हुयी। भारतीयों के प्रबल विरोध के कारण सरकार ने भारतीय नेताओं को स्वयं अपने लिये एक संविधान के निर्माण की चुनौती दी। कांग्रेस ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया और उसने २८ फरवरी १९२८ को दिल्ली में एक सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया जिसमें २९ संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में प्रारम्भिक विचार-विमर्श के बाद मुम्बई में १९ मई को पुनः सम्मेलन हुआ जिसमें भारतीय संविधान का मसविदा तैयार करने के लिए पं॰ मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक आठ सदस्यीय समिति की नियुक्ति हुयी। इस समिति ने तीन माह के भीतर १९ बैठकों में संविधान का मसविदा तैयार किया जिसे 'नेहरू रिपोर्ट' कहा गया। ब्रिटिश सरकार ने इसको अस्वीकार कर दिया। ब्रिटिश सरकार का जुल्म दिनों-दिन निरीह जनता पर बढ़ता जा रहा था, बिहार के चम्पारन जिले में नील की खेती करने वाले गोरे जमींदार किसानों और मजदूरों के साथ अमानवीय व्यवहार करते थे, जिसमें उनका शारीरिक शोषण भी सम्मिलित है। इस दुर्दशा के विरुद्ध किसान और मजदूर संघर्ष करने को तत्पर थे किन्तु इसके लिये उन्हे कुशल नेतृत्व की आवश्यकता थी जो दृढ़ता से उनकी लड़ाई लड़ सके । ऐसे अदम्य साहस के प्रतीक थे - महात्मा गांधी जो किसानों के संघर्ष का बिगुल बजाने और उनका मार्ग दर्शन करनें चम्पारन पहुँचे। महात्मा गांधी ने अपनी सत्याग्रही शक्ति द्वारा एक ओर किसानों और मजदूरों में दृढ आत्मविश्वास व स्वाभिमान की अलख जगाई दूसरी ओर इस व्यवसाय को करने वाले अंग्रेजों को भी सोचने के लिए बाध्य किया।

इस क्रान्तिकारी कदम से मिल मजदूरों में भी चेतना आई और वे आत्मरक्षार्थ सोचने को विवश हुए, सन् १९२८ में मुम्बई में सूती कपड़ा बनाने वाले कारखानों के मजदूर हड़ताल पर गये तथा बाद में अपनी मुख्य माँगे मनवाने में सफल हुए। २ अगस्त १९२९ को गाँधी जी बारदोली गये जहाँ किसानों की अगुवाई वल्लभ भाई पटेल कर रहे थे, गाँधी जी के हस्तक्षेप से कर-कानून में संशोधन किया गया। इस आन्दोलन की सफलता के उपहार स्वरूप श्री वल्लभ भाई पटेल को 'सरदार' की पदवी मिली।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सन् १९२८ में कांग्रेस का जो अधिवेशन पं. मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में कलकत्ता में हुआ था, में 'नेहरू-रिपोर्ट' के सम्बन्ध में मतभेद पैदा हो गया था क्योंकि इस रिपोर्ट में भारत को 'औपनिवेशक स्वराज्य' की मांग प्रस्तुत की गयी थी, जबकि नेता जी सुभाष चन्द्र बोस तथा पं. जवाहर लाल नेहरू जो कि युवक दल का नेतृत्व कर रहे थे, पूर्ण स्वतंन्त्रता के समर्थक थे। गाँधी जी के प्रयास स्वरूप पं. मोतीलाल नेहरू की उपरोक्त सिफारिशें कांग्रेस ने स्वीकार कर ली परन्तु इसके साथ-साथ गांधी जी ने पं. जवाहर लाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस की इच्छानुसार दूसरा प्रस्ताव भी कांग्रेस में पारित करा दिया, जिसमें सरकार को अल्टीमेंटम दिया गया कि यदि वह ३१ दिसम्बर १९२९ तक 'नेहरू रिपोर्ट' को स्वीकार नहीं करती तो फिर 'पूर्ण स्वराज्य' ही कांग्रेस का लक्ष्य होगा।

वास्तव में अगर देखा जाये तो यह असहयोग आन्दोलन एक जनान्दोलन का रूप ले चुका था, इसी दौरान महान क्रान्तिकारियों के सुनियोजित आक्रमण ने ब्रिटिश हुकूमत की नींद हराम कर दी थी, वे खासे विचलित तो हुये किन्तु फिर भी शासन छोड़ना नहीं चाहते थे। लार्ड इरविन ने भारतीय नेताओं को बुलाकर कह दिया कि सरकार आपको स्वशासन का अधिकार नहीं दे सकती हैं, फिर ३१ दिसम्बर १९२९ को कांग्रेस का अधिवेशन पं. जवाहर लाल नेहरू के सभापतित्व में लाहौर के रावी के तट पर हुआ, चूँकि निर्धारित अवधि तक सरकार की ओर से कांग्रेस के अल्टीमेटम का कोई संदेश प्राप्त नहीं हुआ। फलतः उसी समय मध्य रात्रि में रावी के तट पर पं. जवाहरलाल नेहरू ने पूर्णस्वतंत्रता का झण्डा फहराते हुये घोषणा की- "कांग्रेस के संविधान की प्रथम धारा में 'स्वराज्य' शब्द का

अभिप्राय पूर्ण स्वतंत्रता से है।''

इसी समय यह निश्चय किया गया कि प्रतिवर्ष २६ जनवरी को स्वतन्त्रता दिवस मनाया जाये, अतः महात्मा गांधी ने २६ जनवरी को स्वतंत्रता दिवस मानने की घोषणा की। इस प्रकार २६ जनवरी १९३० को सम्पूर्ण देश में 'प्रथम स्वतन्त्रता दिवस' मनाया गया इसी दिन भारत की महान जनता ने घोषणा की-

''भारत में ब्रिटिश सरकार ने भारतीय की केवल स्वतंत्रता का ही अपहरण नहीं किया है, इसने जनता के शोषण पर अपने शासन का प्रासाद खड़ा किया है और भारत का आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक सत्यानाश किया है........जिस शासन ने हमारे देश का इस प्रकार चतुर्मुखी सत्यानाश किया हो, उसे अधिक समय तक सहन करना हम ईश्वर तथा मानवता के प्रति भारी अपराध समझते हैं। ....हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि हम स्वेच्छा पूर्वक इसकी सहायता न करें और अपना सहयोग न दें तो इस अमानुषिक शासन का अन्त निश्चित है। अतः हम यह शपथपूर्वक निश्चय करते हैं कि समय-समय पर निकलने वाले कांग्रेस के आदेशों का पूरा पालन करेंगे, जिससे 'पूर्ण स्वराज्य' की स्थापना हो सके।''[१]

इस प्रकार यह दृष्टव्य है कि यह शपथ प्रतिवर्ष दोहराई जाती रही और २६ जनवरी को स्वाधीनता दिवस के रूप में १९४७ तक मनाया जाता रहा और आज भी इस हम गणतन्त्र दिवस के रूप में मनाते हैं, क्योंकि इस दिन अर्थात २६ जनवरी १९५० को भारतीय संविधान लागू हुआ था। लाहौर के सम्पूर्ण स्वतन्त्रता के प्रस्ताव के बाद देश में ब्रिटिश हुकूमत का दमन-चक्र और तेजी से घूमा, सरकार ने आन्दोलन को कुचलने के लिये दमन-नीति का आश्रय लिया। साथ ही स्थान-स्थान पर कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार करना प्रारम्भ कर दिया, जिसके विरोध में गाँधी जी ने नया आन्दोलन चलाने से पूर्व लार्ड इरविन तथा रैम्जे मैकडौनल्ड के सम्मुख एक प्रस्ताव रखा जिसमें नमक से कर उठाने, मद्य निषेध लागू करने तथा आत्म रक्षा के लिये अस्त्र-शस्त्र रखने की अनुमति देने को प्रमुखता से कहा गया, परन्तु ब्रिटिश हुकूमत ने उपरोक्त मांगों को अनसुना कर दिया। देश में

१- भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन, पृ.सं. ३४६

गिरफ्तारियों का क्रम पूर्ववत चलता रहा फलतः १४ फरवरी १९३० को साबरमती में कांग्रेज कार्यकारिणी की एक आवश्यक बैठक बुलाई गयी जिसमें महात्मा गाँधी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने का निर्णय लिया गया २ मार्च १९३० को गाँधी जी ने वाइसराय इरविन को पुनः एक ऐतिहासिक पत्र लिखकर कहा कि वह शीघ्र ही कानून को तोड़कर सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करेंगे। वाइसराय को चेतावनी देने के पश्चात १२ मार्च १९३० को प्रातःकाल महात्मा गाँधी ने नमक कानून तोड़ने के उद्देश्य से साबरमती आश्रम से ७९ अनुयायियों के साथ दांडी यात्रा प्रारम्भ की। प्रस्थान के समय महात्मा गाँधी ने यह ऐतिहासिक घोषणा की, "यदि स्वराज्य न मिला तो या रास्ते में मर जाऊँगा या आश्रम के बाहर रहूँगा। नमक पर कर न उठा सका तो आश्रम लौटने का भी इरादा नहीं है।"[१]

२४ दिन की यात्रा के पश्चात गाँधी जी ५ अप्रैल को दांडी पहुँचे और ६ अप्रैल को अपने हाथ से नमक बनाकर 'नमक कानून' को तोड़ दिया। 'नमक कानून' तोड़ने का कार्यक्रम गाँधी जी की गिरफ्तारी के बाद भी जारी रहा, 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' आँधी की भाँति सारे देश में फैल गया। सरकार के विरोध में सभाओं का आयोजन किया गया, सहस्त्रों स्त्री-पुरुष जेल भेजे गये १४ अप्रैल को पं. जवाहरलाल नेहरू और दूसरे प्रभावशाली नेता बंदी बना लिये गये। ६ मई को गाँधी जी को बंदी बनाकर यरवदा जेल भेज दिया गया। २१ मई को धरसना में २,५०० सत्याग्रहियों ने नमक के गोदाम पर चढ़ाई कर दी, जनता ने चटगाँव के सरकारी शस्त्रागार पर धावा बोल दिया और शोलापुर में ५ थानों को जला दिया गया, जिससे वहाँ मार्शल लॉ लागू कर दिया गया। पेशावर में जनता का अधिकार हो गया और संयुक्त प्रान्त के किसानों ने सरकार को भूमि कर देना बन्द कर दिया।

विदेशी सामानों का बहिष्कार और शराब दुकानों पर शान्तिपूर्ण धरना (Picketing) का काम भी सत्याग्रहियों ने तीव्र कर दिया, भारत की महान वीरांगनाओं ने बड़ी संख्या में इसमें भाग लिया, सारे देश में 'प्रभात फरियाँ' निकालकर जनता को उद्बोधित किया गया। सभी स्थानों पर पुलिस ने भयंकर अत्याचार किये, सभायें भंग की गयीं, लाठियों के बर्बर,

१- चिंगारी, रोजनामा पत्र पृ.सं. ५

घातक प्रहार किये गये। हजारों नौजवान पकड़े गये ओर उन्हें तरह-तरह की घोर यातनायें दी गयीं, देशभर में लगभग ५०० व्यक्ति गोली के शिकार हो गये और असंख्य व्यक्ति घायल हुये, परन्तु आन्दोलन बहुआयामी होकर विराट रूप धारण करता गया। सन् १९३०-३३ के आन्दोलन तथा पेशावर के सैनिक विद्रोह से सरकार भयभीत हुयी, उसने भारतीय शासन में सुधार लाने के लिये नयी योजनायें बनानी प्रारम्भ की जिसके तहत प्रथम गोलमेज सम्मेलन का अधिवेशन १२ नवम्बर १९३० को लंदन में हुआ। गोलमेज सम्मेलन में राजनीतिक समझौते के लिए गाँधी जी को आमंत्रित किया गया, परन्तु कांग्रेस ने इस अधिवेशन में भाग नहीं लिया, इस सम्मेलन की अध्यक्षता ब्रिटिश के प्रधानमंत्री श्री रैम्जे मैकडोनाल्ड ने की। सम्मेलन में ८५ प्रातिनिधियों ने भाग लिया और यह सम्मेलन १९ जनवरी १९३१ तक चलता रहा किन्तु कोई सार्थक परिणाम नहीं निकल सका, इस बीच अंग्रेजी हुकूमत ने अपनी Devide and Rule (फूट डालो और राज्य करो) नीतिक के तहत हिन्दू-मुस्लिम दंगे भड़काये और देश को साम्प्रदायिक आग में झोंक दिया।

इसी बीच तेज बहादुर सप्रु, डॉ॰ जयकर, नवाब भोपाल तथा श्रीनिवास शास्त्री ने सरकार व कांग्रेस के बीच समझौता कराने का प्रयास किया, फलतः लार्ड इरविन तथा महात्मा गाँधी जी के मध्य १७ फरवरी और ४ मार्च के बीच अनेक बैठकें हुयी अन्त में ५ मार्च १९३१ को ऐतिहासिक 'गाँधी-इरविन' समझौता हो गया। इस समझौते के सम्बन्ध में देश में मिली-जुली प्रतिक्रिय व्यक्त की गयी। तत्सम्बन्ध में रजनी पाम दत्त ने सत्य ही कहा था- ''गाँधी इरविन समझौते में कांग्रेस की कोई मांग पूरी नहीं हुयी (नमक कर तक नहीं हटाया गया), सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस ले लिया गया, कांग्रेस ने उस गोलमेज सम्मेलन में भाग लेना स्वीकार कर लिया, जिसका बहिष्कार करने की उसने शपथ ली थी। स्वराज्य की दिशा में भी कोई निश्चित पग नहीं उठाया गया।''

इस समझौते का अधिक दिनों तक पालन नहीं हो सका क्योंकि इसी समय सरदार भगत सिंह, राजगुरू और सुखदेव जैसे क्रान्तिकारियों को विधान-मण्डल में बम फेंकने और पुलिस अधिकारी साण्डर्स की हत्या करने के अपराध में २३ मार्च १९३१ को फाँसी दे दी गयी। इस घटना ने देश के आम जन-मानस के अलावा युवाओं को बुरी तरह से झकझोर

कर रख दिया। समूचे देश में क्रान्ति की अलख जग गयी थी, क्या बूढ़े, क्या जवान, क्या स्त्रियाँ और क्या पुरुष, सभी एक साथ विद्रोह के लिये तत्पर हो गये।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन ७ सितम्बर से १ दिसम्बर १९३१ को लंदन में हुआ, गाँधी जी १० सितम्बर को लन्दन पहुँचे। पं. मदन मोहन मालवीय और श्रीमती सरोजिनी नायडू भी इंग्लैण्ड गये परन्तु वहाँ समझौता नहीं हो सका क्योंकि वहाँ साम्प्रदायिकता का पक्ष लिया गया, गोलमेज सम्मेलन में इस बात पर जोर दिया गया कि सुरक्षा, राजस्व तथा विदेश विभाग ब्रिटिश सरकार के पास रहेंगे तथा बाकी विभाग जनता के पास रहेंगे। गाँधी जी अपनी पूर्ण स्वतंत्रता की माँग पर अड़े रहे, २४ दिसम्बर को गाँधी जी खाली हाथ लौटे। लार्ड इरविन के स्थान पर लार्ड विलिंगटन भारत के वायसराय नियुक्त किये गये उन्होंने भी परम्परागत कठोर नीति का अनुसरण किया जिससे अंग्रेजी सरकार का दमन-चक्र चरम सीमा पर पहुँच गया, फलस्वरूप भारतीय जन मानस में संघर्ष की भावना तीव्रतम होगी गयी।

२८ दिसम्बर सन् १९३१ को आजाद मैदान में गाँधी जी के स्वागत में एक विशाल सभा आयोजित की गयी इन दिनों हालात दिन प्रतिदिन बिगड़ते गये। लार्ड विलिंगटन ने कहा था कि छः सप्ताह के भीतर वह कांग्रेस को कुचल देंगे। वास्तव में उसने गाँधी जी तथा कांग्रेस कार्यकारिणी के बचे सदस्यों को बंदी बनाकर जेल में डाल दिया गया तथा कांग्रेस संस्था को अवैध घोषित कर दिया। सरकार ने सभी कांग्रेस कार्यालयों की सम्पत्ति जब्त कर ली तथा उनमें सरकारी ताले डाल दिये गये। सभाओं, समितियों तथा जुलूसों पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, सरकार ने जनता पर अमानवीय व असहनीय अत्याचार किये। गाँवों में बलात्कार, सामूहिक जुर्माना, नृशंस हत्या व अत्याचार साधारण बात हो गयी। यहाँ यह भी विचारणीय है कि इस समय मुस्लिम लीग की नेताओं ने सरकार का साथ दिया बम्बई में मौलाना शौकत अली ने बहिष्कार आन्दोलन का खुला विरोध किया जिससे आगे चलकर इसने हिन्दू-मुस्लिम दंगे की पृष्ठ भूमि तैयार की और साम्प्रदायिक एकता में खटास पैदा हो गयी। गोरों की 'फूट डालो और राज्य करो' नीति अक्सर सफल हो जाती थी अर्थात वे हिन्दू-मुस्लिम के मध्य खाई खोदने के मंसूबों में कामयाब हो जाते थे।

इन दिनों इग्लैण्ड के प्रधानमंत्री मैकडोनाल्ड थे, हिन्दू और मुसलमानों से संबंधित निर्णय, जिसे साम्प्रदायिक निर्णय (Communal Award) कहा जाता है को इन्होंने १६ अगस्त १९३२ को दिया जिसमें प्रमुख विशेषता यह थी कि मुसलमानों और यूरोपियनों की भांति अछूतों को हिन्दुओं से अलग कर प्रथक निर्वाचन तथा प्रथक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया, इस निर्णय से गाँधी जी के हृदय को काफी ठेस लगी उन्होंने २० सितम्बर १९३२ को आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। अन्त में प्रधानमंत्री ने गाँधी जी के साथ समझौता कर लिया, जो कि भारतीय इतिहास में 'पूना समझौता' के नाम से प्रसिद्ध है, में अछूतों का पृथक निर्वाचन बदल दिया गया।

१७ नवम्बर १९३२ को तीसरा गोलमेज सम्मेलन आरम्भ हुआ जो कि २४ दिसम्बर १९३२ तक चला, इसमें केवल ४६ प्रतिनिधियों ने भाग लिया। कांग्रेस ने इस सम्मेलन में भाग नहीं लिया, सम्मेलन के प्रस्तावों के आधार पर एक 'श्वेत पत्र' प्रकाशित हुआ। इस प्रकार क्रमशः तीन गोल मेज सम्मेलनों के बाद भारत को प्रान्तीय स्तर पर स्वशासनाधिकार प्राप्त हो गया, गर्वनर को केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि के रूप में प्रान्त का प्रधान पद प्राप्त हुआ जिसे कुछ विशेषाधिकार दिय गये। इसी के तहत प्रान्तीय मंत्री अब जनता के हितों के लिये कुछ नीति कार्यान्वित करने का अवसर पा गये। १९३४ में बम्बई में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ सन् १९३७ में कांग्रेस ने चुनाव लड़ने का फैसला किया।

पं. जवाहरलाल नेहरू ने जन-सभाओं में कहा कि हम संविधान को तोड़ने के लिये चुनाव लड़ रहे हैं, चुनाव में कांग्रेस को आशातीत सफलता मिली और उसे बहुमत मिला गया किन्तु कांग्रेस ने कार्य-भार ग्रहण करने से इंकार कर दिया। जब कांग्रेस को यह आश्वासन प्राप्त हो गया कि गवर्नर प्रान्तीय सरकार के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे तब जुलाई १९३७ में आठ प्रान्तों में कांग्रेस ने अपनी सरकारें बनाई। एक तरफ तो उपनिवेशवादी, साम्राजयवादी ताकतें आपस में ही संघर्ष करने लगी थीं और दूसरी ओर राष्ट्रीय आन्दोलन की जड़े गाँवो में जम गई। १९३९ तक ये मन्त्रिमण्डल कार्य करते रहे, इसी वर्ष द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। वाइसराय लार्ड लिनलिथगो ने भारतीय विधान मण्डल की सहमति के बिना भारत को भी इस युद्ध में सम्मलित कर दिया और देश में आपातस्थिति

(State of Emergency) की घोषणा कर दी। इसके अलावा 'भारत रक्षा अध्यादेश' भी घोषित कर दिया जिसके द्वारा केन्द्रीय सरकार को सभायें रोकने, बिना वारन्ट के गिरफ्तारी करने तथा कानून तोड़ने के अपराध में आजन्म कालापानी तथा मृत्युदण्ड तक देने का अधिकार मिल गया। अंग्रेजी सरकार के इस व्यवहार से रुष्ट होकर कांग्रेसी नेताओं ने मंत्रिमंडल से १५ नवम्बर १९३९ को त्याग-पत्र दे दिये। यह विचारणीय है कि ठीक इसके विपरीत २२ नवम्बर को ८ प्रान्तों में मंत्रिमण्डल के त्याग पत्र को मुस्लिम लीग ने 'मुक्ति दिवस' के रूप में मनाया, उसने ऐसा इसलिये किया क्योंकि कांग्रेस ने चुनावों के बाद अपने बहुमत वाले प्रान्तों में मुस्लिम लीग के साथ संयुक्त मंत्रिमण्डल बनाना अस्वीकार कर दिया था जिसके वाद कांग्रेस व मुस्लिम लीग में कटुता उत्पन्न हो गयी थी जिसके परिणाम स्वरूप १९३७ व १९३८ में बिहार, संयुक्त प्रान्त, सीमा प्रान्त तथा मद्रास में साम्प्रदायिक दंगे हुये।

इसके बाद अप्रैल १९४० में कांग्रेस का अधिवेशन मौलाना अब्दुल कलाम आजाद की अध्यक्षता में 'रामगढ़' में हुआ। इस अधिवेशन में कांग्रेस ने स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि भारत की जनता पूर्ण स्वतंत्रता से लेश मात्र भी कम स्वीकारने को तैयार नहीं है। इसी समय सुभाष चंद्र बोस वामपन्थी तत्वों को संगठित करने में संलग्न थे, वह चाहते थे कि कांग्रेस इंग्लैण्ड को अन्तिम चेतावनी दे दे और यदि वे इतने पर भी भारत को स्वतंत्र नहीं करें तो पुनः देश व्यापी सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया जाये। कांग्रेस की चुनौती का ब्रिटिश हुकूमत पर कोई असर नहीं हुआ, फलतः अक्टूबर १९४० को पुनः सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया गया, १७ अक्टूबर १९४० को आचार्य विनोबा भावे जी ने आन्दोलन का श्रीगणेश वर्धा से ११ किलोमीटर दूर पवनार नामक गाँव से शुरू किया, इसी 'पवनार' गाँव में उन्होंने भाषण दिया और जनता से युद्ध में अंग्रेजों की किसी प्रकार से सहायता न करने को कहा, चार दिन तक विनोबा भावे युद्धविरोधी भाषण देते रहे और पाँचवे दिन उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

पं. जवाहरलाल नेहरू को सत्याग्रह आरम्भ करने के पूर्व ही गिरफ्तार कर लिया गया और उनको चार वर्ष के कठोर करावास का दण्ड दिया गया, सरदार पटेल, चक्रवर्ती राजगोपालचारी, अब्दुल कलाम आजाद तथा अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के सदस्य

बड़ी संख्या में गिरफ्तार किये गये। लगभग ४५ हजार कार्यकर्ताओं के बन्दी होने पर भी आन्दोलन तीव्र गति से चलता रहा और धीरे-धीरे यह आन्दोलन सारे देश में फैल गया।

२३ मार्च १९४१ में स्टुअर्ट क्रिप्स ब्रिटानिया सरकार की ओर से भारत भेजे गये उस समय चर्चिल युद्ध कैबिनेट के प्रधान थे। उन्होंने यह वचन दिया कि अगर कांग्रेसी नेता ब्रिटिश सरकार की युद्ध में मदद करेंगे तो युद्ध के बाद उनके आत्म निर्णय के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जायेगा, किन्तु कांग्रेस ने उनके प्रस्ताव को ठुकरा दिया क्योंकि प्रस्ताव के अनुसार प्रान्तों को भारतीय संघ में सम्मलित होने या न होने की स्वतंत्रता का तात्पर्य यह था कि परोक्ष रूप से पाकिस्तान बनाने की माँग को स्वीकार कर लिया गया। कांग्रेस द्वारा प्रस्ताव ठुकरा देने से ११ अप्रैल को इन प्रस्तावों को स्टुअर्ट क्रिप्स ने वापस ले लिया स्टुअर्ट क्रिप्स के वापस जाने के बाद भारतीय को यह अहसास हुआ कि ब्रिटानिया सरकार ने उनके प्रति विश्वासघात किया है और उन्हें अपने देश की रक्षा का अवसर भी नहीं दिया गया। जापान ने सिंगापुर, मलाया और बर्मा पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था और वह भारत की ओर बढ़ रहा था। देश की परिस्थिति गंभीर होती जा रही थी जिस पर विचार करने के लिये २७ अप्रैल १९४२ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक इलाहाबाद में आहूत की गयी जिसमें यह तय हुआ कि यदि जापान की सेनायें भारत के अन्दर प्रविष्ट होती है तो कांग्रेस उनके साथ शान्तिपूर्वक सहयोग की घोषणा कर देगी, भारतीय जनता किसी दशा में उनके सम्मुख झुकेगी नहीं। गाँधी जी का कहना था कि - 'अंग्रेजों का भारत छोड़कर चले जाना ही देश के लिए हितकर है।' १४ जुलाई को 'वर्धा प्रस्ताव' द्वारा कांग्रेस की कार्यकारिणी ने भी इस दृष्टिकोण को समर्थन दिया, जनता के अन्दर दिन-प्रतिदिन यह भावना जोर पकड़ती जा रही थी कि कांग्रेस शीघ्र ही किसी न किसी रूप में जन-आन्दोलन आरम्भ करेगी। १ अगस्त १९४२ को तिलक दिवस पर इलाहाबाद में बोलते हुये पं. नेहरू ने कहा- "हम आग के साथ खेलने के लिये जा रहे हैं, हम दोधारी तलवार का प्रयोग करने जा रहे है, जिसकी चोट उल्टे हमारे ऊपर पड़ सकती है।"

इसी समय राजेन्द्र बाबू ने अपने एक भाषण में जनता को सचेत करते हुये कहा-

"हमें इस बार गोली खाने और तोप का सामना करने के लिये तैयार रहना चाहिये"।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन वक्तव्यों ने आने वाले भयंकर संघर्ष की पृष्ठ-भूमि की पुष्टि कर दी, जनता में देश की स्वतन्त्रता के प्रति बेचैनी बढ़ गयी। जनता के व्यापक असंतोष को देखकर ८ अगस्त १९४२ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने अपने बम्बई के अधिवेशन में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' और 'करो या मरो' का प्रस्ताव पारित किया, प्रस्ताव के बाद क्षुब्ध ब्रिटिश सरकार का दमन चक्र ताण्डव-नृत्य के रूप परिणित हो गया। ९ अगस्त को प्रातःकाल जबकि समस्त बम्बई नगर सो रहा था, रक्षा कानून के अन्तर्गत राष्ट्रीय नेताओं के साथ-साथ हजारों लोगों को जेल में ठूँस दिया गया, महात्मा गाँधी को पूना के आगा खाँ महल में और कार्यकारिणी के सदस्यों को अहमदनगर के किले में रखा गया। देश के शीर्ष नेताओं की अनुपस्थित में जनता ने ब्रिटानियां सरकार को चुनौती का डटकर लोहा लिया। इस दौरान हुकूमत ने जुल्म की इंतिहा कर दी और बर्बर तथा क्रूर कार्यवाहियों से जनता को खामोश रखने का असफल प्रयास किया, समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता समाप्त कर दी गयी, निर्दोष जनता के साथ अमानुषिक व्यवहार किया गया। कांग्रेस संस्था को अवैध घोषित कर दिया गया। स्थान-स्थान पर पुलिस तथा सेना ने गोलियाँ चलाई, जिससे हजारों निरीह जनता मारी गयी, इससे जनता भी क्रोध से पागल हो गयी और उसने भी हिंसात्मक कार्य प्रारम्भ कर दिये, उसने तार-टेलीफोन के खम्भे उखाड़ना, तार काटना, रेलगाड़ियों को क्षति पहुँचाना, स्टेशनों, थानों तथा सरकारी भवनों को जलाना और सरकारी अधिकारियों को क्षति पहुंचाना आरम्भ कर दिया। बलिया, बिहार, बंगाल तथा सतारा आदि स्थानों पर जनता ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए तगड़ी टक्कर दी और उनके संघर्ष को हमारे राष्ट्रीय इतिहास में गर्व के साथ लिखा गया। इसी बीच समाजवादी नेता लोकनायक जय प्रकाश नारायण हजारी जेल से भाग निकले, किन्तु उन्हें लाहौर के निकट पुनः बंदी बना लिया गया और लाहौर के दुर्ग में उन्हें अकथनीय यातनायें दी गयीं।

यहाँ यह स्मरणीय है कि इस आन्दोलन में देश की कम्युनिस्ट पार्टी और मुस्लिम लीग ने भाग नहीं लिया, ब्रिटिश सरकार की अत्याचार नीति के विरुद्ध महात्मा गाँधी ने

२१ दिनों का अनशन १९ फरवरी १९४३ को आरम्भ कर दिया, उनके बीमार हो जाने के कारण ६ मई १९४४ को जेल से उन्हें रिहा कर दिया गया।

अब नेता जी सुभाष चंद्र का विश्वास कांग्रेस व गाँधी जी की नीतियों में खत्म हो गया था, वे उग्र नीति के समर्थक थे, उन्होंने कांग्रेस की नीतियों से असंतुष्ट होकर 'फारवर्ड ब्लाक' नामक एक दल बनाया। उन्होंने कांग्रेसी नेताओं से कहा था "आप लोग बड़े-बड़े बंगलों में रहते हैं, आपको नहीं मालूम कि बमबाजी का क्या असर होता है? आप नहीं जानते कि जिस समय आप के सिरों पर ब्रिटिश जहाज मँडरा रहे हो, आपकी इमारते चकनाचूर हो रही हों, आपके हाथ भर के फासले पर मशीनगन की सनसनाती हुयी गोलियाँ उड़ रही हों, बच्चे मर रहे हों, औरते अस्त-व्यस्त भाग रही हों, खून बह रहा हो, पसलियाँ टूट रही हों, मुर्दे सड़कों पर बिछ रहे हों, उस समय का अनुभव कितना गहरा होता है। ....हम समझौते की ओर नजर उठाकर भी देख सकेंगे? नहीं, कभी नहीं, भारतीय खून इतना पतला नहीं होता है।"[1]

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने २९ नवम्बर १९४० को भूख हड़ताल की, स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण ५ दिसम्बर को उन्हें जेल से रिहा कर दिया। फिर कलकत्ता में उन्हें एलगिन रोड स्थित उनके घर में ही नजरबंद कर दिया गया। युग दृष्टा सुभाष चंद्र बोस पठान का रूप धारण करके घर भाग निकले। वे अफगानिस्तान, इटली और जर्मनी होते हुये अन्त में जापान पहुंचे। उन्होंने 'दिल्ली दूर नहीं' 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हे आजादी दूँगा' जैसे क्रान्तिकारी विचार जनता को दिये जो बाद में नारे के रूप में परिणित हो गये। जर्मनी में पहुंचकर उन्होंने शासक हिटलर से मुलाकात की, और फिर पनडुब्बी द्वारा वे वहाँ से जापान गये टोकियो अधिवेशन में 'आजाद हिन्द फौज' निर्माण करने का प्रस्ताव पारित हुआ, रास बिहारी बोस ने आजाद हिन्द फौज के गठन की जिम्मेदारी सुभाषचन्द्र बोस को दी। सिंगापुर और बर्मा ने आजाद हिन्द सेना का संगठन ही नहीं किया बल्कि एक अस्थाई सरकार भी गठित कराई, जिसे ९ राष्ट्रों ने स्वीकृति प्रदान की। अप्रैल १९४४ में इस सेना ने भारत की सीमा पर आक्रमण करके अंग्रेजों को पीछे हटाकर कोहिमा पर आक्रमण कर दिया, प्रारम्भ में अंग्रेजों के विरुद्ध इस 'फौज' को व्यापक सफलता मिली, किन्तु बाद में

युद्ध सामग्री की कमी तथा भीषण वर्षा के कारण पीछे हटना पड़ा। १४ अगस्त १९४५ को टोकियो जाते हुये वायुयान दुर्घटना में फारमोसा द्वीप के निकट नेताजी सुभाषचंद्र बोस का आकस्मिक निधन हो गया जिससे आजाद हिन्द फौज लाल किले में तिरंगा झण्डा फहराने में सफल न हो सकी। यद्यपि यह आज भी शोध का विषय है कि उनकी मृत्यु हुयी या नहीं? क्यों आज भी ऐसी जनश्रुति है कि नेता जी जीवित हैं।

ब्रिटानिया सरकार ने भारत छोड़ो आन्दोलन को विफल करने के लिये अमानुषिक अत्याचार शुरू कर दिया पर विद्रोहात्मक स्थिति से उसे आभास हो गया कि अब अंग्रेजी सत्ता भारत में अधिक दिनों तक नहीं टिक सकती। मुस्लिम लीग ने अड़ियल रवैय्या अख्तियार करते हुये सभी ६ मुस्लिम बाहुल्य प्रान्तों की मांग की। लीग के नेता मौलाना लियाकत अली व श्री भूलाभाई देसाई के मध्य १९४५ में हुयी भेंट वार्ता विफल रहीं। मुहम्मद अली जिन्ना द्वारा पाकिस्तान बनाने की माँग पुनः लाहौर में उठाई गयी। इस प्राकार हम देखते हैं कि मुस्लिम लीग व कांग्रेस के बीच विवाद गहराता गया।

सन् १९४५ में मित्र-राष्ट्रों की सफलता के बाद द्वितीय महायुद्ध समाप्त हो गया। २१ मार्च १९४५ को तत्कालीन भारतीय गवर्नर लाई वेवेल लन्दन गये और भारत की राजनीतिक स्थिति के सन्दर्भ में प्रधानमंत्री चर्चिल और भारत के लिए नियुक्त मंत्री एमरी से विचार विमर्श करने के बाद ४ जून १९४५ को पुनः भारत आये और एक योजना प्रस्तुत की जिसे 'वेवल योजना' कहा जाता है। इस लाई वेवेल कार्यकारिणी में ६ हिन्दू तथा ५ मुस्लिम सदस्य तैयार थे, पर नामों का अन्तिम निर्धारण नहीं किया जा सका, परिणामतः शिमला सम्मेलन सरकार ने १५ जुलाई को असफल घोषित कर दिया। अंग्रेज सरकार १८ फरवरी १९४६ को हुए नाविक विद्रोह से भयाक्रान्त हो गयी।

इंग्लैण्ड में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद आम चुनाव हुये, जिसमें पूर्व अनुदार दल के स्थान पर 'उदार मजदूर' दल की विजय हुयी और उसके नेता मि. एटली प्रधानमंत्री बने। १९ दिसम्बर १९४५ को भारत में ब्रिटिश लोक सभा का एक शिष्ट मण्डल भेजा गया। उसकी रिपोर्ट पर १९ फरवरी १९४६ को भारत में मंत्रिमण्डल मिशन भेजने की घोषणा हुयी १ मार्च १९४६ को प्रधानमंत्री ने ब्रिटिश लोकसभा मे भारत की स्वतंत्रता संबंधी मांग को

स्वीकृत करते हुये कहा है- "यह क्या कोई आश्चर्य है कि भारत जो ४० करोड़ व्यक्तियों का राष्ट्र है और जिसने दो बार स्वतंत्रता की रक्षा के लिये अपने सपूतों को बलिदान किया है, आज अपने भाग्य के निर्णय का अधिकार प्राप्त करने का दावा करता है, वर्तमान सरकार के स्थान पर कौन सी सरकार आनी चाहिये इसका निर्णय स्वयं भारत को ही करना है।"[1]

२४ मार्च १९४६ को यह मंत्रिमंडल मिशन भारत आया तथा १ अप्रैल से १७ अप्रैल तक वह विभिन्न दलों के नेताओं से मिला, १३ मई १९४६ को उसने एक योजना प्रकाशित की जिसमें प्रान्तों को तीन वर्गों में संगठित करना, सम्पूर्ण देश के लिये एक संविधान का आयोजन करना तथा अन्तरिम शासन के लिये अन्तरिम सरकार गठन करना मुख्य था। जुलाई १९४६ में कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार संविधान सभा के निर्वाचन हुये, भारत के प्रान्तों की २९६ सीटों में से २०५ सीटें कांग्रेस तथा ७३ सीटें मुस्लिम लीग को मिली और शेष सीटें स्वतंत्र सदस्यों को प्राप्त हुयी किन्तु मुहम्मद अली जिन्ना ने कांग्रेस के बहुमत को 'पशुबल' का बहुमत कहा। २९ जुलाई १९४६ की बैठक में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की प्राप्ति के लिये मुसलमानों को 'प्रत्यक्ष आन्दोलन प्रारम्भ करने को कहा। १६ अगस्त १९४६ को उन्होंने 'प्रत्यक्ष आन्दोलन दिवस' मनाया। जिसकी परिणित में कलकत्ता, पूर्वी बंगाल तथा पंजाब में साम्प्रदायिक दंगे हुये। गाँवों तथा नगरों में असहाय हिन्दुओं और सिक्खों पर मुसलमानों ने संगठित आक्रमण किये, घर लूटकर जला दिये गये। कहीं-कहीं तो पूरे परिवारों को जीवित जला दिया गया। इस नृशंस हत्याकाण्ड ने समूचे देश को हिलाकर रख दिया, आजादी पाने की ललक और तीव्रतम हो गयी।

इसी बीच १२ अगस्त १९४६ को लार्ड वेवेल ने पं. जवाहर लाल नेहरू को अन्तरिम सरकार बनाने के लिये अमंत्रित किया, ३ सितम्बर १९४६ को १२ सदस्यों के साथ नेहरू मंत्रिमण्डल ने पद की शपथ ली, जिसमें ५ कांग्रेसी हिन्दू, १ कांग्रेसी मुसलमान तथा २ गैर कांग्रेसी मुसलमान, १ अकाली सिक्ख, १ गैर कांग्रेसी भारतीय ईसाई, १ गैर कांग्रेसी पारसी तथा १ गैर कांग्रेसी अनुसूचित जाति के थे। इस मंत्रिमण्डल में पहले मुस्लिम लीग के ५ सदस्य भी सरकार में शामिल हो गये थे लेकिन लीगी सदस्यों ने अपना अलग गुट

१- आधुनिक राजनैतिक विचारधारायें, डॉ. पुखराज जैन, पृ.सं. १०८

बना लिया था। ९ सितम्बर को होने वाली संविधान सभा की बैठक में मुस्लिम लीग ने भाग नहीं लिया, मुस्लिम लीग का साम्प्रदायिक रूप अंग्रेजों की बाँटने वाली नीति के तहत उग्रतम होता गया, इतना ही नहीं वे अधिकतर अंग्रेज अफसरों की सलाह पर काम करते थे। इससे दुःखी होकर कांग्रेस द्वारा 'व्हाइट हाउस' को संदेश भेजा गया कि वे यथा शीघ्र बेवेल को इंग्लैण्ड बुला ले, अन्तिम सरकार की स्थिति दिनों-दिन बिगड़ती गयी, फरवरी १९४७ को नेहरू जी ने मांग की कि लीग के सदस्य त्याग पत्र दे दें, इसी समय अन्तिम वायसराय के रूप में लार्ड माउन्ट बैटन को भारत में भेजा गया। उन्होंने घोषणा की कि अंग्रेज जून १९४८ तक अवश्य भारत से चले जायेंगे किन्तु इसके बाद भी मार्च-अप्रैल १९४७ में पश्चिमी पंजाब और सीमा-प्रान्त में साम्प्रादायकि दंगे हुये, लाहौर, रावलपिन्डी और मुल्तान में जो मार-काट की घटनायें हुयी वे अत्यन्त दुःखद थीं। लार्ड माउन्ट बेटेन ने यहां की राजनीतिक स्थिति का अध्ययन करने के बाद पाया कि भारत के विभाजन के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं है। वे १८ मई को ब्रिटिश मंत्रिमंडल से आवश्यक परामर्श हेतु लंदन गये और वापस लौटकर ३ जून १९४७ को भारत वासियों के नाम रेडियों पर संदेश देते हुये एक नयी योजना घोषित की जिसे 'माउण्ट बेटेन योजना' कहा जाता है जिसमें मुख्य रूप से भारत के विभाजन का निर्धारण किया गया था।

वास्तव में यहां पर यह भी विचारणीय है कि न तो कांग्रेस और नही देश की हिन्दू जनता देश का विभाजन चाहती थी किन्तु इसे एक आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार कर लिया गया था इस अवसर पर पं. गोविन्द बल्लभ पंत ने कहा था- "कांग्रेस ने एकता के लिये बहुत कार्य किया है और इसके लिये अपना सब कुछ न्यौछावर किया है। परन्तु आज कांग्रेस को या तो इस योजना को स्वीकार करना है या फिर आत्महत्या करनी है।"[1] 'माउण्ट बेटेन योजना' के आधार पर भारतीय स्वतंत्रता विधेयक को ब्रिटिश संसद में ४ जुलाई १९४७ को प्रस्तुत किया गया तथा इसे १८ जुलाई को स्वीकृत कर लिया गया, जिसमें कुल १५ धारायें थीं, मुख्यतया इसमें यह कहा गया १५ अगस्त १९४७ को भारत और पाकिस्तान नाम से दो अधिराज्य बना दिये जायेंगे और उसी दिन उन्हें दोनों राज्यों की

१- नव चेतना दर्पण, मासिक पत्रिका, पृ.सं. ११

सत्ता सौंप दी जायेगी। इस प्रकार देश का विभाजन तय हो जाने के बाद देश में दोनों सम्प्रदायों के बीच भीषण दंगे हुये। लाहौर, अमृतसर और बंगाल में हुये रक्तपात से देश की जनता थर्रा गयी थी, अंहिसा का दर्शन हिंसा में तब्दील हो गया।

आचार्य विनोबाभावे के शब्दों में- "यह क्या हुआ, जबकि हमने अहिंसा का नाम लेकर काम किया और हमें आजादी हासिल हुयी हम उत्तम से उत्तम कामों में अहिंसा की मर्यादा रखते थे, वह अहिंसा की मर्यादा कहां टूट गयी? वह अहिंसा का विचार कहां गया? इतने नीचे के स्तर तक चित्त कैसे गिरा?"[१]

१५ अगस्त १९४७ को देश आजाद हो गया और शरणार्थियों तथा देशी रियासतों का विलय की समस्या का कुशलता पूर्वक समाधान किया गया तथा पं. जवाहरलाल नेहरू प्रथम प्रधानमंत्री बने। देश खुशहाली की तरफ बढ़ रहा था, इसी बीच नाथूराम गोडसे नामक व्यक्ति ने ३० जनवरी १९४८ को अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी का अन्त गोली मारकर हिंसा से कर दिया। मृत्यु के तीन दिन बाद संसद में बोलते हुये पं. नेहरू ने कहा- "आज से सैकड़ों सम्भवतः हजारों वर्ष बाद भी आगामी युगों में लोग हमारी इस पीढ़ी को याद करेंगे जब वह ईश्वरीय मानव इस धरती पर उतरा था।"

इसी प्रकार महान वैज्ञानिक एलबर्ट आइन्सटीन ने अपने विचार प्रस्तुत करते हुये कहा, "आने वाली पीढ़ी सम्भवतः यह विश्वास शायद ही करे कि इस प्रकार के हाड़-माँस का मानव कभी इस धरती पर चला था।"

गांधी जी के निधन से सारे देश में शोक की लहर फैल गयी। इस प्रकार २६ जनवरी को भारतीय संविधान पारित हुआ तथा २६ जनवरी १९५० को भारत का लोकतांत्रिक संविधान पारित हुआ सरदार वल्लभ भाई पटेल उस समय भारत के गृहमंत्री थे उन्होंने अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति और कुशल नेतृत्व से देशी रियासतों का विलय राज्यों में कर दिया। इस सम्बन्ध में इतिहासकार दुर्गादास ने लिखा है- "वे यह जान गये थे कि अपना पद, अपने महल और अपनी निजी निधि को (प्रिवीयर्स) कायम रखने के लिये यह

१- आत्मज्ञान और विज्ञान, पृ.सं. ११

२- कर्जन से नेहरू और उसके पश्चात, पृ.सं. २९९

एक रास्ता था कि वे अपनी राजसी सत्ता को त्याग दें।"[२]

हमारे देश की यह विशेषता रही है कि हमने कभी किसी देश पर आक्रमण नहीं किया और अपने पर होने वाले आक्रमण का भरपूर जबाव दिया है, देश जैसे ही प्रगति की राह पर आगे बढ़ा कि चीन रेडियो ने यह दावा किया कि तिब्बत चीन का अंग है और वह उसे प्राप्त करके ही रहेगा किन्तु सरदार बल्लभ भाई ने कहा- "तिब्बत हिमालय में भारत की धुर उत्तरी चौकी थी और कम्युनिस्ट रेडियो का दावा खतरे का संकेत था जिसकी ओर हमें ध्यान देना आवश्यक है"।[१] १० नवम्बर १९६२ को चीन ने भारत पर आक्रमण किया और तिब्बत तथा नेफा को हथिया लिया, चीन के आक्रमण ने हिन्दी चीनी भाई-भाई के नारे की धज्जियाँ उड़ा दीं। नेहरू एवं हमारे देशवासियों को चीन के विश्वासघात से बहुत आघात पहुंचा। इसी बीच २७ मई, १९६४ को भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का निधन हो गया और उनके उत्तराधिकारी लाल बहादुर शास्त्री बनाये गये, श्री शास्त्री बहुत ही कुशल सूझ-बूझ वाले व्यक्ति थे, प्रधानमंत्री बनने के पश्चात शास्त्री जी को पाकिस्तान के आक्रमण का सामना करना पड़ा, पाकिस्तान ने ५ अगस्त १९६५ को भारत पर आक्रमण कर दिया और भारत सीमा स्थित दो पुलों को नष्ट कर दिया, जिसके जवाब में भारतीय जवानों ने कारगिल सीमा का उल्लंघन करके पाकिस्तान पर आक्रमण कर दिया भारतीय सेना ने पाकिस्तान के छक्के छुड़ा दिये, पाकिस्तान की बहुत सी चौकियों पर भारतीय सैनिकों ने कब्जा कर लिया एवं २६ अगस्त को हाजी पीर दर्रे पर भारतीयों का अधिकार हो गया। १ सितम्बर १९६५ को, एक ब्रिगेड ७० टैकों के साथ पाकिस्तान ने जम्मू प्रदेश पर भीषण आक्रमण किया, ५ सितम्बर को पाक सेना ने लारियान पर अधिकार कर अखनूर की ओर बढ़ना प्रारम्भ कर दिया अतः भारतीय सेना ने पाकिस्तान पर स्यालकोट तथा लाहौर की ओर से आक्रमण कर दिया। भारतीय सेनायें इच्छोगिल नहर तक जा पहुंची तथा लाहौर पर तीन ओर से आक्रमण कर दिया, पाकिस्तान को लाहौर खाली करना पड़ा। भारतीय सेनाओं ने खेमकरण क्षेत्र में पाक सेनाओं को जिस तरह पराजय दी और पैटन टैंकों का जो विनाश किया वह इतिहास में सदैव स्मरणीय रहेगा। २२ सितम्बर १९६५ को संयुक्त राष्ट्र

१- कर्जन से नेहरू और उसके पश्चात, पृ.सं. ३१२

संघ की सुरक्षा परिषद के विशेष प्रयत्नों के बाद युद्ध विराम हो गया। शास्त्री जी ने 'सीज फायर' स्वीकार कर लिया, ४९ दिनों तक चलने वाले इस युद्ध में ७४० वर्ग मील पर भारत ने कब्जा कर लिया था।

भारत के अच्छे मित्रों में रूस प्रमुख राष्ट्र है जिसने भारत व पाकिस्तान के समस्त विवाद समाप्त करने के लिये महान प्रयास किये। इसी के अन्तर्गत रूस के तत्कालीन प्रधानमंत्री कोसीगिन ने ४ जनवरी १९६६ को 'ताशकन्द शिखरवार्ता' का आयोजन किया १० जनवरी १९६६ को दोनों देशों के मध्य समझौता हो गया, संधि पर हस्ताक्षर करने के बाद उसी रात शास्त्री जी का हृदयगति रुक जाने से स्वर्गवास हो गया। इनकी मृत्यु के बाद २४ जनवरी १९६६ को २ बजकर १५ मिनट (दोपहर) पर इन्दिरा गांधी ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली १९६७ के चुनाव में, श्रीमती इंदिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस को पूर्ण बहुमत मिला, देश की एकता व अखण्डता को अक्षुण्ण रखने के लिये उन्होंने बहुत महत्वपूर्ण कार्य किये। १९७० में श्रीमती इन्दिरा जी ने आम चुनाव की घोषणा कर दी, ३ दिसम्बर १९७१ में अमेरिका के प्रोत्साहन से पाकिस्तान ने पुनः आगे बढ़ना प्रारम्भ कर दिया, अन्त में १६ दिसम्बर १९७१ को चौदह दिन के अन्दर ही पाक सेना ने हथियार डाल कर आत्मसमर्पण कर दिया। इस युद्ध में ९६ हजार पाक सैनिक बन्दी बनाये गये, युद्ध विराम के पश्चात शान्ति समझौते के तहत अप्रैल १९७२ में एक उच्च स्तरीय वार्ता हुयी जिसमें यह तय हुआ कि पाकिस्तान के राष्ट्रप्रति तथा भारत के प्रधनमंत्री जून १९७२ में दोनों पक्षों में वार्तायें हुयी तथा श्रीमती इंदिरा गांधी व श्री भुट्टो ने 'शिमला समझौता' पर हस्ताक्षर किये किन्तु इससे भी भारत-पाक सम्बन्धों में मधुरता नहीं आ पायी। श्रीमती इंदिरा गांधी देश के लिये एक कुशल नेतृत्व कत्री साबित हुयी उन्होंने देश के चौमुखी विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अपने कुशल नेतृत्व से एक ओर जहां पाकिस्तान को पराजित कराया वहीं दूसरी ओर पूर्वी पाकिस्तान की प्रताड़ित, शोषित जनता की सहायता कर बांग्लादेश का निर्माण भी करा दिया, इसके अलावा श्रीमती इंदिरा गांधी ने देश को सुदृढ़ रक्षा-शक्ति प्रदान करने के उद्देश्य से १८ मई १९७४ को प्रथम पोखरन परमाणु विस्फोट किया, जिससे भारत अणुबम का परीक्षण करने वाला छठवां देश तथा विकासशील देशों में अणुबम का परीक्षण

करने वाला प्रथम देश बना। भारत ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वह अणुशक्ति का विकास और उसका प्रयोग शान्तिपूर्ण कार्यों के लिये ही करेगा १२ जून, १९७५ को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने उनके १९७१ के लोकसभा की सदस्यता के चुनाव को अवैध घोषित कर दिया पर ७ नवम्बर, १९७५ में उच्चतम न्यायालय ने उनकी सदस्यता को बहाल कर दिया। भारत की एकता व अखण्डता की रक्षा हेतु उन्होंने आपात काल की घोषणा की। मार्च १९७७ के छठीं लोक सभा के चुनाव में पराजित होने के कारण उन्होंने २२ मार्च १९७७ को प्रधानमंत्री पद से त्याग पत्र दे दिया। कुछ स्वार्थी नेताओं ने इंदिरा जी को छोड़कर नयी कांग्रेस का गठन किया और २४ मार्च १९७७ को जनता पार्टी ने मोरार जी देसाई को अपना नेता चुना और २५ मार्च १९७७ को नवीन मंत्रिमण्डल बना, चूँकि यह एक मिलीजुली सरकार थी इसलिये ताल-मेल के अभाव में यह सरकार १ वर्ष ही चली। जुलाई १९७८ में इस सरकार का पतन हो गया कार्यवाहक प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह बने। इसी बीच जनवरी १९८० में सातवीं लोकसभा का चुनाव हुआ इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री बनी और सत्ता परिवर्तन के बाद उन्होंने वैदेशिक सम्बन्धों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया, मार्च १९८० में फिलिस्तीन मुक्ति मोर्चा के अध्यक्ष श्री यासर अराफात ने भारत की यात्रा की और इसके बाद भारत द्वारा इसे 'स्वतंत्र फिलिस्तीनी राष्ट्र' को मान्यता प्रदान की गयी। ३१ अक्टूबर १९८४ को अंगरक्षकों द्वारा श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या कर दी गयी। अपनी माँ के निधन के बाद श्री राजीव गांधी दल के नेता चुने गये और भारत के प्रधानमंत्री बने दिसम्बर १९८४ में आठवीं लोकसभा के चुनाव में वे भारी बहुमत प्राप्त कर पुनः भारत के प्रधानमंत्री बने। इस दौरान उन्होंने सामरिक महत्व के कई महत्वपूर्ण कार्य किये, जिससें उनके द्वारा दिसम्बर १९८८ में चीन और पाकिस्तान की महत्वपूर्ण यात्रा शामिल है। इन दोशों के साथ मतभेद दूर करने के लिये उन्होंने सार्थक पहल की। १९८९ में हुये नवीं लोकसभा के चुनाव में किसी भी पार्टी को बहुमत न मिलने से खिचड़ी सरकार बनी और विश्वनाथ प्रताप सिंह प्रधानमंत्री बने यह सरकार भारतीय जनता पार्टी के सहयोग से बनी थी, जिसने सरकार पर देश के प्रति दायित्व पूरा न करने की बात कहते हुये अपना समर्थन २३ अक्टूबर १९८९ को वापस ले लिया। इसके बाद भी चन्द्रशेखर प्रधानमंत्री बने किन्तु चार माह बाद

उनकी सरकार का भी पतन हो गया। इस बीच भारत ने नामीबिया को स्वतंत्र राष्ट्र बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया तथा २२ मई १९८९ को २५०० किलोमीटर दूरी तक जाने वाली सक्षम मिसाइल 'अग्नि' का सफलतापूर्वक परीक्षण चाँदीपुर (उड़ीसा) से किया। इससे भारत की ख्याति में अभूतपूर्व वृद्धि हुयी। मई १९९१ में दसवीं लोकसभा के चुनाव हुये, इसी चुनाव के मध्य २१ मई १९९१ मध्य रात्रि १० बजे चुनाव प्रचार के दौरान लिट्टे संगठन के आतंकवादी दस्ते की एक महिला ने 'टाइमबम' के द्वारा उनकी नृशंस हत्या पेरम्बदूर में कर दी। समूचे देश में शोक की लहर फैल गयी। राष्ट्र की जनता ने अपने पुत्र सरीखे युवा नेता को खो दिया। बी.बी.सी. लन्दन ने शोक समाचार देते हुये अपने विशेष रात्रिकालीन प्रसारण में कहा "भारत ने एकता व शान्ति के दूत, युवा प्रधानमंत्री राजीव गांधी को खो दिया है यह आतंक के बर्बर रूप का प्रत्यक्ष नमूना है जिसने सारी दुनिया को प्रत्यक्ष चेतावनी दी है।"

उनकी पत्नी श्रीमती सोनिया गांधी ने राजनीति से दूरी का फैसला करते हुये प्रधानमंत्री बनने से इंकार कर दिया, इस चुनाव में कांग्रेस को भारी बहुमत मिला तथा पी.वी. नरसिम्हाराव देश के प्रधानमंत्री बने, इस अवधि में भी देश ने महत्वपूर्ण प्रगति की तथा राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की गरिमा में वृद्धि हुयी। ग्यारहवीं लोकसभा के चुनाव १९९६ में हुये जिसमें संयुक्त मोर्चा की सरकार केन्द्र में सत्तारूढ़ हुयी ओर श्री इंन्द्रकुमार गुजराल प्रधानमंत्री बनाये गये। मार्च १९९८ में केंद्र में सत्ता प्ररिवर्तन हुआ और श्री अटल बिहारी बाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा नीत गठबंधन की सरकार पदारूढ़ हुयी तथा इस सरकार ने विदेश नीति की उच्च स्तरीय नजीर पेश की। राजस्थान के पोखरण में ११ मई १९९८ को तीन तथा १३ मई को दो सफल भूमिगत परीक्षण किये गये इस सम्बन्ध में हमारी स्पष्ट नीति है। भारत परमाणु-रहित विश्व में विश्वास करता है किन्तु इसके लिए पक्षपात-पूर्ण नीति नहीं होनी चाहिये, अमेरिका पूरी दुनियां में हिटलरशाही कर दादागिरी करने का कुप्रयास कर रहा है। उसने भारत पर भेदभाव पूर्ण 'अणु प्रसार निषेध संधि (एन.टी.पी.) तथा व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध संधि (सी.टी.बी.टी.) पर हस्ताक्षर करने का अनुचित दबाव डाला है। किन्तु देश इस तरह के दबाव के सम्मुख झुकने वाला

नहीं हैं। अक्टूबर १९९९ में केन्द्र में पुनः श्री अटल बिहारी बाजपेयी के नेतृत्व में 'राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन' की सरकार पदारूढ़ हुयी इस अवसर पर श्री बाजपेयी ने कहा कि भारत अपने पड़ोसियों और विश्व के अन्य देशों के साथ अच्छे सम्बन्ध बनानें का सतत प्रयास करेगा। इस दिशा में उसने उल्लेखनीय प्रयास भी किये। शिमला-समझौता होने के बाद भी भारत-पाक सम्बन्धों में मधुरता नहीं आ सकी, बल्कि समय समय पर तरह-तरह के उतार-चढ़ाव आते रहे हैं, भारत-पाक के मध्य कुछ प्रमुख विवादित मुद्दे ऐसे हैं जिनके कारण दोनों देशों के सम्बन्धों में नजदीकी नहीं आ पा रही है इनमें काश्मीर का मामला सर्वोपरि है और इस मामले में आज तक न तो कोई सहमति बनी हैं और न ही फिलहाल किसी प्रकार का कोई समझौता होने की उम्मीद है, क्योंकि पाकिस्तान पूरे काश्मीर पर गिद्ध-दृष्टि लगाये बैठा है। दूसरी तरफ भारतीय संसद गुलाम काश्मीर की आजादी के लिये बकायदा प्रस्ताव पारित कर चुकी है। यह निर्विवाद सत्य है कि काश्मीर भारत का ही हिस्सा है और रहेगा।

दरअसल भारत में जिस जम्मू-काश्मीर का विलय हुआ था उसमें गुलाम काश्मीर भी हैं और वह हिस्सा भी है जिसे पाकिस्तान व चीन में मिलाया जा चुका है। इन दोनों देशों के मध्य सियाचिन ग्लैशियर दूसरा प्रमुख विवाद है, यह सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्व वाला क्षेत्र है, पाकिस्तान इसे अपने आधिपत्य में लेना चाहता है क्योंकि इससे भारत की स्थिति कमजोर व उसकी सुदृढ़ हो जायेगी। तीसरा मुद्दा निशस्त्रीकरण से सम्बन्धित है, पाकिस्तान सोचता है कि जब तक कश्मीर मामला सुलझ न जाये तब तक भारत प्रेक्षेपास्त्रों एवं नाभिकीय हथियारों का विकास न कर पायें, जबकि वह स्वयं भारी मात्रा में अमेरिका व चीन की मदद से हथियारों का जखीरा एकत्र कर चुका है। आशंका यह भी है कि कहीं वे आतंकियों के हाथ न लग जाये? इसके अतिरिक्त कुछ साधारण विवाद भी हैं जिनमें बुल्लर बैराज, तुलबुल परियोजना है। यह पानी की समस्या से सम्बन्धित है, इसी तरह सरक्रीक सीमा विवाद के लिये भी पाकिस्तान तैयार नहीं है जहां तक व्यापार व सांस्कृतिक सम्बन्धों की बात है तो इस क्षेत्र में अनेक समझौते हो चुके हैं। भारत ने वीजा नियमों में एकतरफा ढील देकर सराहनीय कार्य किया है। जिसको विश्व के प्रमुख राष्ट्रों ने भारत की

उदारता का नायाब नमूना बताया है।

२० फरवरी १९९९ को लाहौर बस सेवा की उद्‌घाटन यात्रा में भारत के प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने पाकिस्तान की ऐतिहासिक यात्रा की। पाकिस्तान प्रधानमंत्री नवाज शरीफ ने भारतीय प्रधानमंत्री को इस यात्रा के लिये आमंत्रित किया था, २१ फरवरी १९९९ को दोनो प्रधानमंत्रियों ने "लाहौर-घोषणा पत्र" पर हस्ताक्षर किये। घोषणा-पत्र में दोनों देशों ने जम्मू-कश्मीर और परमाणु कार्यक्रमों पर आगे बातचीत जारी रखने की प्रतिबद्धता प्रकट की। दोनों पक्षों ने जनता की भलाई के लिये शान्ति और स्थाईत्व पर जोर दिया। घोषणा पत्र में दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की बात भी स्वीकार की। फरवरी १९९९ की इस यात्रा ने भारतीय उपमहाद्वीप में एक नयी आशा का संचार किया। किन्तु आशा को निराशा में बदलने में ज्यादा वक्त नहीं लगा। क्योंकि जिस समय भारतीय प्रतिनिधि मण्डल पाकिस्तान में शान्ति बहाली पर बातचीत कर रहा था, उसी समय पाकिस्तानी घुसपैठिये कारगिल की चोटियों पर काबिज होकर लाहौर शान्ति वार्ता पर पानी फेरने की पृष्ठ भूमि तैयार कर चुके थे।

मई ९९ की शुरूआत में भारतीय सैन्य खुफिया विभाग ने सूचना दी कि कश्मीर के कारगिल क्षेत्र में कई सौ पाकिस्तानी घुसपैठियों ने कब्जा कर लिया है, फलतः भारतीय सेना ने १४ मई १९९९ को 'ऑपरेशन फ्लश-आउट' शुरू किया। वायु-सेना की मदद से भारतीय सेना ने २६ मई १९९९ को पाकिस्तानी सैनिकों और मुजाहिद्दीनों पर हमले किये गये, थलसेना और वायुसेना द्वारा संयुक्त रूप से छेड़े गये इस अभियान को 'आपरेशन-विजय' नाम दिया। २७ मई १९९९ को उस समय एक खतरनाक मोड़ आया जब भारतीय मिग-२१ विमान को पाकिस्तान ने मार गिराया तथा एक अन्य मिग-२७ विमान इंजन में गड़बड़ी की वजह से क्षतिग्रस्त हो गया। इस घटना से दोनों देशों के बीच और भी तनाव बढ़ गया। जहां मिग-२१ विमान के चालक फ्लाइट लेफ्टिनेंट के. नाचिकेता को पाकिस्तान ने युद्ध बंदी बना लिया, वहीं क्षत्रिग्रस्त मिग-२७ के चालक स्क्वेड्रन लीडर अजय आहूजा की पाक में गोली मारकर हत्या कर दी गयी। भारतीय वायुसेना को उस समय एक और धक्का लगा जब २८ मई, १९९९ को एक एम.आई. १७ हेलिकॉप्टर घुसपैठिये आतंकवादियों ने

मार गिरया इसमें सवार चार सैनिकों की मृत्यु हो गयी, ३० मई १९९९ को भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव कोफी अन्नान द्वारा कारगिल संकट को समाप्त करने के लिये विशेष दूत भेजने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इस बीच अमेरिका और ब्रिटेन सहित प्रमुख राष्ट्रों ने कारगिल संकट पर अपनी चिन्ता जाहिर कर दी, रूस ने भारत को पूर्ण सहयोग देने का वचन दिया।

३ जून १९९९ को पाकिस्तान ने अर्न्तराष्ट्रीय दबाव के सम्मुख झुकते हुये भारतीय फ्लाइट लेफ्टिनेंट के. नाचिकेता को रिहा कर दिया। इस दौरान पाकिस्तान ने घोर अमानवीय व्यवहार का परिचय देते हुये भारतीय सैनिकों के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया, ९ जून को उसने ६ भारतीय जवानों के क्षत-विक्षत शव वापस किये। पाकिस्तान के विदेश मंत्री सरताज अजीज ने भारतीय विदेश मंत्री जसवन्त सिंह से कहा कि कारगिल विवादास्पद कश्मीर का हिस्सा है किन्तु भारत ने इसे नकार दिया, भारतीय विदेश मंत्री ने मांग रखी कि कारगिल से तुरन्त घुसपैठिये वापस बुलाये जाये और भारतीय सैनिकों से बर्बर व्यवहार करने वालों को दण्डित किया जाय। यह वार्ता भी बे नतीजा रही।

भारत को 'आपरेशन विजय' के दौरान उस समय उल्लेखनीय सफलता मिली जब १३ जून १९९९ को उसने महत्वपूर्ण तोलोलिंग और प्वाइंट ४५९० चोटियों पर अधिकार जमा लिया। अपनी अदम्य इच्छा शक्ति और जांबाजी का परिचय देते हुये उसने २३ जून को एक अन्य महत्वपूर्ण चौकी 'प्वाइंट ५२०३' पर अधिकार जमा लिया, २९ जून ९९ में ही भारतीय सेना ने दो महत्वपूर्ण चोटियों 'प्वाइंट ४७०० और ब्लैक राक' पर पुनः कब्जा कर लिया। कारगिल मुद्दे पर पाकिस्तान को उस समय गहरी मायूसी हुयी जब १ जुलाई ९९ को अमेरिकी कांग्रेस के पैनेल ने पाकिस्तान को कारगिल से हटने को कहा इस मुद्दे पर हमेशा पाकिस्तान के हिमायती चीन ने भी अपने हाथ खड़े कर लिये। पाक प्रधानमंत्री नवाज शरीफ ने जुलाई के प्राथम सप्ताह में चीन का दौरा किया किन्तु उन्हें दौरा बीच में समाप्त करना पड़ा, घुसपैठिये आतंकियों के वापसी के प्रश्न पर ४ जुलाई ९९ को नवाज शरीफ की अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन के साथ लिखित सहमति वाशिंगटन में हुयी।

अमेरिका ने भारतीय प्रधानमंत्री को बुलाया किन्तु उन्होंने घुटने नहीं टेके। भारतीय

रणबांकुरों ने ५ जुलाई को 'टाइगर हिल्स' चोंटी पर अपना कब्जा पुनः कर लिया जिससे श्रीनगर-लेह राजमार्ग पूरी तरह से खतरे से मुक्त हो गया। ६ जुलाई को भारतीय जवानों ने 'जुबार' पहाड़ी पर अधिकार कर लिया। १० जुलाई को पाकिस्तानी आतंकवादी, गुटों के संगठन 'यूनाइटेड जेहाद काउन्सिल' के नेताओं ने कारगिल से मुजाहिद्दीनों को वापस बुलाने से इंकार कर दिया। ११ जुलाई को दोनों देशों के सैन्य-प्रामुखों की अटारी में बैठक हुयी जिसमें १६ जुलाई तक घुसपैठियों की वापसी की समय-सीमा निर्धारित की गयी। २६ जुलाई १९९९ को सेना की १५वीं कोर के सेनानायक लेफ्टीनेंट जनरल कृष्णपाल ने समूचे कारगिल को मुक्त घोषित कर दिया। इस अभियान के दौरान लगभग ५५५ जवान वीरगति को प्राप्त हुये। समूचे देश को इन रणबांकुरो की बहादुरी पर फक्र है, जिन्होंने अपने प्राणों को मातृभूमि पर न्यौछावर करके इसकी आन-बान और शान में गुरूतर वृद्धि की।

यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि जब तक हमारा जवान सीमा पर डटा है हम अमन चैन से रह सकेंगे। वर्ष २००० भी भारत के लिये खासा महत्वपूर्ण और अर्न्तराष्ट्रीय परिदृश्य के मुताबिक गहमा-गहमी वाला रहा है, इस वर्ष अमेरीकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन भारत यात्रा पर आये और सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण वार्तायें की। साथ ही इसी वर्ष रूसी राष्ट्रपति ब्लादिमीर पुतिन भी भारत आये और भारतीय प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी से रक्षा, व्यापार व सांस्कृतिक महत्व के समझौतों पर हस्ताक्षर किये, इसके अतिरिक्त विपक्ष की नेता श्रीमती सोनिया गांधी से भी मिले। वर्ष २००० में ही भारतीय प्रधानमंत्री अमरीका यात्रा पर गये।

प्रगतिवादी कवि बाबू केदारनाथ अग्रवाल के सम्पूर्ण साहित्य विशेषतयाः काव्य में स्वतंत्रता संग्राम से लेकर वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों के अनेको चित्र देखने को मिलते हैं।

२. सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियाँ :

साहित्यकार समाज का अंग होता है अतः समाज में घटित घटनाओं से वह आन्तरिक एवं वाह्य दोनों रूपों में अवश्य प्रभावित होता है, यह प्रभाव उसके साहित्य में भी नवीन परिदृश्य प्रस्तुत करता है। सृष्टि के शुरुवाती समय में कोई जातीय (Cast) व्यवस्था

नहीं थी किन्तु जैसे-जैसे मानव व सभ्यताओं का विकास हुआ, सामाजिक व्यवस्थाओं में समुदायों का वर्गीकरण हुआ। हिन्दू धर्म के भारतीय वर्णाश्रम धर्म में मुख्य रूप से चार वर्णों (Grups) की परिकल्पना की गयी जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र हैं। प्राचीन भारतीय समाज में वास्तव में यह विभाजन कार्य प्रणाली या श्रम व्यवस्था के आधार पर किया गया। जिसका मुख्य आधार व्यक्ति का कर्म था। किन्तु बाद में यह परम्परावादी होकर वंश (Creed) के रूप में बदल गया जोकि इसका संकीर्णतम रूप हैं धार्मिक ग्रन्थों में यह दर्शाया गया कि ब्राह्मण मुख से, क्षत्रिय भुजा से, वैश्य उदर से तथा शूद्र पैर से उत्पन्न हुआ या यूँ कहें कि व्यापक रूप से विद्वता पूर्ण कार्य, अध्यापन, पाण्डित्य कर्म आदि करने वाले को ब्राह्मण, समाज के सभी वर्गों की रक्षा का दायित्व निर्वहन करने वाले को क्षत्रिय, पूरे समाज को वाणिज्यिक कार्य से लाभ पहुंचाने तथा पोषण करने वाले को वैश्य तथा उपरोक्त वर्गों की सेवा व सत्कार करने वाले को शूद्र कहा गया है। यह वर्ण व्यवस्था पूरी तरह से कर्म पर आधारित व्यवस्था थी।

वास्तव में समाज की संरचना में चारों की महत्वपूर्ण भूमिका है किन्तु यह दुःखद था कि उन्हें अस्पृश्य मानकर घृणा की दृष्टि को देखा जाता था, हिन्दू जाति के वर्चस्व को कायम रखने के लिये जितना त्याग, साहस, धैर्य और विनम्रता का परिचय दलित वर्ग ने दिया है उतना अन्य उच्च कहीं जाने वाली जातियों ने नहीं, इस वर्ग ने भूख, गरीबी, अपमान सहते हुये भी अपने को हिन्दू कहलाने में गौरवान्वित महसूस किया है। हमारी हिन्दू संस्कृति उनके इस गौरव पूर्ण प्रयास की चिरकाल तक ऋणी रहेगी। भारतीय समाज में सभी वर्गों की एकजुटता के फलस्वरूप हमें आजादी प्राप्त हुयी व देश ने प्रगति की है।

सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियाँ न सिर्फ कवि के जीवन में बल्कि उसके साहित्य में गहरा प्रभाव छोड़ती है, किसी भी युग का और किसी भी साहित्यकार का साहित्य अपने समय के सामाजिक यथार्थ से असम्पृक्त और अप्रभावित नहीं रह सकता, हाँ यह बात अलग है कि कोई साहित्यकार उसे सजग होकर अपने साहित्य में वाणी देता है तो कोई उससे बचने के प्रयत्नों के बावजूद परोक्ष रूप में उसके प्रभाव का साक्षी बनता है। सामाजिक यथार्थ के इस समान्य रूपों के विभिन्न सामाजिक-आर्थिक वर्गों और उनके विभिन्न स्तरों के

बिम्बन के अतिरिक्त विभिन्न सामाजिक संगठनों और इकाइयों और इनसे सम्बन्धित सामाजिक समस्याओं और संघर्षों का चित्रण भी आ जाता है।

भारतीय समाज संरचना के निर्माण के मुख्य चार अवयावों में अन्तिम का विशेष योगदान है, देश की आजादी में महत्वपूर्ण भूमिका निभानें वाली राजनैतिक पार्टी कांगेस का ध्यान इस तरह सन १९१७ में गया उसने अपनी आम सभा में यह प्रस्ताव रखा- "यह कांग्रेस भारतवासियों से आग्रह करती हैं कि परम्परा से दलित जातियों पर जो रूकावटें चली आ रही हैं, वे बहुत दुःख देने वाली और क्षोभ-कारक है जिसमें दलित जातियों को बहुत कठिनाइयों, सख्तियों और असुविधाओं का सामना करना पड़ा है। इसलिये न्याय और भलमंसी का तकाजा यह है कि वे तमाम बंदिशे हटा ली जायें"।[1]

इसे हम बिडम्बना ही कहेंगे कि यह वर्ग सदियों से शोषित एवं पीड़ित रहा है, मुस्लिम शासन-काल में भारत की सामाजिक -स्थिति बड़ी भयावह हो गयी थी, इनकी सामाजिक व धार्मिक दुदर्शा देखकर ही अंग्रेज कूटनीतिज्ञों ने हिन्दू व्यवस्था पर घातक प्रहार किये। एक ओर इन्होंने हिन्दू व्यवस्था में सेंध लगाने की कोशिश की वहीं इन्हें हिन्दुओं से पृथक मानते हुये निवार्चन संस्थाओं में प्रतिनिधित्व देने का दावा करके फूट डालने की कोशिश की इन्होंने दलित नेता डा. भीमराव अम्बेडकर और श्री निवास पर कूटनीतिक बाण चलाया, इसी के तहत इंग्लैण्ड के तत्कालीन प्रधानमंत्री राम्जे मैक्डोनाल्ड ने १९३२ में हरिजनों को स्वतंत्र प्रतिनिधित्व का अधिकार दिया, योजनाबद्ध ढंग से ब्रिटिश हुकूमत ने प्रचार किया कि शूद्र (अछूत) हिन्दू नहीं हैं और वे उन्हें प्रलोभन देकर समाज से अलग-थलग करने का कुप्रयास लगातार करते रहे। हिन्दू समाज से इन्हें पदच्युत करने के लिये १३ सितम्बर को 'पूना पैक्ट' के तहत विधान सभाओं में इनके लिये सीटें सृजित की गयी तथा सुरक्षित चुनाव-क्षेत्र भी बनाये गये। अंग्रेजी राज्य के समय भारत में बहुत बड़ी तादाद में इसाई मिशनरियां आयीं थी। जिनका मुख्य कार्य हिन्दुओं विशेषकर दलितों को सभी तरह के प्रलोभन देकर धर्मान्तरण कराना था खेद का विषय है उन्हें इसमें सफलता भी मिली, भले ही आंशिक ही सही। क्योंकि ये दलित इतनी कमजोर मिट्टी के नहीं बने जो

१- कांग्रेस का इतिहास, डॉ॰ पट्टाभि सीतारमैया, अनुवादक हरिभाउ उपाध्याय

प्रलोभन में आकर अपने मूल को त्याग दें।

इस संदर्भ में राष्ट्रीय समाचार पत्र 'पान्चजन्य' के आमुख की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है- "ब्रिटिश हुकुमत ने जितनी अधिक हमारी धार्मिक व सांस्कृतिक क्षति की है, सच कहा जाये तो इसने हमारी धार्मिक-भावनाओं का गला घोंटा है, मुस्लिम शासकों से अधिक, उन बर्बर आक्रमणकारी आक्रांताओं से अधिक इनकी मिशनरियों ने हमें क्षति पहुंचायी है, हमारे पीड़ित हिन्दू भाइयों को घोर प्रलोभन देकर धर्मान्तरण कराया है, दुर्भाग्य से आज भी देश में यह बदस्तूर जारी है।"[१]

हमारी सामाजिक शृंखला को तोड़ने के लिये समय-समय पर ये कुप्रयास किये जाते रहे हैं, फिर भी हमारी कड़ियों कोचटकाने की कोशिश विशेष सफल नहीं हुयी है। भारतीय समाज १९३५ के आस-पास अनेक मत-मतान्तरों में विभाजित था, उसमें अनेक कुप्रथाओं ने प्रवेश कर लिया था।

धर्म परिवर्तन का जो भय उसे मुस्लिम शासन-काल में बना हुआ था, वह अब भी उसके सामने एक नवीन रूप में उपस्थित है।

हमारे देश में तत्कालीन व्याप्त साम्प्रदायिक और जातीय भेदभाव को देखकर कार्ल-मार्क्स ने लिखा था कि "एक ऐसा देश , जो न केवल मुसलमान और हिन्दू में भी विभाजित है, बल्कि कबीले और कबीले में जाति और जाति में भी एक ऐसा समाज जिसका ढांचा एक तरह से सन्तुलन पर टिका हुआ था और यह सन्तुलन सभी सदस्यों के विकर्षण तथा वैज्ञानिक उपवर्जिता से पैदा हुआ था। ऐसा देश और ऐसा समाज क्या उनके भाग्य में भी पराजित होना लिखा था?"[२]

ऐतिहासिक तथ्यों का अन्वेषण करने में यह तथ्य उभरकर आता है कि भारत में ब्रिटिश सरकार का प्रार्दुभाव एक व्यापारिक कम्पनी जिसे ईस्ट इंडिया कम्पनी कहा गया के रूप में हुआ, बाद में इसने धीरे-धीरे अपने पैर फैलाने शुरू कर दिये, धीरे-धीरे इसने अपने व्यापार को बढ़ाया और मुस्लिम शासकों तथा देशी राजाओं को आपस में लड़ाकर खुद

१- पान्चजन्य पत्र आमुख से, अप्रैल, वर्ष २००६ अंक

२- दर्शन एवं सिद्धान्त, कार्ल मार्क्स, अनु० राजकिशोर, पृ.सं. १७, वर्ष १९३७

शासक बन बैठे तथा भारत गुलाम राष्ट्र के रूप में तब्दील हो गया। अपने व्यापार को समुन्नत बनाने के लिये अंग्रेजों ने एक ओर पूँजीपतियों को प्रोत्साहन दिया तो दूसरी ओर सामन्ती व्यवस्था को मदद देने के लिये प्रयस किये। इस प्रकार हम देखते हैं कि उन्होंने सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था पर अंकुश लगाये रखा।

अंग्रेज शासक, व्यापारी और उद्योगपति एक साथ ही थे। उनकी शासन७नीति आरम्भ से ही उनके देश के व्यापारी और उद्योग धन्धों को लाभ पहुँचाने वाली रही है। ये तथ्य निर्विवाद हैं कि वे यहाँ शासन करने आये थे न कि यहाँ सेवा करने। भारत की ख्याति वे 'सोने की चिड़िया' वाले देश के रूप में सुन चुके थे इसीलिये उन्होंने आते ही अपना पूरा ध्यान व्यवसाय में लगाया तथा मकड़जाल के रूप में अपनी नीतियाँ फैलाकर अंधा-धुन्ध दोहन किया और जम कर लूट खसोट की। भारत को उसने अपना व्यापार क्षेत्र माना।

अंग्रेजों ने भारत में व्यापारिक नीतियाँ पूरी तरह से इग्लैण्ड के अनुकूल बनाई ताकि पूरा-पूरा लाभ अर्जित किया जा सके।

"उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत का पूंजीपति वर्ग सामने आने लगा था, १८५३ में बम्बई में कामयाब सूती-मिल खुला, १८८० तक भारत में १५६ सूती मिल चालू हो गये जिनमें ४४,००० मजदूर काम करते थे। सन् १९०० तक मिलों की संख्या १९६ और उनमें काम करने वाले मजदूरों की संख्या १,६१००० हो गयी।"[१]

इस प्रकार समाज में दो प्रकार के वर्ग बनते गये पहला समृद्ध होने वाला शासक या पूँजीपति वर्ग और दूसरा ताबड़-तोड़ मेहनत करके देश को समृद्ध करने वाला मजदूर वर्ग या श्रमिक वर्ग। यह विभाजन दिनों दिन बढ़ता गया। गोरों के आने के पूर्व हमारे देश में कुटीर उद्योग उन्नत अवस्था में था, हमारे इन उद्योगों से निर्मित वस्तुओं का विदेशों तक में बड़ा नाम था, अंग्रेजों ने इस देश में अपने शासन की जड़े गहरी करने के साथ ही यहाँ के इन उद्योगों को समाप्त करने की भी नीति बनाई। परिणाम-स्वरूप इन उद्योगों पर जीवन-निर्वाह करने वाले असंख्य भारतीयों का जीवन दूर्वह हो गया था। दूसरी ओर भारतीय पूँजीपति शासकीय सुविधायें प्राप्त कर जूट और सूती वस्त्रों की बड़ी-बड़ी मिलें आरम्भ कर

१- भारत वर्तमान और भावी - रजनी पामदत्त, पृ.सं. १२१

अपनी पूँजी बढ़ाने में लगे थे, इस शती के प्रथम चरण में यहां तकरीबन दो सौ मिलें क्रियाशील थी जिनमें अनुमानतः दो लाख श्रमिक पूँजीपतियों के गुलाम बनकर कार्य कर रहे थे।''[१]

अंग्रेजी सरकार की आर्थिक नीति, व्यापार नीति, पूँजीपतियों के ही अनुकूल थी। उनकी उन्मुक्त प्रतियोगिता (Open comptition) एवं स्वतंत्र बाजार नीति (Free trade policy) पूँजीपतियों और औद्योगिक क्षेत्र में चलाये जाने वाले शोषण-चक्र की गति को तीव्र बनाने में ही सहायक थी। समस्त उद्योग धन्धे चन्द लोगों की मुट्ठियों में थे, जो अंग्रेजों की मदद से अपने व्यापारिक क्रिया कलापों को गति दे रहे थे।

इस स्थिति पर प्रकाश डालते हुये श्री ए.आर. देसाई ने लिखा है- ''हमारे देश के पांच सौ महत्वपूर्ण औद्योगिक प्रतिष्ठानों की व्यवस्था दो हजार संचालकों द्वारा होती है। यह संचालनत्व ८५० व्यक्तियों के हाथ में हैं, किन्तु इनमें से एक हजार प्रतिष्ठानों का संचालन केवल ७० व्यक्तियों द्वारा होता है, इस प्रकार दस व्यक्तियों के हाथ में तीन सौं औद्योगिक प्रतिष्ठानों का संचालन हैं, ये हमारे राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के भाग्य विधाता है।[२]

इस प्रकार सामाजिक एवं आर्थिक पर्यवेक्षण करने पर यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि एक ओर पूँजीपतियों का एक छोटा सा समुदाय सुविधाओं के साथ उत्पादन के समस्त साधनों पर अपना अधिकार कर पूँजीवादी साम्राज्य की सृष्टि करने में संलग्न था, और दूसरी और इन प्रतिष्ठानों में कार्य करने वाले लाखों श्रमिक, पशुओं को भी लज्जित करने वाला जीवन व्यतीत करने को विवश थे। हम देखते हैं कि इन मजदूरों की स्थिति की जाँच करने वाले कमीशन (आयोग) ने अपनी रिपोर्ट में सनसनी खेज तथ्य उभारें- ''हमने श्रमिकों के निवास स्थान देखें हमनें जहाँ कहीं भी खड़े होकर उन्हें देखा हम विश्वास नहीं कर सकें कि इस प्रकार के बुरे स्थान भी हो सकते हैं।''[३]

ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाल कृषकों की स्थिति भी अत्यन्त दयनीय थी, वे एक

१- प्रगतिवादी काव्य साहित्य, डॉ. कृष्णलाल हंस, पृ.सं. ८३

२- Sociological Background of Indian Nationalism, p. 96

३- A Report on Labour Condition in India, Purself & Hallsworth, p. 10

ओर जमींदारों और मालगुजारों की सामन्तवादी सत्ता के शिकार हो रहे थे, और दूसरी और पूँजीवादी साहूकारों के ऋण भार से उनकी कमर टूटी जा रही थी, शासन की दोषपूर्ण नीति पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था और सम्पत्ति के असमान वितरण ने देश की आर्थिक स्थिति जर्जर बना दी। देश स्पष्टतया १९०३ के आस-पास तीन वर्गों में विभाजित हो गया था, प्रथम वर्ग वह था, जिससे देश के उद्योगपति, पूँजीपति, जमींदार और माल गुजार थे। द्वितीय वर्ग में मध्यम श्रेणी के व्यक्ति सम्मिलित थे जिसके अन्तर्गत सामान्य शिक्षित शासकीय कर्मचारी, कम-लाभ के सामान्य उद्योग धन्धों में लगे व्यक्ति छोटे व्यापारी, कारीगर आदि तथा तृतीय वर्ग में मुख्य रूप से कृषकों तथा श्रमिकों का स्थान था। मध्यम तथ्य निम्न वर्ग के व्यक्ति ही साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और सामान्तवाद के शिकार थे। ये जी रहे थे पर जिन्दगी का अर्थ खोकर, इस स्थिति में इन दोनों में असंतोष व क्षोभ स्वाभाविक था। इस तृतीय वर्ग की जनता में असंतुष्टि की आग धीरे-धीरे जलती रही जो अनेकों बार आन्दोलनों के रूप में भी भड़की दिखाई दी।

"सन् १९१० में पहली बार भारत की आम जनता ने स्वदेशी आन्दोलन के माध्यम से अंग्रेजों की आर्थिक नीति के प्रति विद्रोह किया। सम्पूर्ण देश में विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गयी और स्वदेशी वस्त्रों को धारण करने के संकल्प किये गये।"[१]

इन सामाजिक आन्दोलनों का लक्ष्य भारतीय उद्योग-धन्धों को पुर्न जीवित कर इन दोनों वर्गों की आर्थिक स्थिति में सुधार करना भी था। अखिल भारतीय किसान-सभा, 'भारतीय ट्रेड यूनियन' की स्थापना इसी मंगल उद्देश्य की ओर इंगित करते हैं।

भारत में मिलों एवं कारखानों का तेजी से विकास हो रहा था एक ओर पूँजीपति मालदार बनते गये किन्तु आम जनता गरीब होती गयी ओर मजदूरों की संख्या में तेजी से अभिवृद्धि हुयी। इस बदली संख्या ने सामाजिक ताने-बाने को तितर-बितर कर दिया।

सन १९१३-१४ तक कपास की मिलों की संख्या २६४ तथा जूट मिलों की संख्या ६४ तक पहुँच गयी थी, सन १९१४ में कोयला की खानों में १,५१,३७३ मजदूर काम कर

१- आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास, डॉ. जितराम पाठक, पृ.सं. ११५

२- प्रगतिशील हिन्दी कविता, डॉ. दुर्गा प्रसाद झाला, पृ.सं. २६

रहे थे।[2]

इस प्रकार हमारे यहाँ के सामाजिक जीवन में एक नये वर्ग "भारतीय औद्योगिक पूँजीपति वर्ग" का विकास तेजी से होने लगा। सन् १९१४ से १९१८ तक प्रथम महायुद्ध के दिनों में औद्योगिक विकास की गति और भी तेज होने लगी, यह तथ्य निर्विवाद है इसके पीछे भी अंग्रेजों के अपने निजी हित थे। जगह-जगह रेलों का विस्तार किया गया और माल को एक जगह से दूसरी जगह में ले जाने की सुविधा हुयी, जिससे भारत में औद्योगिक विकास का शिलान्यास हो गया।

सन् १९१४ में शुरू हुये पहले विश्व युद्ध ने संसार स्तर पर साम्राज्यवादी व्यवस्था को जबरदस्त धक्का पहुँचाया, इसी युद्ध के गर्भ से उत्पन्न सोवियत क्रान्ति ने अपनी आजादी के लिये लड़ने वाली उपनिवेशों की जनता के लिये मुक्ति के नये क्षितिज खोल दिये। इस युद्ध में गोरे साम्राज्यवादियों ने भारत की जनता और भौतिक सम्पत्ति का खुल कर प्रयोग किया। युद्ध के दिनों में भारतीय सैनिकों की संख्या १५ लाख तक पहुंच गयी। १९१७ में इंग्लैण्ड ने भारत सरकार को स्वेच्छा से १० करोड़ पाउन्ड का खिराज देने के लिये बाध्य किया। अगले वर्ष यानि १९१८ को साढ़े चार करोड़ पाउन्ड अतिरिक्त खिराज के रूप वसूले गये।

"भारतीय धारा सभा में फाइनेन्स मेम्बर वासिल ब्लेकेट के वक्तव्य के अनुसार इस खिराज और अन्य सैनिक खर्चे के कारण भारत का राष्ट्रीय ऋण जो १९१४ में ४१० करोड़ रू० था १९२३ में ७८१ करोड़ हो गया।[1]

युद्ध के दिनों में बाजार की कीमतों में वृद्धि हुयी और जन सामान्य को अपनी जरूरतों की पूर्ति मुश्किल लगने लगी, साधारण जनता को तो बढ़ती हुयी कठिनाइयों के सिवा युद्ध से कुछ नहीं मिला एस० जी० पन्दीकर के अनुसार प्रथम महायुद्ध का भारत पर बुरा आर्थिक परिणाम निकला। जनसामान्य के लिये यह युद्ध त्रासकारी ही रहा है। "प्रथम विश्व युद्ध के समय आयात और तीव्रता से बढ़ने लगा, यदि १९१४-१५ के कीमत स्तर को मापदण्ड माना जाय, तो १९१७-१८ और १८-१९ में निर्यात की चीजों के दाम क्रमशः २५

१- वेल्थ एण्ड टैक्सेबल कैपिसिटी आफ इण्डिया, १९२४

और ५० प्रतिशत बढ़े तो आयात की चीजों के दाम इन वर्षों में क्रमशः १११ और १६८ प्रतिशत बढ़ गये।"[1]

यूरोपीय देशों के कल-कारखानें युद्ध सामग्री के उत्पादन में लगे हुये थे, विदेशों में सामान भेजना तो दूर रहा, वे स्वयं अपने देशवासियों की दैनिक आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते थे। इसके अलावा जर्मनी के पनडुब्बी, जहाजों ने मित्र राष्ट्र और ब्रिटिश जहाजों का समुद्र पर चलना असम्भव सा बना दिया, युद्ध क्षेत्र से दूर तथा विदेशी प्रतियोगिता के अभाव में भारतीय कलकारखानों को फलने-फूलने का अच्छा अवसर मिल गया। भारतीय पूंजीपतियों ने इसका पूरा लाभ उठाया।

"सन् १९१४ से सन् १९१८ तक कारखानों की संख्या २९२६ से बढ़कर ३४३६ हो गयी तथा १९२२ तक आते-आते यह संख्या पांच हजार से भी अधिक हो गयी।[2]

इसके परिणामस्वरूप पूंजीपति समृद्ध होते गये किन्तु गरीब जनता की आर्थिक स्थिति सोचनीय हो गयी क्योंकि एक ओर मुट्ठी भर पूंजीपतियों का समुदाय शासकीय सुविधायें प्राप्त करके उत्पादन के समस्त साधनों पर अपना अधिकार कर बैठा और दूसरी ओर इन मिलों और कारखानों में काम करने वाले लाखों, करोड़ो, श्रमिकों का जीवन पशुओं से भी बदतर हो गया।

इस प्रकार बढ़ते हुये साम्राज्यवादी दोहन, असंतुलित विनिमय, खाद्यान्न, संकट, अकाल और महामारी, जमींदारों और सूदखोरों, साहूकारों के द्वारा किये जाने वाले शोषण के साथ-साथ पूंजी बाजार की बढ़ती हुई शक्ति ने मिलकर छोटे और भूमिहीन किसानों की तबाही का सारा सामान एकत्र कर दिया। युद्ध के कारण यूरोपीय देशों की फसले बर्बाद हो चुकी थीं। अंतः भारत के खाद्यान्न को इन देशों में भेजा गया। एक ओर जहां देश का अन्न विदेशों में जा रहा था, तो दूसरी ओर कृषि की उपज घटती जा रही थी क्योंकि खेतों में काम करने वाला स्वतंत्र किसान ब्रिटिश हुकूमत द्वारा फौज में भर्ती करके यूरोप में मरने व मारने के लिये भेज दिया जाता था, जिसमें यहां खाद्यान्न संकट गम्भीरतम हो गया।

१- हिन्दी की प्रगतिशील कविता, डॉ॰ रणजीत, पृ.सं. १०९-११०

२- हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना, डॉ॰ जनेश्वर वर्मा, पृ.सं. २१६

१९१८-१९ में भारत में अकाल पड़ गया था, संयुक्त प्रान्त बम्बई, पंजाब, मध्य-प्रदेश, बिहार, उड़ीसा और हैदराबाद तथा मैसूर के राज्यों में अकाल की स्थिति बहुत गम्भीर थी। अकाल के साथ ही इन्फ्लुएंजा भी फैला, लोग खास तौर से, गांवों में लोग अभूतपूर्व संख्या में मरने लगे थे, बी॰ नारायण के दिये हुये आंकड़ों के अनुसार यूरोपीय रोग ग्रस्तों में मृत्यु दर पांच प्रतिशत, धनी भारतीयों में जिन्हें डॉक्टरी सुविधायें प्राप्त थी सात प्रतिशत और किसान जनता में ५० प्रतिशत तक था।''[१]

''युद्ध के कारण जनता की स्थिति बहुत बद्तर हो गयी थी, युद्ध का खर्चा चलाने के लिये भारत की गरीब जनता से इतना कसकर रुपया वसूल किया गया था कि उसकी कमर टूट गयी थी। महंगाई की मार और अंधा-धुंध नफाखोरी ने लोगों को तबाह कर दिया था।''[२]

ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाले कृषकों की स्थिति भी अत्यन्त दयनीय थी। वे एक ओर जमींदारों और मालगुजारों की सामन्तवादी सत्ता के शिकार हो रहे थे और दूसरी ओर पूंजीवादी साहूकारों के ऋण भार से उनकी स्थिति शोचनीय हो गयी थी। शासन की दोषपूर्ण नीति, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था और सम्पत्ति के असमान वितरण ने देश की आर्थिक स्थिति को जर्जर कर दिया।

सोवियत रूस में हुई क्रान्ति (१९१७) के बाद वहां जारशाही सत्ता का समापन हुआ तथा बोल्शेविक शासन स्थापित हो गया था। रूस के मज़दूरों की इस उपलब्धि का व्यापक प्रभाव भारत के मज़दूरों पर भी पड़ा। सन् १९१८ में प्रयाग में एक किसान सभा के माध्यम से किसानों के प्रति हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध रोष प्रकट किया गया।

विशेष रूप से पंजाब, मलबार और संयुक्त प्रान्त में चलने वाले किसान आन्दोलनों में क्रियाशीलता दिखी, पंजाब और मलबार में यह आन्दोलन धार्मिक आवरणों के रूप में दृष्टिपात हुआ। यहां किसानों ने अपनी-अपनी उन जमीनों के प्रति बिगुल बजाया जिन्हें महन्तों ने जमींदारों के रूप में अधिग्रहण किया था। जिसे अकाली आन्दोलन के रूप में

१- हिन्दी की प्रगतिशील कविता, डॉ॰ रणजीत, पृ.सं. १०९

२- भारत : वर्तमान और भावी, रजनी पामदत्त, पृ.सं. १४२

चलाया गया, जिसमें पुरानी पार्टी के गदर नेता भी शामिल थे, इस आन्दोलन को शान्तिपूर्ण और अहिंसात्मक रूप से चलाया गया। किन्तु इन महन्तों का साथ स्वार्थवश ब्रिटिश हुकूमत ने दिया जिससे इस अकाली आन्दोलन ने एक ही साथ सामन्तवाद और साम्राज्यवाद विरोधी रूप धारण कर लिया। १९२१ में तरनतारन और ननकाना तथा १९२२ में गुरू का बाग में महन्तों और ब्रिटिश शासकों ने निहत्थी निरीह किसान जनता पर भयंकर अत्याचार किया और सैकड़ों लोगों की हत्या की। इस आन्दोलन की अपेक्षा ज्यादा क्रान्तिकारी किसान विद्रोह मलबार का मोपला विद्रोह। वैसे यह आन्दोलन मूलतः ब्रिटिश साम्राज्यवाद और देशी सामन्तवाद के विरुद्ध गरीब भूमि-मज़दूरों का ही आन्दोलन था। खिलाफत के आन्दोलन ने भी इसे प्रेरणा दी पर मोपला के किसानों ने खिलाफत आन्दोलन की अहिंसात्मकता की कोई परवाह नहीं की। अगस्त १९२१ में यह विद्रोह पहले तिरुरंगदी नामक एक छोटे से कस्बे से शुरू हुआ, मोपलो ने कस्बे पर अधिकार कर लिया और 'खिलाफत राज्य' की घोषणा कर दी। मलबार के जमींदार और साहूकार ज्यादातर हिन्दू थे, इसलिये ब्रिटिश सरकार ने इस विद्रोह को हिन्दू-मुस्लिम द्वेष में बदलने का प्रयत्न किया। मोपला विद्रोह ने वास्तव में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एक वास्तविक युद्ध का रूप ले लिया था।

"पूरी बहादुरी और दुस्साहस के बावजूद संगठन के अभाव और मुकाबले में आधुनिक अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित ब्रिटिश सेना के होने के कारण यह विद्रोह पूरी तरह सफल नहीं हो सका और १९२३ तक तीस हजार मोपलों ने समर्पण कर दिया। कुल मिलाकर इस विद्रोह में ३२६६ मोपले मारे गये और १८२५ घायल हुये।"[१]

किसान आन्दोलन का तीसरा क्षेत्र संयुक्त प्रान्त के अवध और आगरा के अंचल थे, किसानों का यह आन्दोलन इतना स्वयं स्फूर्त था कि जवाहरलाल जी ने अपनी आत्मकथा "मेरी कहानी" में लिखा है- "बल्कि मुझे उस वक्त ताज्जुब तो इस बात पर हुआ कि बिना शहर वालों के मदद के या राजनैतिक पुरुषों अथवा ऐसे ही दूसरे लोगों की प्रेरणा के कैसे बिल्कुल अपने आप वह इतना आगे बढ़ गया ? यह किसान आन्दोलन कांग्रेस से बिल्कुल

१- ए कन्टम्प्रेरी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ.सं. ७८

२- पं. जवाहरलाल नेहरू, मेरी कहानी, १९४४

अलहदा था।"[२] १९२० के अन्तिम महीनों में कुछ गिरफ्तार किसान नेताओं पर किसन गढ़ में मुकदमा चलाया जा रहा था। लेकिन मुकदमें के दिन हजारों किसान एकत्र हो गये और मजिस्ट्रेट ने घबड़ाकर किसानों को छोड़ दिया, किसानों ने इसे अपने बहुत बड़ी विजय समझी। पर सरकार के लिये यह स्थिति असह्य थी, उसने कुछ प्रमुख किसान नेताओं को फिर गिरफ्तार कर लिया था, १९२१ में लगभग पूरे संयुक्त प्रान्त में उनकी हलचलें हो गयीं थीं, १९२१ के फरवरी माह में ही फैजाबाद में दस हजार किसानों ने कस्बे के हजारों लोगों के साथ मिलकर प्रदर्शन किये और जमींदारों की सम्पत्ति पर आक्रमण किये। रायबरेली में भी प्रदर्शन हुये जिसमें भारतीय किसान सीधे-सीधे अपने वर्ग हितों की रक्षा के लिये उठ खड़े हुये। उन्होंने जमींदारों की सम्पत्ति जलाई, टैक्स देने में इन्कार किया और अपने साथियों को छुड़ाने के लिये हथियार उठाये। आगे चलकर कांग्रेस के स्वयंसेवक भी इस आन्दोलन में शामिल हुये। बरेली में पांच हजार स्वयंसेवकों ने प्रदर्शन सभायें की तथा नगर को अपने अधिकार में लेने के प्रयत्न किये। ४ फरवरी, १९२२ को गोरखपुर के पास चौरी-चौरा पुलिस स्टेशन के समीप दो हजार स्वयंसेवकों और किसानों ने ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की गोलियों का बदला पुलिस थाने को जलाकर और सब पुलिस वालों को मारकर लिया। यह महत्वपूर्ण बात है कि संयुक्त प्रान्त के इस किसान आन्दोलन ने अपने नेता अपने ही अन्दर से पैदा किये और स्वयं अपना संगठन 'एका' बनाया। इनके नेता पासीमदारी और साहरेब, दोनों नीची जातियों के भूमिहीन किसान थे, 'एका' ने अपनी निश्चित मांगे रखी, और जमींदारों तथा सरकारों के विरुद्ध एक तरह का युद्ध शुरू किया। इस तरह १९२२-२३ के अन्त तक देश में एक बहुत ही तनावपूर्ण सामाजिक व आर्थिक स्थिति थी, मज़दूरों की हड़तालों, अकालियों के आन्दोलन, मोपलों और अवध के किसानों के विद्रोह और कांग्रेस के नेतृत्व में चलने वाले असयोग आन्दोलन ने मिलकर भारत में ब्रिटिश शासन के लिये एक गम्भीर खतरा पैदा कर दिया था।"[१]

असल में १९१४-१८ के महायुद्ध के बाद और विशेषकर संसार व्यापी अर्थ संकट के बाद से इस आधुनिक काल में ही किसानों की बेचैनी अभूतपूर्व गति से बढ़ी है और

१- प्रतिकार, साप्ताहिक पत्र, अवध क्षेत्र, अंक ३९, वर्ष १९४१

अधिकाधिक उग्र रूप धारण करती गयी है।

किसानों के समानान्तर मज़दूरों के भी अपने आन्दोलन चल रहे थे, "प्रथम युद्ध समाप्त होने के पश्चात भारत में जिस प्रकार की परिस्थितियों का निर्माण हुआ और इस देश पर रूसी राज्य क्रान्ति तथा उसके पश्चात की दुनिया में उठने वाली क्रान्तिकारी लहर का जो प्रभाव पड़ा था उसके कारण, भारत का श्रमिक वर्ग ऐसा दिखायी पड़ता था, मानों वह एक ही छलांग में कर्मभूमि में उतर आया हो।"[१]

सन् १९१८ और १९२० के मध्य इस देश में श्रमिक हड़तालों की एक बाढ़ सी आ गयी थी। "१९२० के पहले छः महीनों में हड़तालें सबसे तेज़ रही। इस काल में २०० हड़तालें हुई, जिनमें १५ लाख मज़दूरों ने भाग लिया।"[२]

सन् १९२०-२१ में बम्बई, कलकत्ता, लखनऊ, अहमदाबाद और आसाम के चाय बागों में बड़ी-बड़ी हड़तालें हुईं, ज्यादातर मज़दूर अपने संघों में संगठित होने लगे। अखिल भारतीय स्तर पर मज़दूर संगठन बनने लगे। ब्रिटिश हुकूमत इन आन्दोलनों और संगठित विरोध से खासी चौकन्नी हो गयी और उसने इसके दमन के लिये बर्बर कार्यवाहियां की, इस तरह के अभियानों को कुचलने के प्रयास के तहत उनको जान-माल का नुकसान भी उठाना पड़ा फिर भी ब्रिटिश हुकूमत यही चाहती थी कि हिन्दुस्तानी जनता गुलामी की नींद में सोती रहे और अपनी आज़ादी की मांग या अधिकारों की मांग कदापि न करें, इसके लिये उसमें साम, दाम, दण्ड, भेद सभी तरह की नीतियां अपनायी। "हिन्दू-हिन्दू में ऊंच-नीच का भाव पैदा करना, सवर्ण तथा अछूत की खांई खोदना, हिन्दू-मुसलमानों में साम्प्रदायिक द्वेष बढ़ाना, भारत के बहादुर राजाओं-राजपूतों को आपस में लड़ाना, आर्थिक मूड़-फुटव्वल कराना, सामाजिक कलह उत्पन्न कराना तथा तरह-तरह के प्रलोभन देना, इसी नीति के अहम हिस्से थे।"[३]

हम भली-भांति जानते हैं कि अगर कहीं चिंगारी है तो लौ अवश्य ही प्रज्ज्वलित

१- भारत वर्तमान और भावी - रजनी पामदत्त, पृ.सं. २०३

२- वही, पृ.सं. १४७

३- जंग-ए-आजादी, अंक १७, पृ.सं. ७

होगी, इसी प्रकार भारतीय जनमानस भी गुलामी की जंजीरों में फट-फटा रहा था वह गुलामी की काली रात्रि को समाप्त कर "नूतन प्रभात" देखना चाहता था, और मज़लूम जनता, शोषित किसान मज़दूरों की यह अंगड़ाई इसी का शाश्वत प्रमाण है।

"१९२० में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना हुई उसका प्रथम अधिवेशन अक्टूबर, १९२० में बम्बई में हुआ, अधिवेशन की अध्यक्षता लाला-लाजपत राय ने की।"[१]

यह तथ्य भी स्वतः स्पष्ट हो जाता थ कि मज़दूरों की ये हड़तालें अपनी आर्थिक मांगों के साथ-साथ राष्ट्रीय आन्दोलन के समर्थन में भी होती थी। १९२६-२७ तक देश में समाजवादी विचारों का व्यापक रूप से प्रचार हो गया था, मज़दूर और किसान पार्टियों के रूप में मज़दूर वर्ग के राजनीतिक और समाजवादी संगठन का एक नया स्वरूप देश में जगह-जगह स्पष्ट रूप से दिखायी देने लगा था। इन संगठनों में ट्रेड यूनियन आन्दोलन के लड़ाकू कार्यकर्ता और कांग्रेस के उग्रवादी तत्व एक जगह इकट्ठा हो गये। "पहली मज़दूर किसान पार्टी फरवरी १९२६ में बंगाल में बनी, फिर बम्बई, उत्तर प्रदेश और पंजाब में भी इस तरह की पार्टियां कायम हो गयीं। १९२८ में इन सबको मिलाकर 'अखिल भारतीय मज़दूर किसान पार्टी कायम हो गयी जिसका प्रथम अधिवेशन दिसम्बर, १९२८ में हुआ था।"[२] इस प्रकार समाज के इस महत्वपूर्ण वर्ग में आयी चेतना भारत के परिप्रेक्ष्य में अच्छे भविष्य का संकेत दे रहे थे, सामाजिक रचनाशीलता और एकता का भाव स्वस्थ परम्परा विकसित कर रहे थे किन्तु राजनैतिक स्वरूप से यह अंग्रेजों व चन्द संगठित पूंजीपतियों के लिये खतरे की घंटी थे। वे यह समझ गये थे कि भारतीय जनमानस को अब अधिक दिनों तक बरगलाना नामुमकिन है। "पं० जवाहरलाल नेहरू के अनुसार सन् १९२८-२९ के वर्ष मज़दूरों के झगड़े और हड़तालों तथा औद्योगिक अशान्ति के वर्ष थे।"[३]

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर छायी मंदी का कुप्रभाव भारत पर भी पड़ा, मज़दूरों की

१- भारत : वर्तमान और भावी, रजनी पामदत्त, पृ.सं. २०३

२- वही., पृ.सं. २११

३- मानव जीवन और साहित्य, डॉ. प्रकाश चन्द गुप्त, पृ.सं. २८

आर्थिक स्थिति जर्जर होती गयी वे दाने-दाने को मोहताज़ हो गये। उनके द्वारा किये गये कठोर श्रम के बावत उन्हें न्यूनतम (नगण्य) वेतन दिया जाता था। बारदोली के धक्के के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन को पांच-सात साल तक लकवा मारे रहा, जनता में पस्ती और निराशा रही इसी बीच भारतीय आर्थिक ढांचे पर ब्रिटिश इजारेदारों ने अपने युद्ध के दौरान ढीले पड़ गये प्रभुत्व को फिर मज़बूत किया, युद्ध के दिनों में बनी बहुत सी कम्पनियों का बाद के वर्षों में दिवाला निकल गया था। "भारत में ब्रिटिश पूंजी बहुत बड़े पैमाने पर बढ़ी, ब्रिटिश बैंक पूंजी का नाग-पाश अधिकाधिक कठोर होती गयी। १९२२ से ३१ के बीच १५४ भारतीय बैंकों को दिवाला निकला था, २३ से २६ के बीच के वर्षों में भारत की पूरी बैंक पूंजी का ७० प्रतिशत ब्रिटिश बैंकों में जमा था।"[१]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि १९२९ के संसार व्यापी अर्थ संकट के आने से पहले ही भारत के औद्योगिक विकास में बहुत सी अड़चनें पड़ने लगी थी, किसानों पर कर्ज़ के आंकड़े बताते हैं कि २१ से २९ के बीच उन पर कर्ज़ का बोझ पचास प्रतिशत बढ़ गया। भूमिहीन किसानों की संख्या में वृद्धि हुई गाँवों के तबाह किसान शहरों में मज़दूरी के लिये बड़ी संख्या में आने लगे इससे शहरों के श्रम बाजार में प्रतियोगिता बढ़ी और पूंजीपतियों को अधिकाधिक शोषण के अवसर मिले। १९२७ में हुई उपनिवेशों की जनता की ब्रूसेल्स कांग्रेस में जवाहरलाल जी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रतिनिधित्व किया इस 'ब्रूसेल्स कांग्रेस' ने नेहरू जी को काफी हद तक प्रभावित किया। अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा है कि- "इस कांग्रेस में शामिल होने से उपनिवेशों की बहुत सी समस्याओं और अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलनों के दोनों पक्षों के दूसरी इन्टरनेशनल और तीसरी इन्टरनेशनल के बीच के विरोधों को समझने में सहायता मिली और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर साम्यवादियों और उनके सहयोगियों के प्रति उनकी सहानुभूति बढ़ी।"[२]

सन् १९२८ में ब्रिटिश ट्रेड यूनयिन कांग्रेस के प्रतिनिधि मण्डल ने भारत में मज़दूरों की स्थिति के बारे में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी-

---

१- ए कन्टम्प्रेरी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ.सं. १००-१०१

२- मेरी कहानी, जवाहरलाल नेहरू, पृ.सं. २१९-२२०

"जांच-पड़ताल से यह पता चलता है कि हिन्दुस्तान के अधिकतर मज़दूरों का रोज़ाना १ शिलिंग (पौन ग्यारह आने) से ज्यादा नहीं मिलता। मज़दूरों के रहन-सहन का स्तर और उनके निवास स्थानों के वीभत्स रूप का भी चित्रण अत्यन्त यथार्थवादी ढंग से इस रिपोर्ट में किया गया है।

"हमं लोग मज़दूर बस्तियों में गये और अगर वहां न जाते तो यह कभी यक़ीन नहीं होता कि ऐसी गन्दी जगहें दुनियां के पर्दे पर हैं। एक वाली में कोठरियां बनी है......... इन ९ फीट लम्बी और ९ फीट चौड़ी कोठरियों में चौका, चूल्हा, रहना-सहना सभी कुछ होता है। इनकी दीवालें कच्ची हैं और ऊपर खपरैलें छायी हैं। ठीक सामने छोटा सा अहाता है जिसके एक कोने में संडास बना हुआ है, कोठरी के बाहर तंग गली है, जिसमें सभी तरह की गन्दगी बहा करती है।"[1]

किसान मज़दूरों की दयनीय स्थिति और उनके अन्दर उभरती हुई विद्रोह भावना से कांग्रेस अप्रभावित न रह सकी। १९३० के आसपास कांग्रेस के कार्यक्रमों में भी किसान मज़दूरों की सोचनीय स्थिति से निपटने के स्वर, मुखरित होने लगे। कांग्रेस अब यह समझ चुकी थी कि हमारे देश में आम आदमी का प्रतिनिधित्व करने वाले इन मज़दूरों-किसानों की एक अच्छी खासी संख्या है और इनकी अपने अधिकारों के प्रति ललक आज़ादी के लिये सुखद संकेत है, अतः उस समय देश की प्रमुख पार्टी कांग्रेस ने इस वर्ग को मुख्य धारा में शामिल करते हुये इसकी समस्याओं को प्रमुखता से उठाया। "कांग्रेस के मंच से सबसे प्रथम हमें सन् १९३० में जनता से सम्बन्ध रखने वाले आर्थिक प्रश्नों की चर्चा सुनाई देती है और यह चर्चा उठी महात्मा गांधी द्वारा लार्ड इरविन के सम्मुख रखी गयी मांगों के रूप में। यह मांग थी- लगान को कम से कम ५० फीसदी कम कर देने की। इस मांग का कारण यही था कि किसानों की आवाज़ अब कांग्रेस तक आने लगी थी। आर्थिक प्रश्नों की ओर कांग्रेस का ध्यान इस समय से बढ़ने लगता है।"[2]

१९३० के बाद किसान सभाओं का संगठन और इस संगठन के माध्यम से अपने

१- कांग्रेस का इतिहास, भाग-१ सीतारमैया, पृ.सं. २६८

२- प्रगतिशील हिन्दी काव्य, डॉ. दुर्गा प्रसाद झाला, पृ.सं. ३२

प्रति हो रहे शोषण और अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करना और भी तीव्रतर हुआ। १९२९-३१ में भारत ने राष्ट्रीय आन्दोलन की तीसरी बड़ी लहर देखी। अर्थनीति की दृष्टि से इस युग को हम विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के आम आर्थिक संकट का युग कह सकते हैं। अधिक उत्पादन के इस विश्व-व्यापी संकट ने संसार के आर्थिक सम्बन्धों की पूंजीवादी व्यवस्था को काफी झकझोर दिया है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने अपने पर आयी इस आपत्ति का बोझ अपने गुलाम देशों पर डालने का प्रयत्न किया, भारत में इस आम सकट ने यहां के कृषि संकट के साथ मिलकर और भी क्रूर रूप धारण कर लिया। संकट ने सबसे तीव्र प्रहार कृषि पर ही किया। औद्योगिक और खाद्यान्नों की फसलों का क्षेत्र कम हो गया और उपज में गिरावट आई, कृषि उत्पादनों की कीमतें जोरों से गिरी पर अंग्रेजी हुकूमत की नीति के कारण पक्के माल की कीमतों में बहुत कम गिरावट आ पायी। पक्के और कच्चे माल की कीमतों के अन्तर को बढ़ाकर ब्रिटिश बैंक पूंजी ने भारत के शोषण को और तेज किया। किसानों की आमदनी काफी कम हो गयी। "भारतीय माल की कीमतों में गिरावट के कारण भारत के विदेश व्यापार में बहुत कमी आयी, जहां एक ओर १९२८-२९ में भारत से ३३९ करोड़ रुपये का सामान बाहर गया था वहीं ३२-३३ में कुल मिलाकर १३५ करोड़ का सामान ही बाहर जा पाया।"[1] लेकिन खिराज, ऋण के ब्याज और प्रशासनिक खर्चे के नाम पर भारत से इंग्लैण्ड जाने वाली रकम में कोई कमी नहीं आयी। उल्टे कीमतों की गिरावट के कारण उनका बोझ पहले से कहीं ज्यादा हो गया। इसी के सिलसिले में ब्रिटिश उपनिवेशियों ने देश के हीरे जवाहरात और सोना इंग्लैण्ड भेजना शुरू किया।

"१९३१ से ३५ तक भारत से ३२० लाख आउंस सोना इंग्लैण्ड गया, ध्यान देने की बात यह है कि अर्थ संकट से पहले इंग्लैण्ड के खज़ाने में कुल जितना सोना था, उससे ज्यादा सोना इन चार वर्षों में भारत से इंग्लैण्ड गया।"[2]

विश्व बाजार में बढ़ती हुई प्रतियोगिता ने भी स्थितियों को प्रभावित किया। भारत के बाजार जापानी, जर्मनी, और अमेरिकी सामानों से पटने लगे। "इससे भारतीय उद्योगों पर

१- भारत : वर्तमान और भावी, रजनी पामदत्त, पृ.सं. १०७

२- कांग्रेस का इतिहास, भाग-१ सीतारमैया, पृ.सं. २६८

ही नहीं ब्रिटिश निर्यात पर भी प्रहार हुआ, इसलिये ब्रिटिश अधिकारियों ने गैर-अंग्रेजी माल पर कर लगाना शुरू कर दिया जो १९३३ तक ७५ प्रतिशत हो गया।"[१]

अंग्रेजी हुकूमत ने बड़ी चालाकी से भारत को 'साम्राज्यी प्राथमिकता' की व्यवस्था के अन्तर्गत ले आयी, जिससे ब्रिटेन से आये हुये माल को अन्य विदेशों से आये माल की प्रतियोगिता में न आना पड़े। भारतीय व्यापारियों ने इस नीति का विरोध किया, क्योंकि इससे ब्रिटिश पूंजी की भारतीय बाजारों पर इजारेदारी कायम होती थी। अर्थ संकट के इन दिनों में मैनेजिंग एजेन्सियाँ, लगभग इजारेदार संगठनों के रूप में विकसित होने लगीं उनमें अधिक से अधिक कम्पनियों पर प्रभुत्व प्राप्त करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। ब्रिटिश मैनेजिंग एजेन्सियों को इन दिनों सूती कपड़े के मिलों पर अपने पंजे जमाने का मौका मिला।

सन् १९३० के बाद किसान सभाओं का संगठन और इस संगठन के माध्यम से अपने प्रति हो रहे शोषण और अत्याचार के विरुद्ध आवाज बुलन्द करना और भी तीव्रतर हुआ।

"इसके पश्चात किसान सभाओं के संगठन का कार्य आरम्भ कर दिया गया था, बिहार में तो सन् २६ में ही किसान सभा की स्थापना हो चुकी थी जिसने कि सन् १९३४ में अधिक व्यापक रूप ग्रहण कर लिया, सन् १९३५ में उत्तर प्रदेश में एक 'प्रान्तीय किसान सभा की स्थापना हुई, जिसने अपने कार्यक्रम में जमींदारी प्रथा की समाप्ति की मांग को भी प्रमुखता से सम्मिलित किया गया था।"[२]

"१९२६ में पहला अखिल भारतीय किसान संगठन बना, उसका नाम था अखिल भारतीय किसान सभा, इस संगठन का पहला अखिल भारतीय अधिवेशन दिसम्बर १९३६ में राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन के साथ-साथ फैजपुर में हुआ। उसमें बीस हजार किसानों ने भाग लिया, जिनमें से बहुत से किसान सैकड़ों मील पैदल चलकर आये थे। इसके अलावा कांग्रेस ने अपने फैजपुर अधिवेशन में एक खेती सम्बन्धी कार्यक्रम पास किया और

१- कांग्रेस का इतिहास, भाग-१ सीतारमैया, पृ.सं. २६८

२- प्रगतिशील हिन्दी कविता, डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला, पृ.सं. ३२

३- भारत : वर्तमान और भावी, रजनी पामदत्त, पृ.सं. १०७

दोनों संस्थाओं के बीच में भाईचारे की घोषणा की गयी।"[3]

इस प्रकार भारतीय आम जनता ब्रिटिश शासन के जुयें के नीचे पिसती रही, और अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये दोनों कौमों को 'कोल्हू के बैल' की तरह प्रयुक्त करती रही, इस सदी के चौथे दशक में मज़दूरों और किसानों ने अपनी दयनीय स्थिति से पार पाने के लिये विद्रोह भरे स्वरों में आन्दोलनों की गति काफी तेज कर दी। भारत में आर्थिक इतिहास के बारे में जो कुछ लिखा गया है, उसका आरम्भ, "मूल रूप में आर्थिक अवनति, मंदी और बढ़ती जा रही गरीबी से ही हुआ है। 'दादा भाई नौरोजी और रमेशचन्द्र पन्त जैसे आरम्भिक राष्ट्रवादी आर्थिक चिन्तकों ने विदेशी शासन और भारत के बढ़ते जा रहे पिछड़ेपन के बीच सम्बन्ध माना है।"[1]

द्वितीय विश्व युद्ध के बीच भारत का परिदृश्य और गम्भीर हो गया, "युद्धकाल में भारत का शोषण अनेक ढंग से होता रहा, औद्योगिक विकास भी नहीं हो सका। भारत की राष्ट्रीय आय का एक तिहाई भाग रक्षा पर व्यय हुआ। युद्ध का वृहत व्यय मुद्रा-प्रसार के द्वारा पूरा किया गया, सन् १९३६ से सन् १९४५ के बीच भारत में ६ गुने अधिक नोट चलाये गये। इससे फौजी ठेकेदार और मिलों के स्वामी बेहद लाभान्वित हुये। बुभुक्षित जनता इस बोझ से पिस उठी। जीवन की आवश्यकताओं के अभाव में जनता की स्थिति दयनीय रही, महंगाई बढ़ती गयी। जनता अनेक कष्टों से जूझती रही।"[2]

बीसवीं शताब्दी में यूरोप के कुछ उदारवादी और वामपंथी विद्वानों तथा राजनैतिक चिन्तकों ने साम्राज्यवाद का असली चेहरा उघाड़ कर रख दिया। "हाब्सन, हिल्फर्डिंग, लेनिन और लंग़ज़वर्ग ने अपने लेखन से इस शताब्दी में पूंजीवाद एवं साम्राज्यवाद की कार्यशैली पर नई अन्तर्दृष्टि डाली।"[3]

दूसरी तरफ यह भी स्पष्ट है कि भारत के आर्थिक विकास से सम्बन्धित वाद-विवाद सन् १९४० के बाद भी जारी रहे। दो विश्व युद्धों के बीच के काल में भारतीयों ने

१- Poverty and un-British rule in India, Public Division, 1969, Dada Bhai Naoroji

२- आधुनिक हिन्दी काव्य में क्रान्ति की विचारधाराएं, डॉ॰ उर्मिल जैन, पृ॰सं॰ ९५-९६

३- The Export of Capitals, C.K. Hobson, London, 1934.

उद्योगों के काम-काज में अधिक भूमिका निभानी शुरू की। इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति १९२४ में टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी द्वारा शुरू की गयी। जब टाटा के प्रबन्ध के तहत जल विद्युत परियोजनायें चालू हुईं। किन्तु ब्रिटिश हुकुमत अधिकाधिक कर लेकर इन्हें हतोत्साहित करती। इसे इतिहासकार "मुक्त व्यापार" की जगह "भेदभाव मूलक हस्तक्षेपवाद" (Discriminatory interventionism) मानते हैं।"[१]

महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस प्रक्रिया में दो नये निष्कर्ष निकलते हैं पहला तो यह है कि आधुनिक उद्योग में कुल राष्ट्रीय आय का हिस्सा बहुत कम था, अतः आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र में रोज़गार के अवसर सीमित थे और तकनीकी प्रगति के लिये पश्चिमी देशों पर निर्भरता बहुत अधिक थी परिणामस्वरूप पूंजी उत्पादक उद्योग का क्षेत्र बहुत सीमित था, दूसरा यह कि उद्योग के प्रमुख एवं महत्वपूर्ण क्षेत्र पर विदेशी पूंजी का नियंत्रण था। आज़ादी के पूर्व भारत में हुई प्रगति का आधार मानवीय श्रम का घोर अमानवीय शोषण, काम के अधिक घण्टे, अमानवीय स्थितियां, बच्चों एवं औरतों के श्रम का बड़े पैमाने पर बेज़ा इस्तेमाल आदि थे। १९२० के बाद आधुनिक मज़दूर वर्ग का उदय हुआ, इसी समय खतरनाक रूप से इन्सान मजूरी का गुलाम बनकर मशीनों के साथ बंध गया। शिशुओं को स्तनपान कराती औरतें और ५-६ साल के बच्चे भी मशीनों को अपना खून पिलाने लगे, कम से कम जिम्मेदारी और लागत से ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाने की हवस में उद्योगपतियों ने कारखानों में सावधानी बरतने की दिशा में कोई ध्यान नहीं दिया जिसके कारण अक्सर दुर्घटनाएं हुईं और मज़दूरों को कोई भी मुआवज़ा नहीं दिया गया। कारखानों के अन्दर रोशनी, हवा, पानी, सफाई का कोई इन्तज़ाम नहीं था। १९३१ के 'रॉयल कमीशन ऑन लेबर' के सामने उपस्थित होने वाले अनेक व्यक्तियों ने मज़दूरों के रहन-सहन की भयानक स्थिति का वर्णन किया है।

"अक्सर एक कोठरी में एक से ज्यादा परिवारों को रहना पड़ता था। उनकी मज़दूरी

१- Financial Foundation of the 'British Raj', 1909-1989, Indian Institute of Advanced Studies.

इतनी कम थी कि दो जून की रोटी भी मुश्किल से मयस्सर हो पाती थी। ऐसी हालत में इन परिवारों के सांस्कृतिक विकास के लिये सुविधाओं की तो बात ही नहीं उठती।"[1]

किसान और मज़दूर वर्ग के अतिरिक्त भारतीय कामकाज़ी महिलाओं पर भी कुप्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकताहै। ब्रिटिश पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था में उत्पीड़ित वर्गों की महिलायें आर्थिक प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भागीदारी करती थीं। इसी प्रकार खेती और हस्तशिल्प में इन महिलाओं का प्रमुख योगदान था, किन्तु ब्रिटिश शासन ने इन परम्परागत प्रक्रियाओं को बेहद नुकसान पहुंचाया। दस्तकारी उद्योग के नष्ट होने से इनमें लगी महिलाओं का जीवन गम्भीर रूप से प्रभावित हुआ। जमीन पर बढ़ रहे दबाव, बेरोज़गारी तथा तज्जनित अल्परोज़गारी ने महिलाओं को अपना शिकार बनाया। अगले चरण में अर्थात कारखाने स्थापित होने के समय अत्यन्त अल्प महिलायें काम पा सकी। जो थोड़ी बहुत महिलायें आधुनिक फैक्ट्रियों या बागानों में पा सकी, उन्हें पूंजीवाद शोषण के निकृष्टतम रूपों को झेलना पड़ा।

"दूसरे विश्व युद्ध के बाद ऐसी विकराल महंगाई आई कि सन् १९४२-४३ में आटा-चावल का भाव आसमान छूने लगा। राशनकार्डों के अभाव में बहुतों के लिये अन्न का दाना तक दुर्लभ हो गया।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अर्थव्यवस्था के सभी पहलुओं पर भारत में ब्रिटिश शासन के प्रभाव को महसूस किया गया। यद्यपि विभिन्न चरणों में इसका प्रभाव अलग-अलग रहा किन्तु देश की आर्थिक प्रगति धीमी रही और यह साम्राज्यवादी ब्रिटेन की ओर ताकता रहा। विश्व युद्धों के कारण उत्पन्न स्थितियों में से अर्न्तविरोध और अधिक खुलकर सामने आये, क्योंकि ऐसे समय भारत पर आर्थिक एवं सामाजिक नियंत्रण की आवश्यकता और भी कसकर महसूस की गयी। इसने ब्रिटेन द्वारा भारत में उत्पन्न अतिरिक्त पैदावार के शोषण की प्रक्रिया को और भी अधिक तेज कर दिया। एक स्वाभाविक ऐतिहासिक प्रक्रिया

१- भारत की सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियाँ (आजादी पूर्व व वर्तमान के सन्दर्भ में) डॉ॰ आर॰एस॰ रेखी, पृ॰सं॰ २१

२- एक व्यक्ति एक युग, नागार्जुन, पृ॰सं॰ २१

में इस अतिरिक्त पैदावार से स्वयं भारत में पूंजीवादी विकास का मार्ग प्रशस्त करने के लिये आदिम संचय की तैयारी में योगदान मिला होता। किन्तु भारत में अंग्रेजों द्वारा अपनायी गयी नीतियां तथा उनके आर्थिक प्रभाव के परिणामस्वरूप यह प्रक्रिया अवरुद्ध हो गयी, इसके कारण उत्पन्न गहरे आर्थिक संकट ने ही भारत में उठने वाले उस राजनैतिक उभार की आधारशिला रखी, जिसने १०० वर्षों तक चलने वाले साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों का इतिहास रचा है। अर्थव्यवस्था को पुर्नजीवित करने का कार्य बहुत कठिन था और इस पर ब्रिटेन तथा अन्य साम्राज्यवादी देशों को आपत्ति थी। यद्यपि पूंजी के विश्वव्यापी अर्थतंत्र और राष्ट्रवादी ताकतों के बीच टकराव का एक दौर १९४७ में समाप्त हुआ किन्तु लड़ाई अब भी जारी है। क्योंकि किसानों व मज़दूरों की सामाजिक व आर्थिक स्थितियां कमोवेश ज्यादा सुखद नहीं है। इनके उत्थान हेतु आज भी स्वस्थ कार्यक्रम लागू करने की आवश्यकता है।

भारत की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का दिवालियापन नग्न रूप में उस समय प्रकट हुआ, जब जापान के लड़ाई में शामिल होने के बाद भारत में वर्मा से चावल आना बन्द हो गया। उसका परिणाम यह हुआ कि पूरा देश अकाल का ग्रास बन गया और हर-तरफ भुखमरी फैल गयी। प्रो॰ के॰पी॰ चट्टोपाध्याय के अनुसार, "अकेले बंगाल में ३५ लाख आदमी अकाल के परिणामस्वरूप मौत के शिकार हुये, अकाल के बाद महामारी आई और सितम्बर, १९४४ तक बंगाल में १२ लाख आदमी विभिन्न घातक बीमारियों के शिकार हो गये, जनता का सारा जीवन छिन्न-भिन्न हो गया। माँ-बाप अपने दूध पीते बच्चों को इस आशा से सड़क के किनारे छोड़कर चले आते थे कि किसी दयालु आदमी की उन पर दृष्टि पड़ गयी तो सम्भव है कि उनकी जान बच जाये। पुरुष अपने परिवारों को भाग्य के सहारे छोड़कर रोज़ी की तलाश में बाहर निकल जाते थे। स्त्रियाँ भूख की मार से विवश होकर अपनी देह का व्यापार करने लगीं थीं और वेश्यालयों में भर्ती हो रही थीं।"[1]

यह अकाल इन्सान का पैदा किया हुआ था, असल में बंगाल में केवल छः हफ्ते के राशन की कमी थी और बाहर से अनाज मंगाकर और खाने-पीने की चीजों का सबमें

१- भारत : वर्तमान और भावी, रजनी पामदत्त, पृ.सं॰ १००

बराबर-बराबर वितरण करके इस कमी को आसानी से दूर किया जा सकता था, लेकिन ऐसा किया जाने के बजाय, खाद्यान्न संकट उत्पन्न किया गया, जिससे अकाल पड़ा और उसके कुप्रभाव में एक तिहाई जनता आ गयी। अनाज का सारा स्टॉक बड़े-बड़े जमींदारों और व्यापारियों ने हथिया लिया था तथा घूसखोर नौकरशाह छिपा हुआ अनाज बाहर निकालने के बजाय, भाव बढ़ाने और करोड़ों आदमियों के जीवन में खिलवाड़ करने में इन अनाज चोरों की मदद कर रहे थे। यह भी स्वतः स्पष्ट है कि मुनाफाखोरी के चक्कर में भारतीय जनता के समक्ष जानबूझकर संकट पैदा किया गया।

निष्कर्षों में यह तथ्य सामने आया सन् १९४२-४३ के बीच महज़ एक ही वर्ष में खाद्यान्न की कीमतों में बेतहासा वृद्धि हो गयी थी, "जनवरी, १९४२ में चावल का भाव ६ रुपये मन था नवम्बर १९४२ तक वह ११ रुपये मन हो गया। फरवरी-अप्रैल १९४३ में वह २४ रुपये मन, मई में ३० रुपये मन, जुलाई में ३५ रुपये मन, अगस्त में ३८ रुपये मन और अक्टूबर १९४३ में ४० रुपये मन हो गया। मुफस्सिल के जिलों में तो भाव ५० रुपये से लेकर १०० रु॰ मन तक चला गया था, अकाल के दिनों में भी चावल हर जगह मिलता था, और चाहे जितने परिमाण में मिल सकता था। लेकिन १०० रुपये मन का भाव देने पर ही।"[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि दूसरे महायुद्ध के कारण उत्पन्न आर्थिक संकट का सबसे अधिक असर गरीब मज़दूर और किसानों को ही भोगना पड़ा। आज़ादी प्राप्त होने के बाद इस देश के कर्णधारों ने अपने ढंग से नीतियाँ बनाने व लागू करने का प्रयास किया, जिसका उद्देश्य "सर्वहारा वर्ग" को बुनियादी सुविधायें उपलब्ध कराना था। पंचवर्षीय योजनाओं में पर्याप्त धन कृषि तथा उद्योग-धन्धों पर व्यय किया गया, गरीबी दूर करने के लिये तथा देश में भुमखरी समाप्त करने के लिये नये-नये संकल्प लिये गये। पं॰ नेहरू के शासनकाल में देश के चहुँमुखी विकास के लिये सुधारात्मक कार्य किये गये, इसके बाद अस्सी के दशक में देश की प्रथम महिला प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के शासन में "भूमि सुधार" के सम्बन्ध में अनेक कार्यक्रम चलाये गये कृषि व कृषक वर्ग की समस्याओं

१- भारत : वर्तमान और भावी, रजनी पामदत्त, पृ.सं॰ १०१

का वैज्ञानिक अध्ययन कर उनके निराकरण का सार्थक प्रयास किया गया। १९४७ में देश ने स्वतंत्रता मिलने के बाद एक सुहानी सुबह के लिये नील गगन के तले सपनों के ताने-बाने को बुनना प्रारम्भ किया, समूचे भारतवासी अपने पैरों के बल खड़े होने के लिये कृत-संकल्प हुये। कृषि को नई-नई वैज्ञानिक उपलब्धियों से लाभान्वित किया गया, मज़दूरों के लिये अनेक सुविधाओं की व्यवस्था की गयी, सरकारों ने "मलिन बस्तियों" के उद्धार के लिये कार्यक्रम चलाये।

वर्तमान परिस्थिति को समझने के लिये देश की वास्तविक तस्वीर पर नज़र डालें तो पायेंगे, कि इन सारे प्रयत्नों के बावजूद देश से न तो गरीबी हटी और न ही आर्थिक विषमता। स्वतंत्र भारत में भी आर्थिक विषमता अत्यधिक है, किसी के पास कई पीढ़ियों तक के लिये धन सुरक्षित है तो किसी के पास बुनियादी सुविधायें ही मयस्सर नहीं हैं और हाड़-तोड़ मेहनत के बाद दो जून की रोटी जुट पाती है। "जहाँ एक ओर हम चाँद-तारों की बात करते हैं, अन्तरिक्ष में बसने का मंसूबा बना रहे हैं, वहीं दूसरी ओर देश की अधिकांश जनता, भुखमरी का शिकार हैं और उसे घृणित जीवन-यापन के लिये विवश होना पड़ता है।"[१]

यह कितने दुःख की बात है कि जिन महान संकल्पों को लेकर हमारे शहीदों, महापुरुषों ने देश को आजाद कराया था और एक महान भारत की कल्पना की थी, वह पूरा होता नजर नहीं आ रहा। विभिन्न आम चुनावों में हमें लोक-लुभावन वादे-नारे आदि सुनाई पड़ते हैं, घोषणापत्रों में बड़ी-बड़ी घोषणाएं की जाती हैं, किन्तु अमल कितना किया जाता है यह भारत की महान जनता ही जानती है। 'हर हाथ को काम, हर खेत को पानी' का नारा जनता को देकर काफी सियासत की गयी, वोट बटोरे गये किन्तु आज स्थिति यह है कि देश का योग्यतम व्यक्ति बेरोजगार है, पीने के पानी के लिए हाहाकार है तो खेतों की कौन कहे? बुन्देलखण्ड की स्थिति अत्यन्त भयावह है, अशिक्षा, गरीबी, न्याय-कानून का नियमन महत्वपूर्ण समस्यायें। तीव्रता से बढ़ती जनसंख्या भी एक महत्वपूर्ण कारक है। जितने परिमाण में देश का उत्पादन बढ़ रहा है उससे कई गुना अधिक देश की आबादी बढ़

१- अंधेरा ठहरा हुआ है, डॉ. वी.पी. दुबे, वर्ष २००६, पृ.सं. ११

गयी है। चूँकि भूमि उतनी ही है और जनसंख्या बेतहाशा बढ़ती जा रही है आजादी के समय हम तीस करोड़ थे और आज डेढ़ अरब है। जिससे संसाधनों की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इसके अलावा राजनैतिक इच्छा शक्ति की कमी भी एक मुख्य कारण है। देश के आर्थिक विकास व सामाजिक समुन्नति में बाधक सबसे महत्वपूर्ण कारक भ्रष्टाचार है जो कि दीमक की भाँति देश को खोखला करता जा रहा है। भारत के युवा प्रधानमंत्री स्व॰ श्री राजीव गाँधी ने लिखा है- "मैं दिल्ली से जनता के विकास के लिए अगर सौ रुपये भेजता हूँ तो नब्बे रुपये भ्रष्टाचार रूपी दीमक चट कर जाता है। इसके लिए कठोरतम कदम उठाने की आवश्यकता है। अन्यथा देश की तस्वीर विकास की दृष्टि से धुंधली ही रहेगी।"[१]

स्वतन्त्र भारत के नवें दशक में भी गरीबी और असमानता दूर करने के लिए दलगत व जातिगत भावनाओं से ऊपर उठकर ईमानदारी से प्रयास किये जाने की सख्त आवश्यकता है। भारतीय संविधान की मूल भावना को लागू कर सबके लिए बुनियादी सुविधायें जुटाई जानी चाहिए। समाज के हर वर्ग तक आजादी की महत्ता स्पष्ट रूप से समझी जानी आवश्यक है, जब तक देश का आम आदमी खुशहाल नहीं होगा, हम भारत को विकसित राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित नहीं कर सकेंगे। ऐसा भी नहीं है कि हमने प्रगति नहीं की, लेकिन यह सन्तोषजनक नहीं है क्यों कि जैसा कि हम जानते हैं कि भारत गाँव में बसता है और गाँव खुशहाल नहीं है। हमें अपने दायित्वों के प्रति जागरूक होकर देश के सामाजिक व आर्थिक विकास में सहयोग देना चाहिए।

इस प्रकार इन विद्यमान परिस्थितियों ने कवि के जीवन को खासा प्रभावित किया है, जीवन काल की (१९११ से २००० तक) सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव कवि के जीवन के अतिरिक्त उनके साहित्य (विशेष रूप से काव्य) में देखने को स्पष्टतया मिलता है। जहाँ एक ओर कवि इससे आन्दोलित हुआ है वहीं दूसरी ओर उसने साहित्य के माध्यम से इसे उकेरने में सफलता प्राप्त की है।

३- साहित्यिक परिस्थितियाँ-

१- मेरे सपनों का भारत, राजीव गाँधी, १९८९-९०, पृ॰ ३६

रचनाकार अपनी समकालीन साहित्यिक परिस्थितियों से सीधे-सीधे प्रभावित होता है। साहित्यकार समाज में घटने वाली घटनाओं को अन्तर्भूत करके काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। आम तौर पर हमारी भारतीय संस्कृति और साहित्य आदर्शवादी रहा है। जीवन में आदर्श प्रेरणा का काम तो करता है किन्तु हम यथार्थ (Reality) से मुँह नहीं मोड़ सकते हैं। यथार्थ हमें जीवन के सन्निकट लाता है, यथार्थ ही जीवन की सच्ची झाँकी है।

साहित्य में यथार्थ जीवन चित्रण की यह परम्परा प्राचीनकाल से ही चली आ रही है किन्तु भारतेन्दुकाल से हमें स्पष्ट रूप से यथार्थवादी परम्परा के दर्शन होते हैं। वैसे यह युग मूलतः सुधारवादी युग था, इस काल के कवियों ने जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में से जनता को रू-बरू कराया और तत्कालीन आम जन मानस की ज्वलंत समस्याओं का अपने काव्य के माध्यम से प्रस्तुतीकरण किया। इस काल के सभी कवियों में राष्ट्र की दयनीय स्थिति के प्रति क्षोभ का भाव व्यक्त कर जन-मानस को जागृत किया। भारतेन्दु युग में हमें आर्थिक विषमता की पीड़ा से त्रस्त गरीब जनता के कारुणिक चित्र सर्वाधिक देखने को मिलते हैं। तत्कालीन सामाजिक कुप्रयासों तथा शासकीय शोषण के यथार्थवादी चित्र सर्वत्र देखने को मिलते हैं। इस काल के प्रमुख कवि बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने 'कवि वचन सुधा' के मई १८७९ के अंक में लिखा था- "बाल विवाह से हानि, जन्म पत्री मिलाने की अशास्त्रताा, बालकों की शिक्षा, अंग्रेजी फैशन से शराब की आदत, भ्रूण हत्या, फूट और बैर, बहु जातित्व और बहु भक्तित्व, जन्म भूमि से स्नेह और इसको सुधारने की आवश्यकता, स्वदेशी, हिन्दुस्तान की वस्तु, हिन्दुस्तानियों को व्यवहार करना, इसकी आवश्यकता, इसके गुण, इसके न होने से हानि का वर्णन आदि पर छोटे-छोटे सरल देश भाषा में गति और छन्दों की आवश्यकता है, जो पृथक-पृथक पुस्तिकाकार मुद्रित होकर, साधारण जनों में फैलाये जायेंगे।"[१] बाबू भारतेन्दु जी द्वारा लिखित इस उद्घोषणा से तत्कालीन कवियों, समाज के प्रति कर्तव्य निर्वहन की भावना प्रमाणित हो जाती है। चूँकि रचनाकार भी समाज का अंग होता है इसलिये वह आम लोगों से अलग ढंग की प्रतिक्रिया

१- प्रगतिवादी काव्य साहित्य, डॉ॰ कृष्णलाल हंस, पृ.सं॰ ८८

व्यक्त करता है। क्योंकि उसके पास अर्न्तदृष्टि होती है, जिसे वह व्यापक रूप में अपने काव्य द्वारा अभिव्यक्त करता है। चूँकि मनुष्य समाज का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है इसलिये यह स्वाभाविक ही है कि काव्य का प्रधान पात्र वह ही हो, कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति स्वतन्त्र रूप से दी है। भारतेन्दु युग में ब्रिटिश हुकूमत की शोषण-नीति के विरुद्ध काव्य सृजन किया गया। डॉ॰ गणपतिचन्द्र गुप्त के शब्दों में- "वस्तुतः भारतेन्दु की व्यापक राष्ट्रीयता में सभी धर्मों और सभी भाषाओं को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था।....... १८५७ के अनन्तर राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रथम प्रवर्तक नेता भारतेन्दु थे। यह देश का दुर्भाग्य था कि उनका देहान्त ३४ वर्ष की अल्प अवस्था में ही हो गया। यदि वे कुछ वर्ष और जीवित रहते तो कांग्रेस का स्वरूप कुछ और ही होता।"[१]

भारतेन्दु युग में जन-चेतना पुनर्जागरण की भावना से अनुप्राणित थी, फलस्वरूप सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक क्षेत्रों में न केवल अतिरिक्त सक्रियता थी, अपितु इन सबमें गहन अन्तः सम्बन्ध विद्यमान था। राष्ट्रीय भावना का उदय भी इस काल की महत्वपूर्ण विशेषता है। इस काल की कवियों ने सामाजिक जीवन को मुख्य आधार बनाकर नारी शिक्षा, विधवाओं की दुर्दशा, अस्पृश्यता आदि को लेकर प्रेरक कविताएं लिखीं। भारतेन्दु युग का गद्य और काव्य नवीन की आकुलता तो व्यक्त करता है किन्तु उसके परिष्कार एवं विकास की अभी बड़ी आवश्यकता थी। भारतेन्दु युग में जिन साहित्यिक रूपों और प्रवृत्तियों का बीज अंकुरित हुआ, आगे चलकर यह द्विवेदी काल में पल्लवित एवं पुष्पित हुआ।

"भारतेन्दु युग में प्रभूत यथार्थ और सामाजिक चेतना की यह धारा द्विवेदी युग में और भी अधिक समृद्ध होकर प्रवाहित हुयी है। अतीत प्रेम, वर्तमान के प्रति विक्षोभ, देश भक्ति, समाज सुधार और मानवतावादी दृष्टि का प्रसार इस युग की मूल प्रवृत्तियाँ हैं।"[२]

हम देखते हैं कि भारतेन्दु युग में अंग्रेजी शासन के प्रति जो क्षोभ और असन्तोष प्रादुर्भाव हो रहा था, उसमें द्विवेदी काल में वृद्धि हुयी। इसके अतिरिक्त इस काल में महात्मा

१- हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ॰ शिव कुमार शर्मा, पृ.सं॰ ४५५

२- प्रगतिशील हिन्दी कविता, डॉ॰ दुर्गा प्रसाद झाला, पृ.सं॰ ५६

गाँधी के नेतृत्व में इस देश में जिस राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक क्रान्ति का आविर्भाव हुआ, उसने भी इस युग के साहित्य को बहुत प्रभावित किया। इस क्रान्ति ने जन-मानस से अंग्रेजी राज्य का आतंक कम कर उसमें आत्मविश्वास और आत्म ग़ौरव की भावना जागृत की। उसे संघर्ष की ओर प्रेरित किया और उसे अपने देश की स्वतंत्रता के लिए जूझने की शक्ति प्रदान की।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', महावीर प्रसाद द्विवेदी, कामता प्रसाद गुरु, नाथूराम शंकर शर्मा, रामचरित उपाध्याय, देवीप्रसाद पूर्ण, श्रीधर पाठक तथा रामनरेश त्रिपाठी जैसे ख्यातिलब्ध द्विवेदी युगीन कवियों में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भावनाओं की यथार्थ अभिव्यक्ति विद्यमान है। इन कवियों के काव्य में युगदर्शन सच्ची संवेदना के साथ अंकित हुआ है। इन पर गाँधी जी का एकान्ततः प्रभाव था, इसलिये इनकी अभिव्यक्तियाँ यथार्थ होते हुये भी सुधारात्मक दृष्टिकोण से भरपूर हैं।

द्विवेदी युग का मूल्यांकन करते हुये डॉ॰ केसरी नारायण शुक्ल कहते हैं-

"द्विवेदी युग के कवियों ने साहित्य, जाति और देश की सेवा की और कवि के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा भी बनाये रखी। अतीत का चित्रण करते भी ये कवि वर्तमान को नहीं भूले। सांस्कृतिक रक्षा के साथ-साथ सुधार का भी ध्यान रखा और जाति का अभ्युत्थान चाहते हुये भी देशहित का गान गाया। हिन्दू होते हुये भी ये कवि भारतीयता से पूर्ण थे। इनमें जातीयता थी किन्तु साम्प्रदायिकता नहीं थी। सच्चे कवि के समान ये युग से प्रभावित भी हुये और उस पर अपनी छाप भी लगा दी और इस प्रकार काव्य को उन्नतिशील बनाया। इस प्रकार द्विवेदी युग का काव्य जहाँ एक ओर सांस्कृतिक सम्पर्क, संघर्ष और संस्कार की कथा कह रहा है, वहीं दूसरी ओर इन कवियों की सहानुभूति, सच्चाई और स्वतन्त्र तथा उदार व्यक्तित्व का संकेद दे रहा है। इसी में इन कवियों की सफलता और इन कवियों की महत्ता है।"[१]

बीसवीं शताब्दी का प्रथम चरण सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक आदर्शों का काल था। देश में उन्नीसवीं शताब्दी से धार्मिक, राजनैतिक सुधारों की शुरुआत हो गयी थी,

१- हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ॰ शिवकुमार शर्मा, पृ.सं. ४९३

उसकी छाप छायावाद पर भी पड़ना अनिवार्य था। अतः समाज की परम्पराओं को ढहते हुये खण्डहर की मरम्मत करने का प्रयास किया जाने लगा यद्यपि छायावादी कवि व्यक्तिवादी थे और छायावादी कविता अर्न्तमुखी तथा व्यक्तित्व चेतना से सम्पन्न थी। लेकिन इसे समाज-निरपेक्ष और जन-जीवन से उदासीन कविता नहीं कहा जायेगा। छायावादी कविता में भी राष्ट्रीयता, अतीत-गौरव, देश, जीवन की समस्याओं और सामाजिक विद्रोह के चित्र मिलते हैं। अपनी निजी पीड़ा से व्यथित इन भावुक कवियों के मानस को सामाजिक दुःख दैन्य ने भी आलोड़ित किया था, जिसके फलस्वरूप इन्होंने शोषित, पीड़ित मानवता के प्रति करुणा तथा सहानुभूति प्रदर्शित की। इन कवियों की कविताओं में शोषण का विरोध तथा शोषितों में भावात्मक एकता का प्रयत्न करती प्रतीत होती है।

प्रसाद, पंत, निराला जैसे कवियों में तो खासकर एवं प्रत्यक्षतः कई जगहों पर युग की वेदना अपने यथार्थ रूप में व्यक्त हुयी है। छायावादी कवि अपने काव्य के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की पुकार करता है, प्रकृति, विश्व और समाज सापेक्ष जीवन के बारे में इन कवियों ने उच्छ्वसित स्वरों में उक्तियाँ की हैं। इन कवियों ने सांस्कृतिक उत्थान तथा राष्ट्रीय जागरण सम्बन्धी कविताओं में भी सामाजिक दायित्वों का निर्वाह किया है।

प्रख्यात हिन्दी आलोचक, सुधी समीक्षक डॉ॰ नगेन्द्र ने छायावाद का मूल्यांकन इस प्रकार किया है-

"छायावादी युग ने भारतीय जीवन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, यह युग भारत के लिए आधुनिकीकरण का युग है, किन्तु यह प्रक्रिया उसकी आन्तरिक शक्ति से उद्भूत न होकर विदेशी शासन के परिणाम स्वरूप आई। विदेशी शासन ने आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को अत्यन्त जटिल बना दिया.........। इस युग के कवियों ने द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध सूक्ष्म भावनाओं की प्रतिष्ठा की, तत्कालीन रूढ़ियों और इसाई धर्म प्रचारकों के आक्षेपों के विरुद्ध अतीत भारत के प्राणवान मूल्यों की प्रतिष्ठा की, आर्थिक राजनीतिक दासता के विरुद्ध स्वाधीनता केवल राष्ट्रीय ही नहीं, मानव मात्र की स्वाधीनता के मूल्यों की प्रतिष्ठा थी।[1]

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ॰ नगेन्द्र, पृ॰ ५३३

छायावाद में जीवनी, यात्रावृत्त, संस्मरण, गद्य काव्य आदि गौण समझी जाने वाली विधाओं ने भी इस युग में नये आयाम प्राप्त किये हैं। गद्य काव्य तो सर्वथा इसी युग में अंकुरित, पल्लवित एवं पुष्पित हुआ। प्रगतिशील आन्दोलन को उपर्युक्त भारतेन्दु युगीन, द्विवेदी युगीन तथा छायावादी कविता ने पृष्ठ भूमि के रूप में आन्दोलित किया है। इन सबसे अधिक जिस विचारधारा का उस पर प्रत्यक्ष पड़ा है, वह है- मार्क्सवादी विचारधारा।

मार्क्स (१८१८-१८८३ ई॰) मूलतः एक विद्वान व जर्मन दार्शनिक था जिसने द्वन्दात्मक भौतिक वादी जीवन-दर्शन की प्रतिष्ठा की। हम देखते हैं कि मार्क्स के पूर्ववर्ती दार्शनिक केवल स्रष्टि की व्याख्या करते आये थे, लेकिन मार्क्स ने समाज की सहज-ग्राह्य वैज्ञानिक व्याख्या के साथ-साथ उसके परिवर्तन का क्रान्तिकारी कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया। मार्क्स महोदय समाज में दो वर्गों की सत्ता स्वीकार करते हैं- शोषक और शोषित। उसका सबसे बड़ा स्वप्न है - साम्यवाद की स्थापना, जो शोषित वर्ग के हाथों शोषक वर्ग के ध्वंश पर होगी। इसीलिए मार्क्स ने दुनियाँ के सभी शोषित मजदूरों को एक होकर संघर्षरत होने का आमंत्रण दिया था।

मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार साम्यवाद समाज की श्रेष्ठ व्यवस्था है और इस दर्शन में आर्थिक स्तर पर समाज में समता की प्रतिष्ठा करना इसका प्रमुख ध्येय है और इस अवस्था की ओर क्रमशः संक्रमण करने के लिए सभी प्रगतिशील ताकतों को एकजुट होना चाहिए। साम्यवाद को स्पष्ट करते हुये कहा गया है कि "कम्युनिज्म वर्ग हीन सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें उत्पादन साधनों पर एक ही प्रकार का सार्वजनिक स्वामित्व होगा। और समाज के सभी सदस्यों में पूरी सामाजिक बराबरी होगी, उसमें जनता के सर्वांगीण विकास के साथ ही साथ विज्ञान और प्रविधि में निरन्तर प्रगति के आधार पर उत्पादक शक्तियों की बढ़ती होती रहेगी सार्वजनिक सम्पत्ति के सभी स्त्रोत प्रचुरता से उमड़ते रहेंगे और प्रत्येक से उसके सामर्थ्यानुसार, प्रत्येक को आवश्यकतानुसार, वाला महान सिद्धान्त क्रियान्वित होगा। कम्युनिज्म है स्वतन्त्र, चेतनाशील, मेहनतकश लोगों को सुसंगठित समाज जिसमें सार्वजनिक स्वशासन स्थापित किया जायेगा। ऐसा समाज जिसमें समाज के भले के लिए मेहनत करना, हरेक की पहली बुनियादी जरूरत बन जायेगा, ऐसी जरूरत जिसे एक-एक

व्यक्ति समझेगा - मानेगा और प्रत्येक व्यक्ति का सामर्थ्य जनता से अधिक भले के लिए काम में लाया जायेगा।[1]

साम्यवादी विचारधारा के प्रभाव में संसार के विभिन्न भाग आन्दोलित हुये और रूस ने इसमें सफलता पाई, सन् १९१७ में लेनिन के नेतृत्व में रूस में जारादारी शासन का अन्त कर दिया, इसके बाद वहाँ सर्वहारा वर्ग का शासन स्थापित हुआ। रूस की इस क्रान्तिकारी विजय का विश्व के अनेक देशों में स्वागत हुआ। इस क्रान्ति से भारतीय जन-मानस में भी आर्थिक सामाजिक क्रान्ति के लिए एक बड़ी सीमा तक उत्कंठा जागृत हुयी। समाज में व्याप्त निराशा, पीड़ा व सर्वहारा वर्ग की दशा ठीक करनें के लिए सामाजिक चेतना जागृत हुयी और लोगों में क्रान्ति की भावना उत्पन्न हुयी। रूस की क्रान्ति का व्यापक प्रभाव भारत में भी पड़ा, डॉ॰ पट्टाभिसीतारमैय्या ने भारतीय जन-जीवन की इस बदलती हुयी मनोदशा को इन शब्दों में अंकित किया है-

"आम जनता के उत्थान की दिशा में इस विशालकाय रूस में जो लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाये थे और जो नयी समाज-व्यवस्था बनाई थी और जिससे रूस के सभी भाग समान रूप से प्रभावित थे, उसको देखकर, रूस और यूक्रेन से प्रेरणा लेकर यहाँ के लोगों में वैसा ही आन्दोलन करने, वैसा ही ढांचा बनाने और वैसी ही सार्वजनिक स्वतन्त्रता स्थापित करने की तीव्र उत्कंठा थी।[2]

वर्ग संघर्ष का यह मार्क्सवादी मन्त्र इतना कारगर साबित हुआ कि भारत में भी श्रमिकों और पूंजीपतियों के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गयी। यहाँ का प्रबुद्ध वर्ग भी इस विचारधारा से अप्रभावित न रह सका। और उसने पूँजीवादी अत्याचारों और शोषण के विरुद्ध अपना क्षोभ व्यक्त किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समूचे देश में एक जनवादी वातावरण उभरने लगा। कांग्रेस जैसी सुधारवादी संस्था भी इससे प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकी। इसलिए उसने

१- सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का संक्षिप्त इतिहास, प्रगति प्रकाशन, मास्को, पृ.सं॰ ३७८

२- प्रगतिशील हिन्दी कविता, डॉ॰ दुर्गाप्रसाद झाला, पृ.सं॰ ४४

स्वाधीनता आन्दोलन के साथ साथ आर्थिक ढांचे सामाजिक स्वरूप को परिवर्तित करने के लिए बुनियादी सवालों को उठाने लगी। सन् १९३४ में कांग्रेस के अन्तर्गत समाजवादीपार्टी की स्थापना हो गयी। जिसका लक्ष्य वास्तव में स्पष्ट रूप से समाजवाद था, सन् १९३६ में पं. जवाहरलाल नेहरू ने लखनऊ कांग्रेस के सभापति पद से एक अत्यन्त ओजस्वी और क्रान्तिकारी भाषण दिया जिसमें साम्राज्य विरोधी ताकतों तथा मध्यम वर्ग के लोगों को एक साथ लेकर किसान मजदूरों का एक संयुक्त मोर्चा बनाने के सम्बन्ध में जोर दिया। उन्होंने अपने भाषण में आन्तरिक इच्छा प्रकट करते हुये कहा कि-

"मैं तो चाहता हूँ कि कांग्रेस एक समाजवादी संगठन बन जाये और दुनियाँ की दूसरी शक्तियों के साथ जो एक नयी सभ्यता को लाने के लिए प्रयत्नशील हैं, सहयोग करे।"[१]

मूलतः साम्यवादी विचारधारा का दृष्टि बिन्दु मजदूर और उसका जीवन है। पूंजीपति अधिकाधिक लाभ के लिए श्रमिक की समस्त शक्तियों का उपयोग करना चाहता है, इसमें शोषण को जन्म मिलता है और प्रोत्साहन भी क्योंकि हम जानते हैं कि उद्योगपति उद्योगधन्धों की सफलता के लिए श्रमिकों को लोभ के जाल में फंसाते हैं, जिसके फलस्वरूप ग्रामीण वर्ग अपने पारिवारिक और समाजगत व्यवसाय को छोड़कर नगरों के कारखानों की ओर दौड़ता है, किन्तु नगर के उस अपरिचित वातावरण में उसे अकेलापन महसूस होता है। परिणामतः उसके मानसिक सन्तुलन को आघात पहुँचता है। इसके फलस्वरूप श्रमिक के चरित्र और मनोरंजन की समस्या उत्पन्न होती है। मनोरंजन के आवश्यक अवयवों, उपकरणों के अभाव में उसकी दृष्टि केवल गृहिणी तक सीमित रहती है, जिसका फल पारिवारिक वृद्धि व उसका दुष्परिणाम निर्धनता। भारत में बेतहाशा बढ़ती आबादी का मूल कारण जनसंख्याविदों ने अशिक्षा व मनोरंजन के अभाव को ही माना है।

मार्क्स की इस विचारधारा का प्रभाव केवल आर्थिक व्यवस्था पर ही नहीं बल्कि इसने विश्व के दर्शन, धर्म, कला और साहित्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया। यूरोप तथा एशिया महाद्वीपों के सभी प्रमुख देशों में साम्यवादी विचारधारा का वहन करने वाले

१- प्रगतिशील हिन्दी कविता, डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला, पृ.सं. ४५

प्रगतिवादी साहित्य की सृष्टि हुयी। जिसमें कतिपय प्रवृत्तियाँ समान रूप से परिलक्षित हुयी- धर्म, ईश्वर एवं परलोक का विरोध, शोषक वर्ग के प्रति उत्तेजना एवं उत्कृष्ट घृणा का प्रचार, शोषित वर्ग के प्रति करुणार्द, सहानुभूति तथा उसके जीवन का यथार्थ चित्रण, नारी के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण और शैली की सरलता एवं कलाडम्बर विहीनता आदि प्रमुख है। एक ओर जहाँ सामान्य जन मानस पर साम्यवादी क्रान्ति का स्वप्न (दर्शन) अपनी जड़ें मजबूत कर रहा था वहीं दूसरी ओर भारत का साहित्यकार भी स्वप्न को साकार करने के लिए अपनी लेखनी पैनी करने लगा, मार्क्सवादी चेतना क्रमशः हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने लगी। इस प्रकार छायावाद की अतिशय वायवीयता तथा चमत्कार प्रधान अतिरंजनापूर्ण चित्रण से डूबे हुये कवि और लेखक मार्क्सवादी विचारधारा से अनुप्राणित यथार्थवादी रुझान की रचनायें प्रस्तुत करने की ओर उन्मुख हुये।

इस काल के कवियों, लेखकों ने जनता से जुड़कर उनके बीच की समस्यायें साहित्य में उठाई। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रय', 'रंगभूमि' तथा 'गबन' जैसे उपन्यासों में किसान मजदूर तथा सामान्य जनता के दुःख दर्द अपने वास्तविक रूप में अभिव्यक्त किये गये। भारतीय नारी के शोषित तथा त्रसित रूप के चित्र 'निर्मला' एवं 'सेवासदन' जैसी कृतियों में उकेरे गये। इस शोषण और अत्याचार के विरुद्ध अपनें पात्रों के माध्यम से लेखक ने क्रान्ति की आवाज भी बुलन्द की।

प्रगतिशील चेतना की यह अभिव्यक्ति मात्र कथा साहित्य तक ही सीमित नहीं रही। अनेक समर्थ कवियों ने देश की दयनीय स्थिति के यथार्थ रूप को अपनी कविताओं में मुख्य विषयवस्तु के रूप में स्वीकार किया। पन्त और निराला जैसे समर्थ छायावादी मुख्य कवि भी प्रगतिशील चेतना से अप्रभावित न रह सके। पंत की 'युगवांणी' निराला जी की 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर' तथा दिनकर की 'लेनिन के दिल की चिनगारी', जैसी कविताओं को हम प्रमाण-स्वरूप प्रस्तुत कर सकते हैं। दलितों और शोषितों के प्रति सहानुभूति की भावना से प्रेरित अपनी लेखनी उठाने वाले अन्य महत्वपूर्ण कंवियों में भगवती चरण वर्मा, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' तथा त्रिशूल के नाम लिये जा सकते हैं।

इस काल के कवि जीवन जगत को अन्तर्मन से जोड़ते हुये उसको सशक्त ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। प्रमुख प्रगतिशील साहित्यकार मुंशी प्रेमचन्द ने साम्यवादी चेतना में समर्थन व्यक्त करते हुये कहते हैं-

"साम्यवाद का विरोध वही तो करता है, जो दूसरों को अपना अधीन रखना चाहता है जो अपने को भी दूसरों के बराबर समझता है, जो अपने में कोई सुर्खाब का पर लगा हुआ नहीं देखता, जो समदर्शी है, उसे साम्यवादी विचारधारा से विरोध क्यों होने लगा।"[१]

हंस, आजकल, प्रगतिपत्र, जागरण आदि पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भी साम्यवादी विचारधारा को फलने-फूलने का मौका मिला। प्रगतिवादी साहित्यकार जीवन मूल्यों को खासा महत्व देते हैं। किसान मजदूर और सर्वहारा वर्ग की अवसाद ग्रस्त स्थिति को उबारने के लिए इन कवियों ने उनमें चेतना व क्रान्ति का भाव भरा है। जीवन से संघर्ष करने व जीवटता का भाव इन कवियों ने अपने काव्य में कूट-कूट कर भरा है।

कवियों का ध्यान "उस विस्तृत लोक जीवन की ओर आकृष्ट हुआ, जहाँ अशिक्षा, दैन्य, अन्धकार, शोषण तथा दासता का निकृष्टतम रूप मिलता है और हमारी मानवीय भावना को कठोर आघात पहुँचता है।"[२]

हिन्दी साहित्य में विभिन्न कालों का गहरा प्रभाव पड़ा है।

डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान ने अपने वक्तव्य में स्पष्ट किया है-

"छायावाद की काल्पनिक उड़ाने शान्त होने लगीं और एक ठोस सामाजिक धरातल पर कविता अपनी पोषण सामग्री तलाशने लगी।"[३]

इस प्रकार इस साहित्यिक परिस्थितियों से कवि केदार खासे प्रभावित हुये। इन परिस्थितियों की स्पष्ट झलक उनके साहित्य में दिखाई देती हैं। उपरोक्त सामाजिक वातावरण से मिलकर ही कवि केदार का काव्य सृजन प्रारम्भ हुआ है। जिसमें गति, ऊर्जा व चेतना का संचार हुआ है। जीवन जगत को नयी दिशा प्रदान करने में इनका साहित्य समर्थ सिद्ध हुआ

१- जागरण पत्र (सम्पादकीय) २८ जनवरी १९३४, मुंशी प्रेमचन्द

२- कला और संस्कृति, सुमित्रानन्दन पन्त, पृ.सं. १६

३- हिन्दी की हास्य-व्यंग विधा का स्वरूप और विकास, डॉ॰ इन्दुनाथ मदान, पृ.सं. ४

है।

४- हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद पूर्व प्रगतिशील प्रवृत्तियाँ-

हिन्दी के सुधी विद्वानों व आलोचकों के मध्य साहित्य की उपयोगिता या उद्देश्य को लेकर बहुत प्राचीन काल से ही विचार विमर्श होता रहा है, साहित्य ललित कलाओं में से एक है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि साहित्य की विधाओं में से कविता सबसे प्राचीन है, वह मनुष्य की प्रारंभिकतम ललित क्रियाओं में से एक है, लेकिन आदिम युगों में वह आज की तरह अपने विशुद्ध पृथक्कृतरूप में नहीं होती थी। उस समय तो वह मनुष्य के सम्पूर्ण अनुभवों, उसके सारे ज्ञान का, वाहक थी।

"सारा प्राचीन वाङ्मय कविता के रूप में ही प्राप्त होता है। सभी युगों के सभी मानवों की यह एक सामान्य प्रवृत्ति रही है कि वे अपनी महत्वपूर्ण बातों को, चाहे तो किसी किसान के वास्तविक अनुभव हो या जादुई मूलमंत्र, एक उच्चतर और अधिक स्मरणीय भाषा में सुरक्षित रखने का प्रयत्न करते हैं।"[१]

इस प्रकार सामान्यवाणी का यही उच्चतर और रमणीय रूप उस समय कविता था। भाषा-वैज्ञानिकों ने भी माना है कि साहित्य में गद्य के पहले काव्य आया है, कविता की उत्पत्ति कैसे हुयी यह जानने के लिए अलग-अलग मानव समूहों की आदिम कविता अध्ययन लाभदायक सिद्ध होगा, आदिम कविता (Premative Poem) आज की तरह लिपि बद्ध नहीं होती थी, वह वास्तव में आदिम समूहों की वाणी का ही एक विशिष्ट रूप थी, मनुष्य अपने मुक्त हाथ व वाणी होने से अन्य पशुओं से भिन्न हैं।

"मुक्त हाथ के बाद जिस चीज ने मानवीय संस्कृति के विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान दिया, वह है उसकी वाणी। वाणी के विकास ने श्रवणशक्ति को विकसित किया और दोनों ने मिलकर चिन्तन शक्ति को, मानव मस्तिष्क का।"[२]

आदिम मनुष्य के जीवन में श्रम, जादू, धर्म और कलायें एक दूसरे से गुंथे हुये प्रतीत होते हैं। इसीलिये उसकी कविता गायन के रूप में ही प्रकट होती थी और गायन हमेशा

१- इल्यूजन एण्ड रियलिटी, क्रिस्टोफर कॉडबेल, पृ.सं. १२

२- इल्यूजन एण्ड रियलिटी, विजय दान देथा, पृ.सं. १२

शारीरिक चेष्टाओं के साथ होता था, कविता लोगों के संवेगों को, संसार के प्रति उनके दृष्टिकोण को, परिवेश के साथ उनके सम्बन्धों को प्रभावित करती है कविता यथार्थ रूप में मनुष्य की सामाजिक चेतना का ही विशिष्ट रूप है यह वास्तविकता के सजीव व मार्मिक बोध का एक साधन है।

हिन्दी काव्य में प्रगतिशीलता का तत्व बहुत आरम्भ से ही मिलता है, कविता शब्दों की कला है। वैसे तो साहित्य की अन्य विधायें भी शब्दों की कलायें हैं लेकिन कविता में शब्दां का स्वयं जितना महत्व है उतना साहित्य की अन्य विधाओं में नहीं। यही कारण है कि साहित्य की अन्य विधाओं का एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद किया जा सकता है, पर कविता का सच्चा अनुवाद सम्भव नहीं है। उसके अर्थ की गरिमा, उसके छन्द अलंकार आदि का सौन्दर्य तो अनुवाद में लाया जा सकता है लेकिन उसके शब्दों के साथ जुड़े हुये रागात्मक संसर्ग दूसरी भाषा के दूसरे शब्दों से कैसे जुड़ सकते हैं? कविता में हर शब्द का अपना एक व्यक्तित्व होता है उन्हें सिक्कों की तरह नहीं चलाया जा सकता है। कविता वास्तव में मानव जगत की संजीवनी है।

मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ उसके जीवन में व्याप्त कुंठाओं, पीड़ाओं व समस्याओं को साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया गया। चूंकि सुख-दुख दर्द, शोषण सदियों से रहा है इसलिये वह भिन्न भिन्न रूपों में व्यक्त होता रहा है और "जिस वर्ग में कलाकार जन्म लेता है, उसके दृष्टिकोण के अनुसार उसकी एक विचारधारा जन्म से ही बन जाती है, यदि उसका पालन पोषण भी उसी वर्ग में हुआ तो वह माँ के दूध के साथ ग्रहण किये हुये अपने उस दृष्टिकोण से पूरी तरह संतुष्ट रहेगा और उसे अपनी कृतियों में भी अभिव्यक्त देगा। लेकिन विशेष परिस्थितियों में ऐसा हो सकता है कि वह अपने वर्ग हितों के विरोध में उठ खड़ा हो। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि कलाकार के रूप में अपनी ईमानदारी और सच्चाई को बनाये रखने के लिए अपने वर्ग हितों का विरोध करना उसके लिए अनिवार्य हो उठे।"[१]

एक सजग साहित्यकार अपना निजी दृष्टिकोण अवश्य रखता है जिसे वह अपने

१- मार्क्सिज्म एण्ड मार्डन आर्ट, पृ.सं. ३५

कृतित्व में सार्थक स्वर देता है और अपना एक विशिष्ट विकास करता है।

"मनुष्य के विचार उसकी सामाजिक स्थिति को प्रतिबिम्बित करते हैं, इसलिये वर्गों के भिन्न दृष्टिकोण, उनकी भिन्न विचारधारायें होती हैं। किन्तु मानव चेतना में यह क्षमता है कि वह इस सामाजिक स्थिति से ऊपर उठ सके, चिंतन की भौतिक सीमाओं से ऊपर उठकर अपेक्षाकृत स्वतंत्र स्तर पर विकसित हो सके। सम्पत्तिशाली वर्गों में उत्पन्न होने वाले, किन्तु सम्पत्तिहीन श्रमिक वर्ग की मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाले मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन का जीवन मानव चेतना की इस क्षमता को सिद्ध करता है।"[१]

मेरी दृष्टि में अगर यह आशा की जाय कि हर साहित्यकार मार्क्सवादी जीवन दर्शन को ही स्वीकार करे या करता रहा हो तो यह उचित नहीं होगा क्योंकि मार्क्स और मार्क्सवाद के जन्म के हजारों वर्ष पहले भी जीवन्त साहित्य रचा जा चुका था, और वह आज भी जीवित है। क्योंकि वह जीवन से दूर नहीं भागा था।

"जिस साहित्य ने जिन्दगी से आँखें चार की हैं, चाहे उसने जिस ढंग से ऐसा किया हो, वही साहित्य जीवित रह सकता है। पहली बात तो यह नहीं है कि कोई साहित्यकार किस जीवन दर्शन का अनुयाई है। पहली बात तो यह है कि वह जीवन के प्रति, अपने समय के यथार्थ के प्रति सच्चा है या नहीं और कि जीवन के प्रति उसका कोई मानववादी, बहुजन के लिए कल्याणकारी दृष्टिकोण है या नहीं।"[२]

वास्तव में साहित्य एक ऐसा महत्वपूर्ण साधन है जिसके द्वारा हमें एक प्रकार की 'शरीर शास्त्रीय अर्न्तमुखता' प्राप्त करके उसे सामान्य मानस या 'लोक हृदय' में प्रवेश करते हैं, जहाँ हम अपने सहवासी मनुष्यों के साथ गहरे रागात्मक सम्पर्क में बंध जाते हैं।

वास्तव में हिन्दी कविता में आदिकाल से ही प्रगतिशील तत्व मिलते हैं, हिन्दी के सुधी समीक्षकों, आलोच्यकर्ताओं ने हिन्दी काव्य में प्रगतिवादी का समय सन् १९३६ से माना है, अतः इसके पूर्व के काव्य का अनुशीलन करना समीचीन होगा। जिससे प्रगतिशील प्रवृत्तियों का सम्यक विवेचन हो सके, आदिकाल की परिस्थितियाँ अत्यन्त विषम तथा

१- आस्था और सौंदर्य, डॉ॰ रामविलास शर्मा, पृ.सं॰ ३१

२- आलोचना का मार्क्सवादी आधार, नयी समीक्षा, अमृतराय, पृ.सं॰ २६

असन्तुलित थीं, जन मानस पर गहरा असन्तोष, क्षोभ तथा भ्रम छाया हुआ था, निश्चित रूप से तत्कालीन कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से जनमानस की कुहासा छाँटी भक्तिकाल में वैसे तो निर्गुण व सगुण भक्ति, धर्म, ईश्वर आदि प्रधान हैं, तथापि कबीर जैसे समाजसुधारक कवि में प्रगतिशील प्रवृत्तियाँ कूट-कूट कर भरी हैं। समाज में व्याप्त छुआ-छूत की भावना पर कबीर ने गहरी चोट दी है-

"जाति पाँति पूछे नहि कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।"

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर जाति प्रथा और वर्ग-भेद के प्रबल विरोधी है क्योंकि वे इसे सामाजिक एकता में बाधक मानते हैं। विद्वानों ने उन्हें हिन्दू-मुस्लिम एकता का दूत भी कहा है वह इसलिए कि इन्होंने दोनों के मध्य की खाई को पाटने का सार्थक प्रयास किया है। छोटे-बड़े, ऊंच-नीच के भेद का इन्हेंाने मुखर होकर विरोध किया है, सामाजिक एकजुटता के लिए उन्होंने पूरा जीवन समर्पित कर दिया।

"हिन्दू कहय मोहि राम पियारा, मुसलमान रहमाना।

दोऊ आपस में लड़ि मुये, मरम न काहू जाना।।

तत्कालीन कवियों ने दुःखी जनता का चित्रण करते हुये अन्न की कमी से महामारी का चित्रण किया।

कलि बारहि बार दुकाल परै, बिनु अन्न दुःखी सब लोग मरै।

हिन्दी काव्य में प्रगतिशीलता के तत्व आरम्भ से विद्यमान रहे हैं, यह कही वर्ग-भेद, जातिवाद, गरीबी, भुखमरी व रूप में तो कही सामाजिक विषमता, आर्थिक विषमता व जीवन-वैषम्य के रूप में। कबीर के बाद तुलसी ने भी रामचरित मानस महाकाव्य के माध्यम से प्रगतिशीलता के तत्व को सम्प्रेषित किया है। प्रख्यात विद्वान समीक्षक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी तो तुलसीदास को लोक समन्वयक मानते हैं। वास्तव में इनके सम्पूर्ण काव्य में उत्कृष्ट प्रगतिशील विचारों की पुष्टि होती है। पुर्तगाली वारवांसा (१५००-१५१६) के अनुसार- 'जहाँ उमरा और बादशाह महलों में निवास करते थे, वहाँ कुछ लोग गलियों में निर्मित मकानों में रहते थे, जिनके सामने थोड़ी खुली जगह भी रहती थी। शेष जनता के भाग्य में झोपड़ियों में रहना बदा था।' इसी प्रकार के विचार मुगलों के शासन काल के विषय

में पेलसपार्ट लिखते है।

'उस समय समाज के भीतर तीन ऐसे वर्ग- श्रमिक, नौकर और दुकानदार थे जिन्हें न तो कोई स्वेच्छापूर्वक कार्य करनें का अवकाश था, न यथेष्ट पारिश्रमिक ही मिलता था। दुकानदारों को अपनी चीजें छिपाकर रखनी पड़ती थी कि कहीं क्रूर कर्मचारियों की दृष्टि न पड़ जाये।'

तत्कालीन साधु-समाज पर भी पाखण्ड की काली छाया मंडराने लगी थी इसी स्थिति को सन्त तुलसी ने 'कवितावली' में लिखा है-

'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख भली,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस
कहैं एक एकन सो कहाँ जाई, का करी।।

तुलसीदास ने अपने काव्य में युग के सभी विरोधी तत्वों का परिहार करते हुये एवं समाज के विकृत रूप का परिष्कार करते हुये धर्म, दर्शन, साहित्य और समाज में समन्वय की भावना को मूल रूप दिया है। सभी मतावलम्बियों से निवेदन करते हुये वे कहते हैं-

'सिया राम-मय सब जग जानी, करऊँ प्रणाम जोरि जुग पानी।'

लोक कल्याण में उनकी आस्था उनके उदार मानवतावाद का परिचायक है 'रामचरित मानस एक ऐसा प्रगतिशील काव्य है जिसमें सामाजिक अत्याचार,दुर्व्यवस्था, अधोमुख समाज का नग्न चित्र, रूढ़ियों पर प्रहार कर समता, समानता व विश्व बन्धुता के बीज बोने में समर्थ सिद्ध हुया।

उनका साहित्य 'स्वान्तः सुखाय' होते हुये भी 'सर्व हिताय' सिद्ध हुआ है उनके अन्तः संघर्ष में लोक-संघर्ष और उनकी भक्ति में लोक संग्रह सन्निहित है। उनकी प्रगतिशील चेतना इससे समझी जा सकती है कि रावणत्व पर रामत्व की विजय की जो कल्पना इन्हेंाने की है उसके मूल में तत्कालीन भारत की राजनीतिक दुरावस्था थी, यह वह आलोक था जिसने गांधी जी का पथ प्रशस्त किया। तुलसीदास कोरे बैरागी बाबा नहीं हैं, वे अपने संमाज का मुख, वाणी और मस्तिष्क हैं। इन्होने समाज के प्रति अपनी आंखे खुली रखी है, इनके

साहित्य विशेष रूप से रामचरित मानस में तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, और राजनैतिक घात-प्रतिघात सजीव हो उठे हैं। तुलसी का नायक राजा होते हुये सच्चा प्रगतिशील मानव है-

" जो अनीति कुछ भाखों भाई, तौ मोहि बरजेऊ भय बिसराई"

शासक होते हुये भी एक ऐसा नायक जो कोई अनुचित कार्य करता नहीं है अगर वह भूल से अनुचित बात भी करे तो प्रजा का अधिकार प्रदत्त है कि उसे वह मना करें, और अपना विरोध व्यक्त करें। तुलसीदास जी के काव्य में प्रगतिशील तत्वों की अद्‌भुत छटा है। सामाजिक विन्यास व एक जुटता ये दो प्रधान तत्व है जिसने रावण जैसे शक्तिशाली राजा को पराजित किया, बन्दर व भालू तथा छोटी जातियों का संगठन, जिसने राम को महानायक बनाया ये सारे विन्यास प्रगतिशील मूल्यों के ही द्योतक है। तुलसी के राम राज्य में वैषम्य लेश मात्र भी नहीं हैं। अगर कुछ है तो 'लोक मंगल की भावना' व 'विश्व बन्धुत्व का संदेश'।

बयरू न काहू संग कोई, राम प्रताप विषमता खोई

सब नर करहिं परस्पर प्रीती, चलहिं स्वधर्म वेद, श्रुति नीती[१]

आगे चलकर रीति काल में कवियों का मन आमतौर पर श्रंगार में ही रमा है तथापि इस काल (युग) में भी प्रगति शील परम्परायें यत्र-तत्र मिलती है। श्रंगार के अलावा नीतिपरक एवं सामाजिक काव्य भी इस काल में मिलता है। रीतिकाल के श्रेष्ठ कवि बिहारी ने जयपुर नरेश राजा जयसिंह को प्रेरित करने के उद्देश्य से एक दोहा लिखा जिसे राजा मोह छोड़कर राज-काज में संलग्न हो गये।

नहि पराग नहि मधुर-मधु, नहिं विकास इहि काल।

अली-कली हीं सो विंध्यो, आगे कौन हवाल।।[२]

इसके पश्चात मुख्यतयाः प्रगति वाद के आविर्भाव से पूर्व की साहित्यिक स्थिति जानने के लिये भारतेन्द्र काल से ही विचार बोध आवश्यक है, वस्तुतः हिन्दी साहित्य का

१- राम चरित मानस, उत्तर काण्ड, तुलसीदास, पृ० ५४९

२- बिहारी सतसई, बिहारीलाल, दोहा १७

आधुनिक काल बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साथ ही आरम्भ होता है। हिन्दी कविता में आधुनिक काल के पूर्व से ही प्रगतिशील चेतना दिखाई देने लगती है किन्तु वह मुखरित व सशक्तस्वर में भारतेन्दु युग में ही परिलक्षित होती है। इन्होने अपने काव्य में अंग्रेजी हकूमत द्वारा जनता पर लगाये जाने वाले नाजायज कर का विरोध किया है।

'सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।

हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई!![1]

भारतेन्दु युगीन कवि श्री बालमुकुन्द गुप्त भारत की आर्थिक दुर्दशा के प्रति क्षोभ व चिन्ता व्यक्त करते हुये कहते है-

'मन हौ गयो बिलाय, कछु रहयो न बाकी।

उदर हेत हम बैच चुके, मां, चूल्हे, चाकी।।[2]

गुलामी की जंजीरो को तोडने के लिये इनके काव्य में सशक्त स्वर सुनाई देते हैं। विदेशी वस्तु वहिष्कार, और स्वदेशी के समर्थन में अपना स्वर मिलाते हुये कहते हैं-

"अपना बोया आप ही खावें अपना कपड़ा आप बनावें।

माल विदेशी दूर भगावें अपना चरखा आप चलावें।

बढे सदा अपना व्यापार चारों दिस हो मौज-बहार।"[3]

वास्तव में भारतेन्दु युग का साहित्य सामाजिक सन्दर्भो का साहित्य है और यह काव्य विलास के आचरण से दूर है, विदेशी सरकार के अत्याचारों एवं हर प्रकार के शोषण के विरुद्ध यह सशक्त भर्त्सना करता है-

'तबहि लख्यो जहं रहयो एक दिन कंचत बरसत।

तह चौथाई जन रुखी रोटिहुं को तरसत।।

जहं आमन की गुठली, अरु विरछन की छालैं।

ज्वारचून मंह मलि लोग परिवारहिं पालै।।

१- भारत दुर्दशा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ.सं. ५३

२- जन-मन का गौरव, बाल मुकुन्द गुप्त, पृ.सं. १७

३- वही पृ.सं. ३७

नौन तेल लकरी घासहुँ पर टिक्स लगे जहं।

चना चिरौंजी मोल मिलै जहं दीन प्रजा कहं।।[1]

कवि समाज का ही प्रतिनिधि है उसका अंश है इसलिये वह समाज में फैली कुरीतियों अपसंस्कृति का विरोधी है, इसके लिये वह चुटीले व्यंग्य का सहारा लेता है। मद्यपान के विषय में व्यंग्योक्ति सार्थक जन पड़ी है।

मुंह जब लागै तब नहिं छूटै, जाति मान धन सब कुछ लटैं।

पागल करि मोहिं करय खराब, क्यों सखि सज्जन नही सराब।।[2]

भारतेन्दु युगीन कवियों का यथार्थवादी चित्रण प्रगतिशीलता का भाव प्रमुखता से लिये हुये है तत्कालीन कृषक वर्ग का यथार्थवादी चित्रण दृष्टव्य है।

दीन कृषक जवन औरहु दया-योग दरसावही,

जिनके तन पर स्वच्छ वस्त्र कहूं लखियत नाहीं।

मिहनत करत अधिक पर, अन्न बहुत कम पावत,

जो निज भुजबल हल चलाय, कै जगत जियावत।[3]

इस प्रकार शोषितों को एकता का सन्देश देकर भारतेन्दु युगीनकवि हिन्दी काव्य में प्रगतिशील भावों को ही पोषित कर रहे थे, वे पुरानी रूढ़ियों व अन्य विश्वास के कड़े आलोचक थे। रचनाओं में सुधारवादी दृष्टिकोण प्रखरता से उभरकर सामने आता है, जो कि इस युग की एक प्रमुख विशेषता भी रही है।

हम स्पष्टतया देखतें है कि भारतेन्दु-काल के काव्य की समाज सापेक्षता द्विवेदी काल में भी अक्षुण्ण बनी रही, इन कवियों ने भी शोषण अत्याचार और तत्कालीन सामाजिक विद्रूपताओं को अपने काव्य के माध्यम से व्यक्त किया है। कवियों ने गांवो के किसान-मजदूरों और वहां के सामाजिक परिवेश को अपना काव्य विषय बनाया तथा

१- तब और अब, काव्य संग्रह, प्रताप नारायण मिश्र

२- नये जमाने की मुकरी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

३- प्रेमधन, बद्रीनारायण चौधरी, पृ.सं. १९

आत्मगौरव 'और राष्ट्रीय संस्कृति के प्रति प्रेम' को पर्याप्त स्थान दिया है।

"मानस-सदन में आर्यजन, जिसकी उतारें आरती।

भगवान भारत वर्ष में, गूंजे हमारी भारती।।"[1]

सामाजिक समरसता को बढ़ाने हेतु राष्ट्रीय भावना का शेष महत्व हैं। राष्ट्राभिमान की उदात्त भावना का गौरवपूर्ण चित्र प्रस्तुत है।

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।

वह नर नहीं, नर-पशु निरा है, और मृतक समान है।।

द्विवेदी युग के प्रमुख कवि श्री मैथिली शरण गुप्त ने पूंजीपतियों व हुकूमत की खुशामद को अपने जीवन का ध्येय मानने वालों पर-करारा व्यंग्य किया है-

" भरते हैं निज पेट, अन्य के घर को भर के,

घर पर है, पर बने हुये हम, पर के घर के।

जाति हमारी दुःखी न हो, यदि हाथ पसारे,

पक्षपात का पड़क लगे तो माथ हमारे।[2]

सामाजिक उत्थान की दृष्टि से इस युग के काव्य का विशिष्ट महत्व है। उनके काव्य में प्रगतिवादी स्वर सुनाये पडते है। इस काल के कवियों की रचनाओं में सामाजिक उत्थान की ललक, देशाभिमान, करुणा के स्वर स्पष्टतया सुनाई पड़ते है। आचार्य द्विवेदी जी ने भी हिन्दू-समाज में प्रचलित दहेज-प्रथा पर तीखा व्यंग्य अपनी 'ठहरोनी' रचना में करते हुये कहते है।

बे ब्याही चाहे मर जावे, चाहे करै वंश बढनाम,

मर जावे परवाह नहीं है, हमें सिर्फ रुपये से काम।

पांच का न व्यवहार हमारा, लेंगे हम तो एक हजार

चारु चमक वाले चांदी के, वही अखण्ड मण्डलाकार।[3]

१- भारत भारती, मैथिलीशरण गुप्त

२- वही

३- सरस्वती पत्रिका, जनवरी १९१८, पृ.सं. ४१

इसी प्रकार महाकवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी ने अपनी सुप्रसिद्ध काव्य-कृति 'प्रिय-प्रवास' में चुभते व्यंग्य किये है, वे बेजोड़ (बेमेल) विवाह पर कहते है-

"जो कली है खिल रही उसके लिये,
वर पके भूखे फलों जैसा न हो।
दो दिलों में जाय जिससे गांठ पड़
भूल गंठजोडा कभी ऐसा न हो"[1]

तत्कालीन कवियों ने अपनी समर्थ लेखनी द्वारा समाज के सभी पक्षों पर पैनी दृष्टि डाली है-

"विदुषी उपजै क्षमता न तजै, व्रतधार भजे सुकृतीवर को।
सधवा सुधरे, विधवा उबरै, सकलंक करै न किसी घर को।।
दुहिता न बिकै, कुटनी न टिकै, कुलबोर छकै तरसै दर को।
दिन फेर पिता, बर दे सविता, कर दे कविता कवि शंकर को।।"[2]

कवि गुलामी की कालिख मिटाना चाहता है और इसके लिये वह समूचे देश से आह्वान करता है, समाज में क्रान्ति का बीज बोना चाहता है-

"ऐ अहले हिन्द अब तो उठो, खूब सो चुके।
कर प्यारा तनुज्जुल, तरक्की को खो चुके।
'शंकर' जला दो जल्द गुलामी के जाल को,
राहत रही न, तुख्म मुसीबत को बो चुके।"[3]

इस काल की कविता में वर्तमान की दयनीयता पर करुणा प्रकट की गई है और उसे अतीत के सहारे समुन्नत करने की सफल चेष्टा की गयी है। चूँकि इस युग में अभिव्यक्ति जातीय- प्रेम, किसी अन्यवर्ग, सम्प्रदाय के प्रति विद्वेषपूर्ण नहीं हैं। अतः इसमें समूचा भारत प्रतिबिंबित हो उठा- 'हिन्दू मुस्लिम, सिक्ख, इसाई, सब आपस में भाई-भाई' मानवतावाद

१- प्रिय प्रवास, अयोध्या प्रसाद सिंह 'हरिऔध'

२- गर्भरण्डा रहस्य, नाथूराम शर्मा 'शंकर'

३- शंकर सर्वस्व, नाथूराम शर्मा 'शंकर' पृ.सं. २३

के आदर्श के कारण कविता में पीड़ित, शोषित, दुर्बल और दलित के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की गयी है। उसे दुखियों के आँसुओं और करुण विलाप में ईश्वर प्राप्ति सम्भव प्रतीत होने लगी। इस प्रकार कवि का ईश्वर-प्रेम, मानव-प्रेम तथा विश्व प्रेम में बदल गया है।-

जग की सेवा करना ही बस है, सब सारों का सार।

विश्व-प्रेम के बन्धन में ही, मुझको मिला मुक्ति का द्वार।।[१]

इस काल के कवियों ने अछूतों द्वार, सामजिक कुरीतियों, शोषण के प्रति व्यंग्यात्मक कवितायें भी लिखी है। नाथूराम शंकर, मैथिलीशरण गुप्त, ठाकुर गोपाल शरण सिंह, पं. राम नरेश त्रिपाठी, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि ने भारतीय किसान तथा समाज के पिछड़े हुये अन्य वर्गों पर सशक्त विचार दिये।

किया जिन्होंने स्वर्ण भूमि को, कौड़ी का मोहताज,

किया पददलित हाय! हमारा देव-समर्पित ताज।[२]

श्री माधव शुक्ल को भी प्रगतिशील तत्वों का कवि माना जाता है, इन्होंने 'भारत-गीतांजली' 'स्वराज्य-गायन' और 'राष्ट्रीय तरंग' जैसी सशक्त रचनायें लिखी हैं। श्री सत्यनारायण 'कविरत्न' की 'वन्दौ भारत भूमि महतारी' इस काल की प्रसिद्ध रचना है जिसमें देश-स्थिति का यथार्थवादी चित्र उपस्थित किया है-

वन्दो भारत भूमि महतारी।

शेष अस्थि पंजर बस केवल, भययुत चकित बिचारी।

रोग, अकाल, दुकाल सताई, जीरण टेह दुखारी।।

धूलि-धूसरित जाकी झलकै अलकै स्वेत उघारी।

अंचल फटे, लटे तन ठाड़ी-बुधि सकल बिसारी।।

तीस कोटि सुत अछत दुःखी यह, कैसी गति संचारी।

जात लाज ब्रजराज, राखिये, याकौ कृष्ण मुरारी।।

१- युग-धर्म, ठाकुर गोपाल शरण सिंह, पृ.सं. १२

२- मिलन, खण्ड काव्य, सर्ग-१, पं. रामनरेश त्रिपाठीख पृ.सं. १२

तत्कालीन कवियों ने पराधीनता को सबसे बड़ा अभिशाप बताया तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये क्रान्ति एवं आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा दी और इन्होंने देशभक्ति पूर्ण कवितओं का प्रणयन किया।

देश भक्त वीरों, मरने से नेक नहीं डरना होगा।

प्राणों का बलिदान, देश की वेदी पर करना होगा।।[१]

देश की हीन दशा, धैर्य, गाम्भीर्य, शौर्य तथा कला कौशल के अभाव पर भी इन कवियों ने क्षोभ व्यक्त किया है-

वह धीरता कहाँ है, गम्भीरता कहाँ है?

वह वीरता हमारी है वह कहाँ बड़ाई?

क्या हो गयी कलायें कौशल सभी हमारे?

किसने शताब्दियाँ की ली छीन सब कमाई?[२]

देश की आर्थिक विपन्नता, सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ प्रथाओं तथा धार्मिक आडम्बरों का इन कवियों ने स्पष्ट रूप से प्रत्याख्यान किया है। मानव-मात्र के सुख-दुख और परिस्थितियों का वर्णन काव्य में बड़े ही सहज भाव से किया जाने लगा। महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की कविता 'सरगौ नरक ठेकाना नाहिं' में एक निम्न वर्ग का आदमी पात्र बना है। जहाँ कल्लू अल्हैत काव्य का विषय बना।

"भैंसि भवानी कै तब सेवा, लागै करन पढ़व गा छूटि।

बदुवन दूध दुहा इन हाथन, धार न कबहूँ दुहत माँ टूटि।।

मोटरिन कटिया भथुरा सानी कीन्ह रोज हम बाँह चढ़ाय।

मस्त भयन तब आल्हा गावा, ऊपर दुहत्था हाथु उठाय।।३

दीन-हीन कृषक तथा विधवा के दुखों का भी बड़ा कारुणिक वर्णन आलोच्य काल के कवियों ने किया है। गुप्त जी की 'किसान' (१९१७) सियारामशण जी की 'अनाथ'

१- बलिदान गान, शंकर सर्वस्व, नाथूराम शर्मा 'शंकर'

२- पुरातन गाथा, ठाकुर गोपाल शरण सिंह

३- अल्हैत काव्य, महावीर प्रसाद द्विवेदी

(१९१७) तथा सनेही जी की 'कृषक कृन्दन' कृषक-जीवन सम्बन्धी. प्रभावी रचनायें हैं। वस्तुतः मानव सुलभ सहानुभूति ही इस प्रकार की कविताओं की प्रेरक भावना है जिससे प्रेरित होकर 'हरिऔध' जी ने उच्चतर जातियों द्वारा निम्न जातियों के प्रति किये गये अन्याय व दुर्व्यवहार का उल्लेख किया है।

"आप आंखे खोलकर के देखिये,

आज जितनी जातियाँ है सिर-धरी।

पेट में उनके पड़ी दिखलायेगी।

जातियां कितनी सिसकती या मरी।।

समीक्षक प्रवर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने आरम्भ में कुछ काव्य-रचनायें भी की थीं, प्रस्तुत वसन्त कविता में देश की स्थिति की ओर संकेत करते हुये 'कदम्ब' और 'सरोज' के प्रति व्यंग्य दृष्टव्य है-

कविं सिर उच्च कदम्ब, रहयो तू व्यर्थ निहारी,

नहीं गोपिका-कृष्ण कहीं तुम छाँह निहारी।

रे-रे निलज सरोज, अजहुं विकसत लखि भानहिं

देश-दुर्दशा-जनित दुःख, चित नेकु न आनहिं।[१]

द्विवेदी-युग के कवियों ने, पूंजीवादी शोषण के सूक्ष्म तरीकों को भी देखा है, इस समाज में एक ओर कठोर परिश्रम करने के बावजूद किसान और मजदूर दुर्भिक्ष के शिकार होते हैं और दूसरी और तोंद बढ़ाता हुआ धनिक वर्ग हैं। बीच में एक वर्ग के रूप में सरकारी कर्मचारी भी है जो गरीबों का खून चूसने में धनिकों की सहायता करते हैं।

ये कंवि देश भावना से परिपूर्ण थे और मानव जीवन में इसकी महत्ता सिद्ध की गयी, कविवर रामनरेश त्रिपाठी जी ने देश-प्रेम को महान गौरवशाली बतलाया-

सच्चा प्रेम वही है जिसकी,

तृप्ति आत्म-बलि पर हो निर्भर।

त्याग, बिना निष्प्राण प्रेम है,

१- सरस्वती भाग ५, सं. ३, पृ.सं. ८२

करो प्रेम पर प्राण न्योछावर।।

देश प्रेम वह पुण्य क्षेत्र है,

अमल असीम त्याग से विलसित।

आत्मा के विकास से जिसमें,

मनुष्यता होती है विकसित।।

इसी प्रकार इस काल के कवि श्री शिव कुमार त्रिपाठी की ये पंक्तियां भी देशानुराग की दृष्टि से दर्शनीय है, जिसमें वे भगवान से देश का दारिद्‌य दूर कराने का अनुरोध करते हैं-

"भव-भय भ्रम के तुम भेदक हो, कलि-कल्पष के काल।

फिर क्यों भारत की निर्धनता, अब तक सके न टाल?

दैन्य दशा से दुःखी देश का, झुका हुआ है भाल।

दया-दृष्टि से फिर क्यों इसको, करते नहीं निहाल?[१]

द्विवेदी काल में सुधारवादी आन्दोलन के कारण शिक्षितों का ध्यान 'स्त्री शिक्षा' की ओर भी आकर्षित होता जा रहा था। इस काल की एक कवयित्री पार्वतीदेवी पुरुषों से नारी-समाज को शिक्षित करने की ओर ध्यान देनें का अनुरोध करती है-

"पार्वती कहती कर जोर,

इस पर करो पुरुष सब गौर।

बिन नारी-शिक्षा विस्तार,

देश का न होगा उद्धार।[२]

इन कवियों ने प्रमुखतया शोषण, अस्पर्श्यता, बेकारी, दास प्रथा, आदि पर गहरी चोट की है क्योंकि कवियों ने जान लिया था कि अत्याचारी शासन ही अधिकांश बुराइयों की जड़ है, 'पथिक' काव्य में वे स्पष्ट करते हैं कि कुशासन जनता को असहाय और अकेला बना देता है-

---

१- सरस्वती भाग-५, सं. ३, पृ.सं. ८२

२- सरस्वती मई १९१९, आर्तनाद कविता

"शासक दल असहाय प्रजा को घोर कष्ट देता है।
रक्षक से भक्षक बनके, सर्वस्व वही हर लेता है।
अटल दीनता का चंगुल साथी है कौन ? किधर है ?
हरदम सिर पर मौत खडी है, ओठों पर ईश्वर है।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदी युग के कवियों में भी भारतेन्दु युग के समान ही काव्य में प्रगतिशील प्रवत्तियां पाई जाती है। आगे चलकर छायावाद (१९१६-१९३६) में भी ये प्रवत्तियां और विस्तृत रूप में मिलती है। यद्यपि ये भी सत्य है कि इन कवियों में वैयक्तिकता की प्रधानता थी किन्तु उन्हें सामाजिकता से रिक्त और जन-जीवन से दूर नहीं कहा जा सकता है।

बीसवीं शताब्दी का प्रथम चरण सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक आदर्शो का काल था, दूसरे दशक की शुरुवात से ही देश में दुर्भाग्य के बादल मंडराने लगे थे। गांव शहरों की ओर उन्मुख हो रहे थे।व्यक्ति अपने पारिवारिक-सामाजिक संगठन से विछुड रहा था। देश में सिर्फ आर्थिक ही नहीं, राजनैतिक असंतुलन भी व्याप्त हो गया था जिससे समाज में भी उथल-पुथल होने लगी थी। आमतौर पर इनकी रूचियां रुमानी व कल्पनाशील रही हैं फिर भी तत्कालीन छायावादी कवियों ने राष्ट्रीयता, अतीत गौरव, देश-मानव की महिमा का आख्यान के अतिरिक्त जीवन की समस्याओं और सामाजिक विद्रोह के चित्र भी प्राप्त होते हैं।

"कुछ को मोहन भोग, बैठकर हो खाने को
कुछ सोये अधपेट, तरस दाने-दाने को
कुछ तो ले अवतार, स्वर्ग का सुख पाने को
कुछ आये बस नरक भोग कर मर जाने को
श्रम किसका है, मगर कौन है मौज उड़ाते
है खाने को कौन, कौन उपजा कर लाते"[2]

१- पथिक, खण्ड काव्य, रामनरेश त्रिपाठी

२- आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डॉ॰ नामवर सिंह

स्वाभिमान, देश भक्ति व परतन्त्र जीवन के प्रति तिरस्कार की भावना दृष्टिगोचर होती है। जीवन में परतन्त्रता से बढ़कर दूसरा दुःख नहीं है। गुलामी में जीने से अच्छा लाख बार मर जाना है।

"मानव-जीवन में विकास की अरिनि, अरी तू,
निसाचरी-सी हाय। हमारे प्राण परी तू,
अब तक कितने देश न जाने तूने खाये,
तेरा भरा न पेट, घूमती है मुंह बाये।[१]

इसी प्रकार कवि गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' राष्ट्रीयता को अपने काव्य में प्रमुखता से सम्प्रेषित करते हुये 'आजाद हिन्द फौज' के बढ़ते हुये चरणों को आजादी का चिन्ह मानते हुये लिखते हैं-

"चालीस कोटि बन्धु, न दब के रहेंगे हम
दरिया को पाट देगे, जो मिल के बहेंगे हम।
हों एक तो किसी के सितम क्यों सहेंगे हम?
जाँ दे के भी ये सौदा है सस्ता कहेंगे हम।
गैरों का अब निशान भी, तन में न छोड़ेगे,
चाहे जो भी हो अब, गुलामी की जंजीर तोड़ेगे।"[२]

निराला जी की 'बादल राग' कविता १९२३ व 'भिक्षुक' १९२५ में लिखी गयी। 'भिक्षुक' में दीन-हीन वृद्ध गरीब का चित्र सजीव बन पड़ा है। जिसमें उसके जीवन का विशद-चित्र खींचा गया है-

"वह आता
दो टूक कलेजे के करता,
पछताता, पथ पर आता
पेट-पीठ दोनों मिलकर है एक

१- सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ.सं. २४७-२४८

२- सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ.सं. २७१

चल रहा लकुटिया टेक,

मुट्ठी भर दाने को-भूख मिटाने को

मुंह फटी-पुरानी झोली का फैलाता

साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाये,

बांये से वे मलते हुये पेट को चलते,

और दाहिना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाये।

भूख से सूख ओंठ जब जाते

दाता-भाग्य विधाता से क्या पाते?

घूंट आंसुओं के पीकर रह जाते।

चाट रहे झूठी पत्तल वे, कभी, सड़क पर खड़े गये,

और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी अड़े हुये।[१]

श्री बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' क्रान्ति के उद्घोषकों में अग्रणी है। उनकी क्रान्ति विप्लव कारिणी है। उनका लक्ष्य देश की मुक्ति अवश्य है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि देश की मुक्ति के लिये जो अहिंसात्मक आन्दोलन चल रहा था और जिसके वे स्वयं भी एक क्रान्तिकारी सेनानी थे। किन्तु गोरों की क्रूरता का समुचित जवाब न दे पाने के कारण उसकी सफलता पर से उनका विश्वास उठता जा रहा था, इसलिये उन्होने क्रान्ति की अंगारी जलाने का उल्लेख किया है। कवि 'गरजे मेरे सागर पहाड़' कविता में उद्घोष करता है।

"दुर्दम रणचण्डी चेत उठे,

कर यहा प्रलय संकेत उठे,

सर्वस्व नाश कर रुद्र रूप,

नव-नव निर्माण समेत उठे,

आये विनाश की एक बाढ़

सिंहो की-सी करके दहाड़।"[२]

१- भिक्षुक, १९२५, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

२- हम विषपाई जनम के, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' पृ॰सं॰ ४१२

कवि मानव की शक्ति में अटल विश्वास व्यक्त करते हुये कहता है-

ओ भिखमंगो, अरे पराजित, ओ मजलूम, अरे चिर दोहित।

तू अखण्ड भण्डार शक्ति का, जाग अरे निद्रा सम्मोहित।

प्राणों की तड़पाने वाली हुंकारो से जल-थल भर दे,

अनाचार के अम्बारों में अपना ज्वलित पलीता धर दे।[१]

हिन्दी के राष्ट्रीय कवियों में दिनकर जी का विशिष्ट नाम है, इनकी रचनाओं में हमें प्रगतिवादी स्वर सर्वाधिक दिखाई देता है, प्रस्तुत कविता में पराधीन भारत की स्थिति पर चिन्ता व्यक्त की गयी है।

उस पुन्य भूमि पर आज तपी,

रे आन पड़ा संकट कराल,

व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे,

डंस रहे चतुर्दिक विविध व्याल।

मेरे नगपति। मेरे विशाल।

कितनी मणियाँ लुट गयी ? मिटा

कितना मेरा वैभव अशेष?

तू ध्यान-भग्न रहा उधर,

वीरान हुआ प्यारा स्वदेश।[२]

श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर' जी शक्ति, पौरुष और क्रान्ति के कवि है। उनकी देशानुराग से पूरित सामान्य रचनायें भी उनके इस वैशिष्ट्य से रिक्त नही है,

अपनी रचना सरहद पार से में उन्होने शक्तिदाई राष्ट्रीय झण्डे के प्रतिअपनी उत्कृष्ट भक्ति का भाव प्रदर्शित करते हुये 'भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम' में उसके महत्व को प्रतिपादित किया है।

यह झण्डा, जिसको मुर्दे की मुट्ठी जकड़ रही है,

१- हम विषपाई जनम के, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' पृ.सं. ४९३

२- हिमालय, रामधारी सिंह 'दिनकर' पृ.सं. ११७

छिन न जाये, इस भय से अब भी कसकर पकड़ रही है।

थामो इसे, शपथ लो, बलि का कोई क्रम न रुकेगा,

चाहे जो हो जाय, मगर यह झण्डा नहीं झुकेगा।

इसके नीचे ध्वनित हुआ, 'आजाद हिन्द' का नारा,

वही देश भर के लोहू की, यहां एक हो धारा।[१]

जंग-ए-आजादी में पशु-बल और मानव बल, हिंसा और अहिंसा, असत्य और सत्य का संग्राम था। एक ओर अंग्रेजी शासन का खूंख्वार हिसंक पशु-प्रवृति प्रेरित दमन था और दूसरी ओर सत्य और अहिंसा के पुजारी देश की स्वातन्त्र्य वेदी पर हंसते हुये अपना सिर चढ़ा देने वाले मतवालों का दल। एक भारतीय आत्मा में कवि पं. माखनलाल चतुर्वेदी ने वस्तु स्थिति का सजीव चित्र खींचा है-

उधर वे दुःशासन के बन्धु,

युद्ध-भिक्षा की झोली हाथ।

इधर ये धर्म-बन्धुमय-सिन्धु,

शस्त्र लो, कहते हैं- दो साथ।

लपकती हैं लाखों तलवार,

मचा डालेंगी हाहाकार।

मारने-मरने की मनुहार,

खड़े है बलि-पशु सब तैयार

\- - - - -

जाति? वह मजदूरों की जाति,

मार्ग? वह कांटो वाला सत्य,

रंग? श्रम करते जो रह जाय,

देख लो दुनिया भरके भृत्य।[२]

१- सामधेनी, रामधारी सिंह 'दिनकर' (१९३१), पृ.सं. ६७

२- हिम किरीटनी, पं. माखनलाल चतुर्वेदी, पृ.सं. ९७

राष्ट्र को गुलामी की दासता से मुक्त कराने के लिये इन कवियों ने जहां एक ओर 'राष्ट्र भक्ति' की अलख जगाई वहीं दूसरी ओर देशवासियों की दयनीय स्थिति देखकर कवि का धैर्य टूट जाता है। वह अत्यन्त क्षुब्ध होकर कहता है-

"श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
मां की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़ों की रात बिताते है।
युवती के लज्जा वसन बेंच, जब ब्याज चुकाये जाते है,
मालिक तब तेल-फुलेलों पर पानी सा दृव्य बहाते हैं।
पापी महलों का अहंकार, देता मुझकों तब आमंत्रण।[१]

शोषित और दलित समाज का सबसे अधिक शक्तिशाली यर्थाथवादी चित्रण हमें दिनकर जी के काव्य में मिलता है, उन्होने भारतीय-दलित जीवन-वैषम्य का सार्थक चित्र प्रस्तुत किया है-

"रणित विषम रागिनी मरण की
आज विकट हिंसा उत्सव में,
दबे हुये अभिशाप मनुज के
लगे उदित होने फिर भव में,
शोणित से रंग रही शुभ्रपट
संस्कृति निठुर लिये करवालें
जला रही निज सिंह-पौर पर,
दलित-दीन की अस्थि मशालें।[२]

जीवन की बिडम्बनाओं, विद्रूपताओं, गरीबी का यर्थाथ चित्रण इन कवियों में अपने काव्य में किया है। मानव के बुभुक्षित जीवन पर क्षुब्ध होकर कवि कहता है-

"अरे चाटते जूठे पत्ते जिस दिन मैंने देखा नर को,
उस दिन सोचा क्यों न लगा दूं आज आग इस दुनिया भर को,

१- हुँकार, रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ ७२

२- हुँकार, रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ ३

यह भी सोंचा-क्यों न टेंटुआ घोटा जाय स्वयं जगपति का

जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का?[1]

कवि समाज का सजग प्रहरी है, समाज में घट रही प्रत्येक-घटना प्रतिघटना पर उसकी पैनी दृष्टि होती है। और गांव इन्हें सर्वाधिक प्रिय है किन्तु गांव में स्थितियां भयावह है। गांव की सच्ची तस्वीर कवि श्री सोहन लाल द्विवेदी ने "गांवो में" शीर्षक कविता में प्रस्तुत की है।

'नित फटे चीथड़े पहने जो

हड्डी-पसली के पुतलों में,

असली भारत है दिखलाता

नर कंकालों की शकलों में।

दिन रात सदा पिसते रहते

कृषकों में औ मजदूरो में,

जिनको न नसीब नमक रोटी

जीते रहते उन शूरो में।'[2]

बंगाल का अकाल अंग्रेजी शासन-काल की एक अत्यन्त भयावह घटना थी। समस्त बंगाल बिना अन्न के त्राहि-त्राहि कर उठा, निम्न वर्ग तो क्या, मध्यम वर्गीय समाज भी कराह उठा था। पूरी मानवता भूख और प्यास से कुल-बुला रही थी।

'रोटी-रोटी, की पुकार है

राहों में चौराहों में,

'भात-भात' की है गुहार

आहो में और कराहों में

कितने ही राव निकल चुके

मर कर भूखों की मारों में,

१- हम विषपाई जनम के, (प्रलयंकर खण्ड), बालकृष्ण शर्मा नवीन, पृ.सं. ४७४

२- भैरवी (गाँवों में), सोहनलाल द्विवेदी, पृ.सं. ९-१०

देख रहें अधमरे तुम्हें

डूबे हैं रुद्ध पुकारों में।"[१]

कृषकों और मजदूरों की तरह भारतीय नारी भी चिर-शोषित रही हैं। वैदिक काल की भावना 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' धीरे-धीरे लुप्त हो गयी और वह केवल गृह-सेविका एवम पुरुष के विलास की सामग्री ही रह गयी। स्वतन्त्रता आन्दोलन का युग व्यापक जन-जागृति का युग रहा है, चिन्तकों, समाज सुधारकों और कवियों का ध्यान देश की मुक्ति के साथ ही 'नारी-मुक्ति' की ओर भी आकर्षित हुआ। और आकर्षित भी क्यों न होता, जब कि हमारे देश की अनेक नारियों ने पुरुषों के कन्धे से कन्धा लगाकर भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में अपना अभूतपूर्व शौर्य प्रदर्शन किया, प्रगतिवाद के पूर्व भारतीय नारी की स्थिति का यथार्थ-चित्रण प्रस्तुत है।

"अबला जीवन हाय। तुम्हारी यही कहानी,

आंचल में है दूध और आंखों में पानी।"

किन्तु श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने नारी को विलास की सामग्री समझने वाले 'लम्पटो' को फटकारते हुये उन्हे 'नरक के कीड़े' कहा। इस हेय दृष्टिकोण की साहित्य में सर्वथा भर्त्सना की गयी वास्तव में नारी मुक्ति का द्वार है। वह सहचरी है व जीवन की प्रेरणास्रोत है।

"जो नारी में कामुकता ही देखें, वे भी क्या मानव है?

वे तो हैं चाण्डाल, अधम, वे तो बस पूरे दानव हैं।

उनको नारी ने दी ठोकर इससे चिढ है उसके मन में,

औ चले लगाने कालिख वे, नारी के चरित सुहावन में।

नारी में सबसे अधिक दयनीय स्थिति 'विधवा' की है, जो सौभाग्य-वृत से विहीन होकर अभिशप्त जीवन जीने को विवश है। उसके प्रति समाज की सर्वाधिक सहानुभूति होनी चाहिये किन्तु वह समस्त सामाजिक और धार्मिक अधिकारों से विहीन होकर तिरस्कृत जीवन व्यतीत करती है और समाज सदैव उसे सशंकित दृष्टि से देखकर उनके चरित्र की

१- प्रभाती

निर्मलता के विरुद्ध अंगुली उठाने को तैयार रहता है।

श्री राजाराम शुक्ल ने मार्मिक चित्रांकन किया है-

क्यों यह उजड़ रही है? इस पुष्प-वाटिका का, माली कहां गया है?

सब साज तो वही है, नट नव्य वाटिका का आली कहां गया है?

संन्ताप से झुलस कर फूली कली न यह, निर्मूल वल्लरी है,

उत्साह से उकसकर फूली कली नहीं यह, सद्भावना भरी है।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन कविताओं में शोषित श्रमिक वर्ग के जीवन को सही परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश हुयी है। सामाजिक यथार्थ का सटीक चित्रण किया गया है। इन कवियों ने जनता को दुःख दर्द व दैन्य जीवन से मुक्त करने का सार्थक प्रयास किया गया है। समाज के शोषित अंगों में, उनका विशेष ध्यान नारी, कृषक श्रमिक और अस्पृश्यों की ओर गया है।

आज हमारे सामने कमाबेश भग वही परिस्थितिया है जिसका जिक्र सुकवि 'नवीन' जी ने लगभग पांच दशक पूर्व कर दी थी जिसमें उन्होने 'मानवता' को संकटग्रस्त माना है।

"आज मानवता हुई है, विकट विपदा ग्रस्त,

आज मानव हो रहा है, भीति से सन्त्रस्त

आज संस्कृति-सूर्य देखो, हो रहा है अस्त,

क्यों करें ऐसे समय हम, दैन्य का विस्तार?

ऐसा क्या हमें अधिकार?

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है हिन्दी के काव्य में प्रगतिवाद पूर्व प्रगतिशील प्रवत्तियां प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। जो काव्य में सम्प्रेषण के स्तर पर नये मानदण्ड स्थपित करती हैं। ये प्रवृत्तियाँ आगे चलकर और व्यापक स्तर पर अभिव्यंजित हुयी हैं तथा काव्य को नूतन गत्यात्मकता प्रदान की है।

निष्कर्षतया यह कहा जा सकता है कि कवि केदार के साहित्य में युगीन परिस्थितियों का खासा प्रभाव पड़ा है व इसे समस्त साहित्यालोक में इसका स्पष्ट देखा जा सकता है।

१- विधवा, राजाराम शुक्ल, पृ.सं. २२

अध्याय द्वितीय

प्रगतिवादी आन्दोलन और केदारनाथ अग्रवाल

प्रगतिवादी आन्दोलन और केदारनाथ अग्रवाल-

जीवन जगत में मानव सभ्यता के विकास के साथ ही साहित्य का भी समन्वित विकास हुआ है, समाज में हो रहे व्यापक परिवर्तनों के फलस्वरूप साहित्य में भी अधुनातन परिवर्तन होते रहे हैं। इस प्रकार हिन्दी साहित्य संसार में विभिन्न काल खण्डों के अनुसार युगीन साहित्यिक परिवर्द्धन होते रहे हैं। साहित्य की यह कालजयी यात्रा अविराम जारी है। आदिकाल से चलकर भक्तिकाल की बहती धारा ने रीतिकाल से सद्यः स्नात करने के बाद आधुनिक काल के भारतेन्दु युग व द्विवेदी युग में प्रवाहित होते हुये छायावादी युग में प्रवेश किया। जिसमें जन-जीवन को रमाया गया, यद्यपि छायावादी कवि व्यक्तिवादी थे, तथापि उन्होंने अपने सामाजिक आदर्शों और दायित्वों का तिरस्कार भी नहीं किया, उनकी कविताओं में राष्ट्रीयता, अतीत-गौरव, देश की महिमा के आख्यानों के साथ-साथ जीवन की समस्याओं और सामाजिक विद्रोहों के चित्र प्राप्त होते हैं।

अपनी निजी पीड़ा से व्यथित इन भावुक कवियों के मानस को सामाजिक दुःख दैन्य ने अन्दर तक आन्दोलित किया था जिसके फलस्वरूप इन्होंने शोषित-पीड़ित मानवता के प्रति करुणा तथा सहानुभूति प्रदर्शित की, इन कवियों की कविताओं में शोषण का विरोध तथा शोषितों में क्रान्ति के बीज बोकर भावनात्मक एकता शक्ति का संचार किया गया। 'प्रसाद', 'पन्त', 'निराला' जैसे कवियों में तो विशेषतया युग की वेदना अपने यथार्थ रूप में व्यक्त हुयी है। छायावादी कवियों ने सांस्कृतिक उत्थान तथा राष्ट्रीय जागरण सम्बन्धी कविताओं में भी सामाजिक दायित्वों का निर्वहन किया है, जहाँ एक ओर प्रसाद, 'पेशोला की प्रतिध्वनि' या 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' जैसी कविताओं में राष्ट्रीय जीवन को उद्‌बोधित करते हैं। वहीं दूसरी ओर निराला, 'जागो फिर एक बार' जैसी कविताओं से देश को नव जागरण का सन्देश देते हैं। प्रकृति के सुकुमार कवि पन्त ने 'ग्राम देवता' तथा 'भारत माता' जैसी कविताओं से छायावादी सामाजिकता के नये आयाम छूने की कोशिश की। इन कवियों ने भाषा को काव्यानुसार मुलायम बनाने के साथ-साथ उसमें वैयत्तिक भावों और सूक्ष्म विद्रोही जीवन-दर्शन को भी प्रकट किया है। स्पष्ट है कि छायावाद में स्वच्छन्दता का पोषक होने के साथ-साथ सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने की शक्ति भी

विद्यमान थी परन्तु धीरे-धीरे छायावाद अपनी व्यक्तिवादी दृष्टि के कारण सामाजिक-धार्मिक संस्थाओं का विरोध करके समाज और सच्चाई से दूर होता हुआ इनसे विमुख हो गया। सौन्दर्य, प्रेम आदि मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण ही वह पूरी तरह से असामाजिक नहीं बन सका, फिर भी इसमें सामाजिक अर्न्तविरोधों को स्पष्ट देखा जा सकता है।

इस तरह से हिन्दी काव्य ने आगे चलकर एक नयी विशिष्ट पृष्ठ भूमि में प्रवेश किया जिसे विद्वानों ने प्रगतिवाद कहा। साहित्य की प्रगतिवादी अथवा प्रगतिशील दृष्टि का अर्थ रचनाकार के जीवन, समाज और समय की यथार्थ समस्याओं के उद्‌घाटन, वर्ग-विरोधों, संघर्षरत जनता की प्रगति के सन्दर्भ में पक्ष धरता तथा वैज्ञानिक मानववादी दृष्टिकोण से है। जीवन की हकीकत का कुण्ठापूर्ण, निराश और हताश वर्णन वास्तव में कभी प्रगतिशील नहीं हो सकता न वह साहित्यकार प्रगतिवादी। संघर्ष के साथ-साथ मानव के समुज्वल भविष्य में आस्था प्रगतिशीलता की वास्तविक पहचान है।

ऐतिहासिक रूप में छायावाद के पश्चात हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद के नाम से प्रगतिशील कविता का आन्दोलन और भी तीव्रतर हुआ। कोई भी काव्य-प्रवृत्ति यकायक ही किसी खास तारीख से शुरु नहीं हो जाती, बल्कि उसका पूर्वाभ्यास पिछली काव्य प्रवृत्ति से दिखाई देने लगता है, जैसा कि प्रगतिशील काव्य-प्रवृत्ति का संकेत भारतेन्दु के काव्य से ही मिलने लगा था। धीरे-धीरे यह प्रवृत्ति मुखर होने लगी तथा काव्य में प्रगतिशीलता का गुण बढ़ता गया, लोक जीवन, सामाजिक यथार्थ, शोषण व मजलूमों के प्रति काव्य सशक्ततर होता गया।

(अ) प्रगतिवाद का जन्म -

'प्रगतिवाद' शब्द प्रगति + वाद, दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ उन्नति या विकास है। आंग्लभाषा में इसे Progress कहा गया है, इसी से शब्द बना है Progressive, जिसका अर्थ 'प्रगतिशील' है और इस विचार धारा को 'प्रगतिवाद' कहा गया।

"प्रगतिवाद" से तात्पर्य उस वाद से है जो मानव को उसकी वास्तविक स्थिति से परिचित करा, उत्थान की ओर अग्रसर होने का सन्देश देता है।[१]

१- प्रगतिवादी काव्य साहित्य, डॉ॰ कृष्णलाल हंस, म.प्र.हिन्दी ग्रंथ अका॰ भो॰ पृ.सं॰ ६

यह वह काल था, जब पन्त और निराला जैसे प्रमुख छायावादी कवि, छायावादी काव्य की निस्सारता अनुभव कर अपने सृजन को युग की आवश्यकता के अनुरूप नयी दिशा देने को उत्सुक दिखाई दे रहे थे दूसरी ओर भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ विकसित होने वाली राष्ट्रीय काव्य धारा भी प्रगतिवादी तत्वों को लेकर एक नया मोड़ ले रही थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अपने सन् १९३५ के अधिवेशन में ही सिद्धान्त रूप से समाजवाद को स्वीकार कर चुकी थी और उसके नेता श्रमिकों एवम् कृषकों का संगठन बनाने में लग गये थे। इस प्रकार प्रगतिवादी काव्य को यहाँ उर्वर भूमि और अनुकूल वातावरण प्राप्त था जहाँ उसने क्रमशः विकसित होकर अल्पकाल में ही एक सशक्त और विशाल काव्य वृक्ष का रूप ग्रहण कर लिया। प्रगतिवादी आन्दोलन ने कुछ लोगों को भले ही चौंका दिया हो, पर चिन्तनशील मनीषियों ने इसका मुक्त हृदय से स्वागत किया। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने भारतीय तरुणों में तेजस्विता का संचार करने वाला आन्दोलन कहकर इसका स्वागत किया था। डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस आन्दोलन की तुलना मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन से करते हुये इसे भारत के निराशापूर्ण जीवन में आशा का संचार करने वाला बताया था।

इस प्रकार प्रगतिवादी चेतना ने जिसका बीजारोपण भारतेन्दु काल में ही हो चुका था, क्रमशः विकसित होकर एक महान शक्तिशाली रूप में हिन्दी के काव्य साहित्य में प्रवेश किया और अपने युग का वास्तविक रूप में प्रतिनिधित्व करते हुये उस काल की समस्त समाज निरपेक्ष युग प्रतिकूल काव्य धाराओं को झकझोर दिया था। हिन्दी काव्य साहित्य में यह एक विशिष्ट आन्दोलन है।

प्रगतिवाद का जन्म मानव मुक्ति के स्वप्न के साथ हुआ, अतः उसने मनुष्य को अपना साध्य बनाया और वैज्ञानिक विश्वदृष्टि पर आधारित चिन्तन विधि मार्क्सवाद का उस पर गहरा प्रभाव पड़ा। काव्य में प्रगतिवाद एक विशिष्ट राजनीतिक विचारधारा का द्योतक है, यह विचार धारा कार्लमार्क्स के द्वन्दात्मक और ऐतिहासिक वस्तुवाद पर आधारित है। छायावाद के पश्चात हिन्दी साहित्य में जिस काव्यधारा ने तीव्रगति से अपना स्थान बनाया वह 'प्रगतिवांद' के नाम से जानी जाती है।

"प्रगतिवाद उस कथन भंगिमा की ओर संकेत करता है जिसमें आगे बढ़ने का गुणात्मक परिवर्तन कराने का सन्देश दिया गया है। जो साहित्य प्रतिक्रियावादी, पूँजीवादी प्रवृत्ति, मनोवृत्ति और व्यवस्था का विरोधी है, वही प्रगतिवादी साहित्य है।"[1]

हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद का जन्म दलितों, शोषितों, किसान, मजदूरों की कष्ट-कथा को लेकर हुआ, जिसमें सामाजिक यथार्थवादी साहित्य निरूपित हुआ।

"प्रगति आधारित मार्क्सवादी धारणा ही मुख्यतः हिन्दी की प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि है। मार्क्सवाद एक प्रकार का नया और वैज्ञानिक मानववाद है, जिसे राजनीति और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में समाजवाद और साम्यवाद दर्शन के क्षेत्र में द्वन्दात्मक वस्तुवाद या समाजशास्त्र तथा इतिहास के क्षेत्र में ऐतिहासिक वस्तुवाद कहा जाता है।"[2]

प्रगति शब्द अंग्रेजी भाषा के 'प्रोग्रेस' शब्द का रूपान्तर है। प्रोग्रेस का अर्थ होता है- आगे बढ़ना, एक ऐसा परिवर्तन लाना जो किसी वस्तु, गुण या परिमाण में वृद्धि ला सके। 'वाद' संज्ञा है, जो संस्कृत भाषा की धातु 'वद्' से बना है। 'वद्' का अर्थ होता है- बोलना। इसलिए वाद का अर्थ हुआ कथन।"[3]

इस प्रकार शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से 'प्रगतिवाद' उस विशिष्ट कथन भंगिमा की ओर संकेत करता है, जिसमें आगे बढ़ने का गुणात्मक परिवर्तन करने का संदेश दिया गया हो। मार्क्स और एंगिल्स के 'कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो' के प्रकाशन के बाद इस विचारधारा से साहित्य भी प्रभावित हुआ। मार्क्सवादी और प्रगतिवाद के सम्बन्ध को अंकित करते हुये श्री शिवबालक राय जी ने गौरवपूर्ण शब्दों में लिखा है-

"प्रगतिवाद मार्क्सवाद का सहोदर भाई है। संसार में कार्लमार्क्स ही प्रथम व्यक्ति है जिसने समाज के कोढ़ पूँजीवाद के प्रति, बुद्धि की अपील करने वाली आवाज उठाई।........ पूंजीवाद गरीब जन समुदाय को जोंक की तरह चूसता रहता है, सभी खून गायब लेकिन घाव का नाम नहीं।....... पूंजीवाद का मल, समाजवाद की अग्नि में ही भस्म हो सकता

१- प्रगतिवादी काव्य साहित्य, डॉ. कृष्णलाल हंस, पृ.सं. १४

२- हिन्दी की प्रगतिशील कविता, डॉ. रणजीत, पृ.सं. २१

३- हिन्दी साहित्य कोश, सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. ५०९

है। .... राजनीति क्षेत्र का समाजवाद साहित्य क्षेत्र में प्रगतिवाद के नाम से अवतरित हुआ है।"[१]

वास्तव में मार्क्सवाद एक वैज्ञानिक विचारधारा है और प्रगतिवाद एक मानववादी साहित्यधारा।

जो विचारधारा राजनीति क्षेत्र में साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद और दर्शन में द्वन्दात्मक भौतिकवाद है, वही साहित्य क्षेत्र में प्रगतिवाद के नाम से अभिहित की जाती है, दूसरे शब्दों में मार्क्सवादी या साम्यवादी दृष्टिकोण के अनुसार निर्मित काव्यधारा प्रगतिवाद है।"[२] वस्तुतः आरम्भ में मनुष्य समाजवादी था, समाज का प्रत्येक व्यक्ति वस्तु संग्रह का कार्य करता था और उस संग्रह पर सबका समान अधिकार होता था, विकास के साथ-साथ मनुष्य क्रमशः पशुपाल कृषक आदि बनता गया और इसी के साथ उसमें व्यक्तिगत अधिकार की भावना आ गई, इसी भावना मे संघर्ष को जन्म दिया। मनुष्य क्रमशः सभ्य से सभ्यतर होता गया और उसमें वर्ग संघर्ष की भावना भी बढ़ती गयी। क्रमशः राज्यों का जन्म हुआ और उनके विस्तार के लिये युद्ध आराम्भ हुये, विजयी शासक तथा विजित शासित।

इस प्रकार एक ओर अर्थ की न्युनाधिकता के आधार और दूसरी ओर शासनता के आधार पर मानव-समाज दो वर्गो में विभाजित हो गया।इन दोनो वर्गो के संघर्ष पर ही मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद आधारित है, असल में यही वाद प्रगतिवाद का मूल आधार है।हिन्दी साहित्य में 'प्रगतिवाद ' शब्द का प्रयोग आधुनिक युग की एक विशिष्ट काव्य प्रवृत्ति के अर्थ में किया है। डॉ॰ नगेन्द्र ने सीधे-सीधे प्रगतिवाद को साम्यवाद की ही साहित्यिक अभिव्यक्ति माना है। 'प्रगतिवाद काव्य की संज्ञा उस काव्य को दी गयी जो छायावाद के समाप्ति काल में १९३६ ई॰ के आस पास से सामाजिक चेतना को लेकर निर्मित होना आरम्भ हुआ।[३] लेखक विश्वम्भर 'मानव' की दृष्टि में भी 'राजनीति में जो

१- साहित्यिक निबन्ध, पृ.सं. १४७

२- हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ॰ शिवकुमार शर्मा, पृ.सं. ५३३

३- हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ॰ नगेन्द्र, पृ.सं. ६२२

मार्क्सवाद है, साहित्य में वह प्रगतिवाद है।'[1]

स्पष्ट है कि प्रगतिवाद में मार्क्सदर्शन का व्यापक प्रभाव अन्तर्भूत है। इस तथ्य को आर्थिक स्पष्टता के साथ लक्ष्मीकान्त वर्मा ने इस प्रकार व्यक्त किया है। 'प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थवाद' के नाम पर चलाया गया वह साहित्यिक आन्दोलन है, जिसमे जीवन और यथार्थ के सत्य को उत्तर छायावाद काल में प्रश्रय मिला और जिसने सर्वप्रथम यथार्थवाद की ओर समस्त चेतना को अग्रसर होने की प्रेरणा दी। प्रगतिवाद का उद्देश्य था साहित्य में उस सामाजिक यथार्थवाद को प्रतिष्ठित करना जो छायावाद के पतनोन्मुख काल की विकृतियों को नष्ट करके एक नये साहित्य को और एक नये मानव की स्थापना करे, और उस सामाजिक सत्य को, उसके विभिन्न स्तरों को साहित्य में प्रतिपादित होने का अवसर प्रदान करे। वर्ग संघर्ष की साम्यवादी विचारधारा और उस सन्दर्भ में नये मानव, नये हीरो की कल्पना इस साहित्य का उद्देश्य था। इसकी मूल प्रेरणा मार्क्सवाद से विकसित हुयी थी। इसका उद्देश्य और लक्ष्य जनवादी शक्तियों को संघटित करके मार्क्सवाद और भौतिक यथार्थवाद के आधार पर निर्मित मूल्यों को प्रतिष्ठित करना था। उसकी आत्मा साम्यवाद में थी, दृष्टि रूस के साहित्यिक इतिहास की ओर थी, प्रेरणा राजनीतिक मन्तव्यों द्वारा अनुशासित थी और कल्पना प्रोलेतेरियत सत्ताशाही से अनुप्राणित थी। इसकी खोज उस नये मानव ने की थी जो समस्त पतनशील प्रवृत्तियों के विरोध में उपर्युक्त स्थापनाओं को विकसित करके एक प्रोलेतेरियत शासन-सत्ता को उभरने का अवसर दे। इसकी मूल स्थापना सैद्धान्तिक रूप से प्रगतिशील थी, अतः इस साहित्यिक आन्दोलन को 'प्रगतिशील आन्दोलन' के नाम से भी जाना जाता है।''[2]

यह स्पष्ट है कि प्रगतिवादी विचारधारा मूलतः कार्ल मार्क्स के द्वन्दात्मक भौतिकवाद या वस्तुवाद (Dialectical Materialism) पर आधारित है, सर्वप्रथम यूनान में 'डायलेक्टिक' शब्द का प्रयोग उस पद्धति के लिये किया गया था जिसके द्वारा दो परस्पर विरोधी विचारधारा के विद्वान बहस के माध्यम से किसी एक निश्चित सत्य तक पहुँचने का प्रयत्न

१- हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना, डॉ. जनेश्वर वर्मा, पृ.सं. ३०३

२- हिन्दी साहित्य कोश, सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ.सं. ५११

करते थे। चिन्तक हीगेल ने इस शब्द का प्रयोग उस पद्धति के लिये जिसके द्वारा उत्पत्ति, विकास और परिवर्तन के सिद्धान्त को समझा जा सकता है इसमें उन्हेंने एक निरपेक्ष ब्रह्म की भी कल्पना की थी, वैज्ञानिक चिन्तक मार्क्स ने हीगेल के उत्पत्ति, विकास और परिवर्तन के सिद्धान्त को तो स्वीकार किया, किन्तु निरपेक्ष ब्रह्म की कल्पना अस्वीकार कर दी। विद्वान चिन्तक कार्लमार्क्स (१८१८-१८८३ ई०) ने विचारों को महत्व न देकर बाह्य जगत को ही प्रमुखता दी थी, उन्होंने हीगेल के विपरीत यह विचार दिया कि इतिहास की व्याख्या निरपेक्ष ब्रह्म के आधार पर नहीं बल्कि, आर्थिक आधार पर सम्भव है। इस अवधारणा के पूर्व एक जर्मन विद्वान थायरबाख, हीगेल के सिद्धान्त के विपरीत भौतिकवाद के सिद्धान्त को जन्म दे चुके थे, उन्होंने सृष्टि के विकास में 'प्रकृति पदार्थ' को प्रथम स्थान दिया और मनुष्य को प्राकृतिक विकास की ही एक इकाई घोषित किया। मार्क्सवाद में मनुष्य को ऐसा प्राणी माना गया जिसमें वातावरण को बदल देने की क्षमता है। स्पष्ट है कि इनकी विचारधारा हीगेल और थायरबाख के कथन के विशेष अंशों का समन्वय थी। "हीगेल और थायरबाख के सिद्धान्तों में 'वर्ग संघर्ष' का कोई स्थान न था, मार्क्स ने वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त चार्ल्स हॉल से ग्रहण किया जिनका विचार था कि सभ्यता के साथ ही शोषक और शोषित का जन्म हुआ एवं फिर विकास हुआ इससे वर्ग संघर्ष की भावना बढ़ गयी।"[१]

विज्ञान ने मानव-चेतना को अन्ध विश्वास युग के बिल्कुल विपरीत ला कर खड़ा कर दिया है, इससे ही मनुष्य सत्य के वस्तुगत स्वरूप को पहचान पाया है, इसलिये पदार्थ जगत पर आत्म प्रक्षेपण करने के स्थान पर अपनी चेतना के वस्तुगत रहस्यों से परिचित हो चुका है। भौतिकवाद को स्पष्ट करते हुये मारिस कॉर्नफोर्थ ने कहा-

"भौतिक वाद का अर्थ एक ऐसा दृष्टि कोण है, जो भौतिक मानव जगत की समस्त घटनाओं की व्याख्या भौतिक तत्वों के आधार पर ही करता है।"[२]

वस्तुतः कार्नफोर्थ भौतिक जगत (वस्तु जगत) से प्रथक किसी अन्य सत्ता को स्वीकार नहीं करता, जब कि भारतीय दर्शन के अनुसार अखिल सृष्टि में एक ऐसी परम

१- प्रगतिवादी काव्य साहित्य, डॉ॰ कृष्णलाल हंस, पृ.सं॰ १४

२- Dilectical Materilism, Historical Materilism, Page 71.

सत्ता है जो निराकर और अगोचर होते हुये भी समस्त भौतिक व्यापारों का संचालन करती है इसी को पूर्ण ब्रह्म की संज्ञा दी गयी।

जब कि मॉरिस कार्नफोर्थ की दृष्टि में 'पदार्थ' ही वह परम तत्व है जिसके द्वारा विश्व की समस्त गतिविधियाँ संचालित होती हैं। सुविख्यात चिन्तक मार्क्स के अनुसार संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं- स्वीकारात्मक और नकारात्मक, इन दोनों तत्वों के संघर्ष के नाम जीवन है, जिसका आधार वस्तु है। दोनों विरोधीतत्व 'वस्तु' में स्थित हो निरन्तर संघर्षरत रहते हैं। इसी से चेतना का जन्म होता है। यह चेतना द्वन्दात्मक होती है। इसी आधार पर कार्लमार्क्स के इस सिद्धान्त को द्वन्दात्मक भौतिकवाद कहा गया है। उन्होंने इस सम्बन्ध में लिखा है-

मेरी द्वन्दात्मक प्रणाली हेगेलियन प्रणाली से भिन्न ही नहीं वरन उसकी प्रत्यक्ष विरोधी है, हीगेल के अनुसार मानव मस्तिष्क की जीवन प्रक्रिया, जिसे 'विचार' कहते हैं एक स्वतन्त्र विषय का रूप धारण कर लेता है। वास्तविक जगत का सृष्टा है और वास्तविक जगत विचार का बाह्य प्रत्यक्षीकरण मात्र है। मेरी दृष्टि में इसके विपरीत विचार कुछ नहीं, पर मानव मस्तिष्क द्वारा प्रतिबिम्बित तथा विचार के रूप में अनूदित 'भौतिक जगत' ही है।[१]

द्वन्दात्मक भौतिकवाद की मान्यतानुसार- प्रकृति और समाज की विकास प्रक्रिया सामान्य नहीं होती वह प्रक्रिया अपनी क्रमिक गति से एक ऐसी स्थिति में पहुँच जाती है, जहाँ वह गुणात्मक परिवर्तन के साथ एक नवीन स्थिति को जन्म देती है, इस स्थिति में परिमाण गुणात्मक परणति का रूप धारण कर लेता है। परिमाण और वस्तु के गुणों में परस्पर अन्तर होते हुये भी प्रकृति और समाज में यह गुणात्मक परिवर्तन सहसा मूर्त हो जाता है। एंजिल्स ने इसे लीप (Leap) माना है।

मार्क्स के अनुसार- The leap is a break in the pradualness of the quantitative change of a thing. It is the transition to a new quality and signateses sharp turn, a radical change in development.[२]

१- Selected Works, Karl Marx and F. Engels, Page 413

२- Fundamentals of Marxism and Leninism, Page 38

प्रगति एक नैसर्गिक प्रक्रिया है जो धीरे-धीरे अपने काल-क्रमानुसार ही आगे बढ़ती है।प्रगति के सम्बन्ध में विचार करते हुये यह माना जा सकता है कि विचार हवाई-चिन्तन का नाम नहीं है। निश्चित सामाजिक परिवेश ही निश्चित विचारों के जन्म की पृष्ठभूमि तैयार करता है। इसलिए प्रगति की निश्चित धारणा भी मानव विकास की एक निश्चित मंजिल पर ही जाकर साकार हुयी है, यद्यपि इसे रूपाकार देने वाले तत्व युगों से एकत्र और पूंजीभूत होते रहे हैं। इस प्रकार-

"मानव प्रगति की धारणा एक ऐसा सिद्धान्त है, जो अतीत की घटनाओं के संश्लेषण और आने वाली घटनाओं की भविष्यवाणी से मिलकर बनती है। यह सिद्धान्त इतिहास की उस व्यवस्थापना पर आधारित है, जो मनुष्य को क्रमशः एक उचित दिशा में विकास करता हुआ देखती है और निष्कर्ष निकालती है कि उसके विकास की यह प्रक्रिया अनन्त काल तक इसी तरह चलती रहेगी।"[१]

इस प्रकार प्रगतिवादी साहित्य का जन्म सर्वप्रथम १९०७ में इटली में हुआ, जब कि मारनेति ने "भविष्यवाद" नामक एक नवीन विचारधारा को जन्म दिया। उसने अपने विचार व्यक्त करते हुये ये कहा- "संसार अब एक नये रूप में परिवर्तित हो चुका है। सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी मान्यतायें बदल चुकी हैं। अतः उसके साहित्य की मान्यतायें अपरिवर्तित नहीं रखी जा सकती, उसके मूल्यों और मापदण्ड में भी नवीन दृष्टिकोण आवश्यक है।"

मारनेति ने सिर्फ रूढ़िवादी विचारधाराओं का विरोध किया बल्कि साहित्यिक परम्पराओं में भी अभूतपूर्व परिवर्तन की घोषणा कर दी। छन्दों की श्रृंखला भंग कर दी गयी और व्याख्या के नियमों को तिलांजलि दे दी। उन्होंने कहा कि अब चन्द्र और कमल में सौन्दर्य दर्शन न कर यन्त्रों में किया जाना चाहिए रूस में हुयी क्रान्ति का समूचे विश्व में गहरा असर पड़ा। इस प्रकार सन् १९१८ में प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात रूस से जारशाही शासन का समापन हो गया तथा मार्क्सवादी बोलशेविक दल की सत्ता स्थापित हो गयी। इस समय से पहले तक काव्य के मोहक रूप को ही अधिक महत्व दिया जाता था किन्तु अब रूसी काव्य जगत में यथार्थवाद का प्रवेश हुआ। अब रूसी साहित्य में मार्क्सवादी

१- द आइडिया ऑफ प्रोग्रेस, जे.बी. बरी, पृ.सं. ७

बोलशेविज्म ही साहित्य-सृजन का मूलाधार हो गया। इस साहित्य ने सामान्य जनता के हृदय में राजसत्ता प्राप्त करने की लालसा पैदा कर डाली। रूसी साहित्य में आर्थिक विषमता दूर कर वर्गहीन समाज की स्थापना की भावनाओं ने अपना स्थान बना लिया।

सन् १९१८ में हुयी रूसी क्रान्ति से भारत भी अप्रभावित न रह सका, हिन्दी साहित्य के सुधी समीक्षक हमारे यहाँ प्रगतिवाद को लगभग इसी समय से स्वीकार करते हैं। देश में एक ओर अंग्रेजों का दमनचक्र तेजी से घूम रहा था और दूसरी ओर यहाँ का पूँजीपति दल श्रमिकों के शोषण में रत था। निम्नवर्ग पर उच्च वर्ग की सामाजिक अत्याचार पूर्ववत चल रहे थे, कृषकों व मजदूरों का शोषण होने के साथ-साथ आम आदमी भी बेहाल था। यहाँ के साहित्यकारों से यह स्थिति छिपी नहीं थी इसीलिये वे सामान्य जनता को शासकों, पूंजीपतियों एवं समाज और धर्म के ठेकेदारों के अत्याचारों व दमन से मुक्त करने के लिए चिन्तित थे। इसलिये यहाँ के कवियों ने उच्च वर्ग के मनोरंजन हेतु काव्य सृजित न कर गरीब वर्ग हेतु साहित्य सृजन आरम्भ कर दिया और अपने काव्य में पूँजीवाद, शोषण आदि की कटु आलोचना की तथा साथ-साथ श्रमिकों में विद्रोहात्मक भावनायें पैदा कीं।

भारत में प्रगतिवाद का जन्म सन् १९२७ में मानना समीचीन होगा क्योंकि १९२५ में साम्यवादी दल की स्थापना के पश्चात साहित्य सृजन के क्षेत्र में अधुनातन परिवर्तन हुए। राजनैतिक एवं सामाजिक विचारों में क्रान्तिकारी बदलाव देखने को मिला तथा जीवन-जगत में शोषण के विरुद्ध नवीन चेतना देखने को मिली।''[1]

प्रगतिवाद के उद्भव के साथ ही समाज में चेतना के नये आयाम दिखे। प्रगतिवाद के जन्म में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ तो सहायक हुयी ही, साथ ही छायावाद की जीवन शून्य होती हुयी व्यक्तिवादी वायवी काव्यधारा की प्रतिक्रिया भी उसमें व्याप्त थी। एक ओर भारतीय जनमानस का तीव्रतम शोषण, उभरता हुआ जन संकट था तो दूसरी ओर रूस में मार्क्सवादी दर्शन के आधार पर स्थापित साम्यवाद था जो वहाँ के विषम संकट और संघर्ष से बीते जन-जीवन को बल दे रहा था। जो सामन्तवाद और पूँजीवाद की

१- भारत में प्रगतिवाद का उद्भव, डॉ॰ श्याम किशोर गुप्त, पृ.सं॰ १०९

विभीषिकाओं से कुचलकर सर्वहारा का अधिनायकत्व स्थापित कर रहा था।

डॉ॰ नगेन्द्र ने प्रगतिवाद के जन्म के सम्बन्ध में कहा- 'भारतीय बुद्धिजीवी एक ओर अपने समाज में उत्पन्न अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक विसंगतियों और संकटों की ओर देख रहा था, दूसरी ओर वह रूस के उस समाज को देख रहा था जो इन विसंगतियों और संकटों से गुजरकर एक ऐसी व्यवस्था स्थापित कर रहा था, जिसमें सामान्य जन को महत्ता प्राप्त हो रही थी।.... रूस में प्रतिष्ठित साम्यवाद और पश्चिम के अन्य देशों में फैलता हुआ उसका मार्क्सवादी दर्शन भारतीय बुद्धिजीवियों के लिए प्रेरणा केन्द्र बन रहा था...। देश की अवस्था प्रगतिवादी विश्वासों और स्वरों के लिए उपयुक्त भूमि बन रही थी।'[१]

प्रगतिवादी साहित्याकार ने दलगत संकीर्णता के घेरे को तोड़कर समग्र भाव से युग-जीवन की नयी प्रगतिशील चेतना और सत्य को सार्वदेशिक और सार्वजनीन स्वर में कलात्मक अभिव्यक्ति दी। इस अभिनववाद ने अपने जन्म से ही जीवन की विषमता का निवारण कर मानवता की प्रतिष्ठा का उच्चारण गाया। प्रख्यात समीक्षक डॉ॰ नगेन्द्र के शब्दों में- "भारत में प्रगतिवाद का जन्म साम्यवाद के साथ हुआ है। इसने हिन्दी काव्य को एक जीवन्त चेतना प्रदान की है। इसका निषेध नहीं किया जा सकता है।"

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि हमारे देश में जो स्वतन्त्रता संग्राम चल रहा था, उसने १ दिसम्बर १९२९ को लाहौर कांग्रेस द्वारा 'पूर्ण स्वतंत्रता' प्रस्ताव स्वीकार करने के पश्चात एक नया रूप ग्रहण कर लिया था जिसके कायान्वति के रूप में सन् १९३९ व १९३२ में दो महान देशव्यापी आन्दोलन हुये थे, अगर गम्भीरता से दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि ये ही वे आन्दोलन थे जिनमें देश के कृषकों और श्रमिकों ने एक बहुत बड़ी संख्या में भाग लिया था, इसका कारण महात्मागाँधी के नेतृत्व में होने वाली जनजागृति तो थी ही, पर इसका एक कारण वह विश्वव्यापी मन्दी भी थी जिसने कृषकों, श्रमिकों एवं अन्य मध्यवर्गीय जनता का जीवन दूभर कर दिया था। इस राजनीतिक स्थिति व मनोभावना का प्रभाव साहित्यकारों पर भी पड़ा, फलतः उन्होंने अपने संगठन बनाने प्रारम्भ कर दिये।

निष्कर्षतया कहा जा सकता है कि प्रगतिवाद का जन्म हिन्दी साहित्य में क्रान्तिकारी

१- हिन्दी में प्रगतिवाद, हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ॰ नगेन्द्र, पृ॰ ६२३

घटना है जिसमें शोषित मजदूर किसान की पीड़ाओं व मानव वर्ग के वैषम्य को रूपायित किया गया है और इन्हें बिम्बित कर समाज को समुन्नत बनाने का सार्थक प्रयास किया गया है।

(ब) प्रगतिवाद का विकास-

प्रगतिवाद रचना और आलोचना के क्षेत्र में सर्वथा नवीन दृष्टिकोण लेकर आया। सन् १९३५ ई॰ में एम॰ फार्स्टर के सभापतित्व में पेरिस में प्रोग्रेसिव राइट्स नामक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का प्रथम अधिवेशन हुआ, इन्हीं दिनों डॉ॰ मुल्कराज आनन्द, सज्जाद जहीर, भवानी भट्टाचार्य, जे॰सी॰ घोष, एम॰ सिन्हा आदि नवोदित लेखक लन्दन में थे, इसी वर्ष उन्होंने "भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ" नामक संस्था बनाई साथ ही स्थापना के उद्देश्यों एवं योजनाओं पर एक विस्तृत परिपत्र प्रस्तुत किया गया, जिसमें कहा गया-

"भारतीय समाज में नित नये परिवर्तन होते जा रहे हैं, प्राचीन रूढ़िवादी विचारों और विश्वासों की जड़ें हिलती जा रही हैं और इस प्रकार एक नये समाज का जन्म होने जा रहा है, अतः यह नितान्त आवश्यक है कि भारतीय साहित्यकार वहाँ के जन जीवन में होने वाले इस क्रान्तिकारी परिवर्तन को शब्द और रूप दें और इस प्रकार राष्ट्र की प्रगति में सहायक हों। हमें भारतीय सभ्यता की रक्षा करते हुये अपने देश की पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों की कड़ी आलोचना करनी है तथा अपनी आलोचनात्मक एवं रक्षात्मक कृतियों के द्वारा वे साधन जुटाने हैं, जो हमें अपने लक्ष्य की पूर्ति में सहायक हो सकते हैं। भारत में नये साहित्य का हमारे वर्तमान जीवन के मूल तथ्यों से समन्वित होना आवश्यक है और वे तथ्य हैं- हमारी दरिद्रता, हमारा सामाजिक पतन और हमारी राजनैतिक पराधीनता।"[१]

इसी परिपत्र में आगे कहा गया था- "वह सब, जो हमें निष्क्रिय, अकर्मण्य और अन्धविश्वासी बनाता है, हेय है। हम उसी को प्रगतिशील समझते हैं, जो हममें आलोचना की प्रवृत्ति लाता है, युगों-युगों से चली आ रही रूढ़ियों को बुद्धि की कसौटी पर कसने, प्रोत्साहित करता, हमें कर्मशील बनाता है, हमें संगठनात्मक सर्जना की प्रेरणा देता है।"[२]

१- हंस, जनवरी १९३६

२- हंस, जनवरी १९३६ पृ.सं॰ १७

भारतीय लेखकों की तरुण पीढ़ी ने 'परिपत्र' का हार्दिक स्वागत और समर्थन किया और दूसरे ही वर्ष सन् १९३६ में इसका प्रथम अधिवेशन बाबू प्रेमचन्द की अध्यक्षता में लखनऊ में हुआ। इन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में निम्न विचार प्रस्तुत किये-

"हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष, और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं, क्यों कि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है। हमारे लिये कविता के वे भाव निरर्थक है जो हमारे हृदय पर संसार की नश्वरता का अधिपत्य दृढ़ करते हैं और जिसमें हमारा हृदय निराशा से भर जाये। हमें उस साहित्य की आवश्यकता है, जो हमारी बदलती हुयी मान्यताओं, परम्पराओं और मूल्यों के अनुरूप हो। साहित्य का लक्ष्य केवल व्यक्तिगत विकास अथवा मनोरंजन नहीं है, जीवन तथा समाज की छवियों को अपने में मूर्त कर मानव समाज का कल्याण करना है।........

उन्होंने आगे कहा- उन्नति से हमारा तात्पर्य उस स्थिति से है, जिससे हममें दृढ़ता और कार्यशक्ति उत्पन्न हो, जिससे हमें अपनी दुरावस्था की अनुभूति हो, हम देखें कि किन कारणों से हम इस निर्जीवता और ह्रास की अवस्था को पहुँच गये और उन्हें दूर करने की कोशिश करें।

मार्क्सवादी दर्शन से व्यापक रूप में प्रभावित होने के नाते प्रगतिशील साहित्य का मानववाद मुख्यतया वैज्ञानिक और समाजवादी मानववाद है। इस सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य कोश की टिप्पणी विचारणीय है-

"यथार्थवाद जीवन की समग्र परिस्थितियों के प्रति ईमानदारी का दावा करते हुये भी प्रायः मनुष्य की हीनताओं तथा विद्रूपताओं का निरूपण करता है, यथार्थवाद की कथनी और करनी का अन्तर दिखाने के बाद लिखा है, यथार्थवाद सुधारक साहित्य का प्रथम अस्त्र है। किसी भी सामाजिक स्थिति के प्रति विद्रोह करते हुये साहित्यकार उसका यथार्थवादी चित्र उपस्थित करता है। और यथार्थवाद का हिन्दी साहित्य में प्रथम विकास प्रगतिवाद के माध्यम से हुआ।"[१]

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ॰ ६६१

विचारणीय है कि लखनऊ अधिवेशन के कुछ समय पूर्व नागपुर में डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद जी की अध्यक्षता में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' हुआ था, इसके साथ-साथ "भारतीय साहित्य परिषद" का अधिवेशन महात्मागाँधी की उपस्थिति में हुआ था जिसमें मुंशी प्रेमचन्द के अतिरिक्त पं॰ जवाहरलाल नेहरू, कन्हैयालाल, माणिकलाल मुन्शी,आचार्य नरेन्द्र देव आदि भी उपस्थित थे। इस अवसर पर ही अख्तर हुसैन रायपुरी ने सर्व हस्ताक्षरित एक घोषणा पत्र पढ़कर सुनाया, जिनकी पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

"हमारा ख्याल है कि साहित्य की समस्याओं को जीवन की समस्याओं से अलग नहीं किया जा सकता। जीवन एक पूर्ण इकाई है, साहित्य जीवन का दर्पण है, यही नहीं बल्कि वह जिन्दगी के कारवां का पथ प्रदर्शक है। उसे सिर्फ जीवन के साथ नहीं चलना बल्कि उसका नेतृत्व करना है।........ भावना प्रत्येक कला का प्राण तत्व है, तो फिर गरीबों और पीड़ितों की दुर्दशा लेखक को भाव शून्य क्यों कर रख सकती है? अगर जीवन की सबसे प्रमुख समस्या यह है कि समाज के चेहरे से बेकारी, दरिद्रता और अत्याचार के दाग धोये जायें, तो कदाचित यह कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि साहित्य का संकेत किस ओर हो।..... सहित्य का आधार जीवन है और जीवन निरन्तर विकास और परिवर्तन की कहानी है। जीवित और शाश्वत साहित्य वही है जो जीवन को बदलना चाहता हो और उसे उन्नति का मार्ग दिखाता है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि लखनऊ अधिवेशन और नागपुर अधिवेशन दोनों घोषणा पत्रों का मूल स्वर एक ही है, दोनों उस साहित्य के निर्माण का आग्रह करते हैं, जो देश के वास्तविक जन जीवन की अभिव्यक्ति करता हो, जो कि शोषित मानवता को उत्थान का सन्देश देने में समर्थ हो और जो सामूहिक जन-जीवन की विषमताओं, आपदाओं और अभावों का अन्त कर प्रगति के पथ पर अग्रसर कर सकें।

भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का द्वितीय अधिवेशन सन् १९३८ में कलकत्ता में डॉ॰ रवीन्द्र नाथ टैगोर की अध्यक्षता में हुआ, डॉ॰ टैगोर अस्वस्थता के कारण स्वयं अधिवेशन में उपस्थित न हो सके। इस अधिवेशन के घोषणा पत्र में संघ का उद्देश्य बतलाते हुये कहा गया- "प्रत्येक भारतीय लेखक का यह कर्तव्य है कि वह भारतीय जीवन में होने

वाले परिवर्तनों को अभिव्यक्ति दे और साहित्य में वैज्ञानिक बुद्धिवाद का समावेश कर देश की सामाजिक क्रान्ति की भावना को अधिकाधिक विकसित तथा सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न करें उन्हें साहित्यिक समीक्षा की ऐसी दृष्टि का विकास करना चाहिए, जो परिवार, धर्म, काम, युद्ध और समाज के ज्वलंत प्रश्नों का सामान्यतः प्रतिक्रियाशील तथा रूढ़िवादी प्रवृत्तियों का विरोध करे। उन्हें उन साहित्यिक प्रवृत्तियों का भी विरोध करना चाहिए जो साम्प्रदायिक भावना, जाति द्वेष तथा मानव द्वारा मानव के शोषण की भावना को पुष्ट करता है.....

परिपत्र में आगे कहा गया कि-

जो साहित्य और अन्य कलायें रूढ़िवादी हाथों में पड़कर निर्जीव होती जा रही हैं, उनको उन हाथों से मुक्त कराके उनका निकटतम सम्बन्ध जनता से कराना और उन्हें जीवन के यथार्थ का माध्यम तथा नये विश्व का निर्माण करने वाली शक्ति बनाना है।"[१]

प्रगतिवाद के विकास क्रम में यह देखना भी नितान्त आवश्यक है कि इसमें राष्ट्रवादी, जनवादी और मार्क्सवादी लेखक आये, उनकी रचनाओं में साम्राज्यवाद विरोधी राजनैतिक चेतना अत्यन्त प्रखरता से विद्यमान है।

"प्रगतिवाद के राजनैतिक स्वर से चौंककर कुछ अहं अन्तर्गुह्यवासी लेखक उसे राजनीतिक बिल्ला घोषित करते हैं।"[२]

लेकिन वे भूल जाते हैं कि प्रगतिवाद के राजनीतिक स्वर का सबसे बड़ा कारण था- समकालीन राजनैतिक पुर्नजागरण।

प्रख्यात आलोचक डॉ॰ नामवर सिंह के शब्दों में, "सामान्य लोगों के जीवन में राजनीति तथा राजनीति में सामान्य लोग, ऐसा प्रवेश पहली बार ही हुआ था।"[३]

भारत में प्रगतिशील आन्दोलन विश्व साहित्य में आती हुयी एक नयी चेतना की ही भारतीय अभिव्यक्ति थी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी और प्रेमचन्द जी के साहित्य में भावी

१- प्रगतिवाद, शिवदान सिंह चौहान, पृ.सं. ३३७

२- आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ.सं. १५३

३- आधुनिक हिन्दी की प्रवृत्तियाँ, पृ.सं. ७७

प्रगतिशील साहित्य के सर्वाधिक बीज मिलते हैं, अपने निबन्ध 'लोकमंगल की साधनावस्था' में वे कविता को जीवन के केवल कोमल और सुन्दर पक्ष तक सीमित कर देने वालों का विरोध करते हैं और अत्याचार के खिलाफ उठ खड़ी होने वाली हिंसा की भीषणता में भी सौन्दर्य को देखते हैं।"[१]

आचार्य शुक्ल जी का जीवन की सम्पूर्णता पर आग्रह था, वे उन सभी सिद्धान्तों का विरोध करते हैं जो जीवन के किसी एक ही अंग या पक्ष को असन्तुलित महत्व देने लगते हैं। उन्होंने अन्याय को चुपचाप सहने या अहिंसक प्रतिरोध करने की तालस्ताय या गाँधीवादी नीति का विरोध किया है उनके अनुसार "मनुष्य शरीर के जैसे दक्षिण और वाम दो पक्ष हैं, वैसे ही उसके हृदय के भी कोमल और कठोर दोनों पक्ष हैं और सदैव रहेंगे। काव्य कला की पूरी रमणीयता तभी व्यक्त होगी जब इन दोनों पक्षों के समन्वय के बीच से मंगल या सौन्दर्य का विधान करें।"[२]

आचार्य शुक्ल में जीवन को उसकी द्वन्दात्मकता के साथ स्वीकार करने की एक प्रबल प्रवृत्ति मिलती है। प्रगतिवादी आन्दोलन के बीज तत्कालीन साहित्य में प्रमुखता से मिलते हैं। आजादी के पहले तरह-तरह की सामाजिक प्रवृत्तियों के रचनाकार प्रगतिशील साहित्य की मंच पर एकत्र हुये थे। विभिन्न समाजोन्मुखी प्रवृत्तियों का संगम होने के नाते प्रगतिवाद में दृष्टिकोणों की विविधता और वर्ग-चेतना के अनके रुपों और स्तरों का होना स्वाभाविक था उसके विभिन्न तत्वों में सहयोग और संघर्ष का होना भी स्वाभाविक था।

आचार्य शुक्ल एक कुशल समीक्षक होने के अतिरिक्त अच्छे कवि भी थे, अभिव्यक्ति की सरलता और प्रेषणीयता को काव्य का प्रमुख तत्व मानते है। रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव केक अनुसार- "यद्यपि शुक्ल जी आस्तिक थे पर वे संसार को झूठा समझने वाले नहीं थे। संसार के प्रति उनका दृष्टिकोण मूलतः भौतिकवादी था। रसवादी होने के बावजूद वे साहित्य में 'अलौकिक' 'अध्यात्मिक' आदि शब्दों को निरर्थक मानते थे।[३]

१- चिन्तामणि भाग-१, प्रयाग ५८, पृ.सं. २१६

२- वही, पृ.सं. २२१

३- प्रगतिशील आलोचना, रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, पृ.सं. ६८

स्पष्ट है कि प्रसाद - प्रेमचन्द्र - शुक्ल युग ने हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील तत्वों का और भी विकास समंजन किया। और प्रगतिशील आन्दोलन के जन्म और विकास में योगदान दिया श्री राम विलास शर्मा के शब्दों में-

"आचार्य शुक्ल जी की छायावादी आलोचना ने प्रगतिवाद का मार्ग प्रशस्त किया, प्रगतिवाद उनका गुण माने या माने। उनके और प्रगतिवादियों के जीवन-मूल्यों में अन्तर अवश्य है, किन्तु जहां तक कविता को जीवन के सम्पर्क में लाने का प्रश्न है, आचार्य शुक्ल जी किसी प्रगतिवादी से कम नहीं थे।"[१]

प्रगतिवाद के विकास में बाबू प्रेमचन्द जी ने अभूत पूर्व योगदान दिया है इन पर समाजवादी विचारों का रंग सोवियत क्रान्ति के एकदम बाद से ही पड़ना शुरु हो गया था, उनका साहित्य आने वाले प्रगतिशील आन्दोलन की सुदृढ़ पीठिका तैयार कर रहा था। सेवासदन में उन्होने समाज के कटु यथार्थ को गहनता और विस्तार के साथ विवेचित किया है, "एक ऐसे समाज के यथार्थ को जिसमें चाटुकारिता और घूस नियम है, सफलता की कुंजियाँ है और ईमानदारी अपवाद है, दारुण कष्टों और विफल जीवन की भूमिका है।"[२]

प्रेमा श्रम (१९२२) में उन्होने टूटती हुयी सामन्ती व्यवस्था, उगते हुये पूँजीवाद और बढ़ते हुये किसान जागरण की कहानी कही है। उपन्यास का तरूण प्रगतिशील किसान बलराज स्पष्ट शब्दों में कहता है, "तुम लोग मेरी हंसी उड़ाते हो, मानो काश्तकार कुछ होता ही नहीं, वह जमींदार की बेगार भरने के लिये ही बनाया गया है, लेकिन मेरे पास जो पत्र आया है, उसमें लिखा है कि रुस देश में काश्तकारों का ही राज है, वह जो चाहते हैं करते हैं। वहां अभी हाल ही की बात है, काश्तकारों ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब किसानों और मजदूरों की पंचायत राज करती है।"[३]

हिन्दी के क्षेत्र में प्रगतिशील आन्दोलन की भूमिका तैयार करने में प्रेमचन्द के सम्पादकत्व में निकलने वाले 'जागरण' और 'हंस' का भी महत्वपूर्ण योगदान है, 'हंस' जून

१- रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, पृ.सं. ११

२- प्रेमचन्द : एक अध्ययन, राजेश्वर गुरु, भोपाल, १९५८, पृ.सं. १४०

३- प्रेमाश्रम, मुंशी प्रेमचन्द, पृ.सं. ९९

१९३० से निकलना शुरु हुआ था जोकि एक साहित्यिक मासिक था। 'जागरण' एक राजनैतिक साप्ताहिक था जिसे आचार्य नरेन्द्र देव और प्रेमचन्द निकालते थे, उसका इस रूप में प्रकाशन अगस्त १९३२ में हुआ था और २१ मई १९३४ के अंक के बाद वह बन्द हो गया।''

प्रगतिशील लेखक संघ के द्वितीय अधिवेशन (१९३८) द्वारा देश के विभिन्न भाषा-भाषी लेखकों में प्रगतिवादी चेतना का व्यापक प्रसार हुआ। परिणाम स्वरूप प्रथम अधिवेशन की चेतना अधिक प्रखर होकर भारतीय लेखकों में दृष्टिगोचर होने लगी। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि प्रेम और सौन्दर्य की कोमलकान्त पदावली में अभिव्यंजना करने वाले छायावादी कवि श्री सुमित्रनन्दन पन्त सन् १९३६ में युगान्त के द्वारा छायावादी युग की समाप्ति की घोषणा कर सन् १९३७ में ही 'युगवाणी' का गान करने हिन्दी-काव्य साहित्य के प्रांगण में उपस्थित हो चुके थे। वे हमें अपनी इस कृति के साथ प्रगतिवादी काव्य वे प्रथम उन्नायक के रूप में दिखाई देते हैं। तत्पश्चात सन १९३९ में द्वितीय विश्वयुद्ध आराम्भ हो गया, न केवल यूरोप, वरन विश्व के अन्य देश भी इससे प्रभावित हुये बिना न रह सके। मानव जगत के सम्मुख फासिज्म का संकट उपस्थित हो गया, यह संकट विश्व के राष्ट्रों को ही नही वरन हमारी समस्त कलाओं और साहित्य की महान मूल्यवान सम्पत्ति भी मिटा देना चाहता था, समस्त बुद्धिजीवियों और प्रगतिशील साहित्य कारों ने अपनी इस चिर सम्पत्ति की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझा और वे इस चुनौती का सामना करने को उद्यत हो गये।

भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का तृतीय अधिवेशन सन १९४२ में दिल्ली में हुआ। इस अधिवेशन का प्रमुख उद्देश्य फासिज्म का विरोध करना था, इस अधिवेशन में प्रगतिशील लेखकों के अलावा अनेक बुद्धिजीवियों ने भाग लिया। जो फासिज्म को विश्व मानव संस्कृति का विनाशक मामते थे। इस अवसर देश के चुने हुये लेखकों और बुद्धिजीवियों के हस्ताक्षर युक्त एक पत्रक यूरोप में होने वाले 'फासिज्म-विरोधी सम्मेलन' को भेजा गया, और इसमें भारत के सहयोग का आश्वासन दिया गया।

इस सम्मेलन के घोषणा पत्र में कहा गया कि-

फासिज्म की विजय ने समस्त प्रगतिशील आन्दोलनों और विचारों को ठेस पहुंचाई है, सांस्कृतिक आत्माभिव्यक्ति के मूल स्त्रोत-को बन्द कर दिया गया है, जनता के उत्तराधिकार का नृशंसता पूर्वक विनाश किया गया। आज की दुनियां में फासिज्म की विजय का मतलब एक नये अंधकार युग की शुरुवात होगी और इस संकट को दूर करने जनता को अपना कर्तव्य पूरा करना होगा।''[1]

प्रसिद्ध लेखक श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा ने प्रगतिवाद के विकास एवं उसकी लोक प्रियता सर्वव्यावक प्रभाव के सम्बन्ध में उपरोक्त तथ्य विवेचित किया।

''हिन्दी साहित्य में कम्युनिस्ट पार्टी के साहित्सिक दल 'प्रगतिशील लेखक संघ' ने दस वर्षों तक ऐसा आन्दोलन चलाया था, जिसके परिणाम स्वरूप हिन्दी के अनेक साहित्यकारों के लिये आवश्यक हो गया कि वह अपने को प्रमाणित करने के लिये किसी न किसी रुप में प्रगतिशील लेखक संघ से अपना सम्बन्ध स्वापित कर लें। इस भाग-दौंड़ में सभी शामिल थे। यहां तक कि पन्त, निराला आदि इससे नहीं बच सके, प्रगतिशील लेखक संघ के पास 'हंस' 'नया साहित्य' 'जनयुग' वीणा 'वसुधा' आदि अनेक पत्रिकायें थी जिसके माध्यम से लेखकों का प्रचार तो होता ही था, साथ ही उनको साहित्यिक प्रतिष्ठा भी मिलती थी।''

पन्त ने अपनी पत्रिका 'रुपाभ' के सम्पादकीय में लिखा था-

इस युग (प्रगतिवाद) की वास्तविकता ने जैसे उग्र रूप धारण कर लिया है इससे प्राचीन विश्वासों से प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं। श्रद्धावकाश में पलने वाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा और काव्य की स्वप्न जड़ित आत्मा जीवन की उस कठोर आवश्यकता के नग्न रुप में सहम गयी है। अतयव युग की कविता सपनों में नहीं पल सकती है, उसकी जड़ों को अपनी पोषण-सामग्री धारण करनें के लिये कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।

कविवर पन्त पुकार उठते है-

देख रहे हो गगन मृत्यू नीलिमा नील गगन।

देखो भू को स्वार्गिक भू को, मानव पुण्य प्रभू को।।

१- प्रगतिवाद, शिवदान सिंह चौहान, पृ.सं. ३४०

पंत जी स्वीकार करते हैं कि जिस समय छायावाद अपनी व्यष्टि की साधना में तन्मय, जगत की वास्तविकता की ओर से आंख बंद किये आत्म विभोर होकर आगे बढ़ा जा रहा था, उसी समय जगत की नग्न वास्तविकता 'रोटी का राग' और 'क्रान्ति की आग' लिये प्रगतिवाद आगे आया। जिसने जीवन के विभिन्न पहलुओं का सार्थक अभिव्यक्ति दी।

इसके पश्चात प्रगतिशील लेखक संघ का चतुर्थ अधिवेशन मई १९४३ श्रीपाद अमृत डांगे की अध्यक्षता में बम्बई में हुआ। इस अधिवेशन के घोषणा-पत्र में कहा गया था

"इस गंभीर संकट के काल में हिन्दुस्तान के प्रगतिशील लेखकों का कर्तव्य है कि वे राष्ट्र के मनोबल को दृढ़ बनायें। उनका फर्ज है कि वे साहस और संकल्प को मजबूत करे, ताकि हमारी आजादी का दिन नजदीक आये, हमारी संस्कृति और सभ्यता सुरक्षित रहे, सबकी उन्नति हो और हम कठिन संकट-काल से स्वतन्त्र, शक्तिशाली और संगठित होकर निकल सकें। प्रगतिशील लेखक सदा से भारत की स्वतन्त्रता और देश में एक न्यायोचित सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था के लिये लड़ते रहे हैं। यही नहीं उन्होने हर प्रकार की सामाजिक प्रतिकिया और प्रगति विरोधी विचारधारा के खिलाफ भी संघर्ष किया है। हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता को उन्होने विश्व की स्वतन्त्रता के एक अभिन्न अंग के रुप में समझा है और जहां उन्होने जनता को हर-प्रकार के साम्राज्यवादी प्रभुत्व से मुक्त होने और अविछिन्न अधिकार की घोषणा की है, वहां उन्होने फासिज्म का विरोध भी किया है, जो साम्राज्यवादी सत्ता का खूंखार रूप है"।[१]

इस अधिवेशन के द्वारा भारतीय प्रगतिशील लेखकों का रचनात्मक कार्यो के लिये मार्ग प्रशस्त हुआ। वे और अतिरिक्त सतर्कता के साथ साहित्य सृजन में जुट गये।

" इस अधिवेशन में संघ का मुख्य कार्यालय लखनऊ से हटाकर बम्बई में लाया गया और सज्जाद जहीर को प्रधान सचिव बनाया गया। विष्णु डे और रव्वाजा अहमद अब्बास सहायक सचिव चुने गये। मामा बारेरकर कोषाध्यक्ष बने।"[२]

इसी बीच एक रोचक घटनाक्रम के तहत उर्दू के प्रगतिशील लेखकों का एक

१- प्रगतिवाद : शिवदान सिंह चौहान, पृ.सं. ३३७

२- कम्युनिज्म इन इण्डिया, पृ.सं. ४३३

अधिवेशन अक्टूबर सन् १९४५ को हैदराबाद में हुआ। प्रगतिवादी ढंग से जन-जीवन को विवेचित करने के लिये इस अधिवेशन का विशेष महत्व है।

"कृशन चन्दर की अध्यक्षता वाले उर्दू सम्मेलन का उद्‌घाटन कवयत्री सरोजिनी नायडू ने किया जिसमें अब्बास के अलावा उर्दू के कई अन्य लेखकों ने भाग लिया।"[१]

प्रगतिशील लेखक संघ का पंचम अधिवेशन बम्बई के उपनगर भिवण्डी में मई १९५० में श्रमिक कवि श्री अण्णा भाऊ साठे की अध्यक्षता में हुआ किन्तु अधिवेशन में शासन की दमनकारी नीति एवं रोक के कारण सोवियत लेखकों का एक प्रतिनिधि मण्डल शामिल न हो सका। इस सम्मेलन में डॉ॰ राम विलास शर्मा प्रधान सचिव चुने गये।

" प्रगतिशील लेखक संघ का छठवां अधिवेशन मार्च १९५३ में दिल्ली में हुआ, इसमें कृशन चन्दर जी को प्रधान सचिव बनाया गया।"[२]

इस सम्मेलन के घोषणा-पत्र में प्रमुख रूप प्रगतिशील आन्दोलन को एक व्यापक आधार देने के लिये प्रेरित किया गया।

" हमारी जनता अपने लिये उन्मुक्त और समृद्ध जीवन रचने के लिये प्रयास कर रही है। वह विश्व के सभी राष्ट्रों के साथ शान्ति और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करकें रखना चाहती है। हमें अपने साहित्य को मानवतावाद की प्रेरणा, जीव में आस्था और आलोकपूर्ण भविष्य की आशा से परिपूर्ण करना है।"[३]

सन १९५६ में प्रगतिशील लेखक संघ ने एशियायी लेखकों का सम्मेलन दिल्ली में आयोजित किया। प्रगतिवाद के विकास में यह एक महत्वपूर्ण कड़ी थी। इस सम्मेलन में वर्मा, लंका, चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया, नेपाल, पाकिस्तान, सीरिया, सोवियत संघ और हिन्द चीन के लेखकों ने भाग लिया।सम्मेलन में भारत के राष्ट्रपति उपराष्ट्रपति और प्रधानमंत्री जवाहर लाल जी ने भाषण दिये थे।[४]

१- प्रगतिवाद : पुर्नमूल्यांकन, हंस राज रहबर, दिल्ली, १९६६, पृ.सं. १४३

२- प्रगतिवादी समीक्षा, क्रास रोड्स, २२ मार्च १९५३, पृ.सं. १०७

३- प्रगतिशील आलोचना, रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव, पृ.सं. २६९

४- वही

इस अधिवेशन के माध्यम से लेखकों को उनके सामाजिक और साहित्यिक दायित्वों के प्रति सचेत किया था, इसके पश्चात सन १९६७, तक इसका कोई अधिवेशन नहीं हो सका। यद्यपि अन्य प्रगतिवादी साहित्यिक कार्यक्रम पूर्ववत जारी रहे।

प्रगतिशील लेखक संघ का अन्तिम अधिवेशन सन् १९६८ में दिल्ली में हुआ, सम्मेलन की अध्यक्षता डॉ॰ निहार रंजन की अध्यक्षता में हुआ, फलतः प्रगतिवादी साहित्य को व्यापक गति मिली उस काल की राजनैतिक और साहित्यिक स्थिति इसके अनुकूल प्रमाणित हो सकी। परिणाम स्वरूप धीरे-धीरे इस संघ का अस्तित्व ही समाप्त हो गया। किन्तु इसके बावजूद प्रगतिवादी साहित्य का एक वृहद परिमाण में निर्माण हुआ। स्पष्ट है कि प्रगतिवादी चिन्तन सारणी केवल काव्य तक ही सीमित ही नही रही, अपितु गद्य की विधायें कहानी उपन्यास निबन्ध आदि तक भी इससे प्रभावित थी। और प्रगतिवादी दृष्टिकोण से मूल्यवानं साहित्य का निर्माण हुआ।

इस प्रकार ऐसी ही सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में भारतीय जनता के सर्वतोमुखी मुक्ति आन्दोलन की सशक्त परम्पराओं की साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में हिन्दी साहित्य प्रगतिवाद विकसित हुआ।

इस अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के अनुकरण पर इसके समानांतर 'अखिलभारतीय हिन्दी प्रगतिशील लेखक संघ का भी निर्माण हुआ जिसका प्रथम अधिवेशन सन् १९४७ में महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन की अध्यक्षता में हुआ। राहुल जी ने प्रगतिवाद के स्वरुप को स्पष्ट करते हुये अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था।

"प्रगतिवाद कोई कल्ट या संकीर्ण सम्प्रदाय नहीं है। प्रगतिवाद का काम है प्रगति के रास्ते खोलना उसके पथ को प्रशस्त करना। प्रगतिवाद कलाकार की स्वतन्त्रता का नही, परतन्त्रता का शुत्र है। प्रगति जिसके रोम-रोम में भींज गई है, प्रगति ही उसकी प्रकृति बन गयी है।वह स्वयं सीमाओं का निर्धारण कर सकता है। उसकी सीमा अगर कोई है, तो यही कि लेखक और कलाकार की कृतियां प्रतिगामी शक्तियों की सहायक न बने। प्रगतिवाद कला की अवहेलना नहीं करता। यह रूढ़िवाद और कूपमण्डकता का विरोधी है।"[1]

१- हंस, अक्टूबर सन् १९४७

'अखिल भारतीय हिन्दी प्रगतिशील लेखक संघ के अतिरिक्त स्थान-स्थान में प्रादेशिक और जिला संघो का भी निर्माण हुआ जिनमें उत्तर-प्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ तथा काशी प्रगतिशील लेखक संघ विशेष उल्लेखनीय है। ''उत्तर प्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ'' विशेष उल्लेखनीय है। उत्तर प्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन सन् १९४१ में श्री राहुल सांकृत्यायन की अध्यक्षता में हुआ। द्वितीय अधिवेशन श्री नरोत्तम नागर की अध्यक्षता में सन् १९५० में तथा तृतीय अधिवेशन सन १९५२ में हुआ, जो कि हिन्दी और उर्दू के लेखकों का सम्मिलित अधिवेशन था। इस अधिवेशनों से प्रगतिवादी साहित्य के निर्माण में महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त हुयी।

काशी प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन पं. अम्बिका प्रसाद बाजपेयी की अध्यक्षता में सन् १९४२ में तथा द्वितीय अधिवेशन आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी की अध्यक्षता में सन १९४५ में हुआ। प्रथम अधिवेशन में जहां केन्द्रीय अथवा राष्ट्रभाषा तथा जनपदीय भाषाओं के विकास पर बल दिया गया, वहां द्वितीय अधिवेशन में प्रगतिशील लेखको से जातीय संकीर्णता एवम साम्प्रदायिकता से दूर रहकर साहित्य निर्माण का आग्रह किया गया। आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा-

''प्रगतिशील साहित्य से तात्पर्य नवीनतम प्रगति से है। यह विचार धारा अभी नवीन है, इसके मूल में समाजवादी राष्ट्रीयता है। हमारा प्रगतिशील साहित्य अभी स्वस्थ दिशा पर नही पहुंचा है। हमारी चेष्टायें अत्यधिक नकारात्मक है। हममें व्यंग्यात्मकता आ गयी है। हम बौद्धिक दृष्टि से क्रान्तिकारी है, किन्तु हमारी संस्कृतिक दृष्टि बदली नहीं हैं। यह वैषम्य नवीन साहित्य में स्पष्ट है। .... जो कुछ हो, पर इस नवीन आन्दोलन में प्राण है इसी से नवीन कला का जन्म होगा।''[१]

विभिन्न प्रगतिशील आन्दोलनों से हिन्दी साहित्य को व्यापक ऊर्जा मिली। श्री बाबू राव विष्णु पराडकर ने इस अवसर पर कहा था- ''राष्ट्रीय और प्रगतिशील साहित्य दो भिन्न-भिन्न वस्तुयें नहीं, प्रगतिशील साहित्य का राष्ट्रीय होना अनिवार्य है।''[२]

१- हंस, मार्च सन् १९४५

२- वही, पृ.सं. १९

प्रगतिवाद के विकास में इन आन्दोलनों के अतिरिक्त भिन्न मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक दैनिक-पत्र पत्रिकाओं का भी महत्व पूर्ण योगदान है, इनके माध्यम से जनपयोगी साहित्य प्रकाशित होता रहा। इसके साथ ही अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ (१९३६) के प्रथम अधिवेशन के दूसरे ही वर्ष बंगाल में बंग प्रगतिशील लेखक संघ का निर्माण हो गया था तथा प्रगतिवादी आन्दोलन का बल-प्रदान करने के लिये श्री सुरेन्द्र नाथ गोस्वामी तथा हीरेन्द्र मुखोपाध्याय के सम्पादकत्व में 'प्रगति' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन होने लगा, जिसमें बंगला के सुप्रसिद्ध लेखक श्री नरेन्द्र नाथ सेनगुप्त, भूपेन्द्र नाथ दत्त, विनय चट्टोपध्याय, विभूति भूषण, विधायक भट्टाचार्य, समरसेन आदि की रचनायें प्रकाशित होती थीं। इस प्रकार समूचे देश में प्रगतिशील साहित्य का व्यापक प्रसार हुआ।

कुछ लोगों ने हिन्दी साहित्य के प्रगतिवाद को अंग्रेजी के Progressive साहित्य का हिन्दी संरकरण तथा अभारतीय कहा है जो कि संगत नहीं है, न ही विवेचना योग्य है, क्यों कि यह साहित्य भारतीय जन-मानस के अनरूप रचा गया है।

"हिन्दी का प्रगतिवादी साहित्य यहां की सामाजिक आर्थिक राजनैतिक तथा साहित्यक परिस्थितियों की उपज है, हां इस पर अंग्रेजी तथा रुसी साहित्य का प्रभाव अवश्य पड़ा है। किन्तु यह पूरी तरह से भारतीयता से परिपूर्ण है, इसमें राष्ट्रीयता को स्पष्टतया देखा जा सकता है।"[१]

हिन्दी में प्रगतिवादी विचारधारा को लेकर बाबू प्रेमचन्द्र केक सम्पादकत्व हस प्रकाशित हो ही रहा था इसके अतिरिक्त सुमित्रानन्दन पंत और नरेन्द्र शर्मा द्वारा सम्पादित 'रूपाभा' तथा आचार्य नरेद्र देव, प्रोमचन्द और सम्पूर्णाननद के संयुक्त सम्पादन प्राकाशित 'जागरण' से प्रागतिवादी आन्दोलन को ऊर्ध्वगामी गति प्राप्त हुयी, और अनेक प्रगतिवादी लेखक एवं कवि अपनी महत्वपूर्ण रचनाओं को लेकर हिन्दी जगत में अवतरित हुये, जिनमें डॉ॰ रामविलास शर्मा, डॉ॰ वैद्यनाथ मिश्र 'नागार्जुन', त्रिलोचन शास्त्री, केदारनाथ अग्रवाल, प्रकाशचन्द्र गुप्त, रांगेय राघव, नरेन्द्र शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, अमृत राय प्रमुख थे।

प्रगतिशील आन्दोलन के उपरोक्त ऐतिहासिक विकास क्रम में स्पष्ट हो जाता है, कि

१- हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, शिवदान सिंह चौहान, पृ.सं. ५३६

इस आन्दोलन का संघबद्ध रूप अधिक दिनों तक क्रियाशील नहीं रह सका। इसके प्रारम्भिक दौर में इसे समर्थन देने वाले प्रेमचन्द और रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे महान सृष्टा मार्क्स की मान्यताओं पर आख्या रखते हुये भी उदार मानवतावादी थे, इसी कारण प्रगतिशील आन्दोलन काफी जोर-शोर से आरम्भ हुआ किन्तु शीघ्र ही उसमें तथाकथित मार्क्सवादी अपनी संकीर्ण भाव-भूमियों के साथ प्रविष्ट होने लगे और आन्दोलन का प्रभाव मन्द पड़ने लगा। इस प्रकार स्पष्टतया देखा जा सकता है कि-

"प्रारम्भिक चार अधिवेशनों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करके आन्दोलन अशक्त पड़ गया और इसका संगठित रूप बिखरने लगा। वास्तव में द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व प्रगतिवाद ने जो स्थान प्राप्त किया था, वह स्थान उसने युद्ध और युद्धोत्तर काल में कम्युनिस्ट पार्टी की नीति और प्रगतिवादी आलोचकों की अदूरदर्शिता पूर्ण आलोचनाओं के कारण खो दिया।[१]

प्रगतिवाद का मूल्यांकन करते हुये कवि सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखते हैं- "क्रमशः प्रगतिशील आन्दोलन में शील का स्थान वाद ने लिया था, जिनके नाम और प्रतिष्ठा के आधार पर प्रगतिशील लेखक संघ संगठित हुआ और पनपता रहा, हो एक-एक कर उससे अलग हो गये या अलग कर दिये गये।"[२]

जैसे ही इस आन्दोलन में वादीय भूमिका जोर पकड़ने लगी, वैसे ही इस आन्दोलन का दम घुटने लगा। आचार्य शुक्ल ने ठीक लिखा है- "काव्य क्षेत्र में किसी वाद का प्रचार धीरे-धीरे सरसता को चर जाता है। कुछ दिनों में लोग कविता न लिखकर वाद लिखने लगते हैं।[३]

प्रगतिशील आन्दोलन के साथ भी यही हुआ। प्रगतिशील आन्दोलन के तथाकथित समर्थक कविता की जगह वाद लिखने में ही अपनी सार्थकता समझने लगे। इन्ही दुराग्रहों के कारण प्रगतिशील आन्दोलन क्षीण पड़ गया। शमशेर बहादुर सिंह ने प्रगतिशील आन्दोलन

१- छायावादोत्तर काव्य, सिद्धेश्वर प्रसाद, पृ.सं. ४१

२- आधुनिक हिन्दी साहित्य, अज्ञेय, पृ.सं. ३२

३- आचार्य शुक्ल : प्रतिनिधि संकलन, सं. सुधाकर पाण्डेय, पृ.सं. १२६

की इस क्षीयमान रेखा को इन शब्दों में उजागर किया है।

"हिन्दी का प्रगतिशील साहित्य आन्दोलन सन् ३७-३८ से लेकर लगभग ५२ तक अपना जैसा-तैसा रोल पूरा करके खासा सशक्त हो गया। इस आन्दोलन में पन्त, निराला, नरेन्द्र, सुमन, और कुछ लोक कवियों के बाद जो चार कवि दृढ़ता से बराबर जनता के मनोबल में विश्वास रखते हुये अपना नाता उसकी आन्तरिक शक्तियों से जोड़ रहे थे, वे मात्र केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, नागार्जुन व मुक्तिबोध थे। शेष सभी कवि व्यक्तिगत साधनाओं की ओर उन्मुख होकर साहित्य की प्रगतिशील धारा के लिये खो गये।[1]

स्वयं प्रगतिशील आलोचक और कवि यह मानने को विवश हो गये कि प्रगतिशील आन्दोलन में संकीर्णता आती जा रही है।

प्रख्यात आलोचक डॉ॰ राम विलास शर्मा ने इस कमी की ओर इन शब्दों में संकेत दिया है-

"सन् १९४७ के बाद एक ओर सामाजिक दायित्व से बचकर साहित्य रचने की प्रकृति पंत के रहस्यवाद, भारत भूषण के प्रयोगवाद में बलवती हुयी। इन रुझानों का एक पक्ष यह था कि कला ही अवहेलना करके केवल सामाजिक विषय वस्तु पर बल दिया जाये। सिद्धान्त के अलावा व्यवहार में बहुत सी प्रगतिशील कविताएं ऐसी लिखी जाती थीं, जिसमें चीत्कार के अलावा न यथार्थवादी चित्रण होता था, न कलात्मक सौन्दर्य।"[2]

प्रगतिवादी काव्य का युग हिन्दी में अधिक काल तक (समय तक) भले ही न रहा हो किन्तु इसका चरम सीमा तक विकास एवं साहित्य की उपादेयता इसलिये भी रही क्यों कि प्रगतिवादी कविता यूं कहें कि सम्पूर्ण साहित्य सामाजिक जीवन की वास्तविकता को साथ लेकर चला, जनता तक पहुँचना और जनता के जीवन की बात कहना उसका लक्ष्य रहा है। उसने प्रतीक, बिम्ब, शब्द, चित्र, मुहावरे आदि सभी जन-जीवन के बीच से लिये। इसलिए एक बहुत ही जीवन्त भाषा का उदय हुआ।

इस सन्दर्भ में को व्यन्जित करते हुये डॉ॰ नगेन्द्र का यह कथन सर्वथा उचित ही है-

---

१- केदार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सं. श्री प्रकाश, पृ.सं॰ ४०

२- केदार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सं. श्री प्रकाश, पृ.सं॰ ४०

"प्रगतिवाद ने हिन्दी काव्य धारा के विकास में एक बहुत ही महत्वपूर्ण अध्याय जोड़ा, उसने काव्य को (साहित्य मात्र को) व्यक्तिवादी यथार्थ के बन्द कमरे से निकालकर जन-जीवन के बीच में प्रभावित किया, जीवन और साहित्य के मूल्य, सौन्दर्य बोध और लक्ष्य को समाज के यथार्थ और उसकी रचना में जोड़ा, भाषा को कुहरे से निकालकर धरातल पर प्रतिष्ठित किया।"[१]

प्रगतिवाद हिन्दी साहित्य के संसार में एक चमकते हुये तारे की भाँति है और प्रगतिवादी साहित्य हिन्दी जगत के लिये एक बहुमूल्य निधि है। प्रगतिवादी संघर्षों से जूझता हुआ निराश नहीं होता। उसे यह दृढ़ विश्वास है कि वह इस सामाजिक वैषम्य को दूर करने में समर्थ सिद्ध होगा। प्रगतिवादी साहित्य के महत्व को रेखांकित करते हुये डॉ॰ सुवास कुमार ने लिखा है-

"प्रगतिवादी साहित्य प्रतिबद्ध साहित्य होते हुये भी हिन्दी काव्य परम्परा तथा उसकी संस्कृति से विछिन्न नहीं था, प्रगतिवाद, छायावाद के व्यक्तिवादी दृष्टिकोण तथा उसके द्वारा समर्पित अवशिष्ट सामन्ती मूल्यों का तीव्र और प्रखर विरोध किया।

प्रगतिवादी का रुख अन्याय, शोषण तथा सामाजिक विसंगतियों के प्रति निषेधात्मक ही नहीं था, बल्कि प्रहारात्मक भी था। अतः प्रगतिवाद ने हिन्दी काव्यधारा को सम्पूर्णतया विघटित होने से बचाकर एक ऐतिहासिक कार्य किया।"[२]

प्रगतिवादी काव्य ने यथार्थपरक समस्याओं का सीधा साक्षात्कार करते हुये जीवन संघर्षों का सौन्दर्य निरूपित किया। गाँव, नगर, आचार-विचार और व्यवहार के यथार्थ सौन्दर्य की बानगी इस कविताओं में अनायास ही देखी जा सकती है। स्वयं को औरों से जोड़ने के लिए इनके पास, आत्मीयता, सहजता और जीवन की उदात्त भूमिका है। प्रगतिशील कविता में व्यक्तिगत कुंठा, निराशा का रुदन नहीं है। कवि न तो इस संसार को माया समझकर जीवन से पलायन ही करता है और न दुःख से घबराकर भाग्यवादी ही बनता है, प्रगतिशील कवि मनुष्य के अतिरिक्त किसी अन्य चरमसत्ता में विश्वास नहीं करता है। वह

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ॰ नगेन्द्र, पृ.सं॰ ६२५

२- छायावादी काव्य की प्रगतिशील चेतना, संतोष कुमार तिवारी, पृ.सं॰ ६१

मनुष्य की उत्कट जिजीविषा व मानवीय पौरुष में असीम विश्वास और आशा व्यक्त करता है, संघर्ष ही मनुष्य में चेतना, आत्मविश्वास, गौरव तथा मुक्ति की भावना भरता है। संघर्ष के द्वारा समाज परिवर्तन श्रम एवं कर्म बल पर नये समाज की रचना प्रगतिवादी कवि का लक्ष्य है। वास्तव में प्रगतिशील कविता के व्यापक दृष्टिकोण में मानवतावादी भावना प्रश्रय पाती है। यह एक ऐसा सृजन है जिसमें कला अथवा रूप की प्रमुखता न होकर जीवन्त तत्वों को महत्व मिलता है।''[१]

साहित्य की प्रगतिवादी अथवा प्रगतिशील दृष्टि का अर्थ रचनाकार के जीवन, समाज और समय की यथार्थ समस्याओं के उद्घाटन, वर्ग विरोधों में संघर्षरत जनता की प्रगति के सन्दर्भ में पक्षधरता एवम वैज्ञानिक मानववादी दृष्टिकोण से है। जीवन की वास्तवितकताओं व कुण्ठापूर्ण, निराश और हताशा का वर्णन प्रगतिशीलता नहीं है। असल में संघर्ष के साथ-साथ मानव के समुज्जवल भविष्य में आस्था प्रगतिशीलता की पहचान है।

इस प्रकार उपरोक्त सम्यक विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि छायावादी सुकुमार, वायवी कल्पनाशील चित्रण से ऊपर उठकर प्रगतिवादी साहित्यकार जीवन के वास्तविक धरातल से जुड़कर उन मूल्यों से अनुप्राणित साहित्य का सृजन करते हैं। जिसके माध्यम से आम-जनता और उसी से जुड़ी समस्याओं को मुखरित करने की सार्थक पहल करते हैं।

कवि केदार मार्क्सवादी विचारधारा को संजोये हुये साहित्यसर्जना करते रहे और हिन्दी साहित्य (काव्य में) जगत में अथवा महत्वपूर्ण स्थान बना सके।

केदार का पदार्पण-

हिन्दी कविता में आधुनिक काल के आरम्भ से ही प्रगतिशील चेतना मुखरित हो जाती है। हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल की शरुआत भारतेन्दु युग से मानी जाती है, क्योंकि इसी समय से आधुनिकता की प्रवृत्तियों का बोध होने लगा था। साहित्यकारों में जीवन और समाज के प्रति चेतना जागृत हो गयी थी, जिसके परिणाम स्वरूप साहित्य जीवन से जुड़ गया।

आचार्य शुक्ल ने इसका श्रेय भारतेन्दु को देते हुये लिखा है-

१- छायावादी काव्य की प्रगतिशील चेतना, संतोष कुमार तिवारी, पृ.सं. ६१

"भारतेन्दु ने ...... साहित्य को ...... हमारे जीवन के साथ फिर से जोड़ दिया। हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद पड़ गया था उसके उन्हेंने दूर किया।"[१]

इसका और अधिक स्पष्टीकरण अंग्रेजों की शोषण नीति के विरुद्ध भारतेन्दु जी की यह कविता है-

"भीतर-भीतर सब रस चूसै, हंसि-हंसि कै तन-मन-धन मूसै।

जाहिर बातन मा अति तेज, क्यों सखि सज्जन! नहिं अंग्रेज।।"

स्पष्ट है कि प्रारम्भ से ही शोषण के विरुद्ध स्वर उठते रहे हैं। इसी प्रकार द्विवेदी युगीन कवियों ने भी शोषण, अत्याचार और सामाजिक परिस्थितियों को अपने काव्य के माध्यम से उभारा है।

राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त की निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

भरते हैं निज पेट, अन्य के घर को भर के

घर पर हैं, पर बने हुये हम, पर के घर के।"[२]

इस प्रकार यह परम्परा छायावाद में मुखरित होकर सामने आती है। कवि के मन में शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूतिमयी करुणा का उदय हुआ है, कवि भगवती चरण वर्मा ने अपने काव्य संग्रह 'मानव' में सारे ग्रामों की दीन दशा का कारुणिक चित्र प्रस्तुत किया है।

"चरमर-चरमर चूं चरर, जा रही चली भैंसा गाड़ी।

उस ओर क्षितिज के कुछ आगे, कुछ पाँच कोस की दूरी पर।।

भू की छाती पर फोड़ों से हैं, उठे हुये कुछ कच्चे घर।

नर पशु बनकर पिस रहे जहाँ, नारियाँ जन रही गुलाम।

पैदा होना फिर मर जाना, बस इन लोगों का है काम।।[३]

छायावाद के समापन के साथ ही हिन्दी कविता में जो एक नयी विचारधारा या वाद आया वह था - प्रगतिवाद। प्रगतिवादी कविता वैसे तो छायावाद के समान्तर ही लिखी जा

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं. ३०६

२- सरस्वती, जनवरी १९१८, पृ.सं. ४१

३- हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ. शिवकुमार शर्मा, पृ.सं. ३२९

रही थी, पर उसका व्यवस्थित रूप तीसरे दशक के उत्तरार्द्ध से विकसित हुआ। जो कवि प्रगतिवाद से प्रभावित होकर कविता लिख रहे थे उन पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव था। साहित्यालोचक श्री वीरेन्द्र मोहन जी के अनुसार- ''इन कवियों ने रहस्यवाद, अध्यात्मवाद, और कलावाद ने कविता को मुक्त रखा तथा प्रगतिशील सौन्दर्य दृष्टि, विचार दृष्टि, या रचना सामर्थ्य को आगे बढ़ाकर नये यथार्थवादी सौन्दर्यबोध, साम्यवादी विचारधारा, मानवतावाद और लोक संस्कृति के उपादानों से कविता को समृद्ध किया।''[१]

केदारनाथ अग्रवाल भारतीय महोदधि के उज्जवल रत्न माने जाते हैं। इन्होनें प्रगतिवाद को नयी दिशा की ओर अग्रसर किया है। इनकी कविताओं में जीवन का यथार्थ रूप अनेक रंगों में उभकर सामने आया है। सामाजिक विसंगतियों, अर्थ-सामंती शोषण के विरुद्ध सार्थक आवाज उठाई और उन्हें अपनी कविताओं का विषय बनाया है। उनकी कविताओं में ओज और कलात्मक गुण कम नहीं है। केदार जी ने भारत के गौरव, श्रमिकवर्ग और बुन्देलखण्ड की धरती को नयी पहचान दी है।

हिन्दी जगत में बाबू केदार नाथ अग्रवाल का पदार्पण विद्वानों ने लगभग १९२७-२८ से माना है, इसका प्रमाण उनकी तोते पर लिखी कविता है जो पं॰ माखनलाल चतुर्वेदी की 'सेवा' पत्रिका में छपी थी, जब वो महज कक्षा ९ के विद्यार्थी ही थे।[२]

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। प्रगतिशील काव्यधारा मुख्यतः मार्क्सवाद को एक वैचारिक स्त्रोत के रूप में मानकर चलती हैं। इनकी कविता अपने समय से उग्र मुलाकात की-कविता है इसलिए एक ओर जहां वे पारम्परिक काव्य वस्तु में सौन्दर्य की खोज करते हैं वहीं सम-सामयिक जीवन जगत की घटनाओं, स्थितियों और मूल्यों को भी अपनी कविता का विषय बनाते हैं, प्रगतिशील मूल्यों के प्रति आस्थावान केदार पूँजीवादी शक्तियों के विरुद्ध खड़े होकर जनता को आन्दोलित करते हैं।

आधुनिक प्रगतिशील कवियों में कवि केदार शीर्षस्थ कवि हैं, इनके काव्य में ही नहीं वरन पूरे साहित्य में वास्तविक जीवन का यर्थाथ चित्रण अनेक रंगों में उभरकर सामने

१- समकालीन कविता की पहचान, वीरेन्द्र मोहन, पृ.सं॰ ८६

२- केदारनाथ अग्रवाल, सम्पादक अजय तिवारी, पृ.सं॰ २३०

आया है। साहित्यकार परमानन्द जी श्रीवास्तव के अनुसार- "वे रागधर्मी ही नहीं व्यापक अर्थ में जीवन धर्मी कवि हैं कोमलता ही नहीं, प्रखरता और उग्रता में भी वे सौन्दर्य देखते हैं। कर्म या संघर्ष का सौंदर्य भी उनकी कविता का एक प्रमुख विषय है।"[१]

कवि की जीवन-दृष्टि विस्तृत फलकों वाली है - 'गुलमेंहदी'। स्वयं कवि केदार ने अपनी कविता के बारे में परिचय देते हुये गुलमेंहीद, में लिखा है-"मेरी कविता न तो किसी अलौकिक मानस की कविता है और न तो अजूबे व्यक्तित्व की कविता हैं वह वस्तु जगत से प्राप्त हुये इन्द्रिय बोध की कविता है। वह वस्तु जगत से विकसित हुयी वाणी और भाषा की कविता है, वह न तो अलौकिक थी, न अलौकिक है, और न अलौकिक होगी। वास्तव में मेरी कविता स्वभाव से, स्वरूप से भाव और विचार छन्द और लय से शब्द और अर्थ से- भौतिकी रही है और भविष्य में भी भौतिकी रहेगी-----------मेरी कविता में जीवन के इस लोक के और इसी युग के भाव और विचार मिलते हैं। तभी तो मेरी कविता वस्तु-जगत से प्रभावित होती है और उसे भी प्रभावित करती हैं।"[२]

कृषक तथा श्रमिक के जीवन को इन्होंने अपनी कविता में इस खूबी से व्यक्त किया है कि जिससे लगता है मानों इन्होंने जीवन को करीब से देखा ही नहीं हो, बल्कि खुद उसे जिया हो। अतः उनकी कविता में कहीं भी अस्वभाविकता नहीं आने पाई है। साहित्यिक दृष्टि से 'निराला' से ये प्रभावित रहे हैं। मूलतः श्रृंगार-भावना से हटकर अपनी जमीन इन्होंने यथार्थ की पथरील मिट्टी में ढूढ़ी है एवं उसकी पर चलते रहे हैं। वैसे उनकी कुछ प्रारम्भिक कवितायें रूमानी सौदर्य से ओत-प्रोत अवश्य हैं पर उनमें भी जनवादी चेतना का धुंधला रूप अवश्य दिखाई पड़ जाता है। केदारनाथ अग्रवाल की कविता 'निरपेक्ष मनुष्य की कविता नहीं, बल्कि मनुष्य को उसक भरे-पूरे परिवेश और प्रकृति के साथ अभिव्यक्त करती हैं, यहां मनुष्य के पास उसकी पूरी दुनियां हैं। इसलिए उत्तरशती की हिन्दी कविता जब नये फैशन के कपड़ों की भांति अपना रूप बदल रही थी तो भी केदारनाथ अग्रवाल की कविता का स्वभाव और स्वरूप पहले जैसा ही बना रहा-उसे अपने को बदलने की कमी जरूरत नहीं

१- समकालीन भारतीय साहित्य (पत्रिका) वर्ष १९८७, अंक अप्रैल-जून

२- पहले कह दूँ, गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ७-८

महसूस हुयी। केदार जी की कविता अपने रूप और कथ्य के चलते कभी बासी नहीं पड़ती।

सुधी समीक्षक श्री अशोक बाजपेयी के शब्दों में "केदारनाथ अग्रवाल बड़े वरिष्ठ कवि हैं और उन्होंने अपने मुहावरों को अक्षत रहने दिया है। केदारनाथ अग्रवाल एक ऐसे कवि हैं जो परिपक्व होने के बावजूद एक तरह की आयुहीन कविता लिख रहे हैं। जो अभी तक पुरानी नहीं पड़ी है। ....अपनी विनम्रता और निराकांक्षा के बावजूद केदारनाथ अग्रावाल की कविता एक तरह का सार्थक प्रगीतात्मक दृढ़ कथन है।"[१]

इनकी कविता में प्रेम भी सामाजिक दायित्व का निवर्हन करते हुये ही, सामाजिक और मानवीय बनकर आता है। प्रेम, संस्कृति और संघर्षशील जनता-केदार काव्य के मोटे तौर पर ये तीन प्रिय विषय हैं और इन तीनों में कवि की सहज आस्था है। अक्सर ये तीनों आपस में जुड़कर उनकी कविता में उपस्थित होते हैं। प्रयोगवादी निराशा के माहौल में भी केदारनाथ ने श्रमिक कृषक की कर्मठता के आशापूर्ण गीत गाये और जिन्दादिली से कविता के माहौल को तरोताजा कर दिया। कवि केदार के साहित्य में पदार्पण से लेकर उनकी साहित्यिक यात्रा के विकास क्रम का अगर ग्राफ बनाया जाए तो उसमें क्रमिक उठान दिखाई पड़ती है। इसलिये अशोक त्रिपाठी मानते हैं कि -"कालक्रम के आधार पर उनकी कविताओं का अध्ययन करना, केदार जी की कविता के साथ ही साथ प्रगतिशील कविता की विकास मान धारा का भी अध्ययन होगा, जो तत्कालीन, तात्कालिक संदर्भों की रोशनी में, उस युग का एक संवेदनशील इतिहास भी हैं।"[२]

केदार जी के पदार्पण से काव्य सृजन के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। इनकी कविताओं का यद्यपि एक निश्चित भूगोल और स्थानीयता, बाँदा जनपद तथा केन किनारे की जमीन हैं फिर भी वह इन सीमाओं का अतिक्रमण करती है। यह कविता अपने स्वरूप में सार्वभौम और सार्वजनिक बन गयी है। देश की मानवीय चेतना, राष्ट्रीयता तथा अपने ऐतिहासिक-राजनैतिक सन्दर्भों की यह कविताच्युत नहीं होती। डॉ॰ कमला प्रसाद जी ने लिखा है कि, 'केदारनाथ अग्रवाल की कविता का स्वभाव हिन्दुस्तान की काव्य परम्परा से

१- कुछ पूर्वाग्रह, अशोक वाजपेयी, पृ.सं॰ १८०

२- कैफियत, कहे केदार खरी-खरी, पृ.सं॰ ११

जुड़ा है, परम्परा अर्थात विचार, भाव, बांध, भाषा तथा बिम्ब आदि सबकी परम्पराओं से उसकी संगति है। उनकी कविता हृदय से निकलती है।"[1] प्रगतिवादी चेतना को समाज में एवं साहित्य में सम्मानजनक स्थान दिलनें में जिन कवियों ने संघर्ष किया है उसमें डॉ. राम विलास शर्मा, शील, नागार्जुन, मुक्तिबोध, त्रिलोचन, शमशेर बहादुर, केदारनाथ अग्रवाल शंकर शैलेन्द्र, रांगेय राघ्वव, शिवमंगल सिंह, 'सुमन' आदि हैं।

जीवन-जगत के मूल्यों के सम्बन्ध में स्वंय आलोचक कवि केदारनाथ अग्रवाल कहते हैं-" जितना सचेत और जागरूक, संवेदनशील वह रचनाकार होता है, जो जनता से आया है, उतना कोई और नहीं। .... अपने बारे में कहता हूँ कि मैं जीवन के माध्यम से नहीं, बल्कि साहित्य के माध्यम से आया हूँ फिर मैंने जीवन का साहित्य पहिचाना और जीवन की पहिचान मुझे मार्क्सवाद ने कराई है।"[2]

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी काव्य चेतना के सशक्त कवि हैं। केदार जी प्रगतिवाद के अंग होते हुये भी पूरी कविता विधान की दृष्टि से अपना निजी वैशिष्टय रखते हैं। रामविलास शर्मा, नागार्जुन आदि प्रगतिवादियों के निकट सम्पर्क में रहने तथा प्राकृतिक झुकाव ने इनकी रचनाओं में व्यक्त सामाजिक चेतना को और अधिक नुकीला बना दिया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कवि केदार का प्रगतिवाद में पदार्पण उसके उन्नयन में एक सुखद मोड़ लेकर आया। इन्होंने लगभग छायावाद के समापन समय से ही रचनायें लिखना प्रारम्भ कर दिया था। कवि केदार का पदार्पण हिन्दी साहित्य जगत के लिये एक स्वर्णिम अध्याय से कमतर नहीं है। प्रगतिवादी साहित्य की रचनाशीलता व प्रगतिशील साहित्य में सच्चे अर्थों में प्रगतिशील गुण भरने में इनका उल्लेखनीय योगदान है। कवि केदार प्रगतिशील काव्यधारा के एक शीर्षस्थ कवि हैं।

केदार का जीवन-वृत -

प्राचीन काल से पूज्य भूमि महर्षि वामदेव की पावन जन्मभूमि 'वामदा' के नाम से वर्तमान बाँदा की पवित्र ऊर्जास्वित भूमि पर पुराकाल से समय-समय पर साहित्य, कला,

---

१- पूर्वाग्रह (पत्रिका) अंक ३४, सितम्बर-अक्टूबर १९७९, पृ.सं. ८-१०

२- वही

कविता, त्याग, तप बलिदान और ओजस्विता के महनीय विटप पनपते, पलते फूलते और फलते रहे हैं। इस धरती में वामदेव ऋषि ने ऋचाओं का रस पिलाया, राम ने रामत्व जमाया, सीता ने उत्कृष्ट सतीत्व का प्रदर्शन कर सम्पूर्ण नारी जाति का गौरव बढ़ाया और लक्ष्मण ने त्याग, साधना और जागरण का दीप जलाया, आदि कवि महार्षि वाल्मिकि ने रामकाव्य का स्रोत बहाया, व्यास ने महाभारत रचाया, गीतामृत का आकण्ठ पान कराया, तुलसी ने जनमानस को रामचरित मानस के मानसरोवर में डुबकी लगवाई रहीम ने इसे विपत्ति-विमुक्ति का स्थल बताया, बोधा ने विरह वारीश गाया, पद्माकर ने सर्वत्र काव्य का बसन्त फैलाया और इसी धरती पर काव्य इतिहास की कड़ी में एक और प्रमुख मुखरनाम जुड़ जाता है- कवि केदारनाथ अग्रवाल का, जिसने प्रगतिशील कविता की कर्णवती में खूब तन-मन धोया और धुलाया।

कविता महान मानवीय मूल्यों व संवेदनाओं से समन्वित अन्तस का उत्स है, सत्यं शिवं और सुन्दरं से सबको साक्षात्कार कराना उसका परम ललित लक्ष्य है। श्रेष्ठ कविता सबकी संचेतना को मनुष्यता के महारण्य में विचरण कराती है। और स्वयं पीड़ाओं का अश्रु पीती हुयी सबको ब्रह्मानन्द का रस बांटती हैं जब कवि की चेतना समाष्टि की चेतना बन जाती है, तभी वह सार्थकता, मूल्यवत्ता और अक्ष्य जीवन्तता को वरण करती हैं। इसी भाव परिधि में रहकर जो कवि समुत्कृष्ट सृजन समर्पित करता है वह काल जयी बन जाता हैं प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल ने मार्क्सवादी चेतना (दर्शन) को जीवन का आधार मानकर जन-साधरण के जीवन की गहरी व व्यापक संवेदना को काव्य में अवतरित किया है। प्रगतिशील हिन्दी कविता के प्रतिनिधि कवि (बाबू) केदारनाथ अग्रवाल जी का जन्म प्रगतिशील लेखक संघ कें जन्म से ठीक पच्चीस वर्ष पूर्व यानि १ अप्रैल सन् १९११ (सं. १९६८ वि.) चैत्र माह शुक्ल पक्ष द्वितीया शनिवार के दिन को बाँदा जनपद की बबेरू तहसील के 'कमासिन' नामक ग्राम में हुआ था। उस समय कमासिन स्वयं तहसील था।[1]

वर्तमान में गाँव कमासिन जनपद बाँदा मुख्यालय से ६५ किलोमीटर की दूरी पर पूर्वोत्तर दिशा में अवस्थित है। इसके उत्तर में लगभग ११ किलोमीटर की दूरी पर यमुना एवं

१- केदारनाथ अग्रवाल : सम्पा. अजय तिवारी, डॉ. अशोक त्रिपाठी पृ.सं. २२३

पूर्व दक्षिण दिशा में बागेश्वरी नदी विद्यमान है। इसको ठीक पूर्व दिशा में लगभग १६ किलोमीटर की दूरी पर विश्ववन्द्य महाकवि तुलसी की जन्मभूमि राजापुर स्थित है।

"बुन्देलखण्ड की कनेर प्रकृति और उसमें सूदखोर आढ़तियों की नगरी बाँदा जिले का यह गाँव है - कमासिन। जो कि आज भी विकास की बॉट जोह रहा है।" [१]

अपने गाँव के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं अपनी कविता "कमासिन मेरा गाँव" में लिखा-

"वर्तमान में ....। दिल्ली से दूर ....। बहुत दूर....। पीड़ित और पराजित .... अपमानित और त्रस्त। भय और भूख। बीमारियों से ग्रस्त। जी रहा है। मेरा गाँव कमासिन। टिमटिमाती हुयी लालटेन की तरह।[२]

जब मैं एक शोधार्थी होने के नाते गाँव कमासिन गया तो मुझे आज भी कोई विशेष सुखद तस्वीर नजर नहीं आई, वास्तव में मैं आहत भी हुआ। सन् १९२५-२६ में कमासिन तहसील न रहकर गाँव, और बबेरू जो पहले गाँव था वह तहसील बन गया था। कवि केदार की जन्मतिथि हाईस्कूल के प्रमाणपत्र में ६ जुलाई १९१० अंकित है, लेकिन कुण्डली के अनुसार यह तिथि गलत है। विद्यालय में गलत तिथि लिखाने के दो कारण हैं - एक तो यह कि पहली अप्रैल को मूर्खों का दिन माना जाता है, दूसरा यह कि केदार जी को जब स्कूल में भर्ती कराया जाने लगा तो निर्धारित तिथि से कम उम्र के थे। कवि केदार जी के बाबा श्री महादेव प्रसाद शहजादपुर, इलाहाबाद के निवासी थे, लेकिन अपने श्वसुर लाल प्रभुदास के इकलौते दामाद होने के कारण व उनके कारोबार की देखरेख करने के लिए कमासिन में घर जमाई बन गये थे। इनके बाबा ने कमासिन में व्यापार में काफी उन्नति की और अपने श्वसुर के मरने के बाद यहाँ के निवासी हो गये थे।

"कवि केदार का परिवार गाँव कमासिन का एक प्रतिष्ठित परिवार था, केदारन नाथ अग्रवाल के पिता श्री हनुमान प्रसाद अग्रवाल एक वैश्य कुलीन सम्पन्न किसान था। कमासिन से तीन मील दूर देवसांणा नामक छोटे से गाँव में उनकी १५० बीघा जमीन थी। जिस पर

१- आजकल, पत्रिका अंक १२, अप्रैल १९९५, पृ.सं. १३

२- आग का आइना, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं. १६३

खेती होती थी।[1]

कृषि के साथ-साथ कुलीन परम्परा के अनुसार घर में व्यापार भी होता था, किराने की दुकान थी, जिसमें गृहोपयोगी सभी आवश्यक वस्तुएं सुलभ रहती थी। समय-समय पर ऋण देने की भी व्यवस्था थी। घर में कोई कठोर धार्मिक वातावरण नहीं था। केवल एक पण्डित जी ठाकुर जी की पूजा के लिए नियुक्त थे। घर के ही ही सामने प्रत्येक वर्ष रामलीला का आयोजन होता था जिसकी व्यवस्था परिवार के सदस्य करते थे। वर्ष में कई बार गवैये भी इकट्ठा होते थे। पिताजी संगीत और साहित्य प्रेमी थे। उन्होंने गाँव में एक पुस्तकालय खोल रखा था। जिसमें कलकत्ता से निकलने वाला 'स्वतंत्र दैनिक' और बम्बई का 'वेंकटेश्वर समाचार' आता था। इसके अतिरिक्त वातावरण का प्रभाव कवि केदार के व्यक्तित्व पर पड़ना स्वाभाविक था।[2]

केदार जी की माँ का नाम घसिट्टो देवी था, क्यों कि एक अन्ध विश्वास के कारण उनकी माँ को जन्म लेते ही घसीटा गया था। इसी कारण इनकी माँ का नाम घसिट्टो देवी पड़ गया था। केदार जी का जन्म भी अन्धविश्वासी परम्पराओं के मध्य हुआ था। केदार जी को शैशवावस्था में ही चेचक निकल आई थी। पूरे शरीर में फफोले पड़ गये थे। इस चेचक जैसी गम्भीर बीमारी से बचाने के लिए उन्हें गाँव की एक पड़ाइन दाई को दान में दे दिया गया था और फिर उन्हें उन्हीं से उनके भार के बराबर द्रव्य देकर खरीद लिया गया था। केदार जी को जीवित रखने के लिए कई प्रकार के टोटके किये गये जैसे दीर्घजीवी होने के लिए उनके कान का एक हिस्स भी बचपन में काट दिया गया था। मान मनौतियाँ आदि हर प्रकार से दीर्घजीवी बनाये रखने के लिए उपाय किये जाते थे। इनके बाबा श्री महादेव प्रसाद दिन भर उन्हें रुई के फाहों में लेकर घुमाते थे। शैशवावस्था की इन घटनाओं को छोड़कर उनके जीवन में कोई बहुत बड़ी उतार चढ़ाव भरी घटनायें नहीं हैं। इतने महत्वपूर्ण व्यक्ति का इतना घटनाहीन जीवन देखकर आश्चर्य होता है।

कवि केदार जी के पिता श्री हनुमान प्रसाद जी शुरु से ही रसिक प्रवृत्ति के कला-

---

१- विवेक विवेचन, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १६३

२- गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल

प्रेमी व्यक्ति थे, उनके बचपन में एक बार मथुरा से रास मण्डली कमासिन आयी। उसकी रासलीला देखकर बालक हनुमान प्रसाद मण्डली के साथ जाने को मचल गये। इस स्थिति से उबरने के लिए इनके पिता लाला महादेव प्रसाद (पोद्दार) ने स्वर्गीय पं॰ रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' के पिता प॰ कुन्ज बिहारी शुक्ल की मदद से घर के सामने रासलीला का शुभारम्भ किया जिसमें वे खुलकर भाग लेने लगे और अपनी जिद छोड़ सकें। रासलीला के ही कारण श्री हनुमान प्रसाद साहित्य और संगीत के सम्पर्क में आये, सितार और हारमोनियम वह स्वयं बजाने लगे। "बाबू केदारनाथ अग्रवाल के पिता पुरानी रुचि के काव्य के रसिक थे, कविताओं का जमघट तो होता ही था, खुद भी 'मान' नाम से कविता लिखते थे। कह सकते हैं कि काव्य-प्रेम केदार जी को उत्तराधिकार में मिला, लेकिन केदार जी उन लोगों में से थे जो आधुनिक या उत्तर आधुनिक शब्दावली अपनाकर अपना प्रगतिवादी भावबोध अवतरित करते हैं।"[१]

इनके पिता जी ने बहुत सी कवितायें लिखीं, इनमें से कुछ तो नष्ट हो गयीं, जो नष्ट होने से बची उन्हें केदार जी ने एकत्रित करके पिता के द्वारा ही चुने हुये 'मधुरिमा' नाम से प्रकाशित कराया इसका प्रकाशन वर्ष १९८५ था, इस पुस्तक का प्रकाश 'परिमल प्रकाशन' से ही हुआ था। जिसमें हनुमान प्रसाद जी का कविनाम 'प्रेम योगी मान' छपा है। मान जी ब्रजभाषा में कविता लिखते थे, जिनमें से कुछ तो काव्य क्षेत्र में ब्रजभाषा के प्रचलन और कुछ 'रसाल' जी की मैत्री के प्रभाव के कारण इन्होंने ब्रज भाषा में काव्य लिखा।

"आगे चल कर श्री मैथिलीशरण गुप्त और हरिऔध जी के साहित्य का अच्छा अध्ययन करने के बाद, इन्हें खड़ी बोली के संस्कार प्राप्त हुये। इन्होंने एक पुस्तकालय भी खोला था, बाहर से 'स्वतंत्र दैनिक' 'वेंकटेश्वर समचार' 'प्रताप' तथा 'भारत' आदि अखबार आते थे, 'सरस्वती' तथा 'माधुरी' जैसी पत्रिकायें भी आती थीं केशव, बिहारी, देव, पद्माकर, मतिराम, घनानन्द, मैथिलीशरण गुप्त, 'हरिऔध', जयदेव आदि की रचनाओं के साथ भूतनाथ, चन्द्रकान्ता और 'चन्द्रकान्ता संतति' आदि जासूसी-तिलस्मी और ऐय्यारी

१- आजकल अंक १२, अप्रैल १९९५, पृ.सं. १३

२- गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल

उपन्यास भी पुस्तकालय में रखे रहते थे।"[१]

इस प्रकार ऐसे स्वस्थ एवं सांस्कृति वातावरण का कवि केदार के बाल-मन में अनुकूल प्रभाव पड़ा, घर के लोग हिन्दू रीति, धार्मिक परम्पराओं, रूढ़ियों को काफी हद तक मानते थे, किन्तु साम्प्रदायिक विद्वेष लेशमात्र भी न था। होली-दीपावली, दशहरा, ईद, मुहर्रम, पूरे गाँव में एक साथ मनाये जाते थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों कौमें एक-दूसरे के त्योहारों-जलसों में शरीक होती थीं। मुहर्रम पर ताजिये निकलनें पर केदार जी के घर में लोगों को शरबत पिलाया जाता था। गाँव के आस-पास के मंदिरों और मजारों पर आये दिन मेले लगा करते थे। मेलों का उल्लास और उसकी बहुरंगी छटा कवि केदार के बाल मन को बेहद आकर्षित करती थीं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि केदारनाथ अग्रवाल ने अपना काव्य लेखन बाल्यावस्था यानि कि चौथी कक्षा से ही प्रारम्भ किया।

इस सम्बन्ध में डॉ. अशोक तिवारी कहते है- "जब केदार जी कक्षा तीन में थे, तो एक बार दशहरे के अवसर पर 'नगर-दर्शन' कार्यक्रम पर उन्होंने दो सवैये याद करके बड़े शौक से सुनाये। दूसरे ही दिन सबेरे स्कूल में जब गणित का सवाल न लगा सकने पर पं. गिरजा दत्त ने सवैये सुनाने को लेकर व्यंग्य कसते हुये इनकी धुनाई की तो कविता सुनाने का शौक रफूचक्कर हो गया, जिसका असर बहुत समय तक बना रहा। वैसे भी केदार जी की याददाश्त बहुत अच्छी नहीं थी। शायद यही कारण है कि वे पढ़ने में बहुत अच्छे कभी नहीं रहे, हमेशा औसत दर्जे के विद्यार्थी रहे कयोंकि हमारे देश में शिक्षा का सम्बन्ध बुद्धि से नहीं, याददाश्त (तोता रंटत) वृत्ति से है।"[२]

केदार जी के बचपन में इनके घर पर घी-दूध बहुत होता था, सौ-डेढ़-सौ जानवर रहते थे। कपड़े और किराना की दुकान थी, लेन-देन का व्यापार भी था। घर के लोगों की उदार प्रवृत्ति के कारण उधारी वसूलने के लिये कभी किसी पर मुकदमा नहीं चलाया गया और न ही जोर-जबर्दस्ती की गयी। परिवार का वातावरण सुसंस्कृत तथा सुरूचिपूर्ण था। जिससे कवि के बालमन पर सुन्दर संस्कार के गुणों का प्रादुर्भाव हुआ। आम ग्रामीण

१- केदार के काव्य का साहित्यिक विवेचन, डॉ॰ सुरेश पाण्डेय, पृ॰सं॰ २१

२- डॉ॰ अशोक त्रिपाठी, केदारनाथ अग्रवाल, सं॰ अजय तिवारी, पृ॰ २२५

बालकों की तरह केदर जी की प्रारम्भिक शिक्षा भी गाँव कमासिन में ही हुयी, वे काठ की पाटी को कालिख से पोतते घुट्टे से घोंटकर चमकाते, बोरके (दवात) की गीली खड़िया से सेंठे की खड़िया से लिखते, ऊबने पर धूल में गोल घेरा (दायरा) बनाकर उसमें मक्खी मार कर रखते, धूप सरक जाने का इंतजार करते और छुट्टी होने पर 'आठ-पांच तेरा, भई छुट्टी की बेरा', चिल्लाते। पाटी, बोरका बस्ता लटकाये, शकल (सूरत) को कालिख से कलूटी बनाये घर भाग जाते।''[१]

कवि केदार की कक्षा तीन तक की शिक्षा गाँव में ही हुयी कक्षा तीन पास करके गाँव छोड़ते-छोड़ते केदार जी के चाचा श्री मुकुंदीलाल इलाहाबाद से बैट बाल, पतंग और साइकिल भी गाँव ले गये थे। बालक की रुचियों का विकास बचपन से ही आरम्भ होता है, कवि केदार जी के घर के सामने ही रामलीला होने से उनकी रुचि रामलीला और उसके पात्रों में उत्पन्न हुयी। बहुत से पात्र और कलाकार अपनी विशेषताओं के कारण उन्हें ताउम्र याद रहें- रावण का अभिनय करने वाले हनुमान सोनार आदमी का सिर थाल में रखकर रोंगटे खड़े कर देने वाले 'घेंयल' का स्वांग दिखानें में पारंगत जादूगर पं. सीताराम, परशुराम बनने वाले और सुपाड़ी काटते औचक में ही 'हाई-जम्प' लगाने वाले छरहरी काठी के मिडिल स्कूल मास्टर 'पंडित जी' लक्ष्मण शक्ति के दिन राम का विलाप देखकर आँसू बहाते दर्शक पं. कुन्ज बिहारी शुक्ल आदि। इसके अलावा गाँव में नौटंकी की शुरूवात करने वाले हलवाई शिवप्रसाद जी भी उनकी स्मृति के संगी रहे।

अनुष्ठान के अवसरों पर भागवत का सस्वर पाठ करने वाले पंडित जी का स्वर भी केदार जी के कान में गुंजायमान होता रहा है। सांस्कृतिक वातावरण अच्छा होने के साथ कमासिन गाँव का प्राकृतिक वातावरण भी अत्यन्त रम्य था, ढाक का जंगल भी पास ही था। केदार जी अक्सर जंगल में निकल जाते और हिरनों का चौकड़ी भरनादेखते या रात में सियारों की हुआँ-हुआँ सुनते। बाल सुलभ खेलों- गुल्ली डण्डा, गोली कबड्डी आदि में स्वाभाविक रुचि थी। स्कूल के अखाड़े में कसरत और कुश्ती में भी वे जरूर शामिल होते। ''गाँव के अधिकांश लोग गरीब थे, उच्च या मध्यम वर्ग के लोग बहुत कम थे। केदार जी

१- हंस, मार्च १९६७

गरीब बच्चों के साथ खेलते, उनके घर आते जाते और इस तरह एक-एक घर की गरीबी से बहुत अंतरंग रूप में परिचित होते रहे। इस मेल-जोल का उनके बाल-मन में ऐसा अमिट प्रभाव पड़ा कि बाद में जब उनका कवि रूप प्रकट हुआ, तब यह दुःख दर्द और संघर्ष, हाड़ तोड़ मेहनत, अमीरी की ओढ़ी हुयी ठसक की तुलना में, गरीबी की सहजता, निर्मलता आदि उनकी कविता में हजार-हजार कंठों से फूट पड़ी।"[1]

कवि केदार में भेद-भाव की भावना बचपन से छू ही नहीं गयी थी, वास्तव में वे प्रेमभाव के ही दास थे, कुर्क अमीन मुंशीराम सहाय उन्हें बहुत प्रेम करते थे। उनके घर ग्रामोफोन था केदार जी को गोद में उठा ले जाते, कबाब खिलाते और ग्रामोफोन सुनाते। घर की नौकरानी बतसिया अहीरिन के स्नेह के कारण उन्हें अपने घर के पकवानों से अधिक बतसिया के घर का बासी रोटी और मट्ठा रुचिकर लगता था।

गाँव कमासिन से केवल तीन तक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात इन्हें रायबरेली सन १९२१ में जाना पड़ा।रायबरेली में इनके बाबा गया प्रसाद रहते थे, यहाँ कक्षा चार में दाखिल होने के बाद उन्होंने बड़े मनोयोग से पढ़ना और पाठ घोटना शुरू किया।

गाँव आने-जाने का सिलसिला भी कुछ कम हुआ, कमासिन जाना या तो बड़े दिन की छुट्टियों में या गरमियों में हो पाता था रास्ता बीहड़ था, रुकते-रुकाते, इलाहाबाद होते हुये जाना पड़ता था। इलाहाबाद में ऊँची मण्डी मुहल्ले में एक सम्बन्धी के यहां वे रुकते थे वहां 'रसाल' जी के भतीजे चन्द्रमौलि शुक्ल से भेंट हुयी और उन्हीं से बाल-पत्रिका 'शिशु' लेकर पढ़ने का मौका मिला। 'शिशु' की कवितायें उन्हें प्रिय लगती थी, काव्य के प्रति रुचि गाँव में ही विकसित हुयी थीं, गद्य के प्रति विशेष रुचि कवि में विशेष नहीं रही।"[2]

केदार जी जिस चीज में सबसे ज्यादा डरते थे-वह थी स्कूल में पड़ने वाली मार। जब वे रायबरेली पढ़ने गये तो सोंचा कि अब पढ़ाई में पड़ने वाली मार से मुक्ति मिलेगी, लेकिन नहीं यहां उनका फिर उसी से सामना हुआ। "अंग्रेजी के खलील मास्टर सौ-सौ जुमले एक साथ ट्रांसलेशन के लिये देते थे और काम पूरा न करने पर, बेंत से धुनाई करते

१- केदारनाथ अग्रवाल, अशोक त्रिपाठी

२- डॉ॰ अशोक त्रिपाठी, केदारनाथ अग्रवाल, सं॰ अजय तिवारी

और वह ऐसी कि रूह कांप जाती, इसी डर से केदार जी इनका काम, घर के दरवाजे पर पड़े, एक पत्थर पर बैठकर जरूर पूरा करते, भूगोल मास्टर रोज तो नहीं मारते थे, लेकिन जब लड़के कई बार लगातार काम करके न ले जाते, तो उनका भी 'प्यार' से बच्चों का हृदय जीत कर पढ़ाने का आदर्श हवा हो जाता, और उसकी जगह पर खलील मास्टर साहब का 'बिनु भय होय न प्रीति' का सिद्धान्त जमता। उनकी बेंत का एक-एक निशान हाथ-पांव, पीठ पर गिना जा सकता था। संस्कृत के पहलवान छाप 'मुचंडम' पण्डित जी का विश्वास पढ़ाई पर कम, बुद्धि तेज करने, स्मरण शक्ति बढ़ाने के नुस्खों पर अधिक था। बच्चों को भी वो नुस्खें बताया करते थे और रूप रटाया करते थे न रटने पर शुद्ध भारतीय मुक्के का पराक्रम दिखाया करते थे''।[१]

इन्हें विषय की कक्षाओं में आनन्द न आता था। नेचर स्टडी, और 'मैंनुअल ट्रेनिंग' की कक्षायें बेहद प्रिय थीं, नेचर स्टडी की कक्षा में क्यारी बनाते, आलू बोते, सब्जी लगाते, सिंचाई गुड़ाई करते। उन्हें नरम-नरम मिट्टी अच्छी लगती थीं। कॉपी पर पत्तियाँ चिपकाना इस कोर्स का हिस्सा था, जिसने वनस्पतियों से केदार जी का घनिष्ठ परिचय कराया। मैनुअल ट्रेनिंग में कागज की नाव बनाते, रंग-बिरंगे कागजों से तरह-तरह के खिलौने बनाते। इन सब उन्हें बहुत मजा आता था। वैसे केदार जी रायबरेली में केवल तीन वर्ष ही रहे अर्थात यहां कक्षा ४ से ६ तक की शिक्षा ही प्राप्त की, किन्तु फिर भी उनके क्रमिक निर्माण व विकास में रायबरेली की महत्वपूर्ण भूमिका रहीं। जब ये यहां पहुंचे, तब रायबरेली पर उर्दू जबान और मुसलमानी तहजीब का बहुत प्रभाव था, ताजिए निकलते-मर्सिया पढ़े जाते, लोग रोते-पीटते सड़कों पर निकलते। केदार उन्हें देखते-सुनते, और उनकी आँखें गीली हो जाती गरीबी और भूख का ताण्डव केदार जी ने यहां देखा और समझा। यहीं किसी गिरधारी लाला की कोठी में उनके पिता लाला शिवप्रसाद की बरखी थीं, शहर के गरीब भिखारियों (भूखों) को बुलाया गया-लगा मानो साक्षात भूख ही झुण्ड बनाकर आ गयी हैं, लोग खाते तो थे ही, पूड़िया, कचौड़िया, मिठाइयाँ अपने-अपने कपड़ों में चुरा कर भी ले जा रहे थे, वैसे भूख का भयंकर रूप एक बार वे अपने गाँव कमासिन में

१- समकालीन भारतीय साहित्य (पत्रिका) वर्ष १९८६, अंक जनवरी-फरवरी

भी देख चुके थे-जब गाँव के भूखे लोग, इसके बाबा के गोदाम से पुराने महुवे को पाकर कृत-कृत्य हो गये थे। लेकिन संवेदना के स्तर पर भूख-भवानी के जलजले की अनुभूति वे यहीं कर सकें।

कवि केदार के बालमन को बाढ़ के उल्लास का प्रत्यक्ष अनुभव यही हुआ, एक बार सई नदी में बाढ़ आ गयी और किले तक पानी आ गया थां यही उन्होंने अन्य तमाम चीजें भी पहली बार देखीं मसलन पतंगबाजी, बटेर बाजी, तारा देवी का सर्कस आदि।

"यहीं पर केदार जी ने पहले-पहल औरतों की चिट्ठियाँ लिखने का कम किया और उनक तमाम अनबूझ पक्षों को जानने-समझने का अवसर मिला। वे यह जान सके कि सिर्फ औरत ही मर्द के लिये नहीं होती, मर्द भी औरत के लिये होता है और तभी से अपने गाँव की हष्ट-पुष्ट सुन्दी और ननकी जैसी पनिहारिनों को अपने-अपने सिर पर पानी के भरे दो-दो, तीन-तीन पीतल के हंडे रखें, काँख में गगरा दबाए, एक हाथ में घड़ा लटकायें, एक साथ लेकर, बलखाते चलता देखकर, केदार जी मतिराम, देव, पद्माकर, बिहारी छंदों से प्राप्त नारी सौन्दर्य की भावना की साक्षात अनुभूति कर सके।[१]

यहीं पर एक दिलचस्प बाकया हुआ-सूरजपुर मुहल्ले के हनुमान मंदिर में केदार जी और इनके साथी परीक्षा पास करके प्रसाद चढ़ाने जाते तो वहां के पुजारी बरफी (मिठाई) निकाल लेते और केवल बताशा छोड़ देता। एक बार इन लोगों ने सलाह करके दोने (पात्र) के निचले हिस्से में बरफी रखी और ऊपर के बताशे ही पा सका। मंदिर से निकलते ही अपनी इस चाल की सफलता पर सब लोग ठहाका मारकर हंसे और खूब बरफी खाई इसी दौरान केदार जी के पिता श्री हनुमान प्रसाद अग्रवाल घर से रूष्ट होकर पत्नी के साथ कटनी (म.प्र.) चलें गये। इनकी छठवीं कक्षा के आगे की शिक्षा यहीं शुरू हुयी, जब ये कक्षा सात में पढ़ रहे थे तभी इनका विवाह हो गया था, इनकी पत्नी का नाम पार्वती देवी था। यही इनका परिचय रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के पिता पं. मातादीन शुक्ल से हुआ जो उनके पिता के मित्र थे ओर बाद में 'माधुरी' के संपादकीय विभाग में चले गये थे। उन सबकी बातचीत सुनकर केदार जी को भी कविता-कहानी लिखने का चाव हुआ उन्होंने 'चूहे का

१- विवेक विवेचन, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १६३

ब्याह' तथा 'चिड़िया' आदि पर कविता-कहानी लिखी, लेकिन 'शिशु' से अप्रकाशित वापस चली आयी; फिर भी केदार जी निराश होने के बजाय प्रसन्न ही हुये।

कटनी में एक साल रहने के बाद ये अपने पिताजी के साथ जबलपुर चले गये। इनके पिता जी वहां 'वैद्य की' करते थे और बाकी का समय अपनी काव्य चर्चा तथा काव्य रचना को देते थे। जबलपुर उस समय अच्छा साहित्यिक वातावरण थे, मिलौनींगज मुहल्ले एक बाग में पं॰ गंगा विष्णु पाण्डेय, राजेन्द्र सिंह, पं॰ कामता प्रसाद गुरु, पं॰ प्रेमनरायण त्रिपाठी, मंगल प्रसाद विश्वर्मा, गुलाब प्रसन्न शाखाल, तथा केदार जी के पिता जी आदि इकट्ठा होते और साहित्य चर्चा होती समस्या पूर्तिया होती। केदार जी भी जाते थे। यहीं एक काव्य गोष्ठी में उन्होंने सुभद्रा कुमारी चौहान को देखा। इस गोष्ठी में सबको कविता पाठ करते देखकर केदार जी को भी कविता सुनाने का शौक लगा और उन्होंने अपने पिता जी की एक रचना 'तेग शिवराज की' पं॰ कामता प्रसाद गुरु की गोद में बैठकर सुनाई और सबको प्रसन्न चित्त कर दिया किन्तु घबड़ाहट के कारण परेशान भी हो गये। जबलपुर में ही केदार जी ने निराला-विरोध का स्वर सुना। निराला जी द्वारा संपादित 'मतवाला' पढ़ा और देखा। उस समय कविता में ब्रजभाषा का ही बोल-बाला था। खड़ी बोली रचनायें भी हो रहीं थीं, लेकिन बुजुर्गों के विरोध और उनके दब-दबे के कारण उभर नहीं पा रहीं थीं। ऐसे में निराला जी छन्दों के बन्धन से कविता को मुक्त कराना भला-पुराने लोगों को क्यों रुचिकर लगता? यहीं पर गुलाब प्रसन्न शाखाल, जो आगे चलकर सेठ गोविन्ददास के सेक्रेटरी हो गये थे, ने केदार जी को 'रवीन्द्र कविता कानन' पढ़कर सुनाया था।

सन् १९२७ में आठवीं कक्षा पास करने के बाद केदार जी अपने पिताजी के साथ इलाहाबाद चले आये और साथ ही निराला जी विरोधी स्वर एवं ब्रजभाषा भी साथ ले आये। सरस्वती के माध्यम से यहीं खड़ी बोली काव्य से भी केदार जी का परिचय स्थापित हुआ। केदार नवीं में दाखिल हुये, इनकी ननिहाल नैनी में थीं, रसाल जी द्वारा स्थापित 'रसिक-मण्डली' में कविता, सवैय्या और समस्या पूर्ति वाले ब्रज भाषा के कवि आते थे। केदार जी इन गोष्ठियों के माध्यम से ब्रजभाषा की ओर झुके। पं॰ माखनलाल चतुर्वेदी 'मालिन' वाली कविता के वजन पर 'तोते' पर लिखी केदार जी की कविता 'सेवा' पत्रिका में छपी। बाल-

पन में कवि केदार हंसोड़ प्रवृत्ति के थे किन्तु नवीं कक्षा के बाद दसवीं में गौना होने और कविता के प्रति गंभीर होनें के बाद उनके स्वभाव में भी गंभीरता आ गयी। इस समय केदार जी विद्यार्थी और पति की दुहरी जिम्मेदारी संभाल रहे थे। केदार जी को पत्नी से अगाध प्रेम मिला। वे जब इण्टर में थे तभी उन्हें एक कन्या-रत्न की प्राप्ति हुयी।

इण्टर तक आते-आते केदार जी कवित्त सवैये लिखने लगे थे और 'सेवा' तथा कालेज मैग्जीन में छपने लगे थे। 'उमर खय्याम' की रुबाइयों का फिटजेराल्ड ने 'गोल्डेन ट्रेजेडी' नाम से अनुवाद किया था। उसके कुछ छन्दों का हिन्दी अनुवाद केदार जी ने किया जो कालेज मैग्जीन में छपा और प्रशंसित भी हुआ। काव्य के प्रति उत्साहित करने में इनके हिन्दी अध्यापक और 'प्रसाद की नाट्य कला' (सन १९३१) जैसी चर्चित कृति के लेखक पं॰ रामकृष्ण 'शिलीमुख' जी का विशेष योगदान है तो राजनैतिक चेतना जागृत करने में भूगोल के मास्टर पं॰ रामनारायण का जो 'भूगोल' नाम का अखबार निकालते थे और गांधी जी से प्रभावित होकर, गाँव-गाँव कांग्रेस का झण्डा उठाये घूमते थे। केदार जी भी इसके साथ गाँव-गाँव घूमा करते थे।

इसी दौरान केदार जी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय हिन्दू हॉस्टल की एक गोष्ठी में पंत जी को देखा। गोष्ठी की अध्यक्षता श्री हरिऔध जी कर रहे थे, पंत जी को देखकर केदार जी ने 'सुन्दर युवती' कहा तो रसाल जी ने कहा -'अबे ये पन्त है, युवती नहीं।' इंटर में ही केदार जी ने 'निराला' जी से भेंट की, प्रारम्भ में 'निराला' जी से ये विशेष प्रभावित नहीं हुये। केदार जी उन दिनों बालेन्दु, नाम से गीत लिखते थे, जो 'माधुरी' और कभी-कभी 'सरस्वती' में भी छपते थे। बी.ए. में आने तक नये कवियों में केदार जी स्वीकार किये जाने लगे थे। केदार जी का इलाहाबाद में ही नरेन्द्र शर्मा और शमशेर सिंह से परिचय हुआ, ये सब एक ही क्लास में थे। बाँदा वासी कथाकार ठा॰ वीरेश्वर उन दिनों यहां एम.ए. के छात्र थे। सभी लोग हिन्दू हास्टल में रहते थे। डॉ॰ रामकुमार वर्मा के घर एक गोष्ठी में केदार जी ने मालवीय जी की उपस्थिति में कविता सुनाई। गोष्ठी में कविता सुनाना और प्रशंसित हो जाना तो केदार जी के लिये सम्भव थे, लेकिन कवि सम्मेलनों में वे सांसत का अनुभव करते थे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में आयोजित एक कवि सम्मेलन में वे नरेन्द्र, शमशेर

व श्री हरिवंश राय 'बच्चन' जी के साथ गये वहां प्रसाद जी भी थे। केदार जी तो किसी तरह एक कविता सुनाकर झटपट बैठ गये, लेकिन 'बच्चन' जी खूब जमें।

बाराबंकी में अंचल जी द्वारा आमंत्रित कवि-सम्मेलन में नाटकीय घटनायें हो जाने से केदार जी कविता सुनाने से बच गये, तो उन्हें बड़ी राहत मिल, चालीस रुपये मिले यह अतिरिक्त संतोष था। कवि केदार पंत जी से प्रभावित तो थे पर उनके घर आते-जाते थे। अलबत्ता पन्त जी ही एक बार उनके कमरे में आये। उस समय बी.ए. दो वर्षों का होता था, केदार जी इन दोनों (बी.ए.) वर्षो में 'हिन्दी साहित्य परिषद' के सचिव थे। उन्होंने अपनी गोष्ठियों में विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' और मुंशी प्रेमचन्द्र जैसे लेखकों को आमंत्रित किया था। नरेन्द्र-शमशेर से उनकी मित्रता इन वर्षो में गाढ़ी होती गयी। शमशेर ने अंग्रेजी कवियों से केदार जी का परिचय कराया। केदार जी कीट्स से विशेष प्रभावित थे, कवि 'शैली' से उनकी पसन्द मेल न खाती थी, उनकी मित्रता डा॰ राम विलास शर्मा से होने के कारण यह पसन्द और दृढ़ हो गयी।

"केदारनाथ अग्रवाल जी को शमशेर जी की एक आदत इतनी प्रिय थी कि उन्होंने इसे अपना लिया, वह यह थी कि शमशेर न दूसरों की निन्दा स्तुति में पड़ते थे, न खुद दूसरे की निन्दा-स्तुति की परवाह करते थे। वे अपने में मुग्ध होकर अपना काम करते। दूसरे की परवाह किये बगैर अपने काम में तल्लीनता भी केदार जी का एक विशिष्ट गुण रहा है। काव्य-सृजन क्षेत्र में भी उन्होंने अपने अन्तस की उपज को ही विशेष महत्व दिया।"[१] केदारनाथ अग्रवाल जी की साहित्यिक व्यस्तता १९३२-३३ से और अधिक ही हो गयी, साहित्यिक कार्यक्रमों को आयोजित करना, इन गोष्ठियों, कवि सम्मेलनों में जाने का क्रम-सा बन गया था। बी.ए.फाइनल के 'अंग्रेजी-प्रोज' के पेपर में वे फेल हो गये। सन १९३५ में बी.ए. की परीक्षा पास करने के बाद वे इलाहाबाद छोड़कर कानपुर आ गये। कवि केदार जी के लिये कानपुर का जीवन अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, जीवन की यथार्थता का बोध यही हुआ। मजदूर वर्ग की विचारधारा तथा मजदूर जीवन की परिस्थितियों से उनका साक्षात्कार कानपुर में ही हुआ, कानपुर की मिलों, फैक्टरियों, कारखानों आदि से इनके

१- आज़कल, अंक-१२, अप्रैल १९९९, पृ.सं. २१

मनो-मस्तिष्क में संवेदना उपजी। आगे चलकर इसी ने काव्य में स्थान लिया। उन दिनों बालकृष्ण बलदुआ के इर्द-गिर्द प्रगतिशील विचारों और साहित्यिक संस्कारों का माहौल था। केदार जी इनके सम्पर्क में आये और इनके माध्यम से इन्होंने बहुत सा विदेशी साहित्य पढ़ा, पाश्चात्य रचनाकार (कवि) सैफो से इन्होंने यह सीखा कि कवितायें लम्बी नहीं, बल्कि छोटी कवितायें लिखी जायें, जो सार्थक व युक्ति संगत हों।

संगीत समारोहों में नियमित आवागमन से इनकी शास्त्रीय संगीत की रुचि में अभिवृद्धि हुयी, पं॰ छैल बिहारी दीक्षित 'कंटक', डॉ॰ मुंशीराम शर्मा 'सोम' आदि से भी परिचय कानपुर में हुआ, छायावाद पर केदार जी ने यहां रहते हुये एक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने एक मेडल भी प्राप्त किया था, तथा कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' इससे बहुत प्रभावित हुये।

"निराला जी एक कवि सम्मेलन में कानपुर पधारे, जहां केदार जी को पहली बार उनके व्यक्तित्व को जानने का मौका मिला, केदार भी निराला जी के पास लखनऊ आने-जाने लगे। निराला जी के व्यवहार की जो छाप केदार जी पर सबसे अधिक बढ़ी, वह थी उनका आतिथ्य संस्कार। जब केदार जी अपने दो मित्रों के साथ साइकिलों पर कानपुर से लखनऊ निराला जी के पास मिलने गये, तब महाकवि की आत्मीयता ने सबको मन्त्रमुग्ध कर दिया, इन लोगों को होटल में खाना खिलाने का आदेश देकर वे पानी और झाड़ू लेकर अपने आवास की सफाई में जुट गये, लौटकर जब केदार जी ने निराला जी को इस हाल में देखा तो सुखद आश्चर्य में भरकर उनके और मुरीद हो गये।[१]

कवि केदार जी सन १९३८ में ही वकालत पास करे कानपुर से बाँदा आये और यहीं के हो गये- इनके तीन संताने हुयीं दो पुत्रियाँ श्यामा और किरण तथा एक पुत्र अशोक। केदार जी ने सामाजिक रूढ़ियों की परम्परा रूपी जंजीर को तोड़ते हुये अपनी एक पुत्री का पुनर्विवाह किया था। इनके सुपुत्र अशोक अग्रवाल मद्रास में कई फिल्मों के चर्चित व पुरस्कृत छायाकार हैं इनकी पुत्र वधु ज्योति इनका बहुत आदर व सम्मान किया करती थी। बाँदा में इन्होंने अपने संयुक्त परिवार के मुखिया तथा उस समय के प्रसिद्ध वकील श्री

१- हंस, नवम्बर १९४३

मुकंदीलाल जी के साथ वकालत शुरू की। उस समय उनके पास यदि पांच सौ रुपये होते तो वे आवश्यक राशि जमा करके तभी 'एडवोकेट' बन गये होते पर मात्र पच्चीस रुपये जमा करके 'प्लीडर' ही बन सके। स्वाभिमान के कारण चाचा जी से रुपये मांगे नहीं और चाचा ने अपने आप दिये नहीं। चाचा का अनुशासन परिवार में सबसे विकट था और कविता से उन्हें बहुत चिढ़ थी। फलस्वरूप, केदार जी एक ओर रात में छिपकर कविता लिखने लगे और दूसरी ओर केन नदी में नियमित सैर करने लगे। स्वभाव भी धीरे-धीरे अर्न्तमुखी हो गया, केन कवि को आत्मीयता, राहत और उन्मुक्तता देती। वह उनकी प्रेरणादायिनी सखी बन गयी, उनकी संवेदनायें केन से जुड़कर कविता में ढलने लगी। प्रकृति के साहचर्य से केदार जी को एक नूतन दृष्टिकोण तथा नया उत्कर्ष मिला। चाचा जी की भूमिका केदार जी के लिये नकारात्मक रूप से लाभप्रद हुयी। लेकिन उनके दब-दबे को केदार जी का विद्रोही मन कभी स्वीकार न करता था। इसलिये सन १९६५ में उनकी मृत्यु के बाद कदार जी को अपने ऊपर आ पड़ने वाली जिम्मेदारियों की चिन्ता उतनी नहीं हुयी, जितनी यह सुखद अनुभूति

"छाँह की छतरी फटी

आलोक बरसा

अब मिला

जिसके लिये मैं नित्य तरसा"[1]

अदालत में कवि को जीवन के कटु सत्य से और आदमी के वैभव के उज्जवल-मलिन पक्षों के एक-एक रंग रेशे से साक्षात्कार करने का अवसर मिला। इन अनुभवों ने केदार जी की रचना धर्मिता को बहुत गहराई से प्रभावित किया। इन्हीं दिनों कवि केदार की काव्य क्षेत्र में खूब धाक जमीं। किन्तु वकालत में वे स्थापित नहीं हो पा रहे थे, वकालत में सफल न हो सकने के कारण, केदार जी बहुत परेशान थे जिनका जिक्र उन्होंने अपने मित्र रामविलास शर्मा से भी किया, ऐसे उदासी के क्षणों से उबसे के लिये उन्होंने बाबू वृन्दावन लाल वर्मा के यहां जाने की सलाह दी, लेकिन केदार जी पलायन वादी नहीं बने और खुद

१- डॉ॰ अशोक त्रिपाठी, केदारनाथ अग्रवाल, सं॰ अजय तिवारी, पृ.सं॰ २३३

संघर्ष किया। उनके अदम्य साहस और दृढ़ इच्छाशक्ति ने उन्हें सफलता प्राप्त कराई, वकालत प्रारम्भ करने के तीन-चार साल बाद केदार जी बीमार हुये। प्राकृतिक चिकित्सा के लिये वे लखनऊ गये। निराला जी तब यहीं रहते थे, राम विलास जी भी वहीं थे, केदार जी ने उनसे खूब बहस करते और मार्क्सवाद के वैज्ञानिक जीवन दर्शन को अधिकाधिक आत्मासात करते। गिरिजा कमार माथुर, अमृतलाल नागर, नरोत्तम नागर, बलभद्र दीक्षित 'पढ़ी' आदि से भी मैत्री और घनिष्ठता इस यात्रा के दौरान ही हुयी। यहीं उन्होंने राम विलास जी के हाथ की 'हाथपोई' रोटी खाई, जिसकी मिठास कवि के हृदय अंकित हो गयी, और कविता में व्याप्त होकर अमर हो गयी-

"स्वादी संसारियों को
मेरी कवितायें दोस्त।
वैसी ही रुचैगी, जैसे
रोटी हथपोई मुझे
परवर के सूखे साग,
कड़वे मिर्च के साथ
खूब रुची,
तुमने जा बनाई थी।"[1]

कवि केदार के साहित्यिक मित्रों में रामविलास शर्मा, नागार्जुन, त्रिलोचन ही प्रमुख हैं, नागार्जुन के बांदा आने पर कवि केदार अत्यन्त प्रफुल्लित होते हैं, रामविलास शर्मा जी के यहां आगरा पहुँचने पर मालकिन (राम विलास जी की पत्नी) के हाथ के बनाये गरम-गरम पराठों और सीझी हुयी खीर की सोंधी गन्ध इन्हें लम्बे अरसे तक याद रही। कवि का केन के तट पर घूमना, केन नदी को घन्टों एकान्त बैठकर देखना और उसकी कल-कल ध्वनि को सुनना और उसमें खो जाना उन्हें बेहद प्रिय था। केन नदी के किनारे बाम्बेश्वर मंदिर और टुनटनिया पहाड़ के नीचे बैठकर अपने काव्यों में इन स्थलों की चर्चा करना रुचिकर लगता था। आत्मीय व सहृदय व्यक्तित्व तथा केन के प्रति अन्तरंग लगाव के कारण

१- डॉ॰ अशोक त्रिपाठी, केदारनाथ अग्रवाल, सं॰ अजय तिवारी, पृ.सं॰ २३७

इन्हें बाबू जी या 'केन का कवि' भी कहा जाता है।

वैसे तो कवि केदार ने वकालत और साहित्य दोनों में सफलता हासिल की है, किन्तु कवि के रूप में उन्हें ज्यादा ख्याति मिली। इनकी वकालत में सफलता का आधार यही है कि १९६३ में उन्हें सरकारी वकील बना दिया गया और ४ जुलाई सन् १९७० तक उन्होंने अपने सत्य, श्रम निष्ठ, धैर्यता, संयम से इस कार्यभार को सम्भाला जीवन में हर व्यक्ति को कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, कवि केदार के सामने भी अनेक समस्यायें रहीं किन्तु इन्होंने परिस्थितियों से डटकर लोहा लिया और अपनी बुद्धि कौशल एवं श्रम शक्ति से उन पर विजयी हुये कवि केदार रचनाधर्मिता के साथ-साथ साहित्यिक समारोहों का आयेजन भी करते रहे। इन्होंने श्री वीरेश्वर सिंह जी के साथ मिलकर 'साहित्य-परिष्द' की स्थापना जिसके माध्यम से वे राहुल जी (राहुल सांकृत्यायन) और उसके तत्कालीन सेक्रेटरी नागार्जुन से जुड़े। अनेक कवि सम्मेलन किये व साहित्यिक गोष्ठियाँ भी कीं। निराला जी २-३ बार आये, निराला जी को केदार जी ने भी अपनी कवितायें नहीं सुनाई, अलबत्ता निराला जी ने ही उनकी कवितायें पढ़ी, निराला जी ने ही इनकी कवितायें पढ़कर कहा- "दो-तीन घण्टे रोज कविता को दो, तो अच्छी कवितायें लिख सकते हैं, प्रतिभा है, जरूरत है प्रतिभा को मांजने की।"[१]

प्रत्येक मनुष्य अपने जीवनकाल में अनेक स्वभावों और रुचियों को लेकर जीता है, इनका स्वभाव तथा रुचियाँ अन्य कवियों से भिन्न हैं। बाल्यावस्था से ही सीधे-सादे व सरल स्वभाव के थे, वे सादा जीवन उच्च विचार का पालन करते थे। प्रातः काल जल्दी उठना उनकी प्रिय आदत थी, नौकर द्वारा साफ किये गये घर पर उन्हें यकीन नहीं था। प्रातःकाल उठकर सारे घर विशेषकर अपने अध्ययन कक्षनुमा बैठक खाने की सफाई वे खुद करते थे।

"केदार जी का व्यक्तित्व जूझना जानता था, झुकना नहीं; इनके सम्पूर्ण साहित्य में जीवन की आस्था सुदृढ रूप से परिलक्षित होती है। आधुनिकता के हल्ला-बोल के आगे कवि केदार की प्रगतिवादी विचारधारा कभी नहीं डिगी। वह कविता में जीवन बोते रहे।"२

१- कुछ पूर्वाग्रह, अशोक वाजपेयी, पृ.सं. १६२

२- केदार के काव्य का साहित्यिक मूल्यांकन, डॉ. नामवर सिंह, पृ. ६०

साहित्यकार बाबू केदारनाथ अग्रवाल का व्यक्तित्व बहुत ही सहज, सरल व सादगी भरा रहा है उनसे मिलने वाले को बौनेपन का अहसास न होकर अन्तरंगता का बोध हाता है। सौम्यता कवि का आभूषण रहा है। उन्होंने समाज में अपने आप को आम आदमी ही समझा है, बड़े कवि होने का लोभ उनको छू तक नहीं पाया। उनके अन्दर अहंकार का भाव बिल्कुल भी नहीं आया। सरलता व सहजता ही कवि की सबसे बड़ी विशेषता रही है।

बांदा शहर में बाबू जी के नाम से मशहूर केदार जी ने वकालत को अपने पेशे के रूप में अपनाया पर बाबू जी की पदवी उन्हें वकालत से नहीं बल्कि कविताओं के नाते मिली। प्रख्यात आलोचक और हिन्दी के वरिष्ठ विद्वान डॉ॰ नामवर सिंह ने कहा कि-

''डा॰ राम विलास शर्मा और बाबू केदारनाथ अग्रवाल की जोड़ी मुझे मार्क्स व एंगेल्स की जोड़ी याद दिलाती है।''

केदार जी ने सन् १९७२ में अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन बांदा में सम्पन्न कराया। अब तक कवि केदार जनवादी कवि के रूप में विश्वविश्रुत हो चुके थे। उनकी कविताओं का रूसी, जर्मन, चेक तथा अग्रेंजी में अनुवाद हो चुका था। सन् १९७३ में उनके संग्रह ''फूल नहीं रंग बोलते हैं'' के लिए उनके जनवादी रुझान, संघर्ष के प्रति सचेत दृष्टि और भविष्य की बेहतरी के प्रति अडियल आस्था के उदघोष, भारत की धरती की सोंधी गन्ध तथा भारत ही नहीं समूचे विश्व की करोड़-करोड़ जनता की जुझारु चेतना की वाणी का गौरव पूर्ण सम्मान करते हुये 'सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार' दिया गया। अगले वर्ष यानि सन १९७४ में केदार नाथ अग्रवाल जी रूस की यात्रा पर गये जहां उन्हें पूरा रुस गुलाबों का देश लगा और उन्होने चारों ओर खुशहाली, रंगीनी और हरियाली के कहकहे सुने, वहां से लौटकर इन्होने एक संस्मरणात्मक पुस्तक लिखी 'बस्ती खिले गुलाबों की'। यह तथ्य निर्विवाद रूप से सत्य है कि यहां की सरकार ने उन्हे प्रारम्भ में न तो वह सम्मान दिया, न महत्व जिसके वह वास्तव में हकदार थे। खैर देर से ही सही उ०प्र० हिन्दी संस्थान ने वर्ष १९८१ में उनकी साहित्यिक सेवाओं के लिये पुरुस्कार स्वरुप पन्द्रह हजार रुपये की अभिनन्दन प्रतीक राशि भेंट करके उन्हे सम्मानित किया। ११, १२ और १३ सितम्बर

१- केदार के काव्य का साहित्यिक मूल्यांकन, डॉ॰ नामवर सिंह, पृ.सं. ६०

वर्ष १९८१ में ही म.प्र. प्रगतिशील लेखक संघ की भोपाल इकाई ने त्रिदिवसीय "महत्व : केदारनाथ अग्रवाल" कार्यक्रम आयोजन किया जिसमें कवि का सम्मान और सर्वपक्षीय मूल्यांकन किया गया।

इसके अतिरिक्त साहित्य अकादमी नयी दिल्ली ने १९८६ में उन्हें सम्मानित किया गया। साथ ही मध्य प्रदेश साहित्य परिषद भोपाल वर्ष १९८६ में उन्हें तुलसी पुरुस्कार से सम्मानित किया। १९८६ ने कवि के जीवन में गहरी अमिट छाप छोड़ी और खासा आन्दोलित करके रख दिया। इनकी पत्नी श्रीमती पार्वती इन दिनों काफी अस्वस्थ रहती थी, उनके दोनों हाथों में कम्पन होता था। वह अपने हाथ से कोई भी काम करने में असमर्थ थी, केदार जी ही उन्हे नित्य कर्म से निवृत कराने के कार्य से लेकर स्नान-भोजन तक कराते थे और इस कदर संवार कर रखते थे कि जब भी देखिये वह सद्यः स्नाता की तरह लगती थी। सत्तर की ऊपर उम्र में भी दिप-दिप करता चेहरा सहज मुस्कान बिखरेता था, उनका ममतालु मुख-मण्डल, केदार जी के ही प्रेम की कर्मठ पवित्रता का यशोगान करता प्रतीत होता था।

केदार जी पार्वती (उनकी पत्नी) की बीमारी से काफी चिन्तित और दुःखी भी रहते थे, वे उनके इलाज के लिये उन्हे मद्रास ले गये जहां उनके पुत्र अशोक अग्रवाल रहते थे किन्तु कवि-प्रिया प्रिया प्रियाम्बद श्रीमती पार्वती देवी स्वस्थ नहीं हो सकी और २८ जनवरी १९८६ को शाम सवा छः बजे मद्रास में ही उनके सुपुत्र के यहां उनके प्राण पखेरु उड़ गये। पत्नी की मृत्यु ही केदार जी के जीवन का सबसे बड़ा दुःख का समय था, किन्तु अपनी जीवन शक्ति, जीवटता से कवि उस कठिन समय पर भी विजय प्राप्त की।

केदार जी इस सम्बन्ध में स्पष्ट उद्घोषणा करते हैं-

दुःख ने मुझको / जब जब तोड़ा

मैंने / अपने टूटे पन को / कविता की ममता से जोड़ा

जहाँ गिरा मैं / कविताओं ने मुझे उठाया,

हम दोनों ने / वहाँ प्रात का सूर्य उगाया।[१]

१- मैं लड़ाई लड़ रहा हूँ, केदारनाथ अग्रवाल, सं. डॉ. रामविलास शर्मा

अपनी पत्नी से उन्हें प्रगाढ़ प्रेम था, पत्नी की याद में उन्होंने अनेकों कविताओं की रचनायें की जिसमें से 'हे मेरी तुम' और 'जमुन जल तुम' की कुछ पंक्तियाँ विचारणीय हैं-

हे मेरी तुम!

कल कमीज में बटन नहीं थे, / कुरता देखा तो आगे से फटा हुआ था,

धोती में कुछ दाग पड़े हुये थे, / बक्स और अलमारी देखी

नहीं एक भी मिला तौलिया.....?

मेजपोश पर धूल जमी थी / पुस्तक पर प्याला बैठा था

कॉपी पर औंधा गिलास था / पैसे की डिबिया में पैसा एक नहीं था

...... अब बोलो, तुम कब आओगी, / घर संवारने?[१]

कवि की दृष्टि में नारी घर की कर्ता-धर्ता व लक्ष्मी है उसके न रहने से सारी व्यवस्था अव्यवस्था में परिणित हो जाती है। स्त्री के न रहने पर पुरुष बदहाल हो जाता है। पुरुष के जीवन में नारी का विशिष्ट महत्व है, वह उसकी जीवन संगिनी है, अर्धांगिनी है, सहचरी है, जीवन-जगत में राग-रंग घोलने वाली संजीवनी है।

हे मेरी तुम!

बुद्ध हुए हम / क्रुद्ध हुये हम

डंक मार संसार ने बदला / प्राणहीन पतझार न बदला

बदला शासन, देश न बदला / राजतन्त्र का भेष न बदला

हाड़ तोड़ भू-भार न बदला

हे मेरी तुम! / कैसे जियें? यही है मसला / नीचे कौन बजाये तबला?

राम-रहीम हुये हैं कंगला?

हे मेरी तुम!

यही खुशी है प्यार न बदला। / प्रथम प्यार का ज्वार न बदला।

मिलनातुर सहकार न बदला / मधुदानी व्यवहार न बदला।[२]

१- आजकल, अंक १२, अप्रैल १९९५, पृ.सं. ११

२- हे मेरी तुम!, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १७

साहित्यकार एवं कवि केदारनाथ अग्रवाल के ७५ वर्ष के होने एवं प्रगतिशील साहित्यान्दोलन के ५० वर्ष होने तथा परिमल प्रकाशन के २५ वर्ष पूरे होने पर वर्ष १९८६ के सितम्बर माह की २०-२१ तारीख को डी.ए.वी. इण्टर कॉलेज, बाँदा में ही 'सम्मान-केदार नाथ अग्रवाल' कार्यक्रम घोषित किया गया। जिसमें स्वयं डॉ. रामविलास शर्मा आये और दिल्ली के कुछ साहित्यकार भी आये तथा कार्यक्रम के आयोजन सफलता के मानदण्ड स्थापित किये। इस विशेष अवसर में कवि केदार जी की छः काव्य कृतियाँ भी प्रकाशित हुयी थी।

इनके अतिरिक्त कवि केदारनाथ अग्रवाल को मध्यप्रदेश शासन ने १९९०-९१ में मैंथिलीशरण गुप्त पुरस्कार प्रदान किया तथा 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' ने इन्हें इसी वर्ष अर्थात १९९० में साहित्य वाचस्पति की मानद उपाधि से सम्मानित किया। बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी ने कवि के साहित्यिक महत्व को गरिमा प्रदान करते हुये वर्ष १९९५ में डी.लिट की मानद उपाधि से सम्मानित किया। ये सारे पुरस्कार और सम्मान कवि केदारनाथ अग्रवाल जी को मिले थे और उन्होंने बड़ी ही विनम्रता से स्वीकार भी किया था। कवि केदार जी जनवादी लेखनी पूर्णरूपेण भारत की सोंधी मिट्टी की देन है, इसलिए उनकी कविताओं में भारती की धरती की सुगन्ध और आस्था का स्वर मिलता है। केदार जी की लेखनी ने भारतीय जनमानस को अमरत्व का बोध कराया है, एक ओर जहाँ लोक में शिवत्व स्थापित किया है, वहीं आम जनता में क्रान्ति के बीज बोये ताकि उसके जीवन में समता-समानता का बोध विकसित हो। उन्होंने मार्क्सदर्शन जीवन का आधार बनाकर जन साधारण के जीवन की गहरी व व्यापक संवेदना को अपनी काव्य कृतियों में मुखरित किया है, केदार जी ने स्वयं लिखा है कि उनका व्यक्तित्व तो उनकी कविताओं में मुखरित होता है। डॉ. वेदप्रकाश द्विवेदी ने लिखा है कि -

"केदार की कविता की चर्चा जब मैं करता हूँ तो मुझे याद आता है - छोटा कद, लम्बी नाक, गोरा रंग, दाढ़ी-मूँछ विहीन मुख, आँखों में स्नेह तथा पैनापन एवं बच्चों की निश्छलता वाला व्यक्तित्व।"[1]

१- कहें केदार, आंचलिकता एवं जनवाद, डॉ. वेदप्रकाश द्विवेदी, पृ.सं. ९६

केदार जी का व्यक्तित्व बड़ा सरल व सहज है, आम जन मानस के प्रति उसमें आदर का भाव है तथा आम जनमानस में भी उन पर निष्ठा व विश्वास है, अपने साहित्य के माध्यम से इन्होंने जनता की समस्याओं को सर्वोच्च वरीयता दी है, जीवन जगत में व्याप्त कुण्ठा, पीड़ा, निराशा को दूर करने का कवि ने भरसक प्रयास किया है।

केदार नाथ अग्रवाल जितने उच्च कोटि के साहित्यकार हैं उनका व्यक्तित्व उतना ही सादा है, एक बात-चीत के दौरान उन्होंने स्वयं बताया- "एक बात कहूँ मैं कुलीन घराने में जन्मा जरूर लेकिन मुझे भी बतसिया कहारिन अपने घर उठा ले जाती थी। उसके यहाँ मैं बासी भात और मठ्ठा खाकर वहीं सो जाता था, अपने घर में बने पकवान मुझे अच्छे नहीं लगते थे, मैं घर के पकवान ले जाता था तो मोहल्ले के बच्चों में बाँट देता था, वे लोग बेर तोड़कर लाते थे और सूखी ..... तो ये चीजें मैं प्रेम से खाता था।"[१]

केदार जी कई बार अपनी बातों के दौरान यह कहते थे कि कचेहरी मेरी गुरु है अगर मैं वकील न होता तो शायद मनुष्य के अन्तर्मन को इतनी अच्छी तरह से समझ न पाता। केदार जी का जीवन भर अपने ग्रामीण परिवेश से बड़ा सघन लगाव रहा और वे जीवन मूल्यों के लिए जीवन भर अपनी कविताओं के माध्यम से जूझते रहे, उन्होंने अपनी कविताओं में भी जन-मानस को प्रतिष्ठित करने का सतत प्रयास किया।

केदार के व्यक्तित्व की समीक्षा करते हुये कवि सुमित्रानन्दन पन्त कहते हैं- "केदार हृदय के सहज कवि हैं कि वे मात्र सरल ही नहीं हैं, गूढ़ भी हैं। अपने काव्य में उन्होंने नयी संवेदनाओं को वाणी दी है।"[२]

बाबू जी का व्यक्तित्व मानवीय मूल्यों से ओतप्रोत है। बाँदा के लोग केदार जी का बहुत सम्मान करते हैं, उनमें अनेक साहित्य-प्रेमी और कवि भी हैं। यह बिल्कुल सही है कि समानधर्मा, समवयस्क नागार्जुन की संगति से उन्हें आनन्द मिलेगा, वह उनके बिला दुर्लभ है। केदार जी और नागार्जुन की मित्रता कविता जगत के लिए अनूठी उपलब्धि है। बाबा नागार्जुन का स्वागत करते हुये कवि केदार ने लिखा-

---

१- केदारनाथ से कमला प्रसाद की बातचीत, विवेक और विवेचन, पृ.सं. १२७

२- समीक्षायें एवं मूल्यांकन, डॉ. रामचन्द्र मालवीय, पृ.सं. १३-१४

अहो भाग्य है दो जन-कवियों के हृदयों का

जिनकी धड़कन गरज रही है घन-गर्जन सी।[1]

कवि नागार्जुन ने भी केदार जी के सम्मान में केदार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मूल्यांकन करते हुये लिखा है कि -

केन. कूल की काली मिट्टी, वह भी तुम हो

कालिंजर का चौड़ा सीना, वह भी तुम हो

कुपित कृषक की टेढ़ी भौंहे, वह भी तुम हो

खड़ी सुनहरी फसलों की छवि छटा निराली, वह भी तुम हो

लाठी लेकर कालिरात्रि में करता जो रखवाली, वह भी तुम हो।[2]

बहुत से पुरुस्कार व सम्मान मिलने के बाद भी केदार में कोई बदलाव या दिखावे के भाव उत्पन्न नहीं होते। वे उसी सहजता व शिष्टता से लोगों से मिलते थे, केदार जी के व्यक्तित्व पर विहंगम दृष्टि डालते हुये साहित्यकार श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त कहते हैं-

"केद़ार सीधे-सादे स्वस्थ मन के प्राणी हैं, फूल की तरह आप गमक उठते हैं किन्तु आप मनुष्य की वेदना से मोम की तरह द्रवित होते हैं, और अन्याय के विरुद्ध संघर्षों में फौलाद की भाँति दृढ़ हो जाते हैं।"

बाबू केदार नाथ अग्रवाल को सभी सुख-सुविधाओं से सम्पन्न महानगरों का आकर्षण आकर्षित नहीं कर पाया है। उन्होंने अपने ही पिछड़े, ऊसर, ऊबड़-खाबड़, झाड़-झंखाड़ से युक्त अभावग्रस्त जिला बाँदा से ही अपनी काव्य यात्रा प्रारम्भ की, आजीवन बाँदा में ही रहकर काव्य साधना की ज्योति जगमगाते रहे। आधुनिकता के तड़क-भड़क से युक्त भवनों में रहना उन्होंने पसन्द नहीं किया। इनके मन में न तो कभी अहं की भावना घर कर पाई और न ही पुरस्कारों से अपने को कभी बड़ा समझा है।

वरिष्ठ कवि एवं आलोचक डॉ॰ श्याम मनोहर शाक्य कहते हैं-

"केदार वैसे तो विराट व्यक्तित्व के स्वामी हैं किन्तु उनके सामने आने वाला कभी

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ४२

२- अजित पुष्कल, केदारनाथ अग्रवाल, सं॰ अजय तिवारी

अपनी लघुता का अनुभव नहीं करता, बल्कि उसे वह घनी दुपहरी में शीतल छाँह देने वाले वृक्ष की भाँति प्रतीत होते हैं।''

कवि केदार का व्यक्तित्व खुली किताब की तरह है, उनके जीवन का प्रतिक्षण स्वतः ही प्रतिबिम्बित है, जीवन-जगत में व्याप्त विरोधों के बावजूद कवि जयघोष करने में समर्थ सिद्ध हुआ है। शाश्वत जीवन मूल्य, प्रकृति के सिद्धान्तों ने कवि को ऊर्जा प्रदान की है, लोक-मूल्यों ने कवि को नयी सामर्थ्य प्रदान की है। जीवन की संघर्ष रूपी परेशानियों ने कवि के व्यक्तित्व में और निखार ला दिया है, और वह मानव समाज के साथ अत्यन्त सघनता से जोड़ दिया है।

संसार में कोई किसी वस्तु या व्यक्ति पर सन्देह तो कर सकता है पर अपनी मृत्यु पर कदापि नहीं वास्तव में जिस प्रकार मृत्यु का फैसला अटल है, उसी प्रकार केदार जी भी ''मौत'' से मैत्री करने को अटल थे। यशस्वी कवि ने अपने जीवन काल में जीवन और मृत्यु को आधार बनाते हुये 'खुली आँखे : खुले डैने' में कुछ पंक्तियाँ लिखी थीं, जो इस प्रकार हैं-

जाते-जाते भी / जीने का / अन्त न होगा / बना रहेगा / मेरा जीवन
जीवन से जीवंत/ प्रतिभा का पौरुष का पुंज
काव्य कला का / कुपित कुंज।[१]

मृत्यु जीवन का शाश्वत सत्य है किन्तु महान लोग उसे शालीनता से गले लगा लेते हैं। क्यों कि हर इंसान की मृत्यु होना सुनिश्चित है, जो इस संसार में आया है, उसे जाना ही पड़ेगा, इस सच्चाई को कवि ने बेबाकी से बिंबित किया है।

मरना होगा यह निश्चित है / नहीं जानता कोई कैसे?
फिर भी हम / मरने से डरते
डरते-डरते जीवन जीते / जब तक जीते तुष्ट न होते
असंतोष के आँसू रोते / दुर्बल मन के दुर्बल प्राणी,
मरते दम तक हारे रहते / बिना किनारे बहते रहते।''[२]

१- खुली आँखें, खुले डैने, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ५३

२- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १५७

केदार नाथ अग्रवाल मृत्यु पर जीवन के जय का उद्घोष करते हैं-

मर जाऊंगा तब भी तुमसे दूर नहीं मैं हो पाऊंगा।

मेरे देश, तुम्हारी छाती की मिट्टी मैं हो पाऊंगा।

मिट्टी की नाभि से निकला, मैं ब्रह्म हो जाऊंगा।

गेहूँ की मुट्ठी बाँधे मैं, खेतों-खेतों छा जाऊंगा।

और तुम्हारी अनुकम्पा में पड़कर सोना हो जाऊंगा।

मेरे देश तुम्हारी शोभा मैं सोने सा चमकाऊंगा।

यह गीत हमें रुपर्ट ब्रुक की इसी प्रकार की एक रचना 'द सोल्जर' का स्मरण अनायास ही दिलाता है।

कवि ने अपने सम्पूर्ण जीवन को बहुत सहजता के साथ जिया है, अपनी बात को उन्होंने बहुत बेबाकी के साथ रखा है तथा जीवन-जगत को बहुत अंतरंगता के साथ अनुभूत किया है। प्रगतिशील कविता की मुख्य धुरी माने वाले वाले यशस्वी कवि केदारनाथ अग्रवाल का निधन २२ जून सन् २००० दिन गुरुवार को रात्रि ८ बजकर २ मिनट में हृदय गति रुक जाने से हुयी। वे ९० वर्ष के थे। इनके आकस्मिक निधन से हिन्दी साहित्य जगत ही नहीं वरन पूरे भारत में गहरा शोक छा गया। साहित्याकाश में मलीनता छा गयी। प्रगतिवादी काव्य का बीज बोने और उसे साहित्य साधना से सींचने वाले नागार्जुन, केदार और त्रिलोचन श्रद्धेयत्रयी को कविताओं की 'त्रिमूर्ति' का नाम दिया जाता था, केदार जीवन पर्यन्त साहित्य सृजन करते रहे। उन्होंने एक औपचारिक भेंट में आकाशवाणी, इलाहाबाद में कहा था कि-

"कविता मेरे द्वारा तब तक लिखी जाती रहेगी जब तक मौत न इसे रोक न दे।"

कवि केदारनाथ अग्रवाल के दिवंगत होने पर विभिन्न श्रद्धांजलियाँ प्रसारित व प्रकाशित हुयीं-

'शोषितों की आवाज कवि केदार का स्वर थमा।'

दूरदर्शन राष्ट्रीय प्रसारण, नई दिल्ली।

'केन का कवि केदार पंचतत्व में विलीन।'

बी.बी.सी., लन्दन

'त्रिमूर्ति में दरार, केदार ने छोड़ा संसार'

वाइस ऑफ अमेरिका (वी.ओ.ए.)

'जनकवि केदार नहीं रहे'

आकाशवाणी (समाचार सेवा प्रभाग) नयी दिल्ली

'जन कवि केदार का निधन, हिन्दी साहित्य की अपूर्णनीय क्षति'

जनसत्ता, मुखपृष्ठ, नई दिल्ली

'प्रगतिशील चेतना के कवि केदार नाथ अग्रवाल का निधन'

दैनिक जागरण, सम्पादकीय

कवि केदार के निधन ने मेरे निजी जीवन में भी रिक्तता ला दी है क्यों कि अगर वे आज होते तो साहित्य सेवा के साथ-साथ मेरा मार्गदर्शन कर रहे होते, निश्चित ही मुझे और अधिक सम्बल और ढाढस देते। केदारनाथ अग्रवाल का शरीर हमारे मध्य नहीं हैं, किन्तु उनका नाम प्रगतिवादी, मार्क्सवादी तथा श्रमवादी और जनवादी कवि के रूप में निष्कलंक व उज्जवल रहेगा। वास्तव में केदारनाथ अग्रवाल हिन्दी साहित्य ऐसे रचनाकार रहे हैं, जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक, विद्रूपताओं, विसंगतियों को मिटाने का भरसक प्रयास किया है और समाज में समता-समानता तथा विश्व बन्धुत्व का भाव जागृत करने का महत्वपूर्ण काम किया है। इनकी सेवाओं के लिए हिन्दी-साहित्य-जगत चिरकाल तक ऋणी रहेगा। यह निःसन्देह दुखद है कि बाँदा की पहिचान माने जाने वाले कवि केदार आज सशरीर हमारे मध्य नहीं है लेकिन साहित्य रूपी आकाश में वे हमेशा चमकते रहेंगे। उनके अद्भुत व्यक्तित्व एवं कृतित्व से साहित्य जगत लाभान्वित होता रहेगा, जीवन के अन्तिम वर्षों से इन्हीं के नाम पर आधारित केदार सम्मान वर्ष १९९६ से प्रतिवर्ष प्रदान किया जा रहा है जो अब तक श्री नासिर अहमद सिकदर (१९९६), श्री एकान्त श्रीवास्तव (१९९७), कुमार अम्बुज (१९९८), श्री विनोद दास (१९९९), श्री गगन गिल (२०००), श्री हरीश चन्द्र पाण्डेय (२००१), श्री अनिल कुमार सिंह (२००२), श्री हेमन्त कुकरेती

(२००३), सुश्री नीलेश रघुवंशी (२००४), श्री आशुतोष (२००५), श्री बद्रीनारायण जी को केदार के ९७वें जन्म दिवस पर रविवार २३ सितम्बर २००७ को प्रदान किया गया है।

बाबू केदारनाथ अग्रवाल आम जनता के कवि हैं और ये लोक संचेतक के अग्र दूत हैं। उनके काव्य की अपनी विशिष्ट व्यंजना है जो इनको प्रगतिशील कवियों में श्रेष्ठतम स्थान दिलाती है। कवि केदार जी के नाम पर अभी हाल ही में म.प्र. सरकार ने 'साहित्य गौरव' पुरुस्कार देने की घोषणा की है।

अध्याय तृतीय

केदारनाथ के
काव्य का साहित्यिक अनुशीलन

केदार की काव्य रचनायें-

कवि केदार के बहुमुखी व्यक्तित्व के साथ-साथ उनका रचना संसार भी वृहत्तर है, और विविधता से विभूषित है। साहित्य में प्रचलित विभिन्न विधाओं में उन्होंने सृजनात्मक दखल तो रखा किन्तु कविता को शीर्ष पर रखते हुये उन्होंने उसको प्रमुखता दी। इससे पूर्व प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद पहला अधिवेशन सन् १९३६ में प्रेमचन्द की अध्यक्षता में हुआ। सांस्कृतिक एवं बौद्धिक स्तर पर यह पहला अवसर था जब प्रगतिशील रचनाशीलता ने एक स्पष्ट वैचारिकता के साथ-साथ समाज में बेहतर मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्ष प्रारम्भ किया था। इसी समय भारतीय जनता विदेशी दासता और सामन्ती संघर्ष के दौर से गुजर रही थी, इसी संघर्ष के दौरान लेखकों को संगठित करने का प्रयास 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के साथ-साथ 'परिमल' नामक एक साहित्यिक संगोष्ठी के मंच पर भी किया जा रहा था। वर्ष १९३६ में ही लखनऊ में कांग्रेस अधिवेशन हुआ। इन अधिवेशनों से प्रगतिशील शक्तियाँ उभरकर सामने आयीं।

"राष्ट्रीय अधिवेशनों से स्वाधीनता के लिए छात्रों, किसान, मजदूरों, बुद्धि जीवियों और राजनीतिज्ञों का यह संयुक्त अभियान था वस्तुतः १९३६ का वर्ष भारतीय काव्य जगत के लिए विशेष महत्व का है।"[1]

वर्ष १९३६ में ही जयशंकर प्रसाद के 'कामायनी' महाकाव्य का प्रकाशन हुआ और इसके साथ ही साहित्यकारों के मध्य छायावाद के समापन की भी चर्चा होने लगी। साहित्यकारों ने 'कामायनी' को छायावाद के समापन महाकाव्य के रूप में स्वीकार किया, अनेक छायावादी कवियों ने समय की पुकार को समझते हुये यथार्थ से जुड़ने का प्रयास किया।

छायावादी युग में निराला, छायावादी प्रवृत्तियों का अतिक्रमण करते हुये कविताएं लिख रहे थे। प्रसाद, पंत, महादेवी आदि भी अपनी युगीन सन्दर्भों में निज सीमाओं के भीतर प्रतिगामी शक्तियों के प्रति सृजनात्मक प्रतिरोध का रहे थे, रूप और कथ्य के स्तर पर छायावादियों तथा उत्तर छायावादियों के पलायन को भी युगीन सन्दर्भों में देखना उचित होगा।

१- समकालीन कविता की पहिचान, वीरेन्द्र मोहन, पृ.सं. ९३

"प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला, पन्त आदि रचना के स्तर पर स्वयं ही आवरण से बाहर आये थे। यथार्थ दृष्टि के सम्पन्न इस नये साहित्यिक आन्दोलन (प्रगतिशील लेखक संघ) के साथ आचार्य शुक्ल की सहयोगी भूमिका भी कम मूल्यवान नहीं थी जो साहित्य की अलौकिकता का खण्डन कर रहे थे।"[१]

छायावाद के समापन के साथ ही हिन्दी कविता में जो एक-वाद आया वह था प्रगतिवाद। वैसे तो प्रगतिवादी कविता छायावाद के समान्तर ही लिखी जा रही थी पर उसका व्यवस्थित रुप चौथे-दशक के आराम्भ से विकसित होना शुरु हो गया था। यद्यपि प्रगति के तत्व तो प्रत्येक युग के काव्य में खोजे जा सकते है और मिलते भी है लेकिन प्रगति के तत्वों के प्राप्त होने मात्र से ही हम उसे 'प्रगतिशील कविता' से अभिहित नहीं कर सकते। आलोच्य कवि श्री केदारनाथ अग्रवाल 'प्रगतिशील कविता' को निम्नवत परिभाषित करते हैं " प्रगतिशील कविता वह है जो जीवन और कविता के क्षेत्र में प्रगति पर अपना विकास श्रंगार करती है। वह कभी भी जीवन खोकर कला की अभिव्यक्ति मात्र बनने का प्रयास नहीं करती। वह जीवन को जीकर, जीवन से कविता की ओर संक्रमण करती है। उसकी विषय वस्तु जीवन की विषय वस्तु से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करती है। और अपना रुप तद्नुकूल प्राप्त करती है।"[२]

प्रगतिशील कविता का सम्बन्ध जन-जीवन से गहरे रुप से जुड़ा है यह मानव-समाज की गति और विकास से सम्बन्धित है। यह मनुष्य को व्यक्तिवादी संकीर्णताओं से मुक्त करती है। हमारी भावनाओं को मानवीय बनाती है। वह रूप के लिये कथ्य का बलिदान नहीं करती है बल्कि प्रगतिशील कविता रूप और काव्य का युगपत सम्बन्ध स्थापित करती है। उसके लिये मानव-जीवन और सामाजिक जगत सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जनकवि केदारनाथ अग्रवाल के अनुसार "प्रगतिशील कविता ने आदमी को उसका खोया हुआ रूप फिंर से दिया। इस कविता में आया हुआ किसान गांव-घर का शोषित किसान प्रस्तुत हुआ। मजदूर भी संघर्ष करता, जीवन जीने के लिये लड़ाई-लड़ता हाड़-मांस का

१- प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य, रेखा अवस्थी, पृ.सं. ८६

२- प्रगतिशील हिन्दी कविता पुस्तक में केदारनाथ अग्रवाल का पत्र दुर्गाप्रसाद झाला के नाम, परिशिष्ट-१, दुर्गाप्रसाद झाला, पृ.सं. २९९

इंसान हुआ। मध्यवर्ग के लोग भी, इस कविता में अपनी पूरी पहिचान के साथ और कमजोरियों एवं कुंठाओं के साथ आये। यानि प्रगतिशील कविता ने काव्य की तमाम परम्पराओं, उसकी रुढ़ियो को, उसकी संकीर्णताओं को और सीमाओं जन-हित में तोड़ा।"[1]

प्रगतिशील कविता की वास्तविक जड़ें भारतीय समाज और काव्य में है, कुछ विद्वानों ने इसे अनावश्यक ही विदेशी भाव-धारापन्न तथा भारतीय मिटटी के लिये अनुपयुक्त कहा है। निराशा, पराजय, रहस्य, रुग्ण मनोवृतियों की जगह प्रगतिशील काव्य ने आशा, संघर्ष, वस्तु सत्य एवं स्वस्थ प्रवृत्तियों को तरजीह देकर, हिन्दी काव्य धारा को सम्पूर्णतः विघटित होने से बचाने का ऐतिहासिक कार्य किया है। केवल 'साम्यवादी विचार धारा' का पोषक होने के कारण कोई चीज 'भारतीय विरोधी' नहीं हो जाती यह कविता आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक सांस्कृतिक और मानवीय रूपों से भारतीय जमीन की उपज है, इसलिये यह किसान मजदूर तथा मध्यवर्गीय जनता की असंतोष और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनी, व्यापक जन-जीवन से जुड़ गयी प्रगतिशील काव्य हर-तरह से व्यक्तिवादी, अकेलेपन और निर्वासन के विरोध का काव्य है। और सही अर्थ में भारतीय भी। राष्ट्र कवि दिनकर का मानना था कि कि "प्रगतिवाद छायावाद की शून्यता के विरुद्ध जन्मी हुयी आवाज (प्रतिक्रिया) का आरम्भिक चिन्ह है।"[2]

प्रगतिवादी कवियों ने रहस्यवाद अध्यात्मवाद और कलावाद से कविता को मुक्त रखा तथा प्रगतिशील सौन्दर्य दृष्टि, विचार दृष्टि और रचना सामर्थ्य को आगे बढ़ाकर नये यथार्थवादी सौन्दर्य, साम्यवादी विचारधारा मानववाद और लोक संस्कृति के उपादानों से कविता को समृद्ध करनें का गौरवशाली काम किया है। प्रगतिवादी चेतना को समाज में एवं साहित्य में सम्मानजनक स्थान दिलानें में जिन कवियों ने संघर्ष किया वे हैं- केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रामविलास शर्मा, त्रिलोचन, शमशेर बहादुर सिंह, मुक्तिबोध, शील, रांगेय, राघव, शंकर शैलेन्द्र आदि।

कवि केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी चेतना के सशक्त कवि है, केदार प्रगतिवाद काव्यधारा के अंग होते हुये भी पूरे कविता-विधान की दृष्टि से अपना निजी वैशिष्ट्य रखते

१- विचारबोध, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ९१

२- छायावादोत्तर गीतिकाव्य, डॉ. सुरेश गौतम, पृ.सं. १६

है, उनकी कविता में वास्तविक जीवन का यथार्थ चित्रण अनेक रंगों में उभरकर सामने आया है। जीवन की बुनियादी समस्याओं को इन्होने अपने काव्य का विषय विषय बनाया है। सामाजिक कुरीतियों, अर्थ सामंती, सामंती, शोषण के खिलाफ सार्थक आवाज उठायी है। उनके काव्य में लयात्मकता और माधुर्य की प्रचुरता है। रामविलास शर्मा आदि प्रगतिवादियों के निकट सम्पर्क में रहने तथा सामाजिक मंगल की ओर प्राकतिक झुकाव के इनकी रचनाओं में व्यक्त सामाजिक चेतना को और अधिक नुकीला कर दिया है।

प्रसिद्ध साहित्यकार परमानन्द श्रीवास्तव के अनुसार-

"केदार राग धर्मी ही नहीं व्यापक अर्थों में जीवन-धर्मी कवि है। कोमलता में ही नहीं प्रखरता और उग्रता में भी वे सौन्दर्य को देखते है। कर्म या संघर्ष का सौन्दर्य भी उनकी कविता का एक प्रमुख विषय है निष्क्रय सौन्दर्य को वे अर्थहीन मानते है एवं सौन्दर्य में जीवन की पूर्णता के पक्षपाती है।"[१]

प्रारम्भ में इनकी रचनायें माधुरी, हंस, नया साहित्य एवं पारिजात आदि साम्यवादी विचारों से मंडित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं। तदन्तर उनके काव्य-संकलन क्रमशः प्रकाश में आने लगे। कवि केदार विगत ६० वर्ष से काव्य साधना में लीन रहे है। वे सन १९३० के आस-पास से कविता लिख रहे हैं। साहित्यकार एवं उनके कवि-मित्र शमशेर बहादुर सिंह के अनुसार- "सन ३०-३१ से पहले ही लखनऊ की 'माधुरी' में उनके छोटे-छोटे गीत (जैसे-धीरे उठाओ मेरी पालकी) बराबर छप रहे थे।"[२]

शुरु-शुरु में उन्होने ब्रजभाषा में कुछ कवित सवैये लिखे थे बाद में वे खड़ी बोली में भी सुन्दर रचनायें करने लगे। केदार की अधिकांश प्रारम्भिक रचनायें साम्यवादी विचारधारा की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुयी हैं, लगभग दो दशक की प्रतीक्षा करने के बाद पुस्तक के रूप में केदार का प्रथम काव्य संकलन 'युग की गंगा' नाम से १९४७ में प्रकाशित हुआ।

(अ) काव्य कृतियाँ-

१. युग की गंगा (मार्च १९४७) यह कवि का प्रथम प्रकाशित काव्य संग्रह है इसमें

१- शानी (सं.) समकालीन भारतीय साहित्य (पत्रिका), केदारनाथ अग्रवाल पर परमानन्द श्रीवास्तव का लेख, वर्ष ७, अंक २८, अप्रैल-जून १९८७

२- केदार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सं. श्रीप्रकाश, पृ.सं. ४४

कुल ५२ कवितायें संकलित है। इन्होने इस काव्य-संग्रह में राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक, दशाओं का यथार्थ चित्रण किया है। इसी काव्य संकलन की एक कविता 'युग की गंगा' के आधार पर इस संग्रह का नामकरण किया गया है। इन कविताओं से स्पष्ट ज्ञात होता है कि कवि की दृष्टि वस्तुवादी है और उस पर साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव है। धार्मिक मान्यताओं और देवी-देवताओं की सत्ता को व्यंगात्मक स्वर दिया गया है। 'चन्द्रगहना से लौटती बेर' तथा 'बसन्ती हवा' जैसे रुमानी रुझान के प्रकृति चित्रण छोड़कर शेष अधिकांश कविताओं में प्रकृति अपने प्राकृतिक रूप में न आकर सामाजिक विषमता को स्थापित करने के लिये प्रयुक्त की गयी है, मानव जीवन की विद्रपता और पीड़ा भरी विषाक्त छाया, वहां भी अपने पांव फैलाये गये है। ऐसा लगता है कि कवि एक क्षण के लिये मानव जीवन से दूर हटना नहीं चाहता। कवि में नवीनता का आग्रह इतना प्रबल है कि वह नयी बस्तियां 'नवसंसार' बसाने के लिये सब प्राचीन डुबो देना चाहता है। वह समाज के सड़े गले हिस्से में पैबन्द लगाने का पक्षपाती नहीं है बल्कि वह लाल क्रान्ति के सहारे समाज के आमूल परिवर्तन पर विश्वास करता है उनकी कविता रस्म अलंकार और संगीत की तुकान्त पदावली का मोह त्यागकर जन-जन की वाणी में जन-जन की गाथा कहने के लिये आकुल है।

वस्तुपक्ष पर अधिक बल देने के कारण इस संकलन की कविताओं में कलात्मक शिथिलता आ गयी है, आलोचक डॉ॰ रणजीत गुप्त ने इस कमी की ओर संकेत करते हुये लिखा है कि ''युग की गंगा की अधिकांश कविताएं यथार्थवादी रेखा-चित्र है। 'चित्रकूट के बौडम यात्री', 'बुन्देलखण्ड के आदमी', 'शहर के छोकरे', 'मूलगंज', 'मजदूर', 'चन्दू', 'रनियाँ' आदि कविताओं वास्तव में कविताएं कम और रेखाचित्र अधिक है। इसमें काव्यात्मक सिचुऐशन नहीं सरल रेखांकन मात्र है। हां कहीं-कहीं व्यंग्यतात्मकता का पुट उन्हे मनोरंजक जरुर बना देता है।''[१]

कवि केदार जिस छायावादी काव्यलोक से बाहर निकले थे, उसके राजा सुमित्रानन्दन पन्त थे। इस लोक से बाहर निकलकर वह निराला के काव्य लोक से परिचित हुये, यथार्थ जीवन का चित्रण, भाषा का ओज, घनीभूत भाव शक्ति, यह सब निराला से उन्होंने सीखा,

१- केदार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सं॰ श्री प्रकाश, पृ.सं॰ १०७

'गोमतीक्षीण कटि नटी नवल' की कल्पना और शब्दावली उन्हें आकर्षित करने वाली न थी।

"यथार्थवाद वह साहित्यक संयोग है जो चुनाव, तथा रचना के माध्यम से अपने वास्तविक विचारों को समुन्नत रुप में पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है।"[१]

'युग की गंगा' संग्रह में अनेक ऐसी ही रचनायें है, जिनमें कवि की दृढ आस्था व्यक्त हुयी है। 'जन-धन', 'कोहरा', 'स्वप्न दृष्टा' आदि इसकी सशक्त अभिव्यक्ति है, कवि केदार ने अपने काव्य में सामाजिक यथार्थ का चित्रण करने से पहले उस यथार्थ को समाज में स्वयं अनुभव किया तब कहीं उसे अपने काव्य में स्थान दिया है।

"मैंने देखा है नग्न नृत्य। पापों से बोझिल धर्म कृत्य।

भूखी आत्माओं का विलाप। पागल कुत्तो का सा प्रलाप।"

इसी प्रकार 'कुहरा' कविता में कवि ने कोहरे को पराधीन बनाने वाली विदेशी साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में चित्रित किया है। 'दिनकर' क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है। कवि नवीन संस्कृति के निर्माण तथा नवीन विचारों और आदर्शो के जन्म के लिये दिनकर का आह्वान करता है। ताकि वह पराधीनता रूपी कोहरे को नष्ट कर सकें।

"पर निश्चय है, दृढ निश्चय है इतना। दिनकर जन्मेगा लपटों से लिपटा भस्मी-भूत करेगा कोहरा क्षण में। प्यारी धरती को स्वाधीन करेगा।"

शोषित और दलित इंसानों के दुःख से कवि आहत है और इसलिये उनके काव्य का नायक समाज का यही शोषित, उपेक्षित, दलित वर्ग ही है। एक ओर जहां वे इसी निम्न वर्ग के दुःख दर्द की तस्वीर उतारते हैं वहीं दूसरी ओर समस्त शोषित वर्ग का क्रान्ति के लिये आहवान करते है। 'मजदूर' 'चंदू चेतू', 'रनियां', 'दीन कुनबा', 'मछुआरे' आदि रचनाओं में केदार ने समाज के शोषित वर्ग को मूर्त रूप देने का प्रयास किया है। केदार का हृदय ग्राम्य जीवन की विषमताओं और दैन्य को देखकर द्रवित हुआ है। वे पूंजीपति सभ्यता और संस्कृति को नष्ट करना चाहते है क्योंकि युगीन विषमतायें एवं उत्पीडन उसी से जन्मे है।

इसीलिये कवि केदार ने श्रमिक एवं कृषक जीवन को अपने काव्य का विषय बनाया है, इस संकलन की रचनाओं में ग्रामीण जीवन के वैषम्य चित्रों को वास्तविकता की अनुभूति प्रदान की है। इस दृष्टि से मजदूर कविता दृष्टव्य है, कवि ने जहां एक ओर ग्रामीण

१- एच.फास्ट, लिटरेचर एण्ड रियलिटी, पृ.सं. ६२

जीवन को अपने काव्य में स्थान दिया है, वही दूसरी ओर नगरीय जीवन के यथार्थ से हमें परिचित कराया है। वे शहरी जीवन की गन्दगी को विस्मृत न कर उसकी चका-चौंध से भ्रमित नहीं होते। वे मानव जीवन के संघर्ष को सहज करनें और उसे कर्मशील बनानें के प्रति कर्तव्य निष्ठ है, केदार नव उत्साह व नूतन प्रेरणा के कवि हैं-

'युग की गंगा में ऐसी कई रचनायें है जिन के माध्यम से कवि ने नई चेतना का आहवान किया है, ऐसा ही एक उदाहरण गेंहू कविता के माध्यम से देखा जा सकता है,

"पौरुष का परिचय देता है, सतत घोर संकट सहता है,

अन्तिम बलिदानों से अपने। सबल किसानों को करता है।'

कवि केदार ने कविता के माध्यम से मार्क्सवादी दृष्टिकोण को सशक्त दंग से अभिव्यंजित किया है, इस संकलन के समूह गीत भी बड़े सुन्दर बन पड़े है।

२. नींद के बादल (अगस्त १९४७)- यह काव्य प्रकाशन की दृष्टि से दूसरी काव्य-कृति है, किन्तु 'नींद के बादल' कवि केदारनाथ की आरम्भिक कविताओं का संकेत करती है, इसमें संकलित कविताओं में कवि जीवन की पहली मंजिल के स्पष्ट चिन्ह है, जैसा कि कवि ने स्वयं इस काव्य-संकलन की भूमिका में स्वीकार किया है।

'नींद के बादल' की कविताएं नितान्त वैयत्तिक भाव भूमि पर आधारित है, और उन पर किसी प्रकार की सैद्धान्तिक मतवादिता का आरोपण नहीं किया जा सकता। 'नींद के बादल' रात के जादू के बाद दिन के लाल सवेरे के साथ ओझल हो जाते हैं।[१]

इस प्रकार नये सवेरे के साथ प्रेम की इस संग्रह की कविताओं की इति हो जाती है। संकलन की अन्तिम कविता 'नींद के बादल' के आधार पर पुस्तक का नामकरण किया गया है। कवि ने प्रेम-प्रणय और प्रकृति के अनेक चित्र खींचे है।[१]

'प्रगतिवाद ने प्रकृति के क्षेत्र में बिखेर असली जीवन उत्साह को देखा है। उसे प्रकृति का एकांन्त रुप नहीं, जन संकुल रूप पसन्द आया।

कवि ने छायावादी कविता के तुलना में प्रेम को और अधिक सहज स्वाभाविक तथा स्वस्थ रुप में ग्रहण किया है, कहीं भी प्रणय का स्वरूप विकृत नहीं हो पाया है, और केदार नर-नारी के आकर्षण को स्वाभाविक मानते है और उसे स्वाभाविक रुप में ही प्रत्यक्षतः

१- नींद के बादल, केदारनाथ अग्रवाल

व्यक्त करनें में असर्थ है। प्रेम सम्बन्धी रचनायें कवि के स्वस्थ और निश्छल प्रेम का प्रतीक है। कवि अपनी प्रिया को खुली आंख से देखना चाहता है।

"तुम आओ तो रस से पूरित अंगूरी तन देखूं,

लाल गुलाब कपोंलों के मैं, रसमय चुम्बन देखूं

मेरा भाग्य उठाती ऊपर लज्जित चितवन देखूं

भर-भर लोचन देखूं प्यारी भर-भर लोचन देखूं"

केदार ने प्रिय से मिलन के अनेक चित्रों को अपनी कविता में अकित किया है, कवि ने मिलन के क्षणों में भी अपने प्रिय की ही उल्लासमयी कवि का दर्शन किया है, कवि ने प्रकृति में भी अपनी प्रियतमा के ही दर्शन किये हैं।

"प्राकृतिक सौन्दर्य जीवों के अनवरत विकास का नतीजा है, जीवन के लिये संघर्ष, वातावरण के अनुकूल और नैसर्गिक चयन की प्रक्रिया में उसका परिष्कार होता गया है।"[१]

कवि के सौन्दर्य बोध में व्यापक बदलाव आता गया और उन्हें अपनी प्रेमिका, दिन-रात, सूर्य और चन्द्रमा से भी अप्रितम लगती है

"मेरी प्यारी सबसे सुन्दर। दिन से सुन्दर। निशि से सुन्दर,

सुन्दरता रवि शशि से सुन्दर। मेरी प्यारी सबसे सुन्दर।"

'नींद के बादल' की कविताओं को छायावाद से प्रभावित होने के कारण उन्हें रुमानी कविता की संज्ञा दी गयी है, केदार को कविता की प्रेरणा अपनी प्रियतमा से मिली है, अपनी प्रिया की सुन्दरता, उन्हें धरती और प्रकृति के समस्त उपकरणों में प्रतीत होती है। इस संकलन में ४२ कवितायें संकलित है। संग्रह का नामकरण ही कवि के प्रकृति-प्रेम को दर्शाता है। 'मैं घूमूंगा केन किनारे, मैं बैठा हूं केन किनारे' 'हंसकर कहा सुमन ने उससे' इसका सुन्दर उदाहरण है।

"कविता से प्रेम आज कवि की बुनियादी जरुरत है, ये कविता-प्रेम का ही नतीजा है। कवियों के संसार में आज बच्चे है, चिड़िया है, वृक्ष है, मां है और मित्र है।"[२]

१- प्राब्लम्स ऑफ मार्डन एस्थेटिक्स, निकोलाई सिलयेव, पृ.सं. १५१

२- पश्यन्ति, कविता विशेषांक, युवा कविता एक सार्थक जरूरत, जुलाई-दिसम्बर १९८७, प्रभात कुमार त्रिपाठी, पृ.सं. १८४

इस काव्य संकलन में कवि के मन पर छायावादी संस्कारों की स्पष्ट छाप दिखाई देती है, तथा कुछ कविताओं में प्रकृति का रंग भी चढ़ा हुआ है। 'आह रे ये अनमिल जीवन', 'कुछ तो प्रेयसी बोल', 'अवसान' तथा 'कोयल' जैसा शीर्षक वाली कविताओं में पन्त जी की शिल्प शैली का स्पष्ट प्रभाव दृष्टि गोचर होता है।

कवि केदार प्रकृति को प्रिया मानते है और इसी प्रिया की प्रेरणा लेकर वे काव्य रचना में संलग्न होते है। कवि में ये सहयोग की भावनायें स्वाभाविक सहज और कोमल है। इनकी कविता में वास्तविक सामाजिक पारिवारिक जीवन की पृष्ठ भूमि पर खडे उनके साथ चलते हुये और उसके विरुद्ध संघर्ष करते हुये प्रेमी-प्रेमिका का विम्ब उभरता है। उन्होने कविता में प्रेम के सत्य को जीवन के अन्य सत्यों के समाहित प्रस्तुत किया है। 'नींद के बादल' संग्रह की एक अन्य विशेषता पुष्ट काव्य भाषा भी है। जो कि नवीनता का राग धारण किये हुये है।

३. लोक और आलोक (मई १९५७) इस काव्य संकलन में कुल ५४ काव्य रचनायें है। अधिकांश रचनाओं में साम्यवादी क्रान्ति की दिशा में अग्रसर होने की प्रेरणा मिलती है। केदार का काव्य वास्तव में उस वर्ग के लिये है जो जनता के साथ है अर्थात जिन्हे जनता के दुःख दर्द से गहरा सरोकार है। वह जनवादी दृष्टिकोण के आलोक में लोक जीवन के विभिन्न पक्षों को स्पर्श करता है।

"समाजवादी यथार्थ के अर्न्तगत सहानुभूति अपने ऐतिहासिक दौर के द्वन्दात्मकता में सर्वहारा व शोषित वर्ग के साथ रहती है, क्योंकि वह बहुसंख्यक ही अनेक ऐतिहासिक युगों से सताया जा रहा है और उसके परिश्रम का लाभ भी अल्पंसख्यक शोषक उठाते आये है।"[१]

यहां कवि के स्वर में ओज और पोरुष की प्रधानता है, कवि जन-जीवन की चेतना के प्रति सजग तथा जागरुक रहा है। कवि केदार के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का परिचय हमें 'हम लेखक है', 'हाथ में तलवार लेकर', 'आंधी के झूले पर झूलो' आदि कविताओं में मिलता है। रचना में में कवि क्रान्तिकारी स्वरों का आहवान करता है।

" जागरण है प्राण मेरा। क्रान्ति मेरी जीवनी है,

१- प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य मूल्य, अजय तिवारी, पृ.सं. ९५

जागरण से क्रान्ति से मैं घनघना दूंगा दिशाऐं।"

सचमुच कवि ने लोक-जागरण का गुरुतर कार्य किया है और सामाजिक-क्रान्ति बदलाव की बयार, शोषक के प्रति घृणा का भाव भरने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। कवि यथार्थ जीवन के निकट जाकर धरातलीय सत्य को अभिव्यक्त करने में सफल सिद्ध हुआ है। जिसके फलस्वरूप उनके काव्य में नये समाज के प्रति, नये जीवन के प्रति, नयी धरती के प्रति, आस्था और प्रेम दिखाई देता है। 'हम' कविता में भी कवि ने साहित्यकारों को जीवन का भाष्यकार माना है। हम लेखक है, कथाकार है हम जीवन के भाष्यकार है।

हम मानवतावादी । हम कवि है जनवादी।

प्रकृति चित्रण सम्बन्धी कविताओं में कवि का जनवादी दृष्टिकोण बिना रोक-टोक के घुसपैठ करता हुआ दिखाई पड़ता है, कवि का क्रान्तिकारी स्वर ही इस संकलन की रचनाओं का वैशिष्ट्य है। शिल्पगत सौन्दर्य अपेक्षाकृत शिथिल है। किन्तु लोकगीतों की दिशा में कवि ने अभिनव प्रयोग किये हैं। किन्तु लोकगीतों की दिशा में कवि ने अभिनव प्रयोग किये हैं। 'लोक और आलोक' के माध्यम से केदार ने हिन्दी कविता की महान मानवतावादी और क्रान्तिकारी परम्पराओं को विकास के नये स्तर तक पहुँचाया है। नये समाज में वे शोषकों को कोई स्थान नहीं देना चाहते, वरन वह उनका सर्वनाश करना चाहते हैं। त्रस्त, पीड़ित जन के बीच अट्हास करते महाजन को वही देख सकता है जिसकी दृष्टि प्रगतिवादी हो। लोक और आलोक में कवि ने समसामयिक यथार्थ चित्रण के साथ आंचलिक यथार्थ चित्रण भी किया है। वास्तव में यह भी कटु सत्य है कि-

"सामाजिक विषमतायें मानव जीवन और संस्कृति के मानवीय चरित्र का हनन करती हैं।"[१]

इस संकलन की एक सबसे वृहद कविता नागार्जुन के बाँदा आने पर है जो कि एक सौ बावन पंक्तियों की काव्य रचना है, जिसके माध्यम से कवि ने अपने मित्र बाबा नागार्जुन के बाँदा आने पर नगर के यथार्थ का वर्णन है और कविता के अन्त में कवि ने नागार्जुन के बाँदा आने पर आभार व्यक्त किया है-

"अहोभाग्य है, बाँदा की इस, कठिन भूमि का

१- प्रगतिशील कविता में यथार्थ परक चिन्तन, तनुजा तिवारी, पृ.सं. ४१

जिसको तुमने चरण छुलाकर, जिला दिया है।"

इस संकलन की अपनी विशिष्ट उपादेयता भी है, प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं में कवि ने अपनी काव्य-प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है 'खेत का दृश्य' धूप का गीत, 'केन किनारे' 'रवि भोर सुनहरा' आदि के माध्यम से प्रकृति चित्रण की अद्भुत छटा बिखेरी है। केदार के पास नदी, पहाड़, वन, पक्षी, सूर्य, चन्द्र इत्यादि प्राकृतिक सुषमा देखने की दृष्टि है जिनको देखने का अवकाश दरिद्र जीवन भोगियों के पास बिल्कुल नहीं है। 'लोक और आलोक' काव्य संग्रह में कुछ ऐसे गीत भी हैं जिन्हें सुधी समीक्षकों ने हिन्दी काव्य की अमूल्य निधि माना है, क्योंकि इनमें हिन्दी काव्य-प्रेमियों को परितृप्त करने वाली अनुगूँज है।

"माँझी न बजाओं बंशी मेरा तन झूमता है
मेरा तन झूमता है, मेरा तन झूमता है,
मेरा तन मेरा मन एक बन झूमता है।"

इस संकलन में कुछ विशिष्ट कवितायें 'टूटे न तार, तने जीवन सितार', 'धीरे उठाओ मेरी पालकी' शक्ति मेरी बाहु में हैं, एक सौ दस का अभियुक्त' 'छोटे-हाथ' 'वीरांगना' 'पूँजीपति और श्रमजीवी' आदि। ये रचनाएं विशिष्ट साहित्यिक महत्व की हैं।

प्रगतिशील कवियों ने काव्य में सुरूचि, विवेक और संतुलन का सुखद निर्वाह किया है। इन्होंने कला को जीवन का दर्पण नहीं माना, वरन निर्माण एवं परिवर्तन के संदर्भ में रचनाकार की दायित्व भरी भूमिका पर बल दिया और उसे सही अर्थों में सजग बनाया। संकलन की कविताओं में जीवन प्रवाह और हृदय स्पर्शिता है, और कथ्य एवं वैचारिकता की दृष्टि से भी मूल्यवान है।

४- फूल नहीं रंग बोलते हैं (अक्टूबर १९६५)- 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' एक अप्रतिम काव्य संकलन है, जिसे सन १९७३ में सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार से नवाजा गय। इस संग्रह में २३७ कवितायें संकलित हैं, जिनमें २७ वो कवितायें भी हैं जिन्हें 'युग की गंगा' तथा लोक ओर आलोक' से लेकर यथावत रूप में पुनः मुद्रित किया गया है, शेष २१० कविताऐं १९५७ के बाद की है, और इस प्रकार ये कवि नवीन उपलब्धियों का पता नहीं देती हैं। फूल नहीं रंग बोलते हैं में केदार गहरी जीवन आस्था के कवि हैं, संकलन की

कविताओं में यहीं जीवन आस्था कवि व्यक्तित्व का बीज गुण हैं। कविता न सिर्फ लोक हृदय व लोक-जीवन को उद्‌घाटित करने का कार्य करती है वरन उसमें समता-समानता प्रेम, दया, करूणा व मानवता का भाव भी भरती है। फूल नहीं रंग बोलते हैं, संकलन की कविताओं को सात उपशीर्षकों के अन्तर्गत विभक्त किया गया है।

क) बल्लरी तुम, धूप तुम, हवा तुम।

ख) आठ छोटी कवितायें।

ग) अस्थि के अंकुर

घ) रंग बोलते हैं

ङ) आम और बर्फ की वसीयत

च) विपर्यस्त दिशायें

छ) गोद में बह रही नदी

इस काव्य संकलन की भाषा का स्वरूप अत्यन्त निखरा हुआ है और पाठक को कविता में अपना ही स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, पाठक सहज ही कविता से तादत्मय स्थापित कर लेता है। कवि जब अपने चारों-ओर देखता है तो उसे रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से जकड़ा, धनाढ्य वर्ग द्वारा निरन्तर ठगे जाने वाला शोषित-दलित, परेशान किसान और दुःखी मजदूर वर्ग ही दिखाई देता है, कवि केदार इसके उत्थान के लिये सतत प्रयत्नशील भी दिखता है। "समाज का विकास वर्ग-संघर्ष के माध्यम से हुआ है, इसलिये इसकी नैतिकता भी हमेशा वर्ग नैतिकता ही रही है अर्थात वर्ग से परे नैतिकता निराधार है।"[१]

भारत की आजादी में देश के मदजूर और किसान का अमूल्य योगदान है अगर देश का किसान-मजदूर इस क्रान्ति यज्ञ में आहुतियाँ न देता तो शायद हमें आजादी न मिलती, पर यह आजादी किसकी आजादी है यह प्रश्न चिन्तनीय है? आजादी मिलते ही देश नौकरशाही, लाल फीता शाही और बाबू-संस्कृति का शिकार हो गया, इसी तथ्य को कवि केदार भी उजागर करते हैं।

"दयालु हो गया है दीन। दान देते-देते।

दीन हो गया क्षीण। दान लेते-लेते।

१- प्रगतिशील समाज - एक विश्लेषण, डॉ॰ राममनोहर सविता, पृ.सं. ५१

असह्य है यह व्यवस्था। दयालु और दीन की मर्म-कथा।"

कवि ने संसार की अशांतिमय विचारधारा से क्षुब्ध होकर अपनी सरस-वाणी की निर्झरिणी से संसार में सरलता का संचार किया है। अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की प्रवीण प्रौढ़ता, विचारों का उन्मुक्तातापन, संवेदन शीलता, लाक्षणिकता, भावों की गहनता, गेयता आदि लिये हुये हैं। संकलन के अन्त में केदार ने देश की प्राचीन सभ्यता ओर संस्कृति का भी वर्णन किया है, कवीन्द्र रवीन्द्र का अभार व्यक्त करते हुये कवि उनकी कविता का महात्मय प्रकट करता है।

"कवि! वह कविता जिसे छोड़कर
चले गये तुम, ...अब वह सरिता
काट रही है प्रान्त-प्रान्त की
दुर्दम कुण्ठा- जड़ मति कारा
मुक्त देश के नवोन्मेष के
जन-मानस की हो कर धारा।"

संकलन में कवि की मार्क्सवादी मान्यतायें और सुदृढ़ होकर, नियमों से अनुशासित होकर व्यक्त हुयी है। चिन्तन प्रखर व मूल्य परक है।

५. आग का आईना (१९७०)- इसमें कवि की १६० कवितायें संकलित हैं रचनाकाल की दृष्टि से कुछ कवितायें ऐसी भी है जो कि १९६०-६५ के बीच में लिखी गयी किन्तु 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' संकलन में न मुद्रितहोपाने के कारण यहाँ संकलित हैं। यह संकलन अपने पूरे परिवेश के कारण मुखर हो उठा है, 'आग का आइना' की कवितायें आज के सामाजिक क्रान्ति का अस्त्र बन गयी हैं। मार्क्स के समाजवाद से कवि को नयी ऊर्जा मिली है तथा उन्होंने इससे अपनी चेतना को बल दिया है। संकलन का नामकरण कविता 'आग का आईना' के माध्यम से हुआ है इस प्रतीकात्मक कविता के प्रतीक यथार्थ-जीवन से लिया गया है केदार ने 'पेरिस' शहर को आग के आईना के रूप में यथार्थ चित्रण किया है। "आग का शहर आग के पहियों पर। चल रहा है, सात्र के साथं अब पेरिस खूबसूरत लग रहा है।" कवि केदार ने असमाजिक बिन्दुओं पर पैनी दृष्टि रखी है उन्होंने युग को साहसिक ढंग से प्रतिबिम्बित किया है। वह कहते हैं-

"आदमी का दुश्मन। गोली मार देने लायक हैं।

न मारना पाप है न गुनाह है। मारना स्वधर्म है अपना कर्तव्य है।"

कवि ने स्वयं जीवन में अनेक विरोधों और समस्याओं का सामना किया है बावजूद इसके उसके जीवन के प्रति अनास्था व्यक्त नहीं हैं, जो कि उनकी अदम्य कर्मण्यता का परिचायक है। सामाजिक यथार्थ चित्रण में व्यंग्य का पुट गहरा है, सामजिक मूल्यों को कवि ने सदैव महत्वपूर्ण स्थान दिया है। 'आग का आइना' संकलन में शिल्प नवीन ढंग से दृष्टि गोचर हुआ है। ये रचनायें काफी हद तक जनता की वाणी में समाहित होने में समर्थ सिद्ध हुयी है।

६. गुलमेंहदी (जनवरी १९७८)- गुलमेंहदी कवि की प्रतिनिधि रचनाओं का यह महत्वपूर्ण संकलन है, संकलन की अन्तिम कविता के नाम पर इसका नामकरण किया गया है। इसमें युग की गंगा, नींद के बादल, लोक और आलोक की कुछ रचनायें भी संकलित है, 'आज सभी आँखों से' शीर्षक के अन्तर्गत छपी ये वो कवितायें हैं जो अभी तक पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित नहीं हुयी। ३३ कवितओं का यह संकलन एक उत्कृष्ट संकलन है ये सभी कवितायें अपेक्षाकृत आकार में छोटी तथा कवि के शिल्प सम्बन्ध नवीन प्रयोगों का परिचायक है, कवितायें आदमी को आदमी से जोड़ने में सहायक हैं, कवि देश की असहज स्थिति से चिन्ताग्रस्त हो उठाता है-

"चाँदनी के पर किसी ने काट डाले'

और वह आकाश से उतरी धरा पर रो रही हैं।

कुँज का कल्लोल कुंण्ठा ग्रस्त हैं।

देश की यह दुदर्शा करूणा जनक हैं।"

संकलन में कवि के अनुभूति और चिन्तन दोनों ही पक्ष मुखरित हुये हैं। देश की आजादी में आम मजदूर किसानों ने बढ़-चढ़ कर के हिस्सा लिया और विदेशी दासता के चंगुल से मुक्त कराया। किन्तु जनता की भलाई के बड़े-बड़े दावे खोखले साबित हुये और आम जनता का जीवन सन्तोषप्रद नहीं हो सका है। चिन्तनीय बिन्दु यह भी हैं किसान-मजदूर की मूलभूत समस्या के प्रति सरकार आज भी ज्यादा सजग नहीं है। "आज पूरा समाज दो विशाल शत्रु शिविरों में एक दूसरे के खिलाफ दो विशाल वर्गों में पूँजीपति ओर

सर्वहारा वर्ग में अधिकाधिक विभक्त होता जा रहा है।"[1]

निराला जी पर कवि केदार ने सुन्दर कविता लिखी-

"स्वर समय के विभव भर के। दहे, दव में दिये तुमने,

नदी नंद से अमृत मधु के। भरे भव में पिये हमने,

तुम अमर हो अमर कविता। अमर हम हैं किये सपने,

मरण में भी हृदय झंकृत। शीश उन्नत किये अपने।"

पूर्व की कविताओं से यहाँ तक आते-आते कवि के शिल्प में और निखार आया है, भाषा परिष्कृत हुयी है यद्यपि कविताओं में पहले भी स्थापत्य का गुण था किन्तु यहां आते-आते और निखार आया है। कवि चिन्तन व विचारों की प्रौढ़ता के पर्वत-शिखर में पहुंचने का अथक प्रयास करता रहा है। इस अवधि में कवि को तमाम सामाजिक उत्थान और पतन के दौर को निकट से देखने का मौका मिला, निर्धनता की मार से चीखते और जूझते हुये देखा। उनकी चीत्कार कवि के मौन वृत को तोड़ने में सफल हुयी कवि व्याकुल हो कह उठा-

'काश यह भी मौन मेरा

और होता मौन।

और इसका ज्ञान मुझको

कुछ न होता; एक मैं भी

जी रहा इन्सान हूँ।

भाषा और शिल्प का निखार हिन्दी समकालीन कविता के लिये उपलब्धि का द्वार खोलता है। संग्रह में भाषा और शिल्प की मौलिकता का संदर्शन होता है।

७. आधुनिक कवि (१६)-१९७८- यह संकलन 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' द्वारा प्रकाशित 'देव पुरस्कार ग्रन्थावली' के अन्तर्गत आधुनिक कवि माला का सोलहंवा पुष्प है। इसमें केदारनाथ अग्रवल की ८७ चुनी हुयी कवितायें प्रकाशित की गयी हैं, इन कविताओं का चयन स्वयं कवि ने कर अपनी काव्य सम्बन्धी मान्यतायें भी उद्घाटित की हैं। इसकी भूमिका से कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को समझने में मदद मिलती है। यही इस संकलन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है नहीं तो संकलन की कविताओं से केदार की

१- कम्युनिस्ट पार्टी की घोषणा, मार्क्स एंगेल्स, पृ.सं. ३६

काव्य सम्बन्धी नवीनतम गतिविधि का पता नहीं चल पता है, क्योंकि ज्यादातर कवितायें पूर्ववती काव्य संकलनों से ही उदधृत हैं। फिर भी 'देव पुरस्कार ग्रन्थावली' द्वारा प्रकाशित यह महत्वपूर्ण संकलन हैं।

८. पंख और पतवार (जनवरी १९७९)- केदार जी का यह काव्य-संकलन सन १९७९ में प्रकाश में आया, सन् १९६३ से १९७७ ई. तक सृजित सर्जनाओं में से कुल १२३ रचनाओं को चयनित करके 'पंख और पतवार' में स्थान दिया गया। बहुत कम शब्दों में अधिक से अधिक कथ्य को प्रस्तुत करने का सफल प्रयोग कवि ने इन रचनाओं में किया है। यहां पर कवि वस्तु और शिल्प के प्रति पर्याप्त सचेत प्रतीत होता है, इस संग्रह में 'पंख और पतवार' नाम की कोई रचना नहीं है। इसमें उनकी दृष्टि सही और सटीक समाजवादी और जनवादी चेतना में हैं, प्रकृति से मुखर प्रतीकों को ग्रहण कर उन्हें के माध्यम से कवि सामाजिक विद्रूपताओं का चित्रांकन करता है। देश का आम-आदमी अपनी दैनिक जरूरतों रोटी, कपड़ा और मकान की दुनिया में संघर्षरत है, 'पंख और पतवार' का कवि इन्हीं आम-आदमियों का कवि है। आम आदमी रोटी, कपड़ा और मकान की समस्या से निजात पाने के लिये दिन-रात श्रम से जूझता है, संघर्ष करता है, अभावों की कहानी गढ़ता है, उनकी दयनीय दशा को देख कवि का मन द्रवित हो जाता है। और कवि संवेदनाओं का सृजन उन्हें समपर्ति करने लगता है। कवि जन-मानस पर गहरी पैठ रखता हे, वहीं इन्हीं में उठता-बैठता और अपनी रचनाओं में इनकी समस्याओं और संघर्ष को प्रस्तुत करता है। इस प्रकार की रचनाओं में केदारने हमेशा ही अपने आधारभूत सत्यों का उद्घाटन किया है। अधिकांश कवितायें दैनिक जीवन के छोटे-छोटे अनुभवों को लेकर लिखी गयी हैं, कवि की वस्तुवादी दृष्टि नयी-नयी शिल्प विधियों में ढलकर सामने आई है। कवि केदार ने भाषा को व्यापक महत्व दिया है, 'पंख और पतवार' की भूमिका में केदार ने भाषा की बात सबसे पहले उठाई है- "क्योंकि कविता कोई भी हो, किसी की हो, किसी भी युग की हो और किसी भी भाषा में लिखी गयी हो, शब्द और अर्थ की संहति दी हुयी कृति होती हैं।"१

कवि केदार ने अपनी अभिव्यक्ति सहज और सरल शब्दों में की है, वह स्वरूप तथा प्रगतिशील जीवन दृष्टि के कवि है, सहजता की उनके काव्य की एक विशिष्टता है।

१- भूमिका, पंख और पतवार, केदारनाथ अग्रवाल

"सिर से पांव तक। फूल-फल हो गयी उसकी देह,

नाचते-नाचते हवा का। बसन्ती नाच हर्ष का ढिंढोरा

पीटते-पीटते हरहराते रहे। काल के कगार पर खड़े-पेड़।"

'पंख और पतवार' में केदार ने अनेक कवितायें लिखी हैं जिनमें अखबार, संविधान का आदमी, लोकतन्त्र, अफसर और जनता, हल्ले की राजनीति, सरकार आदि राजनैतिक कवितायें हैं। पहाड़ और नदी, प्रकृति और लोकतंत्र, हरियाली, बादल और पौधे, पवन और पानी, आज का चाँद, फूल के दिन, मेरा यार, बसन्त आदि प्रकृति सम्बन्धी श्रेष्ठ कवितायें हैं। कवि केदार अपनी रचनाओं में प्रकृति को अधिकाधिक आकर्षक बनाते हैं। संकलन की कविता 'पेड़ का मौन' इसका सजीव चित्र उपस्थित करती हैं-

"डाल पर / न बैठी रह सकी / बुलबुल चिड़िया

उड़ गई / ऊपर चहकती / अकेले महाकाश में

देखते-देखते हो गई अदृश्य / पेड़ का मौंन

उसको पुकारता है / मेरे भीतर मेरे बाहर।"

'पंख और पतवार में' केदार ने फिल्मी क्षेत्र पर भी कवितायें लिखी हैं, अपने बड़े बेटे के पास मद्रास अक्सर उनका जाना होता है और इस कारण उन्होंने फिल्मी दुनिया भी देखी, कवि केदार ने फिल्मी-संसार पर मद्रास, सिनेमाई संसार, मीना कुमारी की मृत्यु पर, मई का मद्रास, सितार संगीत की रात, आदमी के हाथ का बजता सितार, प्यार का प्रवाल द्वीप आदि ऐसी ही महत्वपूर्ण कवितायें हैं।

९. मार प्यार की थापें (सन १९८१)- 'मार प्यार की थापें' काव्य संकलन सन १९८१ ई. में प्रकाशित है। इसमें ६६ कवितायें संकलित है।। संग्रह की रचनाओं में कवि सामाजिक सार्थकता को भी साम्यवादी दृष्टि से देखता है, कवि ने अपनी रचनाओं में आम आदमी को व्यापक महत्व दिया है। वास्तव में भारत का आम आदमी आजादी के बाद से कितने कठोर थपेड़े सह रहा है कवि इससे परिचित हैं। और वह इसे साहसिक ढंग से अभिव्यक्त भी करता है; 'मार प्यार की थापें' में कवि ने वर्तमान की राजीतिक व्यवस्था और उससे उपज रही देश में आर्थिक-शोषण की नीति, नेताओं के भ्रष्टाचार, और देश की जनता को लूटनें की राजनीति; जात-पात की गहरी खाई, वोट की राजनीति, स्वार्थी मनोभाव पर

करारा व्यंग्य किया है।

सन १९७७ में देश में जब आम चुनाव हुये तो भारतीय जन संघ परिवर्तित नाम (भारतीय जनता पार्टी) राष्ट्रीय कांग्रेस को हराकर सत्ता में बैठी पर शासन की नीतियों एवं गतिविधियों में कवि व्यापक बदलाव नहीं देखता। केदार कहते हैं-

नाच रहे पहले के / वही-वही मोर /
नाच रहे पहले के / वही-वही भालू /
गूँज रहा पहले का / वही वही / हाड़ तोड़
कान-फोड़ हल्ला / चालू है पहले की / वही वही
भाग दौड़ घोर / उबल रहे पहले की / वही वही
भाषण के सड़े-गले / आलू / चाट रहे लोग बाग
पाँव के वही-वही तालू।[1]

देश की सत्ता पर परिवर्तन के रूप में जनता पार्टी के नेता बैठ गये, देश की शासन व्यवस्था, सत्ता परिवर्तन के बाद भी व्यापक बदलाव लाने में अक्षम सिद्ध हुयी, आम आदमी की जीवन-चर्या में गुणात्मक सुधार नहीं हुआ।

"नेताओं के पतोन्मुख रूप का उपहास करना तथा जनता के मन में घृणा जगाना प्रगतिशील सौन्दर्य चिन्तन का अनिवार्य तत्व है इसी को दृष्टि में रखकर केदारनाथ ने इस पर व्यंग्य किया है।"[2]

कवि केदार जीवन-जगत पर गहरी दृष्टि रखते हैं, राजनीति इतनी स्वार्थपरक हो गयी है कि संसद और विधानसभाओं में साम्राज्यवादी, पूँजीवादी साम्प्रदायिक व्यवस्था के दलाल और स्वार्थी तत्व घुसे हुये हैं। ये लोग कानून के नाम पर, सुरक्षा के नाम पर, देश की अखण्डता के नाम पर या फिर विदेशी आक्रमण का भय दिखाकर, कहीं गरीबी, बेरोजगारी को दूर करने का प्रलाप किया जाता है तो कही अनर्गल राजनीतिक प्रलाप किया जाता है।

"कागज के गज / गजब बढ़े / धम-धम धमके / पांव पड़े

१- मार प्यार की थापें, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २१

२- प्रगतिशील कविता में सौन्दर्य चिन्तन, तनुजा तिवारी, पृ.सं. १४३

भीड़ रौंदते हुये कढ़े / ऊपर अफसर / चट चढ़े दंड दमन के / पाठ पढ़े''

केदार की कविता वस्तु जगत अर्थात मनुष्य और प्रकृति से, मनुष्य के जीवन और समाज से सम्बन्धित है। कवि केदार इस संकलन में वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था पर गहरी चोट करने में समर्थ हुये हैं। देश की जनता को आपस में लड़वाने वाली नीति पर गहरा प्रहार किया है। स्वार्थी तत्वों से कवि ने दूर ही रहने की नसीहत दी है।

इस प्रकार 'मार प्यार की थापे' अपने आप में महत्वपूर्ण काव्य कृति है जिसमें कवि ने सामाजिक समरसता को स्थापित करने का सार्थक प्रयास किया है।

१०. बम्बई का रक्त स्नान- बम्बई के नौ सैनिकों द्वारा बगावत किये जाने से सम्बन्धित १९४६ की एक प्रसिद्ध घटना से अनुप्राणितहोकर कवि ने इसकी सर्जना की है, यह प्रसिद्ध काव्य रचना 'हंस' पत्रिका के अगस्त १९४६ के अंक में प्रथम बार छपी थी। बाद में इसे लघु पुस्तिका का स्थान १९८१ में दिया गया था, इस कविता में कवि केदार ने अंग्रेजों की गुलामी के विरूद्ध हुये संघर्ष को चित्रित किया है। जिन्होंने अपने अधिकारों के लिये जागृति की ज्योति जगाते हुये बगावत का बिगुल बजाया था, इसका वर्णन कवि बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध 'आल्हा' की तर्ज पर किया है। कवि ने इसमें प्रबन्धात्मकता को बनाये रखने में सफल हुआ है, पूरी कविता में बाँदा जनपद के आस-पास बोली जाने वाली बुन्देलखण्डी भाषा की शब्दावली प्रयुक्त है।

कवि केदार ने इस एक लम्बी कविता में भारत की गुलामी की दुर्दशा को चित्रित किया है, समाज के विविध पक्षों को कवि ने उठाया है। एक ही कविता में सब कुछ समेट लेना केदार जी अद्भुत विशेषता रही है। कवि केदार ने अन्ध विश्वास व अंध श्रद्धा का विरोध हमेशा किया है। कवि कहता है-

'देवी देउता सुमिरे-सुमिरे, हम या दुनिया दीन बिसार।
वा दुनियाँ में हम मन लावा, ह्वैवेगा एहिसे नाश हमारा।।''[१]

कवि कविता 'बम्बई का रक्त स्नान' में बम्बई की वर्तमान स्थिति की बात भी करता है, जहाँ आदमी के साथ-साथ हजारों बसें भी चलती हैं और ऐसे विकसित नगर में गरीब आदमी का शोषण भी होता रहता है, ''१९४६ में कांग्रेस ब्रिटिश साम्राज्य के झण्डे के नीचे

१- बम्बई का रक्त स्नान, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ५

सिंहासन पर आसीन हुयी, तब प्रगतिशील कवियों में देशी-विदेशी शोषकों की अपवित्र सांठ-गांठ पर गहरा दुःख व्यक्त किया है।"[1]

आज की भौतिकवादी, पूँजीवादी व्यवस्था से कवि चिन्तित है- क्योंकि इसमें सेठ और अधिक धनवान होता जा रहा है और गरीब, मजदूर, किसान इस मकड़जाल में फंसकर गरीब होता जा रहा है। इसमें कवि केदार ने अपनी जन-भाषा को प्रचुरता से प्रयुक्त किया है।

११. हे मेरी तुम (सन १९८१)- प्रस्तुत संकलन अपनी प्रियतमा 'प्रिया प्रियम्बद' को कवि सौंपता है, शीर्षक कवि ने अपनी पत्नी के लिया रखा है, वे अपनी पत्नी को प्यार से तुम कह कर पुकारते है और यही तुम काव्य में 'हे मेरी' तुम में परिणित हो गया है। 'हे मेरी तुम' काव्य संग्रह में कुल इकसठ कवितायें हैं, पर इन सभी कविताओं में कवि ने कोई शीर्षक नहीं दिया, कविता की शुरूवात में ही संग्रह का शीर्षक 'हे मेरी तुम' आता है यही हर कविता में व्याप्त है। अधिकतर कवितायें छोटी हैं और कुछ कवितायें बड़ी हैं जो कि दो-तीन पृष्ठों की हैं ये कवितायें बड़ी होने के बावजूद पाठकों को उबाती नहीं हैं, बल्कि ये कवितायें भी पाठकों को खासा प्रभावित करती हैं केदार एक उत्कृष्ट कवि हैं जो अपनी बात कम-से कम शब्दों में भी व्यक्त करने में समर्थ सिद्ध हुये हैं।

संग्रह में एक ओर जहाँ प्राकृतिक जीवन के चेतना की अभिव्यक्ति की है वहीं दूसरी ओर मानव जीवन के सफल चित्रों का भी अंकन किया है, हिन्दी काव्य विधा के लिये ये अमूल्य निधि है, कहीं-कहीं प्रकृति और मानव जीवन के चित्र अत्यन्त सम्प्रक्त हैं।

यह चित्र दृष्टव्य है-

"अपने प्राण बाण से साधे। जग से बुढ़िया नहीं डरी,

पार पहुंचने का मन बाँधे। राह किनारे। पड़ी रही। जैसे डावाडोल तरी।"

कवि जीवन का सजग चितेरा होता है, जीवन के शाश्वत नियमों को रचनाकार भली-भाँति जानता है, सुख-दुःख, राग-विराग से कवि परिचित हैं, वे यह भी जानते हैं कि काल का क्रूर हाथ एक दिन उसे दबोच लेगा पर इसके बाद भी वे इस कठिन काल से भयभीत नहीं होते हैं वे 'मृत्यु का निर्भय स्वागत करते है। वे समाज को अमरता का

१- अजय तिवारी-'प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य मूल्य' पृ० १५७

एहसास कराते है, कवि इस तथ्य से अवगत है कि एक दिन काल उन पर हावी होगा किन्तु वे अपने प्रेम-संदेश में जीते रहेंगे। मर कर भी अमर हो जाना प्रेम की शाश्वत विजय है।

कवि सत्य को उद्‌घाटित करते हुये कहता हैं-

"हे मेरी तुम। काल कलूटा बड़ा क्रूर है।

उसका चाकू और क्रूर है। उससे ज्यादा।

लेकिन अपना प्रेम प्रबल है। हम जीतेंगे काल क्रूर को।

उसका चाकू हम तोड़ेंगे। और जियेंगे।

सुःख-दुःख दोनों। पियेंगे।

काल क्रूर से नहीं डरेंगे। नहीं डरेंगे। नहीं डरेंगे।"[१]

कवि की जीवन-जगत पर पैनी दृष्टि है, जीवन की अनुभूतियों ने कवि को झकझोरा भी है और प्रेरित भी किया है- आरंभिक कविताओं में कवि ने ढलती हुयी उम्र का संकेत दिय है जैसे-'चिड़ीमार ने चिड़िया मारी', 'चढ़ी जवानी' और 'वृद्ध हुये हम' हाड़ बढ़ाये तथा 'सब चलता है' आदि। देश की दयनीय स्थिति से कवि आहत है, आजादी के बाद आज हमारा संघर्ष हमी से हो गया है, लोकतंत्र में भ्रष्टचार खूब फल-फूल रहा है मंहगाई ने आज के मजदूर, श्रमिक मध्यम वर्गीय परिवारों की कमर तोड़ दी। आम आदमी इसकी मार से बेदम हा चला है, दो जून की रोटी के लाले भी उसको पड़े हैं।

"पूँजीवादी गरीब जन-समुदाय को जोंक की तरह चूसता रहता है, सभी खून गायब पर घाव का नाम नहीं।"[२]

संकलन 'हे मेरी तुम' की कविता, प्रकृति और मनुष्य से अर्थात मनुष्य के जीवन और समाज से सम्बन्धित है, कवि अपनी कविता में वास्तविक जीवन में घटित होने वाली घटनाओं, सामाजिक व्यवस्थाओं को व्यक्त करता है। कवि केदार अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में हो रहे घटनाक्रम की सशक्त अभिव्यंजना करते हैं।

१२. कहें केदार खरी-खरी (सन १९८३)-इस काव्य संकलन में कुल १०१ रचनायें संग्रहीत हैं। प्रत्येक की रचना-तिथि अंकित हैं, ये रचनायें चूँकि युग-धर्म को अपने कलेवर

१- 'हे मेरी तुम' केदारनाथ अग्रवाल, पृ. १४

२- शिव बालक राम-साहित्यिक निबन्ध, पृ. १४७

में समाहित किये हुये हैं। इसलिये ये श्रेष्ठता व सार्थकता का वरण करती है। इनमें, मजदूरों गरीबों, शोषितों, दीन और दलितों की गहरी पीड़ा अभिव्यक्त हुयी है। इन रचनाओं में सन् १९४६ से सन १९७७ तक का युग बोलता है। इसीलिए इन कविताओं मं आज का युग का भी केवल बोलता नहीं, कहीं कहीं तो चीखता भी नजर आता है। अधिकांश रचनायें व्यंग्य प्रधान हैं काल-क्रमानुसार यदि इन रचनाओं को देखते हैं तो परिवर्ती काविताये शिल्प की दृष्टि से अधिक सशक्त और जीवन्त दिखाई पड़ती है।

'कहें केदार खरी-खरी' शीर्षक, कविता में सत्ता लोलुपों और सामन्तों को केदार खूब खरी खोटी सुनाते हैं। इसमें चार दशकों का विश्व इतिहास संक्षिप्त रूप में दर्ज हैं, कविताओं में आस-पास की समस्याओं से लेकर राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय चिन्ताओं की गूँज है। कवि केदार की कविताओं में रचना-प्रक्रिया लगातार विकसित होती गयी है। रचनाओं में सत्य स्वयं मुखरित होता है।-

'मुझे प्राप्त है जनता का स्वर। वह स्वर मेरी कविता का स्वर,
मैं उस स्वर से। काव्य प्रखर से। युग जीवन का सत्य लिखूँगा
राज्य अमित धन देगा तो भी। मैं उस धन से नहीं बिकूँगा।[१]

कवि हमें पूँजीवादी विकृतियों से परिचित कराता है और इस व्यक्तिवादी शोषक समाज से हमें आगाह कराता है। इन दो बिन्दुओं पर केदार की इस संग्रह में बहुत सी कवितायें हैं। इसी श्रृंखला में विदेशी उपनिवेशवाद, डालर की साम्राज्यवादी-पूँजीवादी नीति, तानाशाही। आंतकवादी और फाँसीवादी शक्तियों की वास्तविकताओं से भी परिचित कराती हुयी कवितायें इस संकलन में हैं।

कवि केदार वियतनाम और बांग्लादश, भारत विभाजन, पाकिस्तान, चीनी आक्रमण, अन्तर्राष्ट्रीय मानचित्र के कितने ही भागों से हमारा परिचय कराता हैं। ये साम्राज्यवादी शक्तियाँ, दूसरे देशों में अर्थ, हथियार, सुरक्षा, मदद के नाम पर प्रवेश कर वहाँ की राजनीति और अर्थनीति, में अपनी जड़े जमाती हैं।

"कविता में पहली बार इतनी व्यापक सहानुभूति का प्रवेश हुआ जो कि अर्न्तभूति

१- केदारनाथ अग्रवाल-'कहें केदार खरी-खरी' जनता का बल।

प्रतीत होती है।"[1] कवि केदार की कवितायें शोषण, उत्पीड़न व पराधीनता का पुरज़ोर विरोध करती हैं, वह साम्यवादी विचारधारा में मनुष्य की आशा सामूहिक शक्ति और बेहतर जीवन,सुखद भविष्य की छाप देखता है।

१३. अपूर्वा (सन १९८४ ई॰)- इस काव्य संग्रह में सन १९६८ से लेकर सन १९८२ तक की कुल ६३ कवितायें हैं, छोटी-छोटी कविताओं के इस लघु-संस्मरण में भी कवि की प्रगतिशील चेतना पूरे वेग से प्रकट हुयी है। लगभग पन्द्रह वर्षो के बीच लिखी कवितायें इसमें संकलित हैं, इस अन्तराल के बारे में कवि स्वयं भूमिका में लिखता है- "इस लम्बे अरसे में मैं इतना ही लिख सका हूँ, ऐसी बात नहीं है और भी बहुत कुछ लिखा है मैंने। अलावा इसके, अपने पेशे के काम में भी समय गंवाता रहा हूँ। लोग कहते हैं कि पेशेवर कवि हो जाना और हमेशा कविता लिखते जाना अच्छा नहीं होता। ऐसे में जो लिखा जाता है वह घटिया होता है, चालू होता है, कविता के अच्छे पाठक उसे स्वीकार नहीं करते।"१

प्रायः सभी कवितायें आकार में छोटी और सपाट हैं पर इस सपाटबयानी में भी जीवन के गहरे सत्य का उद्घाटन किया गया है, इनकी सत्य की पकड़ ही इनका प्राण है, ये कवितायें सामान्य आदमी को उसके कर्तव्यों का सम्यक बोध कराती हैं। कवि केदार ने 'अपूर्वा' में भी अन्य संग्रहों की तरह मनुष्य और प्रकृति के अनेक चित्र उकेरे हैं। कवि केदार के लिये प्रकृति हमें नूतन संदेश लेकर आती है।

"सूरज। हरेक को दे रहा है रोशनी। हरेक के लिये जल रहा -
ढल रहा। रोज सुबह निकल रहा। देश और काल को बदल रहा।"[2]

चुनाव की राजनीति हर उम्मीदवार पर हावी हो चुकी हैं, जब तक चुनाव नहीं हो जाते तो वह आम आदमी बना रहता है और कुर्सी पर बैठ जाता है तब वह अपने अन्दर से खाली हाता है। और आदमी के नाम पर केवल चारपाया की कुर्सी रह जाता है। कुर्सी के लिये ही-कुचक्र रचे जाते हैं, बड़ी से बड़ी हत्या के पीछे कुर्सी का ही हाथ होता है। सारी मर्यादाओं को ताक पर रखकर कुर्सी 'सत्ता' पाने की होड़ मची हुयी है।

---

१ डॉ॰ नामवर सिंह-आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ.सं॰ ७८

२ केदारनाथ अग्रवाल, 'अपूर्वा' पृ.सं. ४२१

कवि केदार स्पष्ट उद्घोष करते हैं-

लोग। अब। आदमी को नहीं। चौपाये को। जीत की कुर्सी को।

सादर सलाम करते हैं;

उसी के जिलाये जीते। और उसी के। मारे मरते हैं।[१]

संकलन 'अपूर्वा' में कुछ कवितायें ऐसी हैं जो मनुष्य को समाजवादी दृष्टिकोण से जीवन को जाँचने, परखने के लिये आमंत्रित करती हैं ओर यह ध्वनि प्रकट करती हैं कि जीने का यही दृष्टिकोण सार्थक है, कुछ ऐसे एहसास की कवितायें भी 'अपूर्वा' में हैं जो यथास्थिति के दूरगामी परिणामों को व्यक्त करती हैं।

१४. जमुन जल तुम (सन १९८४)- 'जमुन जल तुम' कवि केदार जी की कविताओं का अनुपम काव्य संग्रह है। इस संकलन में प्रेम-कविताओं की प्रचुरता है। इस काव्य-संकलन में छोटी-बड़ी ११० रचनायें हैं। इसमें सन १९३२ से लेकर १९७६ तक लिखी हुयी रचनाओं को स्थान दिया गया है, 'जमुनजल तुम' में सरसता, कोमलता, प्रेम और माधुर्य का भाव प्रकट होता है।

कवि केदार अपने काव्य-सृजन के आरम्भिक दिनों में "बालेन्दु बी.ए." के नाम से लिखते थे, संग्रह 'जमुन जल तुम' की कुछ कवितायें इसी नाम से तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुयी थीं। 'प्रेम व प्रकृति इन कविताओं का मूल विषय रहा है। कवि प्रेम का एक नया दृष्टिकोण देते हैं, वे प्रेम को समाज में चारों ओर फैला देना चाहते हैं। कवि सबको प्यार का संदेश देते हैं वे खुद प्यार में कभी हार नहीं स्वीकार करते-

"घर-घर मैंने कहा पुकार। खोलो हार! खोलो!

सके न जब वे पहिचान। तब बोले होकर हैरान

तू तो है हमको अन्जान। दे हम कैसे छाया दान

हुआ न फिर भी मुझे विकार। खा कर हार।"[१]

प्रगतिशील कविता के चलते एक बात तीव्र उठने लगी थी कि प्रगतिवादी कविता केवल राजनीति, मजदूरों और शोषितों पर लिखी गयी कविता हैं, उसमें प्रेम और प्रकृति की नीरसता है। यह कविता अपनी पत्नी, बच्चों, माँ, बहन, भाई, मित्र और आस-पास की

---

१. 'जमुल जल तुम' पृ.सं. १७

प्रकृति पर भी हैं इन सबसे अलग हटकर कविता करना प्रकृति के सौन्दर्य के प्रति जान-बूझकर आँख बन्द कर लेना है। सुप्रसिद्ध आलोचक डा. रामविलास शर्मा को अपनत्व का बोध इसीलिये ही होता है वे कहते हैं-"हिन्दुस्तान के जिस गाँव पर भी सांझ की सुनहरी धूप पड़ती है वह अपने गाँव जैसे ही लगता है।" [१]

प्रकृति चारों ओर अपनी सुगन्ध फैला रही हैं। पृथ्वी ताल-सरोवर सब फूल रहे हैं। जब प्रकृति इतनी खुश हैं तब आदमी का मंद मंद होना कवि को अच्छा नहीं लगता वे कहते हैं-

"फलो-फूलो, फूलो फूल।
महके अनिल सुरभि से भरकर। सागर सरिता और सरोवर
थल महके, महके वर-अम्बर। दश दिशि महके महर-महर कर
आवे पागल-प्रेमी-मधुकर। बरबस खिंचकर और फूल कर कर
बेबस बेसुध गुन-गुन स्वर कर। गावें गति प्रणय के मृदु तक।"[२]

'जमुंन जल तुम' संग्रह एक ओर मानवीय रिश्तों से प्रेम की कविताओं का संग्रह है तो दूसरी ओर वह प्रकृति के मानवीकरण की कविता भी है। कवि केदार के इस संग्रह में चूँकि अधिकांश कवितायें जीवन के आरंभिक काल की है इस कारण इनमें छायावाद के प्रभाव के साथ-साथ उतनी प्रौढ़ता परिलक्षित नहीं होती।

१५. बोलेबोल अबोल (सन १९८५)- संकलन 'बोले बोल अबोल' में केदारनाथ अग्रवाल की १०६ छोटी-बड़ी कविताओं का संकलन हैं जिनमें सन १९६३ से सन १९८४ के बीच लिखी कवितायें हैं, इन कविताओं का विषय क्षेत्र एक ओर प्रकृति का मनोरम दृश्य है तो दूसरी ओर तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था है, केदार 'कला' को जीवन से जोड़कर देखनें के पक्षधर हैं, शीर्षक विहीन इन रचनाओं से केदार जी के सत्यान्वेषण की प्रवृति का पता चलता है और यह भी कि वे सहज ढंग से भी विशिष्ट बात कह देने में सक्षम हैं। 'बोले बोल अबोल' के शुरूवात में कवि सामूहिक परिवार में रहने से लेकर आज के बिखरते परिवार पर कवि ने गहरी चिन्ता व्यक्त की है। भारत की यह विडम्बना ही रही है कि सदियों

१- तार सप्तक, पृ.सं. ६२

२- केदारनाथ अग्रवाल-'जमुन जल तुम', पृ.सं. २६

से भारतीय जनता गुलामी और आक्रमण का शिकार होती रही हैं। अंग्रेजों की क्रूरता के फलस्वरूप देश की जनता ने स्वतंत्रता के लिये कठारे संघर्ष किये, पर जो आजादी आज हमें प्राप्त है वह कितनी सच्ची है? यही विचारणीय बिन्दु है।

कवि केदार जी ने इसकी भूमिका में स्पष्ट करते हुये लिखा है- "कांग्रेस की स्थापना हुयी। क्रमशः राजनैतिक सरगर्मी बढ़ने लगी, शासन और शासित के बीच सम्बन्ध क्षीण होन लगे, और जनता मुक्ति कामी होकर अपनी मुक्ति के लिये सघर्ष करने लगी। देश स्वतंत्र हुआ लेकिन इतिहास साक्षी है कि अंग्रेजो से भारत को जो स्वाधीनता मिली, उसका प्रशासनिक स्वरूप वैसा ही बना रहा, जैसा कि अंग्रेजों के जमाने में था।"[१]

केदार जी पेशे से वकील होने के कारण अपने काव्य की विषय वस्तु न्यायिक व्यवस्था को बनाते हैं, वे कहते हैं-न्याय का पारा गिरा। नीचे। और नीचे गिरा।

शून्य तक पहुँचा। सत्य की हार। ओर झूठ की। जीत हुयी, [२]

कवि केदार जीवन मूल्यों के प्रति सदैव सजग रहे हैं व अपने काव्य में इसे सदैव प्रतिष्ठित किया है।

कवि केदार प्रगतिशील साहित्य की उपयोगिता पर बल देते हुये कहते हैं- "प्रगतिशील साहित्य के सृजन की इसलिये आवश्यकता महसूस हुयी कि वह प्राकृत सृष्टि और परिकल्पनात्मक सृष्टि के समकक्ष-एक ऐसी साहित्यिक सृष्टि दे सकें, जो वैज्ञानिक सत्य से सम्बद्ध हो और किसी भी रूप से वर्गीय न हो, और नाना प्रकार की रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और निजी अभिरुचियों से मुक्त हो। मानवीय चेतना को ऐसे ही विकसित करके संसार की आम जनता सुखी और समृद्ध हो सकती है"[३]

'बोले बोल अबोल' की कविताऐं पाठक को बरबस आकर्षित करती हैं, इन रचनाओं से पाठक का तादात्मय स्थापित हो जाता है। कला, कला के लिये ही नहीं कला जीवन के लिये भी अपरिहार्य ओर महनीय है। कवि कला को जीवन से अलग रखकर नहीं देखना चाहता है वरन उससे वह अटूट जुड़ाव चाहता हैं वह समता, समानता व विश्व बन्धुत्व का

१- 'बोले बोल अबोल' भूमिका, पृ.सं. ८

२- वही, पृ.सं. २३

३- प्रगतिशील साहित्य महत्व, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ११

पक्षधर है।

१६. जो शिलायें तोड़ते हैं (१९८६)- जो शिलायें तोड़ते हैं, कवि का उत्कृष्ट काव्य संग्रह है, इसमें कुल १३७ कवितायें संकलित हैं संकलन की अन्तिम कविता 'जो शिलायें तोड़ते हैं' के आधार पर काव्य संग्रह का नामकरण किया गया है। इसकी कविताओं में स्थानीय परिवेश का पुष्ट प्रभाव है इसमें जन भाषा मुखरित हुयी है पैने व्यंग्यों से युक्त कविताओं में भी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति दबी नहीं है। कविताओं में सारल्य भी है और व्यंग्यों की पुरूषता भी, दोनों के प्रभाव से युक्त रचनाओं की नदी निरन्तर प्रवाहमान दिखती है। इसमें संकलित कविताओं का रचनाकाल सन १९३९ से सन १९४८ के बीच का है, ये कवितायें स्थानीय रंगों में रंगी, जनता की भाषा में वास्तविकता के तनाव, और उसके सौन्दर्य को पूरी गहराई से पकड़ते हुये ध्वन्यात्मकताः प्रवाह व्यंग्यात्मकता, दृश्य बन्धन, तथा स्पर्श की आहट से हमारे संस्कारों को जगाती दुलराती और उनका परिष्कार करती है और जरूरत पड़ने पर सीधी मार करने वाले पैने तथा महीन मार करने वाले गंभीर व्यंग्य का चाबुक भी लगाती है।

''केदार के पास कविताओं की कमी नहीं है न संख्या की दृष्टि से न गुणात्मकता की दृष्टि स। ऐसी स्थिति में जाहिर है कि संख्या बढ़ाने को कोई अर्थ नहीं हो सकता, इतनी समझ मुझे है और न ही इन संकलनों के छपने से केदार जी की पहले से स्थापित आदमकद मूर्ति में कोई इजाफा होने वाला है, यह भी मैं जानता हूँ। अगर वे कुछ भी न लिखें ओर उनका कुछ भी प्रकाशित न हो तब भी वे जहां स्थित है, वहाँ से टस से मस नहीं होंगे और वह स्थिति है- ''प्रगतिशील कविता का शीर्ष'।''[1]

संकलन 'जो शिलायें तोड़ते हैं कि कवितायें पुराने समय की होते हुये भी वे आज के संदर्भो में उतनी ही सटीक बैठती है, जितनी तत्कालीन समय में रही है। कवित केदार गहरी मानवीय संवेदना के कवि रहे हैं उनकी कवितायें मनुष्य के साथ-साथ समाज और सांस्कृति विरासत की गहरी छटा बिखरेती है, खेत, खलिहान, कारखाना, कचेहरी, नदी, पहाड़, गाँव, शहर, फूलपत्ती, पेड़-पक्षी, रंग-स्पर्श, गंध आदि बहुआयामी संदर्भो के द्वारा मनुष्यता की तलाश में धरती से जुड़े वे एक ऐसे कवि हैं, जो इस युग की अनास्था की आंधी

१- जो शिलायें तोड़ते हैं - आलोचक पाठक से, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १२

ओर रेगिस्तानी लपट के बीच भी लहलहाते हुये आज तक वे हरे हैं और आगे भी रहेंगे। कवि केदार प्रकृति और सारी सृष्टि को उस एक परम सर्व शक्तिमान के अधीन मानते हैं। केदार की भी उस प्रभु पर गहरी आस्था है। तभी तो वे लिखते हैं-

"ओ शक्तिवान / सामर्थ्यवान / उस पार क्षितिज के गा न गान।

वैभव पूरित या गा न गान / मैं हूँ महान-मैं सुख निदान।

ओ शक्तिमान / सामर्थ्यवान।"[१]

कवि केदार को अपनी मातृभूमि व इसकी मिट्टी से प्यार है, कवि कहता है- "आज मिट्टी लाल दिखती। श्वेत है, शशि श्वेत तारे श्वेत है हिम श्रृंग सारे। क्योंकि नहीं इनमें किसी में यह अरूण मधु ज्वाला मिटती।

इस प्रकार यह एक समकालीन श्रेष्ठ काव्य संकलन है।

१७. आत्मगंध (सन १९८८) - इस काव्य संकलन में २०७ कवितायें संकलित हैं, ये कवितायें वैसी नहीं हैं जैसी अन्य कवितायें हैं, बल्कि उनसे अलग हैं क्योंकि कवि केदार यहां तक आते-आते जीवन की अधिकांश यात्रा कर चुके हैं, कोई भी व्यक्ति अपनी अवस्थानुसार अपना आचरण भी करता हैं इस संकलन में उनकी प्रेम की कवितायें जीवन को ललक से जीनें की उनकी लालिमा को प्रतिबिम्बित करती हैं। केदार लिखते हैं-

"मैंने यह भी जाना और समझा है कि वह जीवनदर्शन जो व्यक्ति को संसार से विरक्त कर, परमसत्ता में लीन कर मोक्ष प्रदान करता है, वह जीवनदर्शन इस दन्द्वमय संसार के प्राणियों को यथास्थिति में बनाये रखता है और ऐसी स्थिति को छोड़ने का क्रम चालू नहीं करता है तभी तो ऐसी स्थिति में, कोई विरला व्यक्ति ही महापुरुष बन पाता है और संसार के अन्य प्राणी व निवासी निरन्तर वहीं-वहीं दुःख द्वन्द्व झेलते-झेलते तड़पते और टूटते रहते हैं।"[२]

यह साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली द्वारा पुरस्कृत कृति है, इसमें प्रकृति से संबंधित राजनीति से सम्बन्धित तथा और भी कई तरह की कवितायें हैं। इसमें कवि केदार कहते हैं-

---

१- जो शिलायें तोड़ते हैं - आलोचक पाठक से, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १९

२- केदारनाथ अग्रवाल, भूमिका, पृ.सं. ३

गुलाब के फूल / चुनता हूँ मैं / उसके लिये / चुन लिया है जिसने मुझे /

अपने लिये / काव्य की सृष्टि में / अमर रहने के लिये।[1]

'आत्मगंध' की कविताओं में कवि ने आस-पास घटित होने वाली घटनाओं को ही विषय वस्तु बनाया है, ये रूढ़ियां एवं व्यर्थ की परम्पराओं का भी विरोध करते हैं। कवि केदार को अपने प्रेम व अपने काव्य पर दृढ़ विश्वास है- "ये कवितायें मुझे मौत से कोसों दूर रखती हैं, जब देह त्याग दूँगा तो उसके बाद भी अपनी काव्य चेतना में प्राणवन्त बना रहूँगा और महान मूल्यों की मानवीय चेतना में सतत प्रवाहित रहूँगा।"[2]

राजनीति भी वर्तमान में शासन व्यवस्था पर हावी हो गयी है, इसीलिए न्यायालय में अब न्याय नहीं मिलता, न्यायालय अन्याय के घर हो चुके हैं, हर तरफ अन्याय, भ्रष्टाचार, अत्याचार, शोषण आदि का बोल-बाला है, आज का आदमी इस व्यवस्था से टूटता जाता है।

"आजादी के बाद के दिनों के स्पष्ट अवमूल्यन, नैतिक मूल्यों के ह्रास, मनुष्य के अनैतिक शोषण के कथानक को कविता के माध्यम से एक-पूरा परिदृश्य दिया गया है।"[3]

आज़ का जीवन आपा-धापी का जीवन है, तो इस से प्यार करना तो हम लोग भूल ही गये है। या फिर प्यार की परख नहीं है। इस सम्बन्ध में कवि केदार कहते है-

"मैं प्रेम को जीवन का मूल मानता हूं। प्रेम से क्या ? यह एक का किसी दूसरे से सम्बद्ध हो जाना है, दो आत्मीय इकाइयों का एक हो जाना है। यह देवताओं की दुनियाँ का प्रेम नहीं है, कि उन्हें प्रेम करो आदमी को विसार दो, सतत उसकी उपेक्षा करते रहो।इतना ही नहीं प्रेम माननीय चेतना की परम उपलब्धि है, जिसे प्राप्त कर आदमी मृत्यु पर विजय प्राप्त करना चाहता है।"[4]

संकलन आत्मगंध की रचनायें गहरी अनुभूति और अनुभवों को समेटे हुये है, इन्हें प्रेम काव्य रचना की प्रेरणा देता है वह चाहे पत्नी प्रेम हो, बच्चों का प्रेम हो या फिर किसी

१- केदारनाथ अग्रवाल, भूमिका, पृ.सं. १

२- वही, पृ.सं. ५

३- समकालीन कविता का व्याकरण, परमानन्द श्रीवास्तव, पृ.सं. ८२

४- आत्मगंध, केदारनाथ अग्रवाल, भूमिका, पृ.सं. ४

मित्र का हो।

कवि भाव व्यंजित करते हुये कहता है-

"दारुण दाही, एक-एक दिन रात काटते,

प्रेम योग से। कर्म योग की सिद्धि साधते

लेकिन तब भी। तुम्हे काव्य में। किये प्रतिनिष्ठ

मूर्ति तुम्हारी किया करूंगा विबित। चेतन-चित में

पूरी तरह जिलाये। मृत्यु लोक में अमर बनाये।"[१]

इस कृति की मूल्यवत्ता व उत्कृष्टता पर इसे पुरस्कृत किया जा चुका है।

१८. अनहारी हरियाली (सन १९९०)- इस संकलन में कुल १३७ कवितायें हैं तथा अन्त में १७ दोहें भी संकलित है। सन १९८७ से ९० के बीच लिखी छोटी-बड़ी कवितायें संग्रहीत है। कवि केदार ने मार्क्सवाद का प्रभाव होने के कारण, अपने काव्य को भावना ओर स्वप्न लोक से निकालकर आम जन-मानस तक पहुंचाया है, 'अनहारी हरियाली' की कवितायें अपने आस-पास के वातावरण से जुड़ी हुयी हैं। अपने आस-पास के वातावरण, दिनचर्या में घटित होने वाली घटनाओं आदि को कवि ने बखूबी व्यक्त किया है। 'अनहारी हरियाली' के शुरू में ही 'कविता ने मुझे आदमी बनाया' में शीर्षक के बारे में चर्चा करते हुये लिखा है-

"मेरी कवितायें आदमी को आदमी बनाने के लिये प्रयुक्त हुयी हैं। यह कवितायें मेरी होकर भी दूसरों की होती है। मैं उसी में अपनी मौलिकता समझता हूँ कि जो कुछ मैं लिखूँ, वह सत्यदर्शी बिम्ब हो, मेरा ही नहीं दूसरों का भी हो।"

कवि ने पांच-छह दिन का समय नील गिरि पर्वत पर स्थित 'सेवाय होटल' में अपने पुत्र अशोक के साथ रहे, आस-पास का दृश्य देखा और उन दृश्यों को अपने मन में प्रविष्ट कर अपनी काव्य चेतना के माध्यम से उभारा, कविता पढ़कर ऐसा जान पड़ता है मानों हम नीलगिरि प्रदेश में बैठे हैं। आतंकवाद के विरोध पर दूरदर्शन कार्यक्रम पर प्रसारित हुये कवि सम्मेलन पर खिन्न होकर भी एक कविता उन्होंने लिखी थी जो इसमें संकलित है।

कवि केदार मानते हैं कि आतंक किसी समस्या का अन्त नहीं है। यह तो जघन्य

१- आत्मगंध, पृ.सं. ३१

अपराध है। फिर भी देश में आतंक फैलता जा रहा है, रात दिन इसी का भय समाया रहता हैं गाँव या शहर सब जगह आतंक व दहशतगर्दी की छाया से कवि भी चिन्तित है क्यों कि आज पूरी दुनियाँ दहशत के साये में जी रही है। वे लिखते हैं-

सूरज निकलता है जैसे। मौत का गोला निकलता है।

पूरब से। सूरज डूबता है जैसे। अंधकार के महासिंधु में,

आदमी डूबता है। जैसे अनस्तित्व के माह सिन्धु में।[१]

आज का युग विश्व राजनीति का युग है, जिसका प्रभाव साहित्य पर पड़े बिना नहीं रहता है। "प्रगतिशील कविता अपनी राष्ट्रीय चिन्ताओं और सरोकारों को विश्व की सामान्य परिस्थितियों के संदर्भों से जोड़कर देखती हैं।"[२]

केदार मानव मूल्यों की रचना करने वाले कवि हैं, इसलिये उन्हें प्रजातंत्र समाजवाद वहीं तक ठीक लगता है जहां तक वे मानव मूल्यों को बनाये रखने में सफल होते हैं, दोनों ही शासन व्यवस्थाओं पर कवि लिखते हैं-

"मूल में समाजवाद मानवीय मूल्यों की। व्यवस्था है।

लोकतंत्री आस्था की। कर्मशील जीवन की। रचना है।"[३]

इस संग्रह की कई कवितायें केदार जी ने अपने आप पर भी लिखी है, जैसे-'अब मुझ बूढ़े के' मैं अटका पत्ता हूँ, मैं अकेला भी नहीं, 'मैं समय को मारता हूँ, आदि ऐसी ही कवितायें हैं। ये कवितायें उनकी अवस्था के बोध कराने के साथ-साथ ये भी कहती हैं कि शरीर के कमजोर होने के बाद भी वे अभी मानसिक रूप से कमजोर नहीं हैं। छन्द की दृष्टि से ये काव्य संग्रह पूर्ण सफल है। ग्रामीण शब्दों के साथ-साथ कुछ प्रचलित मुहावरे भी इसमें प्रयुक्त हुये हैं।

१९. खुली आँखे खुली डैने (सन १९९३)- इस संकलन में कुल ११२ कवितायें संकलित हैं। कविताओं को पढ़ने, सुनने के बाद प्रतीत होता है कि कवि लोक ज़ीवन की धरती से बड़ी मजबूती के साथ जुड़ा रहना चाहता है, वह आदमी की महत्ता को बनायें

१- अनहारी हरियाली, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ३२

२- वही

३- प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य मूल्य, अजय तिवारी, पृ.सं. १६७

रखने व जीवन की सार्थकता के बिन्दु सुझाता है। कवि ने इसकी भूमिका में स्वयं लिखा है- "मैं आदमी की महत्ता इसमें समझता हूँ कि वह अपनी चेतना को मानव-बोधी बनाता चले, लोक में लीन रहे- स्वयं जग और जीवन में प्रकृति और परिवेश से लोक व्यवहार से द्वन्द्व और संघर्ष करता रहे, और सत्य से सम्बद्ध होते हुये भ्रम और मिथ्या का परित्याग करता रहे असम्बद्ध होकर व्यक्ति कट कर अकेले में मर जाता है। इसलिये मैं अपने आस-पास से लोगों से, पेड़ पशुओं और पक्षियों से, नदी पहाड़ और हो रहे घटना क्रम से सम्बंद्ध रहता हूँ यही मानव जीवन हैं।"[१]

कवि लोक मूल्यों और जीवन मूल्यों के प्रति पूरी तरह सजग हैं व अपने काव्य के माध्यम से वह समाज में उन्हें प्रतिष्ठत भी करना चाहता है। कवि का प्रकृति और समाज से गहरा रागात्मक सम्बन्ध रहा है।

वे कविता की महत्त्ता प्रतिपादित करते हुये कहते हैं-

कविता-जो न सार्थक हो। न सटीक हो।
न बोधक हो। न बेधक हो। मैं नहीं लिखता
ऐसी कविता। जो न। आदमी के पहिचान की हो।
न सत्यालोकित संज्ञान की हो।[२]

केदार जीवन जगत के सजग चितेरे हैं, जीवन के यथार्थ से कवि बखूबी परिचित हैं इसलिये वे कहते हैं-

"जाते-जाते भी। जीने का अन्त न होगा।
बना रहेगा मेरा जीना। जीवन से जीवन्त
प्रतिभा का पौरुष का पुँज। काव्य-कला का कूजित कुन्ज।[३]

कवि केदार आयुष्मान हुये कुलकते हैं और भविष्य में भी ऐसे जीते रहने की तीव्रतम उत्कण्ठा रखते हैं। यही तो हैं-मृत्यु पर जीवन के जय की घोषणा।

संकलन के महत्व को प्रतिपादित करते करते हुये केदार कहते हैं-

१- खुली आँखें खुले डैने, केदारनाथ अग्रवाल, भूमिका, पृ.सं. ११

२- खुली आँखें खुले डैने, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ३५

३- खुली आँखें खुले डैने, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १३

"कविता क्या है? मैंने उसे किस तरह की भाषा में पाया और किस तरह के स्वर ओर स्वभाव की होने की वजह से अपनाया, इस जानकारी के लिये, मैंने इस संकलन मं कई कवितायें दी हैं।....................मैंने प्रयास तो यही किया है कि जीवन कासत्य रचनात्मक सत्य बनकर कविता बन जाये। मेरे आत्म-प्रसार की कविता दूसरों के आत्म-प्रसार की कविता बन जाये। मैं नहीं कह सकता कि इसमें मुझे सफलता मिली, मिली ता कितनी मिली है और वह भी स्वीकार योग्य बनी या नहीं बनी, बनी तो कितनी स्वीकार के योग्य है और नहीं बनी तो सर्वथा त्याज्य योग्य कितनी है।"[1]

यह संकलन काव्य-कला की दृष्टि से भी विशिष्ट महत्व का है।

२०. **पुष्पदीप (सन १९९४)-** कवि केदार बाबू जी के इस काव्य संग्रह में १२० रचनायें संकलित हैं, इनमें कवि की एक मनोकामना परिलक्षित होती है कि ये कवितायें उनके सान्दर्य प्रियता तथा सत्य प्रियता से दूसरों को भी सौन्दर्य प्रिय एवं सत्य प्रिय बनाने में सक्षम हो। 'पुष्पदीप' केदार जी की आधुनिक कविताओं का श्रेष्ठ संकलन है। कवि केदार सौन्दर्य के अद्भुत चितेरे रहे हैं पर वह वास्तविक व ठोस सौन्दर्य के पक्षधर हैं। इस संदर्भ को स्पष्ट करते हुये कहते हैं-

"मेरी सौन्दर्य प्रियता, शाब्दिक-अलंकारिक क्रीड़ा-कौतुकी स्वभाव की नहीं होती है वरन वह मानवीय स्वभाव की अभिव्यक्ति की होती है। मैं शब्दों के झुनझुने नहीं बजाता- मैं शब्दों के स्वरों से मानसिक दोलन-उत्तोलक उत्पन्न करने को कवि-कर्म नहीं समझता, मैं शब्दों के मंत्र नहीं मारता-न मंत्र मारने में -न मंत्र मारकर वशीभूत करने में विश्वास कर रहा हूँ। मेरे प्रयुक्त शब्द मेरी चेतना का प्रतिबिम्बन करते हैं, यह प्रतिबिम्बन पूर्णतया लाकिक जीवन से सम्बद्ध होता है। इसलिए इस प्रतिबिम्बन में मेरे जीवन-दर्शन के विचार-बोध की अभिव्यक्ति मिलती है।"[2]

संकलन की सभी रचनाओं में तिथि अंकित है, इसमें एक कविता है- 'अक्ल की लालटेन' यह पूरी कविता कोरी बौद्धिकता के खिलाफ रचित है, और भी कुछ कवितायें जैसे-मैंने बागी घोड़ा देखा, लंगड़ा कुत्ता, बैलों में, हिन्दी दिवस है आज, प्यार न पाता तो

१- खुली आँखें खुले डैने, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १३

२- पुष्पदीप, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ६

वया होता, आदि कवितायें विशिष्ट महत्व की है। संकलन की एक कविता दृष्टव्य है-

"मैं / बहुत खामोश हूँ / जलता दिया

रोशनी ही रोशनी मैंने किया।

रोशनी के सत्य को अपना लिया।"[1]

कवि ने जिस परिवेश में जीवन जिया उसे अपने काव्य में बखूबी व्यक्त किया ळै। कविता 'समय का सूरज' में कवि ने सहज भाव सम्प्रेषित किया है।

"समय का सूरज हंस रहा है। जहां भी जो भी अन्धकार है,

उसे डस रहा है। प्रकाश का फन फैलाये

प्रौज्जल बनाये।

२१. बसन्त में प्रसन्न हुयी पृथ्वी (सन १९९६)- 'बसंत में प्रसन्न हुयी पृथ्वी' काव्य संग्रह में कुल ३२३ कवितायें है। इसमें वे सब रचनायें हैं जो इनसे पूर्व के संकलनों में छपने से वंचित रह गयी हैं। संग्रह में संकलित रचना 'मैं हूँ बसंत में प्रसन्न हुयी पृथ्वी' के नाम पर इसका नामकरण किया गया है। कवितायें छोटी होते हुये भी भाव-प्रवाह में सक्षम हैं कवि जीवन-जगत के यथार्थ को पैनी लेखनी से अभिव्यंजित करता है, समाज में व्याप्त विद्रुपताओं को चित्रित करने में कवि पूर्ण समर्थ हुआ है। कविता 'कर्जे की मार' दृष्टव्य है-

यह उधार खाते का जीवन। बढ़े ब्याज का बोझा लादे।

राम-राज्य की नयी सड़क पर। पांव उठाये डगमग चलता।

कागज के कर्जे का कौरव। पांच हाथ की लाठी ताने।

बीच सड़क में राह रोककर। इन्सानों को दण्डित करता।

सच कहता हूँ यह हालत है। खूनी लाठी के लबेद से।

बिना खून की हिंसा होती। कर्जे से जन भारत मरता।[2]

इस प्रकार कवि ने जीवन के हर पक्ष पर लेखनी चलाई है। छोटी सी रचना 'नदी' मन को सहज ही मोह लेती है, प्रकृति परक रचनायें तो बेजोड़ हैं।

श्वेत केश की तरह। भूमि पर पड़ी नदी

१- पुष्पदीप, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ६

२- वसन्त में प्रसन्न हुयी पृथ्वी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ८२

बूढ़ी नहीं जवान है। मेघ और पृथ्वी की। यह सन्तान है।[१]

इसी प्रकार 'हिन्दी का वरद पुत्र निराला', 'म्युनिसपैलटी की लालटेन', 'कविताओं में अमर रहेगा', 'शान्ति के दस्तख़त रोटी', 'देश अपना रम्य होगा', 'सुबह आयी फूल को चूमने' विशेष मुग्ध करती है। ये रचनायें पाठकों के मन को सहज ही मोहती हैं।

संकलन 'वसंन्त में प्रसन्न हुयी पृथ्वी' में विभिन्न कालावधि से लेकर वर्ष १९९५ के पूर्व तक की रचनायें हैं। यह केदार जी के अन्तिम संकलन से पूर्व का संकलन है।

२२. कुहकी कोयल खड़ी पेड़ की देह (सन १९९७)- 'कुहकी कोयल खड़ी पेड़ की देह' कवि केदारनाथ अग्रवाल जी का अन्तिम काव्य संग्रह है, इसमें कुल ४३६ कवितायें हैं जिनमें ६ अनूदित कवितायें भी संकलित हैं। कुछ कविताओं के शीर्षक केदार जी ने दिये, शेष के सम्पादक अशोक त्रिपाठी जी ने दिये हैं। यद्यपि केदार जी ने कोई महाकाव्य नहीं लिखा है इसके बावजूद वे महाकाव्यात्मक व्यापकता के कवि अवश्य हैं। विषय का जो अनन्त वैविध्य अनुभव और संवेदना का जो वृहत संसार उनके पूर्व प्रकाशित कविता-संग्रहों में है, यह संग्रह भी उसी की पुष्टि करता है। उनकी कविताओं में केवल विषय का ही वैविध्य नहीं मिलता, वरन एक ही विषय को बार-बार देखने, समझने और उसे विश्लेषित करने की दृष्टि में भी वैविध्य है। एक ही विषय पर उन्होंने कई-कई कवितायें लिखी हैं, सबमें वह विषय अलग-अलग दिखाई देता है। उसके नये-नये रूप, नये-नये आयाम, हमारे सामने उद्घाटित होते हैं। हर कविता की धूप, हर कविता की छाँह अलग-अलग संवेदनाओं के साथ व्यक्त होती है।

यह काव्य संकलन केदार जी के सत्तासीवें जन्म दिन पर भेंट किया गया। संकलन की कुछ कवितायें बहुत गहरा अर्थ बिम्बित करती है जैसे 'रुपया राम हो गया है' में कवि केदार आज के घोर भौतिकवाद को प्रतिबिम्बित करते हुये व्यंग्यात्मक स्वर में कहते हैं-

"रुपया राम हो गया है / धर्म की सीता को आराम हो गया है।
गाँव घर में कीर्तन सरनाम हो गया है।
मजूर की बेटी गीता का नाम / बदनाम हो गया है"[२]

१- वसन्त में प्रसन्न हुयी पृथ्वी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २२७

२- कुहकी कोयल खड़ी पेड़ के देह, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १०६

कवि जीवन-जगत का सजग चितेरा रहा है, उसने समाज, प्रकृति और मानव पर खूब लेखनी चलाई है। रचना 'सुबह और शाम' के माध्यम से कवि ने जीवन की चेतना को व्यंजित किया है-

"मैंने उसको हंसते देखा;

उसके गालों पर गुलाब को खिलते देखा;

व्रह अकूल अनुराग पुलक सी-

दूर खड़ी भी पास खड़ी सी

वह मेरी रंगीन सुबह थी।

इस प्रकार 'कुहकी कोयल खड़ी पेड़ की देह' यथार्थ परक रचनाओं का संकलन हैं केदार जी की कवितायें लोक साहित्य की उपज हैं, वे लोक संस्कृति को समृद्ध करती हैं। जैसे उनकी कविता में आकाश की ज्योत्सना, गंगा की निर्मल धारा उतर आये।

२३. छोटे हाथ (सन २००७)- यह वास्तव में केदार जी की श्रेष्ठतम सरल रचनाओं का संकलन है, जिसमें ज्यादा गम्भीर रचनायें न होकर सहज बोधी, गेय एवं धरती के सहज, संशिलष्ट रूपों को सामने लाने वाली कवितायें रखी गयी हैं। जिनका उद्देश्य बालमन एवं सामान्य पाठक की रूचि के नजदीक लाना हैं। इनका महत्व प्रकाशन की दृष्टि से कम कवि की रचनाओं की जन-सुलभता की दृष्टि से अधिक हैं। संकलन के सम्पादक वरिष्ठ कवि नरेन्द्र पुण्डरीक हैं। संकलन का नाम अन्तिम सुन्दर कविता 'छोटे हाथ' से लिया गया है।

इस प्रकार कवि केदार की उपरोक्त काव्य रचनाओं में जीवन के वैविध्यपूर्ण दृश्य मिलते हैं जिनमें, प्रकृति, समाज, राजनीति, व्यंग्य, मधुर रस प्रियता, राष्ट्रीयता व जनवादी कविता के दर्शन होते हैं। इनकी कवितायें में जहां एक ओर माटी की सोंधी सुगन्ध है वहीं दूसरी ओर तत्कालिक एवं वर्तमान परिस्थितियों के सटीक चित्र भी मिलते हैं।

केदार जी की रचनाओं का विश्लेषण करने के लिए उनके काव्य को शब्द विधान, प्रतीक विधान, बिम्ब विधान, अलंकार विधान आदि में विभाजित किया जा सकता है।

बिम्ब बिधान

(क) बिम्ब का अर्थ व स्वरूप-

बिम्ब का आर्विभाव कल्पना से होता है और बिम्बो से प्रतीक का। बिम्ब बिधान कला का क्रिया पक्ष है। जब कल्पना मूर्त रूप धारण करती है तब बिम्ब उपस्थित होते है और जब पुनः प्रयोग के कारण किसी बिम्ब का निश्चित अर्थ-निर्धारण हो जाता है तब प्रतीक का निर्माण होता है। अतः तात्विक दृष्टि से बिम्ब कल्पना और प्रतीक का मध्यस्थ है।

साधारण अर्थ में काव्यगत बिम्ब शब्दों द्वारा निर्मित चित्र है। शब्दों द्वारा चित्र खड़ा करना बिम्ब की मूलभूत विशेषता है। बिम्ब यथातथ्य और सर्वागीर्ण होते है तथा एक अविछिन्न वस्तु व्यापार का प्रतिपादन करते है। बिम्ब अनेकार्थ व्यंजक होते है। तथा काव्य के जीवन्त तत्व माने जाते है। अतः "उत्कृष्ट कलाकृति योजित बिम्बों के द्वारा अपने क्षेत्र में आयी हुयी वस्तुओ को गेटे के कथनानुसार कम्पलीट युनिवर्सल बना देती है।"[१]

बिम्ब का काव्य में बहुत महत्व है। बिम्ब कवि के अरूप संवेदन को तथा अमूर्त अनुभूति को रूप चित्रों में प्रस्तुत करता है। जिस कविता में जितने अधिक बिम्ब होगे उसकी प्रेषणीयता उतनी ही मनोहारी होगी। बिम्ब योजना के द्वारा कवि विचारों और वस्तुओं के कल्पित रूप को इन्द्रिय ग्राह्य बनाने की कोशिश करता है। बिम्ब शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'इमेज' के पर्याय के रूप में होता है। बिम्ब एक शब्द चित्र है। बिम्ब विधान को कला सृजन के माध्यम के साथ-साथ आवश्यक उपकरण भी माना गया है।

'इमेज शब्द का शब्दिक अर्थ मूर्त अथवा आकृति अथवा रूप से लिया जाता है। बिम्ब वस्तुतः मानसिक होता है इस प्रकार कल्पना की ऐसी मानसिक प्रक्रिया जिसकी सहायता से कवि मूर्त या आकृतियो की सृष्टि करता है बिम्ब कहलाती है।'

रचना प्रक्रिया में इसका स्थान रचनाकार के मस्तिष्क तथा पाठक के मस्तिष्क आदि दो जगहों पर होता है। रचनाकार यथार्थ जगत को जैसा देखता हैं और उस यथार्थ जगत के संदर्भ में अपनी कल्पना को मिश्रित करके एक आकृति अपने मस्तिष्क में खींचता है उसे वह कविता के माध्यम से तथा साहित्य के माध्यम से व्यक्त करना चाहता है। यह आकृति

१- सौन्दर्य शास्त्र के तत्व, डॉ॰ कुमार विमल, पृ.सं. २०४

२- डॉ॰ सुधा श्रीवास्तव, महादेवी के काव्य में बिम्ब विधान, पृ.सं. १४

ही बिम्ब है। इस प्रकार साहित्य को बिम्ब का अभिव्यक्त बाहय रूप (माध्यम) कहा जा सकता है।

ड्रायइन की मान्यता है कि कविता की महानता और कविता का जीवन उसके बिम्ब प्रस्तुत करने की शक्ति में निहित है अर्थात जो कविता जितनी शक्ति के साथ बिम्ब को सामने लाकर रखती है वह कविता उतनी ही श्रेष्ठ मानी जाती है।

बिम्ब की दूसरी स्थिति पाठक के मस्तिष्क में होती है पाठक किसी साहित्यक रचना में क्रमिक रूप से निरन्तर एक साथ ऐसी अनेक स्थितियो को पाता है जो सारी स्थितियां एक आकृति (खाका) खींचना चाहती है। सीधे उस आकृति को नही रखती है। इन स्थितियो के माध्यम से पाठक के मन में जो विशेष प्रकार की आकृति बन रही है वह आकृति ही बिम्ब कहलाती है। इसलिये बिम्ब को एक मानसिक प्रक्रिया माना जाता है जो प्रत्यक्ष बोध पर आधारित होती है।

"बिम्ब का कार्य भी चिन्ह की तरह होता हैं। जिस प्रकार चिन्ह स्वयं का बोधक होता है उसी प्रकार बिम्ब भी स्वयं का बोधक होता है परंतु अंतर केवल इतना है कि बिम्ब का बोध परिस्थिति के माध्यम से होता है।जबकि चिन्ह सीधे सामने आ जाता है।"[१]

बिम्ब एक निरन्तर चलने वाली श्रंखला में आते है। पूरी रचना कवि के मस्तिष्क में विद्यमान पूर्ण बिम्ब को व्यक्त करती हैं रचनाकार इस पूर्ण बिम्ब को रखने केलिए अनेक उपबिंब गढ़ता है और इन उपबिंबों को व्यक्त करने के लिए फिर, उपबिंबो को इस प्रकार एक पूर्ण बिम्ब अनेक उपबिम्बो तथा उप उपबिम्बो का परिणाम होता है लेविस की मान्यता है कि "बिम्ब एक ऐसा चित्र है जो कि शब्दों अर्थात भाषा के माध्यम से खींचा जाता है। तथा एक साहित्यिक कृति स्वयं में एक बिम्ब होती है जोकि अनेक बिम्बो की बनी हुयी होती है।"[२]

बिम्बं कविता का एक महत्वपूर्ण अंग है क्योकि वह भाव संप्रेषण और सौन्दर्य विधान का एक प्रभावी माध्यम है। बिम्ब कविता का पर्याय नही है किन्तु काव्य के संदर्भ में उसकी सशक्त भूमिका से इन्कार नही किया जा सकता। सामान्यतः बिम्ब शब्द चित्र को माना जाता है, "काव्य में बिम्ब का अर्थ कुछ अधिक व्यापक होता हैं एक काव्यात्मक बिम्ब

१- प्रतीक दर्शन, डॉ॰ वीरेन्द्र सिंह, पृ.सं॰ २१

२- C. Day Lewis, Poetic Image, P. 17

का रूप, रस, स्पर्श, गंध आदि ऐन्द्रिय गुणों से अनिवार्य संस्पर्श होना चाहिये और उसमें भावों को उदभूत तथा उद्वेलित करने की शक्ति भी होनी चाहिये। इन गुणों के अभाव में हम किसी शब्द चित्र मात्र को काव्यात्मक बिम्ब की संज्ञा नही दे सकते।[१] इस प्रकार काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है। कवि अपनी अनुभूतियों को शब्दों के सहारे चित्रात्मक बनाता है, इसका आधार बाह्य जगत रंग ध्वनियाँ हैं। ये ध्वनियां कवि की संवेदनाओं को उदद्वेलित करती है और साथ ही कला सृजन के लिए प्रेरित करती है। लेकिन एक काव्यात्मक बिम्ब के लिये उसका ऐद्रिय गुणों से विलसित होना ही आवश्यक है। ऐसे बिम्ब अधिक स्पष्ट अनुभवगम्य एवं सजीव होते हैं। काव्य बिम्ब को संवेगात्मक होना भी जरूरी है। इसके अभाव में बिम्ब निर्जीव शब्द चित्र मात्र रह जाता है। बिम्ब की स्थिति पर विचार करते समय यह कहना पड़ेगा कि काव्य में बिम्ब किसी भी अंश में रह सकता हैं संपूर्ण कविता भी बिम्ब हो सकती है। कभी एक पद एक वाक्यांश और कभी एक वाक्य में भी बिम्ब पाया जा सकता है।

"आधुनिक विचारों के क्षेत्र में बिम्ब शब्द बहुत व्यापक अर्थ रखता हैं इसका अध्ययन समान रूप से साहित्य और मनोविज्ञान दोनों ही क्षेत्रों में होता हैं। मनोविज्ञान में इसका अर्थ होता है एक स्मृति बोध, अतीत की एक संवेदनात्मक अनुभूति अथवा अवचेतन के भीतर से मानसिक धरातल पर कल्पना शक्ति का एक विशिष्ट प्रकाशन।[२]

काव्यात्मक बिम्ब का आधार भी वही मानसिक बिम्ब ही होता है पर दोनों के दृष्टिकोण में एक अन्तर हैं मनोविज्ञान उस बिम्ब का अध्ययन करता है जो मनोगत होता है जबकि साहित्य में हम उस बिम्ब की चर्चा करते हैं जो कवि के मन से निकल कर भाषा के कलात्मक ढांचे में एक निश्चित रूप ग्रहण कर चुका होता है।

मनुष्य का संपूर्ण भाव व्यापार और चिन्तन क्रिया किसी न किसी रूप में बिम्ब से अनिवार्यतः सम्बद्ध होती हैं हमारे पास यथार्थ को जानने का एक मात्र सुलभ साधन ऐन्द्रिय संवेदन हैं मन के स्तर पर प्रत्येक बाह्य संवेदन दृश्य अथवा अनुभवगम्य बिम्ब के रुप में परिवर्तित हो जाता है। एक विचार से दूसरे विचार तक पहुचने में बिम्ब सेतु का काम करते

१- प्रगतिशील हिन्दी कविता, डॉ. दुर्गा प्रसाद, पृ.सं. २५५

२- The psychology of G.G. Jung - Jolande Jocabi, Page 75

है। कवि जब मानव मन के सहज अकृत्रिम गतिशील तथा जटिल संवेगों का भाषा के जीवन्त अध्ययन के द्वारा शब्दिक पुर्ननिर्माण करता है तो उसे समीक्षा की आधुनिक पदावली में बिम्ब विधान कहते है। इस प्रक्रिया के पीछे ज्ञात या अज्ञात रूप से एक सतत अन्वेषण शील रचनातुर मानव मन की गहरी पीड़ा और आत्मशोध की भावना होती है। इस रचनात्मक प्रक्रिया से छनकर आने के कारण कविता में चित्रित एक फूल या पक्षी केवल फूल या पक्षी न रहकर किसी अधिक जटिल और दुर्बोध मानवीय स्थिति के द्योतक बन जाते हैं।

बिम्ब विधान बहुत अंशों में कलाकार की सहजानुभूति की अभिव्यक्ति की सफलता को प्रमाणित करता है और कलाकार की सौन्दर्य चेतना को भी द्योतित करता हैं वस्तुतः बिम्ब विधान कला का वह मूर्त पक्ष है जिससे कलाकार का भावानयन (एक्ट्रेक्शन) से शिलष्ट सौन्दर्यानुभूति को वस्तु सत्य का संस्पर्श या तदगत सम्पृक्त आधार के साथ सादृश्याभास (सेम्बेलेन्स) मिल जाता है।[१] शायद इसीलिए पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्रियो तथा काव्याचार्यो ने बिम्ब विधान को कवि की अभिव्यंजना का अनिवार्य एवं निर्विकल्पिक प्रसाधन माना है।

बिम्ब वस्तु जगत के संसर्ग से मन में उतपन्न अरूप भाव संवेदनों को रूप प्रदान करते हैं इसके अतिरिक्त संश्लिष्ट एवं समृद्ध बिम्ब अभिव्यंजना को रूप सज्जा और अलंकरण भी प्रदान करते है। काव्य में बिम्ब की यही उपयोगिता है। कला का रसिक किसी पठित कविता को भूल जाता है परन्तु उसके कुछ चित्र स्मृति पर अंकित हो जाते है क्योकि बिम्ब विस्मृत कलाकृति का शोषांश अथवा स्मृत अंश होता है। मूर्तिमान होने के कारण वह स्मृति में सुरक्षित रह जाता है जबकि कलाकृति के भाव शैली या शिल्प पद्धति अमूर्त और भवात्मक होने के कारण विस्तृत हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि बिम्ब योजना द्वारा कवि विचारो और वस्तुओं के कल्पित रूप को इन्द्रिय ग्राहय बनाने की कोशिश करता है। इस प्रकार काव्यगत भाव तथा उसके मूल अर्थ को स्पष्ट मूर्त तथा तीव्रतम रूप में संप्रेषित करने में बिम्ब एक शक्तिशाली भूमिका निभाते हैं।

१- सौन्दर्य शास्त्र के तत्व, डॉ॰ कुमार विमल, पृ.सं. २०१

(ख) बिम्ब की परिभाषा-

"बिम्ब वह शब्दचित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है।"[१]

इस परिभाषा में तीन बाते ध्यान देने योग्य हैं पहली यह कि बिम्ब एक प्रकार का शब्द चित्र हैं दूसरी यह कि उसका निर्माण कल्पना के द्वारा होता है और अन्तिम यह कि उसके निर्माण के लिए एन्द्रिय अनुभव के आधार का होना अत्यन्त आवश्यक है। अर्थात बिना ग्राह्य वस्तु गत परिचय के केवल अर्न्तदृष्टि अथव प्रतिभज्ञान के स्तर पर बिम्ब का निर्माण नही हो सकता। प्रसिद्ध बिम्बवादी कवि एजरा पाउंड ने बिम्ब की परिभाषा इस प्रकार दी है।

बिम्ब वह है जो काल की तात्कालिकता में बौद्धिक और भावात्मक संसृष्टि को उपस्थित करता है।[२]

दार्शनिक पदावली में इस कथन की परिभाषा करना चाहे तो कह सकते है कि बिम्ब व्यक्ति चेतना के धरातल पर एक प्रकार का जीवित कालबोध है। जब हम देश से कुछ देर के लिए कटकर या ऊपर उठकर समस्त इन्द्रियो और मन के द्वारा काल को अनुभव करने का प्रयास करते है तो उस मानसिक प्रक्रिया के भीतर से बिम्बो की सृष्टि होती है।

कोलरिज के कल्पना सिद्धान्त पर विचार करते हुए आई०ए० रिचर्डस ने बिम्ब का जो स्वरूप स्थिर किया है वह अधिक विचारणीय है

"बिम्ब एक दृश्यचित्र, संवेदना की एक अनुकृति एक विचार एक मानसिक घटना एक अलंकार अथवा दो भिन्न अनुभूतियो के तनाव से बनी एक भाव स्थिति कुछ भी हो सकता है।"[३]

अर्थात वह एक ओर स्पष्ट और स्थूल रूप से दृश्य और दूसरी ओर नितान्त गहन और अमूर्त भी हो सकता है। पूरे संवेग और वासना (पैशन) के साथ रखा हुआ एक सीधा सादा विचार (आइडिया) भी बिम्ब हो सकता है। अपेक्षित केवल इतना है कि उस कविता

१- आधुनिक कविता में बिम्ब विधान, डॉ. केदार नाथ सिंह, पृ.सं. २३

२- Imagism, S.K. Coffman (Jr.) Page 9

३- Coleridge on Imagination, P. 34

का ग्रहण इन्द्रियो द्वारा संभव हो।

श्री कैलाश बाजपेयी की दृष्टि में "बिम्ब चित्रण शब्दों में रूप खडा करना मात्र न होकर पाठक के विचार और मनोवेगो को उद्वेलित करने वाली कलापूर्ण क्रिया है।"[१]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर बिम्ब की निम्नलिखित विशेषताओं को रेखांकित किया जा सकता है-

१. बिम्ब एक शब्दचित्र होता है।

२. उसका रूप-रस-स्पर्श-गन्ध आदि गुणो को अनिवार्य संस्पर्श होता है।

३. उसमें भावों को संश्लेषित करने की शक्ति होती है।

४. बिम्ब का निर्माण कल्पना के सहयोग से होता है।

ऊपर दी हुयी परिभाषाओं में हो सकता है बिम्ब का कोई अदृश्य पक्ष छूट गया हो। पर रिचर्डस की परिभाषा मे प्रायः उसके समस्त स्तरो और भेदो को समेट लेने का प्रयास है। वस्तुतः बिम्ब इतना गहन और जटिल शब्द है कि उसके सम्बंध में कोई सामान्य लक्षण निर्धारित करना बड़ा कठिन है। वह केवल किसी अनुभूति को प्रति बिम्बित ही नहीं करता उसे एक नये स्तर पर पुनर्निर्मित भी करता है। वह विचारो और भावो का वहन ही नही करता बल्कि उन विचारों और भावों के पीछे की संपूर्ण उलझनो और संघर्षो की भी सूचना देता है।

(ग) बिम्ब और प्रतीक में अन्तर-

बिम्ब का सबसे निकटवर्ती शब्द प्रतीक है। प्रायः विचारको न दोनो के पारस्परिक स्वरूप को समझने मे एक बहुत बडे तथ्य की उपेक्षा की है कि वस्तुतः दोनो में उतना बड़ा अन्तर नही है। जितना समझा जाता हैं प्रत्येक प्रतीक अपने मूल में बिम्ब होता है। और उस मौलिक रूप से क्रमशः विकसित होकर प्रतीक बन जाता है। उसी प्रकार प्रत्येक बिम्ब अपने प्रभाव में चाहे जितना ऐन्द्रिय और संवेगात्मक हो पर अन्ततः उसकी परिणति किसी प्रतीकात्मक अर्थ की व्यंजना में ही होती है। प्रतीकात्मक ध्वन्यात्मकता से हीन बिम्ब काव्य के शोभा धर्म को क्षीण करने वाला होता है प्रतीक तीन प्रकार के होते हैं। प्रथम कोटि परंपरागत प्रतीको की है जिनका प्रयोग प्रत्येक युग का कवि अपनी आवश्यकताओं के

१- आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, कैलाश वाजपेयी, पृ.सं. ७८

अनुसार करता है। द्वितीय कोटि वैयत्तिक प्रतीकों की है जिनकी रचना कवि के विशिष्ट मानसिक गठन संस्कार और अनुभूति की एकान्तिकता पर निर्भर करती है। तृतीय कोटि प्राकृतिक प्रतीको की है जिनका प्रयोग प्रत्येक युग का कवि एक नये दृष्टिकोण से करता है। सभी प्रकार के प्रतीक विशेषोन्मुख होते हैं वे किसी अमूर्त भाव अथव विचार की उपमा अथवा सादृश्य बनकर नही आते। तात्पर्य यह कि प्रतीक स्वयं गौण होता है मुख्यता उस दिशा की होती है जिधर वह संकेत करता हैं यही उसका बिम्ब से सब से मौलिक अन्तर होता है। बिम्ब उठी हुयी उंगली की तरह किसी एक ही दिशा में सदैव इंगित नही करता। वह एक साथ कई स्तरों पर और कई दिशाओं में इंगित करता है। परन्तु प्रतीक की तरह उसकी निज की सत्ता उस संकेत में विलीन नही हो जाती बल्कि अर्थ की प्रतिध्वनि समाप्त हो जाने के बाद भी वह बहुत देर तक हमे अभिभूत किये रहता हैं शास्त्रीय पदावली में कहे तो प्रतीक व्यंग्यात्मक होता है, और बिम्ब लाक्षणिक प्रकृति से ही संश्लिष्ट होता है। अतः उसका ग्रहण भी प्रतीक के विपरीत संश्लिष्ट रूप में होता है। इस दृष्टि से बिम्ब प्रतीक अपेक्षा अधिक स्वच्छन्द और अनेकार्थ व्यंजक होता है। एक प्रसिद्ध पाश्चात्य समीक्षक के अनुसार, "प्रतीक में अंको की सी निश्चितता होती है और जैसे (१) कहने से केवल एक संख्या का बोध होता है दो अथवा पांच का नहीं, वैसे ही एक प्रतीक भी अनिवार्य रूप से केवल उसी भाव अथवा विचार का प्रतिनिधित्व करता है जिसके लिए वह लाया गया होता है।[१] दोनों की रचना प्रक्रिया में भी अन्तर होता है। प्रतीक अपेक्षाकृत चेतन मन सृष्टि होता है। प्रतीक अपेक्षाकृत चेतन मन की सृष्टि होता है या अधिक से अधिक कह सकते है कि वह उपचेतन की ऊपरी स्तर की सृष्टि हो सकता है। बिम्ब विधान का स्त्रोत मुख्यतः उपचेतन मन है जो व्यापकता की दृष्टि से शेष दोनों स्तरों से अधिक महत्वपूर्ण होता है।

प्रतीक का एक पक्ष बराबर परंपराजीवी और समाज स्वीकृति सापेक्ष होता है। कोई भी नया प्रतीक अपने अभीसिप्त अर्थ की प्राप्ति के लिए एक ऐतिहासिक प्रवाह की अपेक्षा रखता है। वह निरन्तर प्रयुक्त होते होते ही नियत अर्थ और निश्चित आकार ग्रहण करता हैं इसके विपरीत बिम्ब प्रायः आकस्मिक होते है। उनका जीवन प्रवाह नहीं होता। वे समय के सबसे छोटे और अत्यन्त निजी अंश को बांधने का प्रयास करते हैं।

१- The Poetic Image, C. Dry Lewis, Page 40

तात्पर्य यह कि बिम्ब विधान बहुत से विश्रंखल क्षणों का एक समुच्चय होता है। उसका आधार जीवन और जगत की अनेकता में हैं, इसके विपरीत प्रतीक किसी सूक्ष्म और गहरी एकता का बोधक होता है। इसीलिए प्रतीको की योजना में जाने अनजाने तार्किक संगति अवश्य रहती है परन्तु बिम्बविधान में तार्किक संगति का पाया जाना लगभग असंभव है और यदि पायी भी जाती है तो वह उसकी तीव्रता को कम करती है बढ़ाती नहीं।

'प्रतीक मूर्त और अमूर्त दोनों ही हो सकता है।'[१] इसके विपरीत बिम्ब के लिए ज्ञानेन्द्रिय के किसी भी स्तर पर मूर्त होना आवश्यक है। यह मूर्तता केवल दृष्टिविषयक ही नही होती। नाद घ्राण और स्वादपरक हो सकती है। प्रतीक किसी वस्तु का चित्रांकन नही करता केवल संकेत द्वारा उसकी विशेषता को ध्वनित करता हैं इसीलिए प्रतीक का ग्रहण संदर्भ से अलग और एकान्त रूप में भी संभव हो सकता हैं पर बिम्ब की प्रेषणीयता उसके पूरे संदर्भ के साथ होती हैं अंचल के फसल भरे खेतो के रूप बिम्ब उतारने वाली अनेक कवितायें केदार बाबू ने लिखी हैं-

आर-पार चौड़े खेतो में

चारो ओर दिशाऐं घेरे

लाखो की अगणित संख्या में ऊंचा गेहूँ डटा खडा है।

ताकत से मुटठी बांधे हैं

नोकीले भाले ताने हैं

हिम्मत वाली लाल फौज सा

मर मिटने को झूम रहा है।[२]

यह कविता स्पष्ट रूप से अपने स्थापत्य कौशल से जनवादी संघर्ष का स्वर और मन्तव्य भी प्रकट करती हैं सारे का सारा बिम्ब शिल्प बड़ी सजीवता के साथ क्रान्ति के दस्ते की तस्वीर खींच देता है। दिगदिगन्त में फैलाव नोकीले भाले ताने मुट्ठी बांधे लाल फौज गेहूँ की फसलों में साकार कर दी गयी है।

१- काव्य में अभिव्यंजनावाद, लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु', पृ.सं. १२४

२- गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २१

गांव का बरगद

पुष्टांग

छतनार खड़ा है

जीवन का मूसलाधार

जमीन में गड़ा है।

जटाजूट में

चिरैयों का

जमघट बड़ा है।[1]

केदार की कविता का गांव का यह बरगद वह बरगद नही है जो अपने साये में कुछ उगने ही नही देता है यह गांव का बरगद हैं जो उस जीवन का प्रतीक है जिसका मूलाधार धरती में गड़ा है। इसी मूलाधार से जुड़ना तो जनवाद की पहली जरूरत और शर्त है।

ऊपर बिम्ब और प्रतीक में जो अन्तर किया गया है उसका यह अर्थ नही कि दोनो सर्वथा भिन्न और विरुद्ध हैं विकास की दृष्टि से दोनो में पूर्वापर ऐतिहासिक सम्बंध हैं एक विशेष बिम्ब किसी एक ही कवि की अनेक रचनाओ में बार बार दोहराया जाकर प्रायः प्रतीक बन जाता है। महादेवी वर्मा की आरंभिक रचनाओं में दीप फूल, संध्या, समीर आकाश निर्झर, आदि के जो चित्र आये है वे निश्चय ही बिम्ब की स्थिति के अधिक निकट है पर धीरे धीरे उनके विकसित प्रयोगो में इन बिम्बो की इतनी आवृत्ति हुयी है कि उनके अर्थ में एक प्रतीकात्मक निश्चिन्तता आ गयी है वे प्रतीक हो गये है हम कह सकते है कि बिम्ब से प्रतीक तक का यह विकास कवि की कलात्मक प्रौढ़ता और स्थिरता का सूचक है। होता यह है कि जब एक ही बिम्ब बार-बार कई प्रसंगो में दोहराया जाता है तो यह अतिपरिचय के कारण अपनी दृश्यता खोकर केवल सूचनात्मक संकेत या चिन्ह रह जाता है। यह कवि की प्रौढ़ता और सीमा दोनो का सूचक हैं समर्थ कवि इस परिणाम से बचने के लिए नये विषयो और नूतन संदर्भो की खोज करते हैं एक नया संदर्भ किसी सुपरिचित बिम्ब को बिल्कुल नयी अर्थवत्ता और ध्वनि प्रदान करता है। निस्सन्देह प्रत्येक बिम्ब के भीतर एक प्रतीक अन्तर्निहित होता है और व्यापक प्रयोगो में जैसे जेसे वह अमूर्तता की ओर बढ़ता

१- गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २७

जाता है वैसे वैसे उसकी प्रतीकात्मकता स्पष्ट होती जाती है। प्रतीकात्मक शून्य बिम्ब अधिक से अधिक कविता के बाहय सौन्दर्य को ही वृद्धि कर सकता है वह उसकी अर्थ संहति को बढ़ाने में सहायक नहीं हो सकता।

(घ) बिम्ब का वर्गीकरण-

बिम्ब विधान का क्षेत्र काफी व्यापक रहा है। बिम्बों का वर्गीकरण अनेक दृष्टियों से किया जाता रहा हैं स्वातांत्रयोत्तर बिम्ब विधान का विवेचन करते हुए डा. शम्भू नाथ चतुर्वेदी ने उसे दो कोटियो में विभाजित किया है-

१. ऐन्द्रिय बिम्ब-

(क) दृश्य संवेद्य बिम्ब

(ख) स्पर्श संवेद्य बिम्ब

(ग) श्रवण संवेद्य बिम्ब

(घ) सहज एवं अलंकृत वस्तु बिम्ब

(ङ) सहज एवं अलंकृत व्यापार बिम्ब

(च) पशुचारण सम्बंधी बिम्ब

(छ) कृषि सम्बंधी बिम्ब

(ज) दैनिक जीवन से सम्बंधित बिम्ब

(झ) सांस्कृतिक बिम्ब

(ण) प्रणय व्यापार सम्बंधी बिम्ब

२. मानस बिम्ब

(क) भाव एवं विचार सम्बन्धी बिम्ब

(ख) वैज्ञानिकता एवं यात्रिक युग से सम्बन्धित बिम्ब

(ग) ज्यामिति तर्कशास्त्र एवं गणित पर आधारित बिम्ब

श्री कैलाश बाजपेयी ने बिम्बो को मुख्यतः छः वर्गो में बांटा है-

१. दृश्य बिम्ब (अन्य संवेदय बिम्ब नाद, स्वादय घ्राण्य एवं स्पर्श बिम्ब)

२. वस्तु बिम्ब यथातथ्य एवं व्यापार व्यंजक

३. भाव बिम्ब

४. अलंकृत बिम्ब

५. सांद्र बिम्ब

६. विवृत बिम्ब[1]

डॉ॰ उमा अष्टवश ने काव्य बिम्बो को तीन प्रमुख वर्गो में विभक्त किया है-

१. रूपात्मक अथवा लक्षित- इसके अन्तर्गत ऐन्द्रिय बिम्ब आयेगे।

२. भावास्मक- इसके अन्तर्गत लक्षणा के चमत्कार से युक्त वे बिम्ब आयेगे जो किसी ठोस आधार केक द्वारा भाव को चित्रात्मकता प्रदान करते हैं।

३. क्रियात्मक बिम्ब- जो न केवल वाहय गति का चित्रण करता है वरन अन्तस के द्वन्द को भी मूर्त करता है।[2]

डॉ॰ रणजीत ने विभिन्न आधारों पर काव्य बिम्बों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है।

(क) प्रस्तुति अप्रस्तुति के आधार पर -

१. प्रस्तुत रूप में लाये हुए बिम्ब (डायरेक्ट इमेज)

२. अप्रस्तुत रूप में लाये हुए बिम्ब (फिगरेटिव बिम्ब)

(ख) संवेदित इन्द्रियो के आधार पर -

१. दृष्टि बिम्ब

२. ध्वनि बिम्ब

३. स्वाद बिम्ब

४. गंध बिम्ब

५. स्पर्श बिम्ब

६. मिश्रित संवेदनाओं के बिम्ब अर्थात एकाधिक इन्द्रियो को संवेदित करने वाले बिम्ब

(ग) क्षेत्र के आधार पर-

१. प्राकृतिक बिम्ब

२. पौराणिक बिम्ब

१- आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, कैलाश वाजपेयी, पृ.सं॰ ८१

२- छायावादोत्तर हिन्दी काव्य में बिम्ब विधान, डॉ॰ उमा अष्टवश, पृ॰ १९

३. ऐतिहासिक बिम्ब

४. सामाजिक लोक सांस्कृतिक बिम्ब

५. औद्योगिक वेज्ञानिक बिम्ब

(च) संक्षिप्त विस्तृति के आधार पर-

१. सान्द्र बिम्ब

२. विवृत बिम्ब

(छ) स्थिति गति के आधार पर-

१. स्थिर बिम्ब

२. गतिशील बिम्ब

(ज) कवि की मानसिक अवस्था के आधार पर-

१. स्वस्थ बिम्ब

२. रुग्ण बिम्ब [1]

डॉ. सिद्धेश्वर प्रसाद ने काव्य बिम्बों को दो वर्गो में समाहित किया है-

१. पारदर्शी बिम्ब या पूर्ण बिम्ब

२. अपारदर्शी बिम्ब या खण्डित बिम्ब।

इस प्रकार विभिन्न विद्वानो ने बिम्ब को भिन्न भिन्न रूपों में वर्गीकृत किया है जो अभिव्यक्ति के महत्वपूर्ण एवं प्रमुख साधन के रूप में प्रयुक्त होते हैं कवि को सूक्ष्म भावनाओं या अमूर्त सहजानुभूतियों को बिम्बो के द्वारा ही मूर्तता तथा अभिव्यक्ति को चारूता मिलती है। बिम्ब किसी कवि के स्वभाव एवं संस्कारों का भी सच्चा दर्पण है।

१- हिन्दी की प्रगतिशील कविता, डॉ. रणजीत, पृ.सं. ३१३

केदार नाथ अग्रवाल के काव्य में बिम्ब विधान

केदार की कविता का परिसर बहुत व्यापक है बहुत मौलिक हैं कवि ने जिन्दगी की उस प्रत्येक धड़कन को पकड़ा है जिसे उसकी संवेदनाये छू सकी हैं उनकी कविता में एक सादगी है एक निश्छलता है और इस सबके साथ साथ सुन्दर से सुन्दर कलात्मक शिल्प भी है। केदार का काव्य प्रतिभा का सर्वाधिक वैभव उनकी बिम्ब निर्माण क्षमता में दिखाई देता है। वे अपनी कवि कल्पना से ऐसे बिम्ब प्रस्तुत करते है जो सजीव और मार्मिक तो होते ही है उनमें जीवन की सच्चाई भी प्रतिबिम्बत होती हैं उनकी कविताओं में जीवन के लगभग हर क्षेत्र से बिम्बो का चयन किया गया है और उन्हे अपनी काव्यात्मक प्रतिभा का संस्पर्श देकर नितान्त नवीन ढंग से प्रस्तुत किया गया हैं केदार के काव्य में बिम्बो के लगभग सभी प्रकार मिल जाते हैं।

१. इन्द्रिय संवेद्य बिम्ब

केदार का इन्द्रिय बोध इतना सशक्त है कि वे मानव जीवन के प्रति तो संवेदनशील है ही प्रकृति के जड़ पदार्थो के प्रति भी वे मानवीय रागों से संवेदित होते रहते हैं इसी लिए उनकी कविता में इन्द्रिय संवेद्य बिम्बो की बहुतायत है। उनके यहां दृष्टि, ध्वनि, स्वाद गंध तथा स्पर्श बिम्ब स्वतंत्र रूप से भी गढ़े गये है और कई बार मिश्रित संवेदनाओं अर्थात एकाधिक इन्द्रियो को संवेदित करने वाले बिम्बो की भी रचना की गयी है। कुछ उदाहरणों के द्वारा इस कथन की विधिवत पुष्टि की जा सकती है।

क. दृश्य बिम्ब

एक ''वीरांगना'' की क्रान्ति चेतना और उसके अदम्य उत्साह को चित्रित करने के लिए कवि एक दृश्य बिम्ब की योजना करता है। जिसमें इतनी क्रियाशीलता है कि लगता है मानो कवि का हृदय वीरांगना की एक एक क्रिया के साथ लिपट चला जा रहा हो।

मैंने उसको

जब जब देखा

लोहा देखा,

लोहा जैसा-

तपते देखा,

गलते देखा,

ढलते देखा,

मैने उसको,

गोली जैसा,

चलते देखा।[1]

ख ध्वनि बिम्ब

कोयल की कुहुक सुनकर कवि का हृदय खिल उठता हैं उसकी जिजीविषा जाग उठती है और वह हर परिस्थिति से लोहा लेने के लिए कमर कस लेता है कोयल की स्वर लहरी कवि के जीने का मार्ग प्रशस्त कर देती है और वह कोयल के साथ-साथ कुहुकने लगता है।

कोयल कुहुकी

फिर फिर कहुकी

रह रह कर फिर फिर कुहुकेगी

बिन कुहुके वह नही रहेगी

चाहे जितना उत्तापित हो

आतप से वह संतापित हो।[2]

ग. स्वाद बिम्ब

अपनी अनेक कविता में केदार जी ने स्वाद बिम्ब खडे किये हैं अपनी कविताओं की लोकप्रियता के समन्वय में वे पूर्णतः अभिव्यक्त है। उन्हें विश्वास है कि जिस तरह उन्हें विश्वास है कि जिस तरह उन्हें अपनी कवितायें प्रिय है उसी तरह संसार में अन्य लोग भी उनकी कविताओं को रूचि के साथ पढ़ेगे और उनका आस्वाद लेगे-

स्वादी संसारियों को

मेरी कवितायें दोस्त

वैसे ही रूचेगी जैसे

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ८८

२- बोले बोल अबोल, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १२७

रोटी हथपोई मुझे

परवर के सूखे साग

कड़ुवे मिरचे के साथ

खूब रुची

तुमने जो बनाई थी।[1]

च. गंध बिम्ब-

केदार के इन्द्रिय संवेदय बिम्बो की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे जिस इन्द्रिय से संवेदित होते है वह उनके अन्दर जीने की चेतना जगाती है और वे इतने उत्साहित होते है कि महाकाल से लडने के लिए भी तैयार हो जाते हैं गुलाब का पौधा वे अपने आंगन में इस उद्देश्य से लगाते है कि उसकी सुगन्धि उन्हे जीवन संघर्ष की प्रेरणा देती है-

ताजिंदगी

इसे जिऊंगा

फूलने पर

इसकी प्राकृत सुगन्ध पिऊंगा

निरन्तर लड़ूंगा मै

कठिन काल से लडाई

लव मैने इस पेड़ से

अपराजेय

आत्मीय लगाई।[2]

ङ स्पर्श बिम्ब

प्रकृति के साथ केदार का घनिष्ट सम्बंध हैं वे प्रकृति को इतना करीब से देखते थे कि वह उनसे अलग नही लगती उनके जीवन का अभिन्न अंग बन जाती है। प्रकृति उनके लिए कोई जड़ वस्तु नहीं है वह उनके साथ बाते करती है सुख दुख में साथ देती है और जब कवि टूटने लगता है तो अपना हाथ आगे बढ़ाकर उन्हे थाम लेती है। यही कारण है कि केदार की

१- जो शिलाएं तोड़ते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ७९

२- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ८०

कविताओं में प्रकृति के विभिन्न रूप चेतन प्राणियो को तरह व्यवहार करते हुए चित्रित किये गये हैं। धूप का यह स्पर्श बिम्ब इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि वह कवि को जीने का सन्देश देता है।

धूप नहीं यह
बैठा है खरगोश पलंग पर
उजला
रोएंदार, मुलायम
इसको छूकर
ज्ञान हो गया है जीने का
फिर से मुझको।[१]

च. मिश्रित संवेदनाओं के बिम्ब-

कवि को प्रकृति के कोमल और परूष दोनों तरह के रूप प्रिय हैं। पर तुलनात्मक रूप से वे प्रकृति के सौम्य रूप के प्रति अधिक आकृष्ट होते हैं। ऋतुओं में उन्हें बसन्त की सुषमा अधिक प्रिय है इसलिए उनकी कविताओं में बासन्तिक वैभव के चित्र अधिक संख्या में अंकित हुए हैं।। बसन्त के आने पर कवि की आँख, कान, त्वचा, नाक आदि इन्द्रियाँ एक साथ संवेदित हो उठती है-

बसन्त आया
पलाश के बूढ़े वृक्षो ने
टेसू की लाल मौर सिर पर धर ली
विकराल वनखण्डी
लाजवन्ती दुलहिन बन गयी
फूलों के आभूषण पहन आकर्षक बन गयी।
अनंग के
धुनं गुण के भौरे गुनगुनाने लगे
आम के अंग

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ५०

बौरों की सुगन्ध से महक उठे

मंगल गान के सब गायक पखेरू चहक उठे।[1]

यहां बसन्त को मादक छवि का लोक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में चित्रांकन किया गया हैं। पलास के बूढ़े वृक्षों को दूल्हा और विकराल वनखण्डी को लजवन्ती दुलहिन के रूप में प्रस्तुत करके कवि ने मानो बुन्देलखण्ड के ग्रामीण अंचल में होने वाले किसी विवाह समारोह का ही जीवन्त दृश्य उपस्थित कर दिया है। भौरों और पखेरूओं के कल गान में नाद बिम्ब तितलियों के पंखो का गुनगुनाहट में स्पर्श बिम्ब और बौरो की सुगन्ध में घ्राण बिम्ब का सौन्दर्य स्वतः स्पष्ट है।

केदार की कविताओं में इन्द्रिय संवेद्य बिम्बों के अन्तर्गत दृश्य बिम्बो के उदाहरण सबसे अधिक मिलते है किन्तु उनकी बिम्ब निर्माण क्षमता का वास्तविक प्रकाशन यहां हुआ है यहां वे मिश्रित संवेदनाओं के बिम्ब प्रस्तुत करते हैं "धूप" का निम्नलिखित चित्र देखकर स्वयं काल तक हतप्रभ रह जाता है सामान्य मनुष्य की तो बात ही क्या है-

धूप चमकती है चांदी की साड़ी पहने

मैके में आयी बेटी की तरह मगन है

फूली सरसों की छाती से लिपट गयी है

जैसे दो हमजोली सखियां गले मिली है।

भैया की बाहों से छूटी भौजाई सी

लंहगे की लहराती चलती हवा चली है

सारंगी बजती है खेतों की गोदी में

दल के दल पक्षी उड़ते है मीठे स्वर के

अनावरण यह प्राकृत छवि की अमर भारती

रंग बिरंगी पंखुरियों की खोल चेतना

सौरभ से मह मह महकाती है दिग-दिगन्त को

मानव मन को भर देती है दिव्य दीप्ति से

शिव के नन्दी सा नदिया में पानी पीता

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ११०

निर्मल नभ अवनी के ऊपर विसुध खड़ा है

काल काग की तरह ठूठ पर गुम सुम बैठा

खोयी आँखो देख रहा है दिवास्वप्न को।[१]

२. **वस्तु बिम्ब**

केदार की कविताओं में वस्तुपरक बिम्बो के दोनों रूप यथातथ्य बिम्ब और व्यापार व्यंजक या गत्यात्मक बिम्ब प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। प्रमुख रूप से केदार की कविताओं का क्षेत्र प्रकृति और समाज रहा हैं इसलिए इन दोनों ही क्षेत्रो से कवि ने वस्तुपरक बिम्बो का चयन किया है।

क. **यथातथ्य बिम्ब-** यथातथ्य बिम्ब के उदाहरणार्थ प्रकृति के क्षेत्र से चुना गया एक बिम्ब दृष्टव्य है-

और पैरों के तले है एक पोखर

उठ रही उसमें लहरिया

नीचे तल में जो उगी है घास भूरी

ले रही वह भी लहरिया

एक चांदी का बड़ा सा गोल खम्भा

आख को है चकमकाता

है कई पत्थर किनारे

पी रहे चुप चाय पनी

प्यास जाने कब बुझेगी।[२]

इसी प्रकार खजुराहों के मंदिर शीर्षक रचना में अंकित मंदिरों की मूर्तियों को कवि ने यथातथ्य रूप में इस प्रकार बिम्ब-धर्मिता प्रदान की है-

नर है तो आजानु बाहु उन्नत ललाट

रागानुराग रंजित शरीर है

अधर पान, कुच ग्रहण

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ६३

२- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १८

और आलिंगन में आसक्त लीन है।

तिय है तो आकुलित केश पट नटी वेश

कामातुर मद विहल अधीर है

सदियों से पुरुषों की जाघों पर बैठी करती बिहार है।[1]

ख. व्यापार व्यंजक बिम्ब- केदार ने समाज को अथवा प्रकृति को केवल यथावत रूप में अंकित नहीं किया अधिकांशतः उन्हें सौन्दर्य को उसकी गत्यात्मक भूमिका में ही वाणी दी है।

चढ़ी पेड़ महुआ थपाथप मचाया

गिरी धम्म से फिर चढ़ी आम ऊपर

उसे भी झकोरा किया कान में कू

उतरकर भगी मैं हरे खेत पहुंची

वहां गेहुओं में लहर खूब मारी

पहर दोपहर क्या अनेकों पहर तक

इसी में रही मैं

खड़ी देख अलसी लिए शीश कलसी

मुझें खूब सूझी

हिलाया झुलाया, गिरी पर न कलसी।[2]

व्यापार व्यंजक बिम्बों में शुष्क यथार्थ को चित्रित करने के साथ ही कही कहीं व्यंग का भाव भी उभर आया है। और ऐसे स्थल निश्चय ही बड़े मार्मिक बन पड़े हैं। उदाहरणार्थ-

चित्रकूट के बौडम यात्री

सेतुआ गुड़ गठरी में बांधे

गठरी को लाठी पर साधे

लाठी को कन्धे पर टांगे

१- बोले बोल अबोल, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २००

२- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २१

दिन भर अधरम करने वाले

पर नारी को ठगने वाले

पर सम्पत्ति को हरने वाले

भीषण हत्या करने वाले

धर्म लूटने के अधिकारी

टोली की टोली में निकले

जैसे गुड़ के लोभी चींटे

लम्बी एक कतार बनाके

अपने अपने बिल से निकलें।'[१]

इस बिम्ब में चित्रकूट के यात्रियों का गत्यात्मक चित्र अंकित करने के साथ ही कवि ने व्यंग रूप में इन यात्रियों को वास्तविक जीवनचर्या और मनःस्थिति को भी स्पष्ट कर दिया है।

३. **भाव बिम्ब-** जब कवि दृश्य रूपो में अपने भावों की छाया देखता है तब भाव सिक्त बिम्बों की सृष्टि होती है केदार में यथार्थ और बौद्धिकता का आग्रह प्रबल होने के कारण भावात्मक बिम्बों की कमी है। फिर भी कुछ कविताओं में भावसिक्त बिम्बों को पूरी सामर्थ्य के साथ उभार गया हैं मूर्च्छना और चेतना कविता में कवि ने मनोभावों की छाया सूर्यास्त और सूर्योदय के दृश्यों में देखी है और इस प्रकार दो सशक्त भाव बिम्बों का सृजन किया है-

मैं तुम्हें पहचानता हूँ

शाम को तुम रोज टीले पर पहुँच कर

डूबता सूरज निरखती हो युगों से

और घर को लौटती हो डगमगाती

रात का तम तम लेकर

तुम हमारी मूर्च्छना हो!!

मैं तुम्हें पहचानता हूँ

१- गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं.३४

प्रातः को तुम रोज टीले पर पहुंच कर
सूर्य उगता देखती हो लालसा से
और घर को लौटती हो दमदमाती
रश्मियों की आग लेकर
तुम हमारी चेतना हो।[1]

सन १९७५ में इंदिरा जी ने जब देश में आपातकाल की घोषणा करवा दी तो सारा देश इस अप्रत्याशित कदम से आश्चर्याभिभूत हो गया किन्तु किसी में इतनी हिम्मत नहीं थी कि खुलकर कोई इंदिरा जी का विरोध कर सकें। उनके विरोधी जो पहले बहुत मधुर थे जेलों में ठूंस दिये गये। उस समय देश में जो दहशत व्याप्त थी उसे केदार ने अपनी अनेक कविताओं मं अंकित किया है लोगों के मन पर छाये हुए भय और आतंक के भाव को कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में चित्रात्मकता प्रदान की है-

सरकार है अखबार में
रेडियो के सूचना संसार में
अधिनियम आदेश
अध्यादेश की भरमार में
अफसरी आतंक की
तलवार में
रक्षित सुरक्षित लोग हैं
सरकार में
चुन दिये जैसे गये दीवार में।[2]

नार्गाजुन केदार के कवि मित्रों में से एक हैं जब कभी वे बाँदा आते थे तो केदार जी को बड़ी प्रसन्नता होती थी। नागार्जुन के बाँदा आने पर केदार की एक प्रसिद्ध कविता है जिसमें वे नागार्जुन के साथ अपने घनिष्ठ सम्बन्धों का खुलास करते है। केदार की प्रसन्नता का सबसे बड़ा कारण यह था कि कवि मित्रों के आगमन से उनका घर काव्यमय हो जाता

१- गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १४९
२- पंख और पतवार, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १११

था। और वे मस्ती से झूम उठते थे। काव्य रस में सराबोर कवि की मनःस्थिति का एक सशक्त भाव बिम्ब निम्नलिखित पंक्तियों में देख जा सकता है-

एक बार फिर मिला सुअवसर मधु पीने का
कविता का झरना बनकर झर झर जीने का
लगातार घण्टों पहरों तक
एक साथ सासें लेने का
एक साथ दिल की धड़कन से ध्वनि करने का
ऐसा लगा कि जैसे हम सब
एक प्राण हैं एक देह हैं एक गीत हैं एक गूंज हैं।[१]

४. **अलंकृत बिम्ब/कल्पना बिम्ब-** अलंकृत या कल्पना बिम्बों से तात्पर्य उन बिम्बों से है जिनमें कवि दृश्य रसों को अपनी कल्पना के रंग में रंगकर अधिकाधिक अलंकृत रूप में प्रस्तुत करता है। ऐसे बिम्बों का सृजन केदार की कविताओं में खूब हुआ है चन्द्र गहना से लौटती बेर कवि एक खेत की मेड़ पर थोड़ी देर के लिए रुक जाता है और वहां चना सरसों और अलसी क लहराते हुए पौधें को देखकर उसका मन स्वयंवर की मधुर कल्पना में डूब जाता है -

एक बीते के बराबर
यह हरा ठिगना चना
बांधे मुरैठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का
सज कर खड़ा है।
पास ही मिलकर उगी है
बीच में अलसी हठीली
देह की पतली कमर की है लचीली
नीले फूले फूल को सिर पर चढ़ाकर
कह रही है जो छुए यह

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ८८

दूं हृदय का दान उसको
और सरसों की न पूछो
हो गयी सबसे सयानी
हाथ पीले कर लिये हैं
ब्याह मंडप में पधारी
फाग गाता मास फागुन
आ गया है आज जैसे
देखता हूँ मैं स्वयंवर हो रहा है।[1]

स्वयंवर का यह अद्‌भुत लोक सांस्कृतिक दृश्यांकन कवि की उर्वर कल्पना और उसके समर्थ अप्रस्तुत विधान से ही संभव हो सका है। इसी प्रकार 'दो जीवन' कविता में पूँजीपति की कली के रूप में और श्रमि की बबूल के वृक्ष के रूप में कल्पना की गयी है और दो सफल अलंकृत बिम्बो का सृजन किया गया है -

कली निगाह में पली
हिली डुली कपोल में
हृदय प्रदेश में खिली
तुली हंसी की तोल में
गरम गरम हवा चली
अशान्त रेत से भरी
हरेक पंखुरी जली
कली ने जी सकी, मरी
बबूल आप ही चला
हवा से वह न डर सका
कठारे जिन्दगी चला
न जल सका न मर सका।[2]

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १७

२- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २५

भारतीय राजनीति के सिंहावलोकन में भी कवि पौराणिक धार्मिक मान्यताओं की कल्पना का सहारा लेकर स्थिति को इस प्रकार बिम्बायित करता है -

कामधेनु सी कांग्रेस अब

सुरसा जैसा मुँह बाए हैं।[1]

कामधेनु और सुरसा कांग्रेस के प्राति स्वतंत्रता के पूर्व की और स्वातंत्र्योत्तर काल की धारणाओं की असंगति को प्रभावशाली ढंग से मूर्तिमत्त करती है -

५. **सांद्र बिम्ब** - इस वर्ग के बिम्बों की विशेषता उनके घनत्व और अभिव्यक्ति की कसावट पर निर्भर होती है और एक खूबसूरत सांद्र बिम्ब सृजित हो जाता है केदार के परवर्ती काव्य में सांद्र बिम्बों की भरमार है क्योंकि ये कवितायें आकार में छोटी भाव गांभीर्य की धनी हैं भारतीय अर्थ व्यवस्था की कारूणिक स्थिति को व्यंग का पुट देकर केदार ने दो पंक्तियों में ही उपस्थित कर दिया है वेतन-भोगी कर्मचारी इस आसमान छूती मंहगायी में किस तरह गुजारा करता होगा जबकि -

उड़ जाता है वेतन

जैसे गंध कपूर।[2]

केदार की एक बड़ी प्रसिद्ध कविता है 'बालक ने' इस कविता में कवि ने बहुत संक्षेप में गंभीर अर्थ की व्यंजना करने के लिए एक सुंदर सांद्र बिम्ब खड़ा किया है -

बालक ने

ताल को कंपा दिया

कंकड़ से बालक ने

ताल को नहीं

नन्त काल को कंपा दिया।[3]

अन्तिम पंक्तियों में बिम्ब का घनत्व दृष्टव्य है। इस सम्बंध में विश्वनाथ त्रिपाठी की टिप्पणी ध्यान देने योग्य हैं उनका कहना है कि जलाशय का ठहराव बालक ने छोटा सा

१- कहें केदार खरी-खरी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १०१

२- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १५३

३- आधुनिक कवि, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ११२ (और पृ.सं. ९५)

कंकड़ मारकर तोड़ दिया हैं युग की नई चेतना बालक हैं उसकी प्रारंभिक कंकड़ फेंकना है ठहराव को तोड़ना है इस ऐतिहासिक क्रिया की शुरूआत पर न जाइये। इसकी ऐतिहासिक संभावना पर गौर कीजिये।[१]

आज का आदमी अपनी छोटी सी दुनिया में सिमट गयाहैं उसका सामाजिकता बोध लगभग नष्ट प्राय है और वह अपने व्यक्तिगत हितों की सम्प्राप्ति को ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मानने लगा हैं सामाजिक यथार्थ की इस कडुवी अनुभूति को कवि सांद्र बिम्ब के माध्यम से उद्घाटित करता है -

हरके बंद हैं अपनी गली में

नाज जैसे फूलों में

गंध जैसे कली में।[२]

६. **विवृत बिम्ब** - इस वर्ग के बिम्बों की सफलता विराट कल्पना और भावों के विस्तार में निहित हैं वस्तुपरक बिम्बों ओर विवृत बिम्बों में वस्तु और भाव का अन्तर होता है विवृत बिम्बों में कवि की कल्पना विवरण के साथ ही भावों का अटूट जाल बिछाती चलती है। केदार की कविताओं में विवृत बिम्बों के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं। जैसे -

मेरा देश गगन चुम्बी शिखरों का घर है

उत्तर के बलवान पहरुए की चौड़ी बाहों का घर है

तरूजो के अनगिन कुनवों का कुसंमित घर है

पल्लव पुलकित हरियाली का सस्मित घर है

मेरा देश वृहत वक्षस्थल

उपजाऊ धरती का घर है

गेहूं धान चने का घर है

गन्ना, रूई, तिली, सरसों, अलसी का घर है

अति उत्तम खेती का घर है

मेरा देश महापुरुषों की आत्माओं का प्यारा घर है

१- जियूंगा जिन्दगी, अभी और अभी, भागवत रावत, रावेन्द्र शर्मा, मनोहर देवलिया

२- आग का आइना, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ८०

श्रमजीवी के निर्माणों का सुंदर घर है

इसके पैरों पर सागर भी नतमस्तक है।[1]

इस कविता में कवि अपने देश के प्रति सम्मान भाव व्यक्त करता है और उसकी समृद्धि तथा उपलब्धियों का विराट बिम्ब खड़ा करता है। इसी प्रकार कलकत्ते की दशा कविता में कवि बंगाल के ऐतिहासिक अकाल का दर्द भरा चित्र खींचकर एक विवृत बिम्ब की सृष्टि करता है -

बच्चों का क्रय विक्रय होता

वैश्यायें कन्याये लेती

पिता पुत्र की हत्या करता

बहुओं की साड़ी खिंचती हैं

सारी सामाजिक मर्यादा चूर चूर है

न्याय नहीं हैं,

अन्यायी का सर ऊँचा है,

अन्न वस्त्र के धनी डकैतों की चाँदी है

राज व्यवस्था का अभाव है

मृत्यु काल है !

अब कलकत्ते में जाने की जगह नहीं हैं।[2]

७. **मिथकीय बिम्ब-** केदार ने अपनी धूप कविता में शिव के मिथकीय बिम्ब का सहारा लिया है जरा उस पर ध्यान दिया जाये -

धूप धरा पर उतरी जैसे

जैसे शिव के जटा जूट पर

नभ से गंगा उतरी

धरती भी कोलाहल करती

तम से ऊपर उभरी

१- गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १५२

२- जो शिलाएं तोड़ते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १२२

धूप धरा पर बिखरी।

कहने की आवश्यकता नहीं कि मिथकीय बिम्ब ने भाव बोध में सघनता पैदा की है। यह सघनता और गति की तीव्रता प्रस्तुत की गति में अप्रस्तुत की गति को सहज ढंग से उड़ेल देने से आई हैं। सच तो यह है कि धूप के धरा पर उतरने से गति बिम्ब और रूप बिम्ब द्वारा मिथकीय बिम्ब था समूर्त्तन हुआ है। उसे मिथकलोक से खींचकर इन्द्रिय बोध से जोड़ा गया है और तब बदले में धूप की प्रकाशधारा को गति और तीव्रता मिली है। धरती को कोलाहल करने और तम से उभरने के भाव बोध ने रूमानियत के लहजे में उतरी हुयी कविता को प्रतीकात्मकता की दिश देकर अंधेरे पर प्रकाश के विजय की भूमि पर उतार दिया है यहीं तो जनवादी मंजिल है और यही मानव मन की युग-युग की साध है केदार के मिथक प्रयोग की यह विशेषता है कि कवि मिथक लोक में धरती से बाहर का सौन्दर्य नहीं खोजता बल्कि मिथकीय सौन्दर्य को धरती के सौन्दर्य के कदमों पर झुका देता है -

निष्कर्ष -

१. केदार के इंद्रिय संवेदय बिम्बों में चाक्षुष बिम्ब सबसे अधिक मिलते हैं।

२. वस्तुपरक बिम्बों में लोक संस्कृति का स्पर्श बिम्ब को प्राणवान बना देता है।

केदार के बिम्ब विधान में एक उल्लेखनीय बात यह है कि जब वे किसी वस्तु या भाव का बिम्ब खड़ा करते हैं तो कवि मानस पर पड़ने वाले प्रभाव को भी प्राय शब्दबद्ध कर देते हैं जैसे -

दूब सिहरी
और गिर ही गया मोती
स्वप्न जैसा
इस हवा को सह न पाया
दूब की सिहरन लिए मैं
लौट आया।[१]

स्पष्ट है कि केदार जहां दूब और हवा की छेड़ छाड़ का चित्र खींचते हैं वहां अंत में दूब की सिहरन लिए वापस लौटने की बात करना नहीं भूलते। केदार की एक कविता है -

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १२७

झाड़ी के एक खिले फूल ने

नीली पंखुरियों के

एक खिले फूल ने

आज मुझे काट लिया

ओंठ से

और मैं अचेत रहा

धूप में।[1]

यहाँ भी कवि नीली पंखुरियों के एक खिले फूल का चाक्षुष बिम्ब सृजन करने के बाद सीधे उसके प्रभाव चित्रण पर उतर आता है और उस फूल के ढंग से धूप में अचेत पड़ा रहता है।

४. **प्रतीक-विधान-** केदार ने अपने अधिकांश बिम्ब प्रकृति के क्षेत्र से चुने हैं। केदार की कविता में प्रतीक विधान को स्पष्ट देखा जा सकता है-

(क) प्रतीक का अर्थ एवं स्वरूप - प्रतीकों का इतिहास 'भाषा' के इतिहास से पुराना है। प्राचीन काल से ही प्रतीक अभिव्यक्ति के प्रमुख साधन के रूप में स्वीकार किये जाते रहे हैं। प्राचीन काल में सूर्य, चन्द्रमा, वृक्ष डालियों आदि को बोधित करने के लिए विभिन्न प्रकार के निश्चित प्रतीकों को काम में लाया जाता था। ये प्रतीक और चिन्ह भाषा की उत्पत्ति और विकास के बाद लोक जीवन में ज्यों का त्यों स्थान ग्रहण करते रहे। चित्रकला तथा मूर्तिकला में थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ ये आज भी ज्यों के त्यों प्रयुक्त हो रहे हैं। विज्ञान एवं गणित के क्षेत्र में आज भी प्रतीकों का बहुत बड़ा महत्व है।

प्रतीक, विस्तार को संक्षेप में कहने का माध्यम है हम अपने दैनिक जीवन में प्रतीक का आश्रय लेकर ही बोलते सुनते और समझते हैं 'ध्वज' देश की प्रतिष्ठा एवं स्वतंत्रता का प्रतीक होने के नाते ही केवल वस्त्रखण्ड न माना जाकर श्रद्धा और गौरव का अधिकारी होता है इसी प्रकार क्रय-विक्रय को सुविधापूर्ण बनाने के लिए "सिक्का" भी प्रतीक रूप में समाज में सम्मान प्राप्त करता है तात्पर्य यह है कि प्रतीक एक बहुत व्यापक शब्द है जो सदैव किसी न किसी संदर्भ में प्रयुक्त होता है और जिस विषय वस्तु के संदर्भ में प्रतीक का प्रयोग हुआ

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ४४

होता है उसकी सामान्यता या विशेषता के आधार पर ही प्रतीक भी सामान्य या विशेष होता है।

"प्रतीक" का शाब्दिक अर्थ होता है चिन्ह, स्थानापन्न वस्तु या प्रतिमा। किन्तु काव्य में प्रतीक को अधिक व्यापक अर्थ में ग्रहण किया जाता है। वहां वह भावाभिवयक्ति का सशक्त माध्यम माना जाता है। उसके पीछे एक दीर्घ परंम्परा रहती है और वह तत्काल ही भावना को उदबोधित करने की क्षमता रखता है। जब कवि कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात कहना चाहता है। तब वह प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग करता है।

प्रतीक के संदर्भ में एक बात साफ है कि यह भी सम्प्रेष्य के संप्रेषण के तमाम सारे माध्यमों में से एक माध्यम हैं यदि खुली आंख से देखा जाये तो संप्रेषण व्यवस्था की प्रत्येक इकाई किसी न किसी रूप में प्रतीक होती है क्योकि संरचना की कोई भी इकाई स्वयं में अर्थ को समेटे नही रहती अर्थात अर्थ/संप्रेष्य उस संप्रेषक/संरचक में नही रहता वस्तुतः उस संप्रेषक/संरचक के माध्यम से उससे पृथक रहने वाले अर्थ का संकेतन होता हैं, चूंकि पृथक अर्थ का संकेतन होता है, प्रतीति होती है अतः वह प्रतीक है।

अर्थ की प्रकृति सूक्ष्म होती है और इस सूक्ष्म अर्थ को/संप्रेष्य को संप्रेषित करने के लिए प्रयोक्ता वस्तु आदि माध्यमो का ग्रहण करता हैं। सामान्य संप्रेषण में सामान्यं वस्तु के माध्यम से अपनी बात पहुचाई जाती है परन्तु प्रतीक में वह इस सामान्य वस्तु को ग्रहण नही करता इसके स्थान पर किसी एक विशेष वस्तु जो बाद में प्रतीक हो जाती है, का ग्रहण करता है। इस प्रकार प्रतीक में एक वस्तु के स्थान पर दूसरी के माध्यम से अपनी बात कहलाई जाती है। पर प्रतीक में इस एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु का ग्रहण नहीं होता।

प्रतीक का प्रयोग ऐसे ही अनायास नही किया जाता है। भाव यह है कि प्रतीक के प्रयोग के मूल में रचनाकार का एक उद्देश्य निरंतर रहता है भावों की वह सघनता वह विचार जो कि सामान्य भाषा के माध्यम से नही कहे जा सकते । "नही कहे जा सकते" को व्यक्त करने के लिए रचनाकार को कोई न कोई माध्यम चाहिये। ऐसी स्थिति में जब सारे माध्यम फीके पड़ गये हो तब उभरता है प्रतीक। इसलिए प्रतीक के प्रयोग के पीछे सोद्देश्यता निरन्तर छिपी रहती है। उदाहरण के रूप में हम एक "सजल नयन" मुद्रा को लेते हैं। यह

"सजल नयन" मुद्रा एक विशेष प्रतिकार्थ के लिए है वह यह है कि रचनाकार इस प्रतीक के माध्यम से दर्द की एक ऐसी स्थिति को व्यक्त करना चाहता है जो कि 'दर्द' नामक सामान्य शब्द के प्रयोग से व्यक्त नही हो सकती साथ ही दर्द की सघनता इतनी गहरी है कि वह उसे निरंतर अकुला रही है, वह निरंतर छटपटा रहा है, इसलिए कि उसे सामान्य भाषा से माध्यम मिल नही रहा है। अपने इसी भाव को व्यक्त करने के लिए और उसे व्यक्त करने की लाचारी की स्थिति में उसकी छटपटाहट को व्यक्त करने का जो सहारा सामने आता है वही सहारा प्रतीक होता है।

हिन्दी का प्रतीक शब्द अंग्रेजी 'सिम्बल' का पर्यायवाची हैं व्यवहार में प्रतीक शब्द अपनी विशेष लाक्षणिकता के कारण प्रकृष्ट अर्थ की व्यंजना करता हैं यह भाव व्यंजना का एक अपूर्व माध्यम माना जाता है। प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (अथवा गोचर) वस्तु के लिए किया जाता है, जो किसी अदृश्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रति विधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समान रूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर पर विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक हैं डॉ॰ सुधांशु ने प्रतीक की प्रासंगिकता और पृष्ठभूमि की ओर संकेत करते हुए लिखा है-

"प्रत्येक भाषा में कुछ शब्द ऐसे होते है जिनसे केवल अर्थ की अभिव्यक्ति ही नही होती वरन भावनाओं का उद्‌बोधन भी होता है जिन वस्तुओं में तनिक भी निजी विशेषता पूर्ण आकर्षण है तथा जिन पर दीर्घ सांस्कृतिक वासना का प्रभाव पड़ा है वे शब्द हमारे काव्य में प्रतीक का काम करते हैं प्रतीक के स्वरूप में कुछ न कुछ ऐसी व्यंजना रहती है जिससे भावनाओं को विकास के संकेत मिल जाते हैं।"[१]

भाषा को अधिक सारगर्भित बनाने के लिए प्रतीक अधिक सहायक होते हैं तथा अभिव्यक्ति में अधिक प्रभावशीलता की सृष्टि करते है। समर्थ कवि ही इनका सुष्ठ प्रयोग कर सकता है। प्रातीकों में प्रस्तुत और अप्रस्तुत के अपूर्व संयोग के कारण कथ्य में रोचकता आती है साथ ही प्रतीकों में अभिव्यक्ति का गुण भी होता हैं जिसमें यह व्यंजना का गुण अधिक मात्रा में होगा वह कवि उतना ही सफल और समर्थ माना जायेगा।

"कवि प्रतीकों के द्वारा भावनाओ की सशक्त व्यंजना करने में सफल होता है। जब

१- निराला : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, धनंजय वर्मा, पृ.सं. २०४

शब्द कवि के भावों को वहन करने में असमर्थ हो जाते है, उस समय रचनाकार प्रतीको के माध्यम से ऐसे चित्र निर्मित करता है, जो उसकी भावनाओं को व्यक्त करने में सक्षम होते हैं इनके द्वारा मस्तिष्क किसी अनुभव का भावन करता है।"

प्रतीक कम से कम शब्दो द्वारा अधिक अर्थ व्यंजित कर शिल्प को प्रभावोत्पादकता प्रदान करते हैं। प्रतीक शब्द अत्यन्त व्यापक है जो सदैव किसी न किसी सन्दर्भ में प्रयुक्त होता हैं सामाजिक और साहित्यिक दोनों दृष्टियों से प्रतीक का महत्व हैं सामाजिक दृष्टि से ये हमारी भाव-परंपरा के स्मृति चिन्ह हैं जिन्हे हम समय के साथ-साथ नये अर्थो से संयुक्त करते रहते हैं। साहित्यिक प्रतीक कुछ ऐसे प्रभाव से समन्वित होते है जो मन की गहराइयो से उदभूत होते हैं। चूंकि प्रतीक मानव मन की पूरी प्रक्रिया का द्योतन करता है इसीलिए उसका प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार एक प्रतीक, संक्षेप में, गंभीर और विस्तृत अर्थ की व्यंजना करता है। डॉ॰ रणजीत के अनुसार "किसी शब्द में प्रतीकात्मकता तब आती है जब वह अपने साधारण अर्थ के अतिरिक्त कोई बड़ा अर्थ वहन करता है। सामान्यतया प्रतीको का प्रयोग काव्य की सरल और सहज अभिव्यक्ति में बाधक होता है। और यह बाधा तब और जटिल हो जाती है जब कवि मनमाने प्रतीक गढने लगता है। डॉ॰ रणजीत की दृष्टि में "साहित्य में प्रतीकात्मकता तब सार्थक होती है जब या तो उस पर सामाजिक, राजनीतिक नियंत्रण तगड़ा हो ओर या साहित्यकारों को किसी ऐसे अलौकिक अनुभव को व्यक्त करना हो, जिसे सीधे ढंग से कहा ही न जा सकता हो।"[१]

प्रतीक की परिभाषा-

प्रतीक की सबसे सामान्य अविशिष्ट और असाम्प्रदायिक परिभाषा जिसे किसी विशेष प्रतीकवादी या प्रतीकवाद विरोधी निकाय के घेरे में नहीं बांधा जा सकता कोशों में मिलती है।

वेबस्टर का मत है कि "प्रतीक वह है जो संबंध सूत्रता, साहचर्य, परम्परागत रीति सचेतन रूप से नहीं वरन संयोग व ज्ञात उत्पन्न समरूपता के आधार पर किसी दूसरे का प्रतिनिधित्व या संकेतन करता है वह किसी अदृश्य वस्तु का जैसे कि किसी विचार का

१- हिन्दी की प्रगतिशील कविता, डॉ॰ रणजीत, पृ.सं. ३२६

किसी गुण का अथवा चर्च या राज्य जैसी किसी समष्टिगत सत्ता का दृश्य चिन्ह होता है। इनसाइक्लापीडिया ब्रिटेनिका भी दो शब्दों पर ध्यान केन्द्रित करती है एक "चिन्ह" पर और दूसरे "दृश्य" पर। उनके अनुसार- "इस शब्द (प्रतीक) का प्रयोग किसी ऐसी दृश्य वस्तु के लिए होता है जो हमारे मनोजगत के सामने किसी ऐसी चीज की झलक का प्रतिनिधित्व करती है जो वैसे तो अज्ञात होती है पर प्रतीक के साहचर्य सम्बंध के कारण उसका अनुभव हो जाता है। प्रतीक के साथ जो विचार सामान्यतः सम्बद्ध होते है उन्ही के द्वारा उसका (बात का) सम्प्रेषण हो जाता है। उदाहरण के लिए खजूर की शाखा की छाप विजय का प्रतीक है और लंगर आश का। विश्वकोश के टिप्पणी कार की धारणा भी यह है कि प्रतीक मूलतः चिन्ह है, अज्ञात का आभास देने वाला ज्ञात और दृश्य चिन्ह। "दृश्य" होने की सामान्य धारणा उसे भी घेरे हैं "एनसाइक्लोपीडिया आंव रिलीजन एण्ड एथिक्स" प्रतीक के व्याख्याकार ने कदाचित इस त्रुटि को महसूस किया और कहा कि "प्रतीक किसी विचारभाव या अनुभव का दृश्य या श्रव्य चिन्ह हैं वह उसकी व्याख्या करता है, जो वस्तुतः मानस और कल्पना द्वारा ही अभिगृहीत किया जा सकता है और यह अभिगृहण होता है उस वस्तु के सहारे जो हमारे प्रेक्षण क्षेत्र (फील्ड ऑफ आब्जरवेशन) के भीतर प्रवेश कर जाती है।" इस परिभाषा में बल इस बात पर है कि प्रतीक उस सत्य का व्याख्याता और प्रस्तुतकर्ता है जो ऐन्द्रिय अनुभव परिधि में सीधे नहीं आता और जिसका प्रत्यक्ष मानस द्वारा कल्पना के सहारे सीधे होता है।

हिन्दी-कोशकारों की परिभाषायें प्रायः उक्त दोनों परिभाषाओं के लक्षणें को समेट कर चलती हैं साहित्यकोश में कहा गया है। प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (अथवा गोचर) वस्तु के लिए किया जाता है जो किसी अदृश्य अगोचर या अप्रस्तुत विषय का प्राविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है। अथवा ये कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर के समान रूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर की विषय का प्रातिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य, अप्रस्तृत विषय का प्राविधान प्रतीक मूर्त, दृश्य, प्रस्तुत विषय द्वारा करता हैं जैसे अदृश्य या अश्रव्य ईश्वर देवता अथवा व्यक्ति का प्रतिनिधित्व उसकी प्रतिभा या अन्य वस्तु कर सकती है।[१] इस परिभाषा के अनुसार अगोचर

१- हिन्दी साहित्यकोश, ज्ञानमण्डली, काशी, पृ. ४७१

का गोचर प्रतिविधान जो साहचर्य के आधार पर अपने से भिन्न (किसी अन्य) की ओर संकेत करता है।

डॉ॰ भागीरथ मिश्र ने भी प्रतीक की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए लिखा है- "अपने रूप गुण कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु भाव विचार क्रियाकलाप देश जाति संस्कृति आदि का प्रातिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है।"[१]

डॉ॰ कुमार विमल के अनुसार "प्रतीक विधान के सहारे कलाकार दृश्य जगत के अप्रस्तुतों के द्वारा अदृश्य सत की जो अभिव्यक्ति के प्रचलित माध्यमो की सीमा के कारण अनिर्वचनीय हैं संकेत व्यंजना करता हैं। प्रतीक विधान में " फोनोमेना" के द्वारा "न्यूमेना" का संकेत किया जाता हैं वस्तुतः यह व्याख्यात्मक परिभाषा भी "दृश्य द्वारा अदृश्य के संकेत" की अवधारणा पर टिकी हुयी है।"[२]

कुछ विद्वानों की मान्यता है कि "प्रतीक" बिंब का रूढिगत स्वरूप है। इस संदर्भ में डॉ॰ शिवकरण सिंह का विचार उल्लेखनीय है बिंब निर्माण की प्रक्रिया प्रतिभा या विधायक कल्पना की मुखापेक्षी होती है। जब विधायक कल्पना मूर्त रूप में कुछ अभिव्यक्त करती है तो बिंब की रचना होती है। जब ये बिंब किसी निश्चित अर्थ में रूढ हो जाते है। तो उन्हें प्रतीक माना जाता है। इस प्रकार प्रतीक और बिंब अन्योन्याश्रित सिद्ध होते है।

सामान्य रूप से देखने पर प्रतीक अलंकार का ही रूप ज्ञात होता है परन्तु पाश्चात्य काव्य शास्त्रियो ने इसे शिल्प के रूप में स्वीकार किया हैं सामान्यतया देखने पर तो प्रतीक का क्षेत्र बड़ा व्यापक दिखाई पड़ता हैं विज्ञान, तर्कशास्त्र,गणित मनोविज्ञान सभी जगह प्रतीको का प्रयोग देखने को मिलेगा परन्तु एक रचनाकार के लिए जो प्रतीक का अर्थ है वह इन सबसे भिन्न तथा विशिष्ट हैं एक रचनाकार का सम्बन्ध ऐसे प्रतीकों से होता है जिनका निर्माण अनुभव अथवा अनुभूति की विशिष्टावस्था को द्योतित करना होता है प्रतीको के माध्यम से काव्य में कवि की भाषा चमत्कृत हो उठती है। शब्द अपने अभिधेयार्थ से युक्त होकर व्यंजनात्मक तथा लक्षणात्मक हो जाते हैं अभिव्यक्ति मनोहरता की चादर ओढ कर

१- संतरण, महेश भटनागर, पृ.सं॰ ३४०

२- वही, पृ.सं॰ ३४१

रहस्मय बन जाती है यही कारण है कि प्राचीन काल से ही रचनाकार के लिए प्रतीक एक बहुत बड़े काम की वस्तु रही है। इन उददेश्यों के साथ ही काव्य में अभिव्यक्ति को संचित करने तथा अर्थ की सघनता को सम्प्रेषित करने के लिए प्रतीको का प्रयोग किया जाता है।

ग- **प्रतीक के प्रकार-** प्रतीक एक ऐसी भाषिक संरचना होती है। जिसमें बिम्ब और संप्रत्ययों की एक योजना द्वारा दूसरी की ओर संकेत किया जाता है। बिम्ब तथा संप्रत्यय किसी तथ्य वस्तु या व्यापार के संवाहक संकेतक होते है जो प्रकृति या समाज से लिये जाते हैं यही दोनो प्रतीक की अन्तर्वस्तु के मूंल स्त्रोत है। प्रकृति निरन्तर साथ चल रही है। हम स्वयं उसके अंश, अंग है। फिर भी प्रकृति की सत्ता मानव से भिन्न है क्योकि हमारे पास चेतना है जो प्रकृति को भी बदलने का प्रयत्न करती है। समाज प्रतीको का दूसरा बडा स्त्रोत हैं उसका वर्तमान ही नही अतीत भी हमें प्रतीकदेता है और यह अतीत तीन भागो में बांटा जा सकता है ऐतिहासिक पौराणिक तथा पूर्व पौराणिक जब बौद्धिक मानस जन्मा नही था इनके आधार पर प्रतीकों को निम्नांकित वर्गो में रखा जा सकता है-

१. सामाजिक

२. प्राकृतिक

३. ऐतिहासिक

४. पौराणिक और मिथकीय

५. आद्य बिम्बीय

६. धार्मिक प्रतीक

१. सामाजिक प्रतीक-

सामाजिकता मनुष्य जीवन का एक अनिवार्य आयाम है। इसलिए प्रतीको कीसामाजिक सत्ता के विषय में दो मत नही हो सकते। भाषा के बाह्य मनोजगत के अंश के रूप में बदलने और व्यक्ति की चेतना के निर्माण की साधिका भी होती है। साहित्यकार की जिन्दगी जिस परिवेश से जूझती है और जिन सवालों का उत्तर खोजती है वे सब सामाजिक भूमिका से ही उभरते हैं। धर्म तथा अध्यात्म में भी प्रतीक अधिकांशतः समाज के बीच से आते हैं रचनाकार नितान्त वैयक्तिक और आधयात्मिक कही जाने वाली अनुभूतियो को भी समाज की परिचित शब्दावली में कहता हैं संप्रेषण का अर्थ ही है कथ्य का सामाजिक हो जाना।

सामाजिक प्रतीको के भी बहुत से छोटे बड़े परिवार हैं समाज जिन इकाइयो में बंटा है उन्हीं इकाइयो के क्रिया व्यापारो से सम्बद्ध कुछ विशिष्ट प्रतीक विकसित हो जाते हैं सबसे छोटी और प्राथमिक इकाई है घर परिवार व्यक्ति ही घर में नही रहता घर भी व्यक्ति में रहता हैं। इस तरह घर परिवार के प्रतीक व्यक्ति जीवन भर अपने साथ रखता है। दूसरा दायरा है परिवेश का जो परिवार से बृहत्तर हैं। यह अंचल राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय धरातलो तक परिव्याप्त हो सकता हैं इन सबके आधार पर प्रतीको के भी अनेक प्रकार हो जाते है।

(क) परिवार (परिवार के सम्बंधो के प्रतीक)

(ख) परिवेशगत (राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, दार्शनिक, सामाजिक जीवन से जुड़े प्रतीक)

(ग) व्यवसायगत (विशेष व्यवसाय से समबद्ध प्रतीक)

(घ) ज्ञान विज्ञान सम्बंधी (ज्ञान विज्ञान की विशेष शाखाओं के अपने अपने प्रतीक)

२. प्राकृतिक प्रतीक-

प्रतीकों का सबसे बडा वर्ग प्रकृति की गोदी में पलता है। मनुषय स्वयं प्रकृति का एक अंश है अपने निर्माण के बावजूद आदमी प्रकृति के नियंत्रण से मुक्त नहीं है। प्रकृति उसके अस्तित्व की सीमायें निर्धारित करती है। खैर वैदिक साहित्य के प्रतीक अधिकांशतः प्रकृति के क्षेत्र के है ऋग्वेद की प्रसिद्ध उक्ति है। 'द्वा सुपर्णा सयुजा संख्याया समानं वृक्षं परिषस्व जाते/ तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्धत्यनन्यो अभिचारक शीति/ दो पक्षी है सहज सखा एक ही वृक्ष पर बैठे हैं एक पिप्पल फल का स्वाद ले रहा है, दूसरा उसे देख रहा है। ब्रह्म, जीव और संसार का यह एक प्रतीकात्मक चित्र है। प्रकृति के लिये गये प्रतीकों की विशेषता यह है कि वे सार्वजनिक सार्वभौम और गोचर होते हैं। प्रकति में कुछ भयावह संदर्भ भी है पर अधिकांशतः वह हमारी जिन्दगी को स्नेह और आत्मीयता के साथ लयबद्ध रखती है उसका जगत सदा पहचाना सा लगता है।

३. ऐतिहासिक प्रतीक-

सामाजिक परिवेश और चिरसंगिनी प्रकृति के बाद प्रतीकों का सबसे बड़ा स्रोत मानव के पुराने अनुभवों का सुरक्षित भण्डार है जिसे हम इतिहास कहते हैं। कला में इतिहास की तथ्यता कम हो जाती है वह रचनाकार के कथ्य का माध्यम बन जाता है।

आज इस देश का इतिहासकार यह सोंचकर चिन्तित है कि हमारा शिवाजी नाटकों का शिवाजी और हमारा अशोक उपन्यासों का अशोक होता जा रहा है यह प्रक्रिया चलती रही तो इतिहास दन्तकथाओं में परिणत हो जायेगा। इतिहास ने हमें बहुत से व्यंजक तथ्य दिये हैं। वह इतिहास से पात्र और घटनाओं का ढाँचा लेता है और उसकी बुनावट स्वयं करता है इतिहास तभी कविता बनता है जब वह प्रतीकात्मक अर्थ देने लगता है और उसका घटित सत्य संभावनाओं का सत्य बन जाता है।

४. पौराणिक तथा मिथकीय प्रतीक-

सत्य का जो सूक्ष्म गुह्रय रूप सूत्रशैली में वेद प्रस्तुत कर गये है उसकी व्याख्या सुबोध शैली में जनमानस के सामने प्रस्तुत करने का कार्य पुराणों ने किया हैं पदमपुराण का मत है कि पुराण और इतिहास वेदों के उपवृहंण है। "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" की व्याख्या वायु पुराण, भागवत, स्कंधपुराण आदि में अलग अलग रूपो में मिलती है। अश्वत्य वृक्ष का प्रतीक वेदिक साहित्य में काफी लोकप्रिय है। ऋग्वेद में कह गया है कि वरूण लोक में ऐसा वृक्ष है जिसकी किरणो की मूल ऊर्ध्व मुखी है और वे नीचे फैलती हैं इस प्रक्रिया में बहुत से पात्र और घटनायें जो कभी ऐतिहासिक रहे होगे या जनमानस द्वारा अपनी किसी बात को कहने के लिए रचे गये होगे पौराणिक हो गये ओर वे विशिष्टसंदर्भो के प्रतीक बन गये। जैसे पहले हरिश्चन्द्र एक सत्यनिष्ठ राजा थे, आज हरिश्चन्द्र एक सत्यवादिता के प्रतीक बन चुके हैं।

पुराणों में वर्णित घटनायें और उनके पात्र कलान्तर में प्रतीक ही हो गये है क्योकि उनका ऐतिहासिक संदर्भ उनसे छूट गया है और सामाजिक मन उन्हे किसी न किसी रूप में अपनाये हुए है। जहां तक मिथकों का प्रश्न है वे इतिहास से पूर्व के हैं। वे वस्तुतः वृहत नियंत्रक बिम्ब है जो लोक के अनुभव को दर्शन की दीप शिखा देकर प्रस्तुत करते है और अभिव्यक्ति के प्रथम क्षण से ही प्रतीकात्मक होते है।

५. आद्यबिम्बीय प्रतीक-

प्रतीकों का एक स्त्रोत वह अचेतन मानस है जिसमें वौद्धिकता के उदय के पूर्व के साक्षात्कारो की स्मृति आद्य बिम्बो के रूप में अभी भी जीवित है और जिसे अब आनुवंशिक रूप से मनुष्य अपने साथ लिए चल रहा है। इस क्षेत्र की ओर पहली बार स्पष्टतः युग ने

संकेत किया था। उसके अनुसार कला सृजन और कला की प्रभावोत्पादकता का रहस्य उस स्थिति के पुनरागमन में हैं ये आद्य-बिम्ब ऐसे संरचनात्मक संप्रत्यय है जो मानव में सनातन रूप से अस्तित्व में है शेष स्नेह अहंकार पलायन आदि प्रक्रियाओं में इनका प्रच्छन्न योग रहता है। ये बिम्ब अन्ततः मिथको तथा धर्मो का रूपाकार ग्रहण कर लेते है। ये आद्यबिम्ब परंपरा के अवशेष है जो हमारे साथ चलते है और हमे आदिम प्रवृत्तियो से जोड़े रहते है।

६. **धार्मिक प्रतीक-**

संसार में धर्म की परिकल्पना बहुत वैविध्यपूर्ण है। वैशेषिक सूत्र के अनुसार जिससे (लोक में) अभ्युदय और (अंत में) निःश्रेयस की सिद्धि हो वही धर्म है, धार्मिक प्रतीको का साध्य कुछ भी हो आधार मानवीय ऐंद्रिक अनुभव ही है देश काल में जीने वाले मनुष्य का अनुभव से अनुभवातीत की ओर संकेत कर सकता है पर अनुभव की भूमि ही उसकी आधार भूमि हैं धर्म कही का हो कैसा भी हो उसकी अभिव्यक्ति के अधिकांश उपादान समाज और प्रकृति से लिए जाते है।

भारतीय प्रतीक भी प्रकृति और सामाजिक परिवेश से लिये गये है। सूर्य, वृषभ, कमल, रोटी सब इसके प्रमाण हैं, विष्णु की चार भुजाये चार दिशाओ की प्रतीक हैं शुद्धाद्वैत वाद में "वेणु" महानतम आनंद का प्रतीक हैं उसका आधार शब्दो की कलात्मक व्याख्या है व ब्रम्हानंद इ-ऐहिक सुख, अणु के समान करने वाला/वेणु के आनंद के सामने ब्रम्हानंद तथा लौकिक सुख अणु के समान हैं कहने का तत्पर्य यह है कि धर्म अगोचरोन्मुख होकर भी प्रतीक गोचर से ही बनाता रहा है।

प्रतीक के उपर्युक्त प्रकारों के अतिरिक्त कुछ विद्वानो ने प्रतीको का वर्गीकरण किया है-

श्री कैलाश बाजपेयी ने स्त्रोत के आधार पर प्रतीकों के निम्नांकित आठ प्रकार बताये है-

क. सांसकृतिक प्रतीक-

१. पौराणिक प्रतीक

२. ऐतिहासिक प्रतीक

३. धार्मिक प्रतीक

ख. प्रकृत प्रतीक

१. जड़ प्रतीक

२. चेतन प्रतीक

ग. सैद्धान्तिक प्रतीक

१. वैज्ञानिक प्रतीक

२. दार्शनिक प्रतीक

३. राजनीतिक प्रतीक[1]

नरेन्द्र मोहन ने भी स्त्रोत के आधार पर प्रतीको का लगभग वही वर्गीकरण प्रस्तुत किया जो वाजपेयी जी का हैं। नरेन्द्र मोहन के अनुसार प्रतीको का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

क. प्राकृतिक प्रतीक

ख. सांस्कृतिक प्रतीक

ग. सैद्धान्तिक प्रतीक

इन वर्गों का विश्लेषण करते हुए नरेन्द्र जी ने लिखा है कि प्रकृति के जड़ चेतन क्षेत्रों से सम्बद्ध प्रतीकों को प्राकृतिक प्रतीक अथवा प्रकृति के क्षेत्र से गृहीत प्रतीक कहा जा सकता है। सांस्कृतिक प्रतीकों के अन्तर्गत पुराण इतिहास एवं धर्म से सम्बद्ध प्रतीकों को लिया जा सकता है सैद्धान्तिक प्रतीकों के अन्तर्गत ऐसे प्रतीक आते हैं जो वैधानिक दार्शनिक और राजनीतिक संदर्भों से स्फूर्त हो अथवा जिनमें विज्ञान दर्शन एवं सिद्धान्तों का प्रतीकात्मक विधान दिया गया है। सैद्धान्तिक प्रतीकों के अन्तर्गत प्रविधि के अन्य क्षेत्रों से गृहीत प्रतीकों को भी लिया जा सकता है।[2]

डॉ॰ रणजीत के अनुसार स्रोत के आधार पर काव्य प्रतीकों को निम्नलिखित ५ वर्गों में रखा जा सकता है-

१- प्रकृति सम्बन्धी प्रतीक

२- पौराणिक धार्मिक प्रतीक

१- आधुनिक कविता में शिल्प, कैलाश वाजपेयी, पृ.सं. ७७-७८

२- आधुनिक हिन्दी काव्य में अप्रस्तुत विधान, नरेन्द्र मोहन, पृ.सं. ५७

३- ऐतिहासिक प्रतीक

४- वैज्ञानिक और औद्योगिक जीवन से सम्बन्धित प्रतीक

५- सामाजिक, राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित प्रतीक

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में प्रतीक विधान-

केदार प्रत्यक्ष और स्पष्ट कथन में अधिक विश्वास रखते हैं इसलिए उनके प्रारम्भिक काव्य में प्रतीक विधान के प्रति कोई विशेष आग्रह नहीं दिखाई पड़ता। अधिकांश कवितायें सपाटबानी में लिखी गयी हैं। किन्तु उनके परवर्ती काव्य में प्रतीकों के प्रति पर्याप्त उत्साह दिखाई पड़ता है केदार के यहाँ प्रतीक बिना किसी आवश्यकता के सिर्फ चमत्कार उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त नहीं हुए हैं बल्कि इनका प्रयोग जब कवि को आवश्यक प्रतीत हुआ है तभी उसने प्रतीकों का आश्रय लिया है। केदार के प्रारम्भिक काव्य में भी जो प्रतीक आये हैं वे परिस्थिति की अनिवार्यता से ही उदभुत हैं दरअसल शुरु से ही केदार ने अपनी रचनाओं के माध्यम से एक ऐसी राजनीतिक विचारधारा को पल्लवित करना चाहा है जिसका भारत की कांग्रेस सरकार और यहां की परम्परागत सामाजिक मान्यताओं से कोई सीधा ताल मेल नहीं बैंठा, इसलिए अनेक स्थलों पर प्रतीकों का प्रयोग करना कवि की साहित्यिक मजबूरी रही है इस मजबूरी का कहीं तो उन्हें लाभ मिला है और कहीं कविता की थोड़ी बहुत हानि भी हुयी है।

केदार के काव्य में जीवन के विविध क्षेत्रों से प्रतीकों का चयन किया गया है। प्रकृति समाज इतिहास पुराण दर्शन आदि सभी को कवि ने टटोला है और उनमें से उपयुक्त प्रतीकों का चुनाव करने अपनी कविताओं का सौन्दर्य प्रसाधन किया है केदार के प्रतीक विधान के सम्बन्ध में एक खास बात यह है कि उन्होंने परंपरा से प्राप्त प्रतीकों को ज्यों का त्यों प्रयोग करने से प्रायः परहेज किया है और अपनी कवि प्रतिभा के बल पर उन्हें नये-नये अर्थ संदर्भों में प्रयुक्त करने का प्रयास किया है। कई प्रतीक तो उन्होंने स्वयं नए लिये हैं और अपने ढंग से उनमें गंभीर और व्यापक अर्थ भरने की कोशिश की है केदार की प्रतीक योजना को निम्नलिखित उपवर्गों में बाँट कर देखा परखा जा सकता है।

१- प्रकृति सम्बन्धी प्रतीक-

केदार को प्रकृति से प्रगाढ़ प्रेम है। नदी, पहाड़, पेड़ सूरज, चांद, सितारे उनके

अभिन्न मित्र हैं वे इन पर स्वतंत्र रूप से कविताएं लिखने के साथ-साथ कई बार इनका प्रतीकात्मक उपयोग भी कर लेते हैं। उनके काव्य में प्रकृति के क्षेत्र से सर्वाधिक प्रतीकों का चयन किया गया है। सामाजिक यथार्थ को वाणी देने के लिए उन्होंने प्राकृतिक प्रतीकों का बार-बार उपयोग किया है-

युग की गंगा
गुहागर्त से आगे जाकर
सूर्योदय से खेलेगी ही।[1]

यहां युग की गंगा, इतिहास की गति और 'सूर्योदय' उस भावी समाज रचना का प्रतीक है जिसकी ओर उसकी गति उन्मुख हैं इसी प्रकार 'कोयले' शीर्षक कविता में 'कोयला' श्रमिकों के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है-

जल उठे हैं तन बदन से
क्रोध में शिव के नयन से
खा गया निशि का अंधेरा,
हो गया खूनी सवेरा।
जग उठे मुरदे बेचारे,
बन गये जीवित अंगारे
रो रहे थे मुंह छिपाये
आज खूनी रंग लाये।

यहाँ निशि का अंधेरा शोषितों के दुःखद जीवन का प्रतीक है और खूनी सवेरा श्रमिकों के द्वारा रक्तिम क्रान्ति की व्यंजना करने के लिए प्रयोग किया गया है। गुलमेंहदी में संकलित गेहूँ, गुम्मा, ईंट तथा गर्रा नाला का शीर्षक कविताओं से पता लगता है कि प्रकृति के ये सारे उपकरण श्रमजीवी जनता की शक्ति के प्रतीक बन कर आये हैं। गर्रानाला का तेज प्रवाह श्रमिक वर्ग की असीम शक्ति और उनकी क्रान्ति चेतना का संवाहक बन कर कविता में उतरता है।

काली मिट्टी, काले बादल का बेटा है।

१- गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २५

टक्कर पर टक्कर देता धक्के देता है।
रोडो से वह बेहारे लोहा लेता है।
नंगे भूखे काले लोगो का नेता है।।
आगे आगे आगे आगे सर्राता हैं।
आओ आओ आओ आओ अर्राता है।।
जीतो जीतो जीतो जीतो नर्रात है।।

कभी-कभी सामन्तशाही को उखाड फेंकने में अपने आपको असमर्थ पाकर कवि का विशवास डिगने भी लगता है और वह क्षण भर के लिए निराश हो जाता है। "प्रत्यूश के पूर्व" कविता में इसी वैराग्य को शब्द बद्ध किया गया है।

केवल मानव के नव जनमे पुत्र की
रोदन भरी पुकार अकेले कंठ की
आती है कानो में एक निवास से।
अभी सवेरे के होने में देर है।[1]

यहां 'सवेरे का अर्थ साम्यवादी व्यवस्था हे जिसके आने में कवि को लगता है कि अभी बिलम्ब है किन्तु निराशा का यह भाव कवि को अधिक देर तक घेर कर रख नही पाता। वह लक्ष्य प्राप्ति के सम्बंध में आश्वस्त है।

'कोहरा' कविता में कवि ने जनवादी क्रान्ति की सफलता के प्रति अपना दृढ विश्वास व्यक्त किया है-

पर निश्चय है दृढ़ निश्चय है इतना
दिनकर जन्मेगा लपटों से लिपटा
भस्मीभूत करेगा कोहरा क्षण में
प्यारी धरती को स्वाधीन करेगा।[2]

इन पंक्तियों में 'कोहरा' समाज का प्रतीक बनकर प्रयुक्त हुआ है और दिनकर उस नई संस्कृति और समाज का प्रतिनिधित्व करता है जो मार्क्सवादी आर्थिक व्यवस्था के

१- गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २३

२- गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ५०

फलस्वरूप भविष्य में अवश्य जन्म लेगी।

केदार को नदी और उसके पानी से बेहद प्यार है क्योकि नदी उनके लिए जीवन की गतिशीलता उसकी सक्रियता का प्रतीक हैं उनकी एक छोटी सी कविता है-

तेज धार का कर्मठ पानी

चट्टानो के ऊपर चढ़कर

मार रहा है

घूंसे कसकर

तोड रहा है तट चट्टानी[1]

इस कविता में तेजधार का पानी उस युवा पीढ़ी का प्रतीक है जो अपने अधिकारो के लिए संघर्षरत है और चट्टानी तट समाज की वे रूढिगत मान्यताये है जिन्हें तोड़ कर वह आगे बढ़ने का रास्ता साफ करता है।

आंख मिचौली खेलते उसके ऋतु परिवर्तन उसके रंग-बिरंगे फूल और पत्तियां और उनके बीच में थी प्रिया सखी केन नदी, जिससे वे मिलने पहुँच जाया करते थे पर नदी पर पहुँचे तो ये क्या वह तो उदास थी देखिये यह चित्रण-

आज नदी बिल्कुल उदास थी

सोयी थी अपने पानी में

उसके दर्पण पर बादल का वस्त्र पड़ा था

मैंने उसको नही जगाया दबे पांच घर वापस आया।

जब कवि ने नदी को सोती हुयी देखा तो वह दबे पांच वापिस आ गया क्योकि ऐसी सुन्दर रमणी को सोया देखकर जगाना बुरा है।

२. पौराणिक प्रतीक-

धार्मिक प्रथाओं और पुराणों में चुने गए प्रतीक कई बार अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होते है क्योकि धार्मिक तथा पोराणिक कहानियो से जन साधारण का घनिष्ट परिचय होता है और इनके प्रति उसके हृदय में सम्मान भी होता है। पौराणिक पात्रों तथा कहानियो से सम्बद्ध प्रतीको के माध्यम से जटिलतम अनुभूतियो को भी आसानी से हृदयंगम कराया जा

१- गुलमेहंदी केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ५०

सकता है केदार ने अनेक स्थानो पर इस प्रतीकों का सहारा लेकर अपनी कविता को अधिक सम्प्रेषणीय बनाने का प्रयत्न किया हैं अपने मन की बात खोलने के लिए उन्होने पौराणिक प्रतीको का ही उपयोग किया है।

न चाहिये मुझे

ऐरावत की सवारी

न चाहिये मुझ

इन्द्रासन

न चाहिये मुझे

पारिजात।[1]

यहां 'ऐरावत' 'इन्द्रासन' और पारिजात सभी ऐश्वर्य और वैभव के प्रतीक बनकर आये है। जिन्हे कवि सहज साधारण की तुलना में हेय समझता है। अपनी एक अन्य कविता 'देश की छाती दरकते देखता हूं' में भारतीय समाज एवं राजनीति की दयनीय स्थिति को कवि ने पौराणिक पात्रों के प्रतीकात्मक प्रयोग द्वारा इस प्रकार उजागर किया है।

'व्यास मुनि को धूप में रिक्शा चलाते

भीम अर्जुन को गधे का बोझ ढोते देखता हूं।

सत्य के हरिचंद को अन्याय घर में

झूठ की देते गवाही देखता हूं।

द्रोपदी को और शैव्या को शुची को,

रूप की दुकान खोले,

लाज को दो दो टके में बेचते मै देखता हूं।[2]

३. सांस्कृतिक प्रतीक-

हिन्दुस्तान के बंटवारे से केदार बहुत दुखी होते हैं। वे इसे भयंकर राजनीतिक भूल मानते हैं इसी 'एक भूल' के कारण न केवल हिन्दुस्थान का भूगोल बदल गया बल्कि शताब्दियो तक इसके दुष्परिणाम भोगने के लिए भारतवासी अभिशप्त भी हो गये। केदार

१- पंख और पतवार, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १३२

२- कहें केदार खरी-खरी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ६८

बड़े भारी मन से भारत पाक बंटवारे से उत्पन्न स्थिति का चित्रण करते है।

"गेह जलता

गांव जलता

लाज की साड़ी उतरती

रूप पर ही गाज गिरती

हो गये पत्थर व्यथा के ज्योति खोकर

मांग का सेंदुर सोहागी चूड़ियां

लूटकर डाकू लुटेरे ले गये सब"[१]

मांग का सेंदुर और सोहागी चूडियां भारतीय संस्कृति में नारी के सौभाग्य और सम्मान का चिन्ह मानी जाती हैं केदार यहां इन प्रतीकों के माध्यम से यही कहना चाहते है कि भारत पाक बंटवारे को लेकर जो साम्प्रदायिक उन्माद भडका उसमे न जाने कितने बेकसूर लोग वाहा हो गये स्त्रियां अनाथ हो गयी, उनकी प्रतिष्ठा को गहरा आघात लगा।

४. पशु जीवन से सम्बंधित प्रतीक

केदार की कविताओं में किसान और मजदूरों के प्रति सहानुभूति तथा पूंजीपतियो के प्रति घृणा एवं आक्रोश का भाव वयक्त किया गया हैं वे सुविधा भोगी वर्ग की जीवनचर्या से बहुत क्षुब्ध रहते थे। अपने क्षोभ एवं आक्रोश को व्यक्त करने के लिए उन्होने पूंजीपतियों को "डांगर" की उपाधि से विभूषित किया है।

"ये कामचोर

आराम तलब

मोटे तोंदियाल भारी भरकम

हट्टे कट्टे सब 'डांगर' ऊंघा करते हैं,

हम चौबीस घण्टे हांफते है।

है भूख बड़ी लम्बी चौड़ी,

दस बीस जनो का सब खाना,

ये एक अकेले खाते हैं

१- कहें केदार खरी-खरी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ५०

दिन भर ही पागुर करते है

हम भूखे ही रह जाते है।

सिर दर्द हमे दुख देता है,

ज्वर बात हमे दुख देता है

आखों में पीर समाई है,

हटटे कटटे डांगर डकारते रहते है

क्षय रोग हमे भख जाता है।"[१]

यहां डांगर शब्द निठल्ले विलासी पूँजी पतियों का प्रतीक है। एक अन्य कविता में भारतीय शोषित जनता की दयनीय जर्जर स्थिति तथा विदेशी शोषण के घृणात्मक रूप की व्यंजना करने के लिए कवि ने " गाय" और सिंह का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है।

एक गाय है

उसके ऊपर गोरा बैठा

तहस नहस करता है सबकी

बहुत थकी है

खाना-दाना को भूखी है

रेंग रही है धीरे धीरे,

एक सिंह है

जो मृगछौनों को पकड़े है

लोहू में पंजे डूबे हैं

मांस खा रहा है उधेड कर

एक कविता में घूस 'रिश्वत' के लिए घोड़े का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है:-

बेलगाम दौडता है घूस का घोड़ा

रौंदने से इसने किसी को नहीं छोड़ा

बेकार हो गया है कानून का कोड़ा

रोक नही सकता इसे कोई रोडा

१- गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ८०

दम इसने कब तोड़ा?[1]

इसी प्रकार से एक कविता जो केवल चार चरण की है किन्तु इन चार चरणों में देश की वर्तमान स्थिति का बोध कराया है। कौआ एक पक्षी है। हर गांव और शहर में कांव कांव करते पाया जाता है काला कलूटा है और किसी प्रकार से मन को मोहता नहीं।

दाल भात खाता है कौआ

मनुष्य को खाता है हौआ

नकटा है नेता धनखौआ

नकटा हो मानो कन कौआ[2]

५ **ऐतिहासिक प्रतीक-**

केदार ने कई स्थलों पर इतिहास प्रसिद्ध पात्रों और घटनाओ का प्रतीकात्मक प्रयोग करके वस्तु स्थिति को उजागर करने का प्रयास किया हैं स्वतंत्रता प्राप्ति के तत्काल बाद कांग्रेस पार्टी की सरकार ने देश के अन्दर शोषण और दमन का जो चक्र चलाया उससे क्षुब्ध होकर केदार ने उन्हें 'डायर' के समकक्ष रखकर अपना आक्रोश व्यक्त किया है-

शासन के अधिकारी नेता

डायर की वर्दी पहने हैं

सत्य अहिंसा के अवतारी अब हिंसा के रूप धरे है

अंग्रेजी पिस्तौल चलाकर

कफन लपेटी आजादी को

जन सेवक का खून चटाकर

राम राज्य की कथा सुनाते सौ प्रयास से जिला रहे है।[3]

यहां कवि ने कांग्रेसी सरकार की दुर्नीतियों का पर्दाफाश किया है और कांग्रेस की नृशंसता और क्रूरता को अभिव्यक्ति देने के लिए डायर शब्द का प्रतीकात्मक रूपक उपयोग किया है।

१- हंस, नवम्बर १९४६, पृ.सं. १५०

२- खुली आँखें, खुले डैने, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २३

३- कहें केदार खरी-खरी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ४९

केदार जी ने अपनी एक कविता में प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल खजुराहो के मन्दिर को प्रतीक रूप में लिया है।

"चंदेलों की कला, प्रेम की देन, देवताओं के मंदिर

बने हुए अब भी अनिंद्य जो खडे हुए है खजुराहो में

याद दिलाते है हमको उस गये समय की

जब पुरूषो ने उमड़ उमड़ कर

रोमांचित होकर समुद्र सा"[1]

६. **आर्थिक जीवन से सम्बंधित प्रतीक-**

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त अंग्रेजो का साम्राज्यवादी किला ढहने लगा था।जगह जगह क्रान्तियां हुयी और गुलाम देश धीरे धीरे आजाद होने लगे। अंग्रेजो के घटते प्रभाव से केदार प्रसन्न होते है और उसकी पतली हालत पर व्यंग करते हुए लिखते हैं कि-

आज अंग्रेजी पियानो

सांस धीमी ले रहा है

चोट खाया चरमराया छटपटाया रो रहा है

और अब ट्रूमैन का डॉलर चिकित्सा कर रहा है।[2]

यहां पर डॉलर का प्रयोग अमेरिका द्वारा प्रदत्त आर्थिक और राजनैतिक सहायता के लिए किया गया है।

७. **मार्क्स दर्शन से सम्बंधित प्रतीक-**

केदार की मार्क्स दर्शन के प्रति अटूट श्रद्धा है। वे मार्क्स दर्शन को विश्व का सर्वश्रेष्ठ दर्शन मानते हैं। उनकी इस मान्यता का प्रभाव उनकी कविताओं में भी देखा जा सकता हैं अनेक स्थानों पर उन्होने मार्क्स दर्शन से सम्बद्ध प्रतीकों को आधार बनाकर अपना मन्तव्य प्रकट किया हैं "हंसिया" "हथौडा" और "हल" मार्क्सदर्शन का प्राण है। इन्ही के सहारे सामाजिक क्रान्ति का स्वर फूटता है केदार ने इन अस्त्रों का अपनी अनेक कविताओं में प्रतीकात्मक उपयोग किया हैं "मजदूर का जन्म" कविता में कवि की प्रसन्नता का कारण

१- कहें केदार खरी-खरी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १०१

२- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १९९

यही है कि उस घर में एक हथौड़े वाला पैदा हुआ है।

एक हथौड़े वाला घर में और हुआ
हाथी सा बलवान
जहाजी हाथों वाला और हुआ
सूरज सा इन्सान
तरेरी आँखो वाला और हुआ
एक हथौड़े वाला घर में और हुआ[1]

यहां हथौड़े वाला लाल क्रान्ति की मशाल थामे अपने अधिकारो के लिए संघर्षरत उस युवक का प्रतीक है जिनका जन्म साम्यवादी जीवन दर्शन की अनन्त सम्भावनाओं से भरा हुआ हैं कवि इस प्रतीक का बार बार उपयोग करता है वह जागरूक युवको का मनोबल बढ़ाते हुए उन्हें प्रोत्साहित करता है कि-

मार हथौड़ा
कर कर चोट
लहू और पसीने से ही
बन्धन की दीवारे तोड़
मार हथौड़ा
कर कर चोट
दुनिया की जीती ताकत हो
जल्दी छवि से नाता जोड़[2]

यह 'हथौड़ा' साम्यवादी दर्शन का सबसे जानदार अस्त्र है लाल क्रान्ति का प्रतीक है। इसी प्रकार हल और हंसिया भी क्रान्ति के संवाहक बनकर केदार की कविताओं में अपना परचम लहराते हैं-

हल, हंसिया का और हथौड़े का, परचम लहराये जा।
अब अपनी सरकार बनाकर

१- कहें केदार खरी-खरी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ११३

२- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ८३

जीवन में मुस्काये जा।[1]

इन प्रतीको का चयन यद्यपि किसान और मजदूरो के जीवन से किया गया है किन्तु इनका अपना एक दार्शनिक सन्दर्भ है इसलिए उन्हें मार्क्स दर्शन से सम्बद्ध प्रतीको के वर्ग में रखना अनुचित न होगा।

निष्कर्ष-

१. केदारनाथ अग्रवाल के प्रतीक विधान से साफ पता चलता है कि उन्होने यद्यपि जीवन के हर क्षेत्र से प्रतीको का चयन किया है फिर भी सर्वाधिक प्रतीक प्रकृति से सम्बंधित है। यह स्वाभाविक भी है क्योकि प्रकृति के साथ उनका गहरा रागात्मक सम्बद्ध रहा है।

२. केदार के प्रतीक विधान में नयापन दिखाई पड़ता है। व्यास मुनि को रिक्शाचालक भीम और अर्जुन को कुली, मजदूर, हरिश्चन्द्र को झूठा गवाह तथा द्रोपदी, शैव्या और शची के रूप का व्यापार करने वाली वैश्याओं के रूप में कल्पित करना केदार के नवीनता बोध का स्पष्ट परिचायक है।

३. केदार के प्रतीको में ताजगी तो है पर कही कही इससे तत्काल भाव उद्बोधन में बाधा भी पड़ती है। जैसे गेंहू, गुम्मा ईंट और गर्रानाला की प्रतीकात्मकता नितान्त नवीन और कल्पना प्रसूत होने के कारण ही सहज रूप में बोधगम्य नही हो पाती।

३- केदार के काव्य में प्रकृति दृष्टिकोण एवं स्वरूप

वास्तव में नियन्ता की इस सुन्दर सृष्टि में प्रकृति मानव की अमर सहचरी रही है। प्रकृति की गोद में ही पलकर मानव संसार के सौन्दर्य का सन्दर्शन करता है। आदि ग्रन्थ वैदिक साहित्य में प्राप्त प्राकृतिक तत्वों के अत्यधिक वर्णन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रारम्भ से ही प्रकृति से कितना अटूट अनुराग रहा है। आदि काल से ही प्रकृति ने मानव जीवन को अनेक रूपों में प्रभावित किया है। मानव का अन्तर और बाह्य प्राकृतिक रूप सौन्दर्य से अभिभूत रहा है। प्रकृति के संवेदनशील नाना रूपात्मक व गतिशील रूप को देखकर कभी मानव मन विस्मय से तो कभी जिज्ञासा की भावना से भर उठा है। कहने का

१- गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १६१

आशय यह है। कि प्रकृति ने आदि काल से आज तक मानवीय चेतना और साहित्य को अत्याधिक प्रभावित किया है। प्रकृति की उपेक्षा से मानव-मन के उपवन में मधुमास का आना ठहरना संभव नही है। कवि भी तो मानव ही होता है इसलिए उसका प्रकृति से अटूट अनुराग होना स्वाभाविक है प्रकृति प्रेम के कारण कवि प्रकृति के रंग-बिरंगे चित्रों से अपनी कृति को संवारता है और प्रकृति में आधार धेय सम्बन्ध है प्रकृति आधार है और काव्य आधेय है। कवियों ने अपनी-अपनी संदृष्टि के अनुसार अपनी कृतियों में प्रकृति को विविध रुपों में चित्रांकित किया है। कवियों के काव्य कृतियों में प्रकृति के जिन विविध रुपों का चित्रांकन दृष्टिगत होता है उनको निम्नवत् देखा जा सकता है।

आलम्बन रूप में-

कवि जहां पर प्रकृति को आलम्बन बनाकर विविध प्रकार से प्रकृति का वर्णन करता है वहां आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण माना जाता है।

उद्दीपन रुप में-

जहां पर प्रकृति मानवीय भावनाओं को उद्दीप्त करती हुई चित्रांकित की जाती है वहां प्रकृति चित्रण उद्दीपन रुप में स्वीकार किया जाता है। संयोग और वियोग दोनो ही अवसरों पर भावों को उद्दीप्त करने के लिए कवि ने प्रकृति का प्रयोग करता है।

संवेदनशील रुप में-

जहां प्रकृति मानव के उल्लास-आनन्द के समय स्वयं उल्लास प्रकट करती हुई चित्रांकित की जाती है अथवा जहां प्रकृति मानव के शोक, रूदन, विषाद के समय स्वयं अश्रुपात करती हुई दिखाई जाती है। वहां प्रकृति का संवेदनात्मक रुप परिलक्षित होता है।

वातावरण सृजन रुप में-

जहां पर वातावरण के सृजन के लिए प्रकृति का आश्रय लिया जाता है और प्रकृति के तदनुरूप प्रयोग से अनुकूल वातावरण सृजित किया जाता है वहां प्रकृति का वातावरण निर्माण का रुप माना जाता है। कवि जहां गंभीर वातावरण लाने की आवश्यकता अनुभव करता है वहां प्रकृति को गंभीर रूप में और जहां आनन्द पूर्ण वातावरण लाना चाहता है वहां प्रकृति का मधुर रुप अंकित करता है।

प्रतीक रुप में-

जहां पर कवि प्रकृति को प्रतीक मानकर चित्रांकन करता है वहां पर प्रकृति प्रतीक रुप में अंकित की जाती है। आधुनिक कवियों ने प्रकृति का प्रतीक रूप में सर्वाधिक प्रयोग किया है।

रहस्यात्मक रुप में-

जहां पर प्रकृति रहस्यात्मक भावों को उद्घाटित करने के लिए प्रयोग की जाती है वहां प्रकृति का रहस्यात्मक रुप अंकित किया जाता है।

मानवीकरण के रुप में-

जहां पर प्रकृति का मानवीय रुप में चित्रांकन किया जाता है वहां प्रकृति का मानवीकरण रुप अंकित होता है।

अलंकार योजना के रुप में-

प्रकृति के उपकरणों का उपयोग जब विविध अलंकारो के लिये किया जाता है वहां प्रकृति का यह रुप अंकित होता है।

लोक शिक्षा के रुप में-

प्रकृति के माध्यम से जहां कवि कोई प्रेरणा व शिक्षा देना चाहता है वहां प्रकृति के इस रुप का प्रयोग किया जाता है।

वस्तु परिगणन के रुप में-

इस रुप में कवि प्रकृति चित्रण में वस्तुओं के नाम गिनाता चला जाता है।

नारी रुप में-

कवियों ने प्रकृति को मानवीकरण के अतिरिक्त स्पष्ट रुप से नारी के रुप में भी चित्रित किया है।

केदारनाथ अग्रवाल शिखरस्थ प्रगतिशील कवियों में से एक है जिन्होने अपनी कविता को कल्पना के आकाश में न उड़ाकर उसे यथार्थ की धरती पर ही चलने को प्रेरित किया है इसीलिये केदार नाथ अग्रवाल प्रकृति-चित्रण में छायावादी कवियों से भिन्न है। उनके प्रकृति निरुपण में सर्वथा पुष्ट यथार्थता है। उनकी प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं में जीवन के प्रति गहरी आस्था प्राप्त होती है। केदार जी के छायावाद और प्रगतिवाद दो काव्य

धाराओं के मध्य सेतु का कार्य किया है। प्रकृति चित्रण में केदार की लोक जीवन से निकटता, यथार्थ भेदिनी दृष्टि, तथा उनके जनवादी दृष्टिकोण ने उन्हें अन्य से उन्हें कुछ अलग कर दिया है। बुन्देलखण्ड की और वहां के मनुष्यों के मंजु-मृदुव कठोर स्वाभाव को केदार ने अपनी कविता में आकार दिया है, साथ ही उन्होने मानव-श्रम और संघर्ष को गरिमा प्रदान की हैं।

केदार नाथ अग्रवाल जीवन और जगत के कवि हैं। वे कल्पनाओं के आकाश में नहीं बल्कि यथार्थ की धरती पर जीना चाहता है। प्रकृति के बीच में रमना चाहता है। कवि को जीवन से गहरी आस्था है। जीवन के अंतिम चरण में भी पहुंच कर उनमें प्रबल जिजीविषा है। प्रकृति मानव की सहचरी है। वह जीवन के लिए शक्तिदायिनी है। जिससे जीवन को उर्जा और जीवन्तता मिले उससे अधिक अनुराग होना स्वाभाविक है। कवि केदार को प्रकृति से अटूट प्रेम है। 'नींद के बादल', 'युग की गंगा', 'लोक और आलोक', 'फूल नहीं रंग बोलते हैं', 'आग का आईना', 'गुलमेंहदी', 'बस्ती खिले गुलाबों की', 'पंख और पतवार', 'जमुन जल तुम', 'अनहारी हरियाली', 'पुष्पदीप' और 'बसन्त में प्रसन्न हुई पृथ्वी' आदि उनकी अनेक कृतियों के नामकरण से ही इस बात की पुष्टि हो जाती है कवि केदार को प्रकृति से अपरिमित अनुराग है। नदी, पर्वत, फूल, वृक्ष, खेत-खलिहान, चांद-सितारे, कलरव करते पक्षी उन्हें बहुत प्रिय हैं। उन्होने जिस भी तेवर से कोई बात कहना चाहा उसकी सशक्त अभिव्यक्ति हेतु तदनुसार अनुकूल बिम्ब व प्रतीक अधिकांश रुप में प्रकृति से ही ग्रहण किये हैं। केदार नाथ अग्रवाल के सृजन संसार का अवलोकन करने से यह पता चलता है कि कवि प्रकृति के रंग में सम्यक रुप से रंग गया क्योंकि उनका प्रकृति चित्रण अति विलक्षण और अद्भुत है। इस सन्दर्भ में यहां डा० विजेन्द्र नारायण सिंह जी का यह कथन उद्धत करना सर्वथा समीचीन लगता है- प्रकृति की किशोर छवि और सुन्दर भू दृश्यों के अंकन में केदार की प्रतिबद्धता प्रगतिशील धारा के कवियों से नहीं हो सकती है।[1]

प्रकृति कवि के लिए जड़वस्तु नही है, वह उनसे बतियाती है, उनके साथ दुख सुख का अनुभव करती है वह हर दशा में साथ देती है। और जब कवि टूट कर गिरने लगता है तब वह अपने हाथों में थाम लेती है। कवि तनिक भी अपने को प्रकृति से अलग नही

१- समीक्षाएं एवं मूल्यांकन : केदारनाथ अग्रवाल, डॉ॰ रामचन्द्र मालवीय, पृ.सं. १८

रखना चाहता प्रकृति से अगाध प्रेम होने के कारण ही विषय व सन्दर्भ के अनुसार कवि ने प्रकृति के विविध आयामों का अन्यों से कुछ अलग हटकर धार्मिक अंकन किया है। केदार नाथ अग्रवाल के सम्पूर्ण सृजन पर दृष्टि डालने से प्रतीत होने लगता है कि केदार मूलतः मानव और प्रकृति के कवि है उनके काव्य में प्रकृति और मानव जीवन का सुन्दर सहज एवं प्रभावशाली चित्रण हुआ है इनकी प्रकृति चित्रण वाली कविताए छायावादी काव्य का स्मरण कराती है। युग की गंगा नामक संग्रह की रचनाए यर्थाथवादी चेतना के रेखाचित्र है। इसमें कही बुन्देलखण्ड की प्रकृति रानी का चित्रण है तो वही किसान के जीवन सौन्दर्य का, जीवन के अनुभव आंक रहे है तो कही केदार अपने किसी अनुभवों का झांक रहे है लोक और आलोक में कवि लोक गीतो की धुनों, शब्दावली और भाव भूमि को छूते हुए अनेक सशक्त अभिकल्पना करता है। 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' काव्य-संकलन तो प्रकृति चित्रण से सजा हुआ है। 'नदी उदास थी' जैसी कविताएं जीवन के प्रति नूतन संचेतना उत्पन्न करती है।

केदार का प्रकृति चित्रण छायावाद का स्मरण तो कराता है लेकिन छायावादी नहीं है। यह बात सही कही जा सकती है। कि उनका प्रकृति चित्रण छायावाद से प्रभावित है किन्तु अपने प्रकृति चित्रण में कवि ने यथार्थ चेतना को ही उकेरने का कार्य किया है, उन्होने कोरी कल्पना को स्थान देने का प्रयास नहीं किया है। प्रगतिवादी दृष्टिकोण व परिवेश को देखते हुए यह बड़ा सुखद आश्चर्य है कि केदार के काव्य में सौन्दर्य बोध भरा पड़ा है जबकि प्रगतिवादी कवियों ने तो सौन्दर्य को त्यागकर यथार्थ के प्रदूषण को ही चित्रित करना अपना लक्ष्य निर्धारित कर रखा था।

केदार ने यथार्थवादिता की जमीन पर खड़े होकर जैसा मर्मस्पर्शी प्रकृति-चित्रण किया वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनके चित्रण में कटु जीवन का व्यंग्य है साथ ही साथ प्रकृति का किसानी चित्रण, और देश के जागरण का सन्देश भी है। केदार कविता में भावों के प्रत्यक्ष और सरल अभिव्यक्ति के हामी हैं उन्होने रसहीन तत्वों में भी रस और सौन्दर्य के दर्शन किये हैं। केदार का प्रकृति चित्रण छायावादी कवियों से इसलिए भी भिन्न है कि सौन्दर्य, दुख, कष्ट, आदर्श, क्रोध और क्षोभ आदि का चित्रण जो छायावाद में हुआ वह वास्तविक मनोदशाओं का नहीं अपितु कल्पित दुख, कष्ट, क्रोध, क्षोभ आदि का हुआ। उनकी दृष्टि में छायावाद वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व नहीं करता, उसकी करुणा

वास्तविक करुणा नहीं थी। उसके मनोभावों में रंगीनी थी, अतः जिन्दगी जैसी जी जाती है की असलियत लापता है। यही वह मूल प्रक्रिया है जो 'आग का आइना' में केदार नाथ अग्रवाल को छायावाद के विरुद्ध करती है। वह कविता में वैसा ही चित्रण चाहता है जैसा कि जिन्दगी में जिया जाता है। वह यथार्थ के चित्रण में लाग-लपेट पसन्द नहीं करता। सच्चाइयों का सीधा साक्षात्कार उसका कर्म है। वह खूबसूरतियों से अपने मन में भरम नहीं पालना चाहता। कवि केदार किसी भी दशा में मानव की वास्तविक करुणा को काल्पनिक करुणा का रंग दे ही नहीं सकता। इसलिए उसने छायावादी व्यक्तिवाद के विरुद्ध यथार्थोन्मुख व्यक्तिवाद के ही बगावत की वकालत की। इसलिये उनके प्रकृति चित्रण में भी अलग तेवर दिखाई पड़ता है।

केदार नाथ जी का हिन्दी के प्रगतिवादी काव्य आन्दोलनों से गहरा सम्बन्ध रहा है। प्रगतिवादी कवियों में इनकी गणना भाव, विचार और शिल्प के स्तर पर अगल पहचान के रुप में की जाती है।

"प्रगतिवादी काव्य में कलात्मक शिल्प का जैसा सुन्दर प्रयोग इनके काव्य में उपलब्ध है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इनके काव्य की विशेषता जन और जीवन एवं उसकी रागात्मकता का साक्षात्कार करवाना है। इस परिप्रेक्ष्य में रामेश्वर शर्मा कहते हैं कि-केदार नाथ अग्रवाल हिन्दी में अन्य सभी कवियों की अपेक्षा अधिक सफल हुये हैं। और इसका कारण उनकी लोक जीवन से निकटता, यथार्थ भेदिनी दृष्टि तथा उसका महान जनवादी दृष्टिकोण है। केदार नाथ अग्रवाल ने जीवन की रागात्मकता की अभिव्यक्ति के लिए बहुत गहराई तक प्रकृति का सहारा लिया है और अपने काव्य में उसे बखूबी व्यक्त भी किया है।"[१]

केदार नाथ अग्रवाल के काव्य में प्रकृति के विविध रुप चित्रित हुए हैं। केदार को प्रकृति के प्रत्येक तेवर की पहचान है। प्रकृति के विविध आयामों के अंकन में उनकी प्रतिभा खूब निखरी है। प्रकृति के जिन विविध रुपों के सहारे केदार ने प्रकृति चित्रण का मनहर मधुबन सजाया है उन्हें निम्नांकित शीर्षकों के माध्यमों से रेखांकित किया जा सकता है।

१. आलम्बन रुप में

१- समीक्षाएं एवं मूल्यांकन : केदारनाथ अग्रवाल, डॉ॰ रामचन्द्र मालवीय, पृ॰सं॰ १९

२. उद्दीपन रुप में

३. व्यंग्य रुप में

४. प्रतीक रुप में

५. मानवीकरण रुप में

६. नारी रुप में

७. मधुर एवं मादक रुप में

८. पौरुष रुप में

९. संवेदनशील रुप में

१०. वातावरण सृजन रुप में

११. उपदेशिका रुप में

प्रकृति का विविध रूपों में चित्रण

१. आलम्बन रुप में प्रकृति चित्रण- जहां कवि प्रकृति को आलम्बन बनाकर विविध प्रकार से प्रकृति वर्णन करता है वहां आलम्बन रुप में प्रकृति चित्रण माना जाता है कवि ने चन्द्र गहना से लौटती बैर' शीर्षक कविता में चने के पेड़ का स्वतन्त्र चित्रण कर प्रकृति का आलम्बन रुप दर्शाया है उदाहरण दृष्टव्य है-

देख आया चन्द्र गहना।
देखता हूं दृश्य अब मैं
मेड़ पर इस खेत की बैठा अकेला।
एक बीते के बराबर
यह हरा ठिगना चना,
बांधें मुरैठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का,
सज कर खड़ा है।[१]

'प्रात-चित्र' कविता में कवि ने रवि का आलम्बन रूप में चित्रण किया है -

रवि-मोर सुनहरा निकला,

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १९

पर खोल सबेरा नाचा,

भू-भार कनक गिरि पिघला,

भूगोल मही का बदला।

नवजात उजेला दौड़ा,

कन-कन बन गया रूपहला।

मधुगीत पवन ने गाया,

संगीत हुई यह धरती,

हर फूल जगा मुसकाया।[1]

कवि केदार ने 'खेत का दृश्य' कविता में खेत के दृश्य का वर्णन आलम्बन रुप में किया है। उसको स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण के रुप में देखा जा सकता है-

आसमान की ओढ़नी ओढ़े,

धानी पहने

फसल घँघरिया,

राधा बन कर धरती नाची,

नाचा हंसमुख

कृषक संवरिया।

मातीथाप हवा की पड़ती,

पेड़ो की बज

रही ढुलकिया

जी भर फाग पखेरु गाते,

ढरकी रस की

राग-गगरिया।[1]

'बंसत' नामक कविता में कवि ने बसन्त का आलम्बन रुप में चित्रण कर प्रकृति चित्रण के आलम्बन रुप को प्रदर्शित किया है उदाहरण दृष्टव्य है।

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ३२

२- वही, पृ.सं. ३३

हिम से हत संकुचित प्रकृति अब फूली
रुप-राग-रसगंध-भार भर झूली
रंगो से अभिभूत हुई चटटाने
जड़ता में जागी जीवन की ताने
नभ में भी आलोक-नील गहराया
सागर ने संगीत तरगित गाया
आठ रुप शिव के, समाधि को त्यागे
मृण्मय अवनी के अंगो में जागे
वासंतिक वैभव यौवन पर आया
हरा-भरा संसार खिला मुसकाया।[१]

कवि केदार को प्रकृति से अतिशय अनुराग है। कोयल की मधुर ध्वनि से कवि का हृदय-प्रसून प्रस्फुटितू हो उठता है। उसकी जिजीविषा जाग उठती है।

कोयल कुहुकी
फिर फिर कुहुकी
रह-रह कर फिर फिर कुहुकेगी
बिन कुहुके वह नही रहेगी
चाहे जितना उत्तापित हो
आतप से वह संतापित हो।[२]

'फूल नहीं रंग बोलते हैं' काव्य संग्रह में कवि ने चिड़िया का आलम्बन रूप में चित्रण किया है व प्रकृति के साथ अपनी सहज आत्मीयता भी दर्शायी है।

वह चिड़िया जो
चोंच मार कर
दूध-भरे जुण्डी के दाने
रुचि से रस खा लेती है

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ३९
२- वहीं, पृ.सं. १२७

वह छोटी संतोषी चिड़िया

नीचे पंखो वाली मै हूं

मुझे अन्न से बहुत प्यार है।[1]

२. **उद्दीपन रुप में प्रकृति चित्रण-** जहां प्रकृति मानवीय भावनाओं को उददीप्त हुई अंकित की जाती है वहां प्रकृति चित्रण उददीपन के रुप में कहां जाता है। कवि संयोग और वियोग दोनो ही अवसरो पर भावों को उददीपन करने के लिए प्रकृति का प्रयोग करता है कवि केदार ने भी प्रकृति के उददीपन रुप की अत्यन्त चित्ताकर्षक झांकियां प्रस्तुत की है सुग्गे और सारस का स्वर कवि की प्रेम भावना को उददीप्त करते है।

सुन पड़ता है

मीठा-मीठा रस टपकाता

सुग्गे का स्वर

टें टें टें टें

सुन पड़ता है

वनस्थली का ह्रदय चीरता,

उठता गिरता,

सारस का स्वर

टिरटो टिरटों

मन होता है

उड़ जाऊं मैं

पर फ़ैलाये सारस के संग

जहां जुगुल जोड़ी रहती है

हरे खेत में

सच्ची प्रेम कहानी सुन लूं

चुप्पे-चुप्पे।[2]

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १०१

२- वही, पृ.सं. १९

'मन्मथ बसन्त' कविता में कवि ने बसन्त का उद्दीपन रूप में चित्रण किया है।

यह बसन्त जो

धूप, हवा, मैदान, खेत, खलिहान, बाग में

निराकार मन्मथ मदान्धसा रात-दिवस सांसे लेता है,

जानी-अनजानी सुधियों के कितने-कितने सवेदों से सस्वर सरिता,

लता गुलों को तरु पातो को छू लेता है

और हजारो फूलों की रंगीन सुगन्धित सजी डोलियां

यहां वहां चहुं ओर खोल कर मनोमोहिनी रख देता है

वही हमारे

और तुम्हारे अन्तः पुर में।

आज समाये

हमको तुमको

अलिगंन की तन्मयता में एक बनाये।।[१]

कवि केदार ने 'दूब और हवा' की छेड़छाड़ का चित्रण उद्दीपन रुप में किया है। इसकी सिहरन कवि के मनोभावों को उद्दीप्त करती है और कवि उसकी सिहरन लिए लौट आता है।

दूब सिहरी

और गिर ही गया मोती

स्वप्न जैसा

इस हवा को सह न पाया

दूब की सिहरन लिए मैं

लौट आया।[२]

केदार की एक अन्य कविता है 'एक खिले फूल ने' इसमें भी कवि केदार ने प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण किया है-

---

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ३९

२- वही, पृ.सं. १२७

झाड़ी के एक खिले फूले ने

नीली पंखुरियों के

एक खिले फूल ने

आज मुझे काट लिया

ओठ से

और मै अचेत रहा

धूप में।[1]

'किरण और ओस के मोती' का केदार ने चित्रण कर प्रकृति के उद्दीपन रूप को उद्घाटित किया है। उदाहरण दृष्टव्य है-

ऐसे जैसे किरन

ओस के मोती छू ले

तुम मुझको

चितवन से छू लो

मैं जीवित हो जाऊँ।

ऐसे जैसे स्वप्न

लजीला पलकें छू लो

तुम मुझको

चुम्बन से छू लो

मैं रसमय हो जाऊँ।[2]

जैसे ही धूप आती है कवि को लगता है उसकी प्रेयसी आई है। कवि ने धूप का उद्दीपन रूप में चित्रण किया है -

हे मेरी तुम

आज धूप जैसे ही आई

और दुपट्टा

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ४४

२- वही, पृ.सं. ४९

उसने मेरी छत पर रक्खा

मैंने समझातुम आयी हो।

दौड़ा मैं तुमसे मिलने को

लेकिन मैंने तुम्हें न देखा

बार-बार आंखों से खोजा

वही दुपट्टा मैंने देखा

अपनी छत के ऊपर रक्खा।[1]

'दिवस शरद के' नामक कविता में शरद के दिन का उद्दीपन रूप में चित्रण हुआ है क्योंकि शरद के दिन कवि को प्रेम भावना को उद्दीपन करते है-

मुग्ध कमल की तरह

पांखुरी-पलकें खोले,

कंधों पर अलियों की व्याकुल

अलकें तोले,

तरल ताल से

दिवस शरद के पास बुलाते

मेरे मन में रस पीने की

प्यास जगाते।[2]

फूले हुए कनेर को देखकर कवि का हृदय उद्दीप्त हो उठता है और वह मिलनातुर हो जाता है-

आओ न / गले मिलने;

फूल आये कनरे के तले

सघन छांह में

खिलने ।[3]

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ५२

२- वही, पृ.सं. ६२

३- वही, पृ.सं. १५७

कवि की ये पंक्तियां भी प्रकृति चित्रण में उद्दीपन रूप को प्राकट करती हैं। उजियारी चांदनी रात कवि की प्रेम-भावना को उद्दीप्त करती हैं-

"यह उजियारी रात आज श्रंगार किए जो हंसती आई, धवल चाँदनी जग में जिसकी कोमल सेज बिछाती छायी, जिसे देखते ही मैं रीझा हुआ रूप का लोभी पागल गीत सुनाकर गा कर मैंने थाम लिया जिसका प्रिय आंचल।[१]

उषा अपनी हथेली में अनुराग लिए हुए आती है कमल खिल उठते हैं अलियों को पराग प्राप्त होता है पूर्व दिशा में शीतल मंद हवा बहती है कवि के मन में प्रेम का भाव उद्दीप्त हो उठता है-

उषा आई, वह ले आयी
करतल में अनुराग।
कमलों से भ्रमरों ने पाया
मादक पीत पराग
कुछ कुछ डोली प्राची से आ
शीतल मंद समीर,
जाग चुका है मन में मेरे
कोई प्रेम अधीर।[२]

३. **नारी रूप में प्रकृति चित्रण** - कवि केदार नाथ अग्रवाल को प्रकृति नारी के रूप में ही सर्वाधिक दिखती है। कवि कभी तो प्रकृति पर कल्पना के अनेक रंग छिड़कता है और कभी निस्पन्द दृष्टि से निहारता है। नारी को प्रकृति का उपादान मानकर उसका जमकर चित्रण किया है प्रकृति को वे प्रिया मानते हैं और वे इसी प्रिया से प्रेरणा लेकर काव्य-सृजन हेतु समर्पित हुए हैं-

कविता यों ही बन जाती है
बिना बनाये
क्योंकि हृदय में तड़प रही है

१- जमुन जल तुम, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ४६

२- गुल मेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ८६

याद तुम्हारी।[1]

कवि खेत की मेड़ पर अकेले बैठा है और अलसी का नारी रूप उद्घाटित करते हुए कहता है कि चने के पेड़ के पास ही हठीली असली भी उगी हैं जो देह की पतल और कमर की लचीली हैं, वह सिर पर नीले फूले चढ़ाकर मानो यह कह रही हैं कि जो मुझे छुयेगा उसे मैं हृदय का दान दूँगी इसी प्राकार उन्होंने सरसों का भी बड़ा मोहक नारी रूप प्रस्तुत किया है। प्रकृति के ये नारी रूप इन पंक्तियों में दृष्टव्य है।

पास ही मिल कर उगी है

बीच में अलसी हठीली

देह की पतली, कमर की है लचीली,

नीले फूल को सिर पर चढ़ा कर

कह रही है, जो हुये यह

दूँ हृदय का दान उसको

और सरसों की न पूछो-

हो गयी सबसे सयानी,

हाथ पीले कर लिये हैं

व्याह-मंडप में पधारी[2]

केदारनाथ अग्रवाल जी का प्रकृति चित्रण प्रगतिवादी तेवर को लिए छायावादी कवियों से भिन्न है उसके प्रकृति निरूपण में यथार्थता एवं ग्रामीण परिवेश का सम्पूर्ण चित्रण मिलता है। 'खेत का दृश्य' नामक कविता में फसल और धरती को नारी रूप में चित्रित करती हुयी ये पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं-

आसमान की ओढ़नी ओढ़े

धानी पहने

फसल घँघरिया,

राधा बन कर धरती नाची,

१- समीक्षायें एवं मूल्यांकन : केदारनाथ अग्रवाल, रामचन्द्र मालवीय, पृ.सं. ४७

२- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १७

नाचा हँसमुख / कृषक सँवरिया।[1]

कवि को तो पैरों से लिपिटी हुयी धूल भी गाँव की गोरी जैसी लगती है जो उपेक्षिता होकर नीचे पड़ी हुयी है और जिसे इस अनुपयुक्त ठौर से किसी ने भी नहीं उठाया। यहाँ धूल का नारी रूप प्रदर्शित है।

लिपट गयी तो धूल पाँव से

वह गौरी है इसी गाँव की

जिसे उठाया नहीं किसी ने

इस कुठाव से।[2]

कवि ने धूप नामक कविता में धूप को नारी रूप में चित्रित किया है चाँदी की साड़ी पहने धूप चमकती हैं वह मायके में आई बेटी की तरह प्रसन्न है। इस कविता में कवि ने सरसों को भी नारी रूप में रूपायित किया है।

धूप चमकती है चाँद की साड़ी पहने

मैके में आयी बेटी की तरह मगन है

फूली सरसों की छाती से लिपट गयी है

जैसे दो हमजोली सखियाँ गले मिली हैं[3]

'केन किनारे' नामक कविता में उषा का कवि ने नारी रूप प्रदर्शित किया है।

आई ऐसे में तब सुन्दर उषा कुमारी

सोने का घट लिये शीश पर ज्यों पनिहारी[4]

इसी प्रकार कवि ने केन नदी को भी नारी रूप में चित्रित किया है।

दूर खड़ा टुनटुनिया पत्थर पास बुलाता

केन नदी की बाँह पकड़ने को ललचाता[5]

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ३१

२- वही, पृ.सं. ४९

३- वही, पृ.सं. ६३

४- गुल मेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १५०

५- वही, पृ.सं. १५१

कवि ने रात नामक कविता में रात का परिदृश्य उपस्थित करते हुए केन को नारी रूप में रेखांकित किया है।

केन ने भी जाँघ अपनी ढांक ली,

रात है यह, अंधी रात,

और कोई कुछ नहीं है बात।[1]

कवि को इस वसुन्धरा से वहुत प्रेम है, इसी पर रंगे रहने की इससे ही मिलते रहने की उत्कष्ट अभिलाषा है 'सदैव' नामक कवित में कवि ने भूमि को चित्रांगदा के रूप में देखर उसे नारी रूप में प्रदर्शित किया है।

रश्मियाँ रंगती रहेंगी

और थल रंगता रहेगा।

भूमि की चित्रांगदा से,

आदमी मिलता रहेगा।[2]

कवि ने नदी को एक जवान ढीठ लड़की माना है जो पर्वत से उतर कर मैदानी भू-भाग में आयी है। यहां कवि ने नदी का चित्रण चंचल युवती के रूप में किया है

नदी एक नौजवान ढीठ लड़की है

जो पहाड़ से मैदान में आयी है

जिसकी जाँघ खुली

और हंसो से भरी है

जिसने बला की सुन्दरता पायी है।[3]

'आज नदी बिल्कुल उदास थी' नामक कविता में कवि ने नदी को प्रेयसी के रूप में माना है। मधुर मिलन के उल्लास में कवि नदी के पास आता है और देखता है कि नदी के चेहरे में उदासीनता घिरी है, वह सुप्तावस्था में है कवि उसे जगाता नहीं है वापस लौट आता है।

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ५८

२- गुल मेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १४९

३- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १२२

आज नदी बिल्कुल उदास थी।,

सोयी थी अपने पानी में,

उसके दर्पण पर,

बादल का वस्त्र पड़ा था।

मैंने उसको नहीं जगाया,

दबे पाँव घर वापस आया।[1]

वसंत के आ जाने पर वन प्रदेश की सुषमा का आलम देखते ही बनता है। उस मन-मोहक दृश्य पर कवि का हृदय भी उल्लसित हो उठता है। प्राकृतिक सुषमा से मंडित वनस्थली, नयी-नवेली लजवन्ती दुल्हन बन गयी है।

फूलों के आभूषण से सुसज्जित वनखण्डी दुल्हन का रूप लावण्य मन को मुग्ध करता है।

वसन्त आया

पलास के बूढ़े वृक्षों ने

टेसू की लाल मौर सिर पर धर ली।

विकराल वनखण्डी

लजवन्ती दुलहिन बन गयी,

फूलों के आभूषण पहन आकर्षक बन गयी।[2]

कवि केदार नाथ अग्रवाल ने गंगा को गोरी के रूप में चित्रित किया है। पितृ-गृह से ससुराल के लिए जब कोई विवाहिता बाला पाँव निकालती है तब उसके करूणा के आँसू सबको संवेदित करते हैं नदी गिरि ग्रीव से निकल कर भू प्रदेश पर विस्तार करती हुई और मुड़ती हुई बढ़ती है तब लगता है गंगा नदी रूपी गोरी का मन मायके की याद से भरमा रहा है।

छूटता है गेह गोरी जा रही है

वेदना अब आँसुओं से गा रही है

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १२२

२- वही, पृ.सं. ४७

कंठ से उमड़ी हृदय पर छा रही है

मायके की याद मन भरमा रही है

पत्थरों का भी हृदय पिघला रही हैं

पादपों को भेंटती अकुला रही है

गीत मिलनातुर विकल अब गा रही है।[1]

कवि ने सरसों को नारी के रूप में चित्रित किया है जिसको निम्न कविता में देखा जा सकता है

चोली फटी सरस-सरसों की

नीचे गिरा फागुनी लहँगा,

ऊपर उड़ी चुनरिया नीली,

देखो हुई पहाड़ी विवसन आतप तप्ता[2]

कवि की प्रकृति नारी के ही रूप में अधिक दिखाई पड़ती है कवि कभी तो प्रकृति पर कल्पना के रंग छिड़कता है और कभी निष्पंद दृष्टि से निहारता है। केन ने कविता को जन्म एवं कवि के हृदय को प्रबल प्रेरणा दी है।

मैं भी उस पर तन मन वारे

बैठा हूँ इस केन किनारे।[3]

आकर्षक के जाल में चाहे छोटे हो चाहे बड़े जो सरल होते हैं, सब फँस जाते हैं। कवि ने नदी को कामिनी कहकर नदी का नारी रूप प्रदर्शित किया है।

पड़ गया है कनक कामिनी नदी में

मधुर मालिनी रोशनी का लुभावना जाल

और अब फँस गयी है उसमें

सरल गामिनी मछलियाँ

छोटी से छोटी

१- जमुन जल तुम, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ११०

२- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १५४

३- समीक्षाएं एवं मूल्यांकन, डॉ. रामचन्द्र मालवीय, पृ.सं. ४७

बड़ी से बड़ी।[1]

कवि रात को नारी के रूप में देखता है और उसे तम की त्रिया कहकर सम्बोधित करता है-

आयी रात / जैसे घटा / उमड़ आयी

बरसात की / अलक टूटे,

कामिनी के ढँके कुच से,

कनक कलसे / मेरुभू के

यह त्रियामा

त्रिया तम की।[2]

कवि ने केन नदी को नृत्य नाद की नटी कहकर उसे नारी रूप में चित्रित किया है नदी की तरंगे छंद हैं उन तरंग छन्दों से जय का ज्वार उमड़ता है। जिससे संगीत का स्वर उभरता है देखिये ये पंक्तियाँ

नृत्य नाद की नटी तरंगों के छन्दों की

जय का ज्वार भरे गाती हैं कलहंसो से।[3]

व्यंग्य रूप में प्रकृति चित्रण-

कवि प्रकृति के माध्यम से व्यंग्य का रूप उकेरने में पर्याप्त सफल हुआ है। कवि केदार 'देवमूर्ति' कविता में सागर के ऊपर व्यंग्य कसते हुए कहता है कि सागर करुणा का सागर है। वह दर्शाता है कि वह संवेदनशीलता का भंडार है किन्तु जो दया के पात्र है जो संताप से तप्त हैं, जिनके ऊपर करुणा व दया की वर्षा की जानी चाहिए, उनके प्रति वह करुणा का सागर तनिक भी नहीं पसीजता है कैसा है वह करुणा का सागर आश्चर्य है। पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं।

"ताज्जुव है मुझको तो,

करुणा के सागर के

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १४४

२- वही, पृ.सं. १६४

३- वही, पृ.सं. १६७

अन्तर की एक बूँद

भूमि पर न छलकी।[1]

कवि अंधकार और सूर्य का व्यंगात्मक चित्रांकन करते हुए कहता है कि अंधेरा विद्वान है और सूर्य ढपोर शंखी है, दोनों ही हमारे अपने हैं, हम उनके सम्बल की छाँव में रहते हैं।

विद्वान अंधेरा

ढपोर शंखी सूर्य

दोनों हमारे हैं

और हम

उनके सहारे हैं

थके हुए

हारे हैं।[2]

विषम समय की मार के सामने जिसका जो कार्य है वह उस कार्य को करता हुआ नहीं दृष्टि गोचर होता बैलों का स्थान गधे लेने लगे हैं। पंक्तियाँ देखिये-

निकल आये हैं

पैने सींग

जमीन और आसमान को हुरेटते हैं

बैल

अब विक गये हैं बाजार में

कुबेर का रथ वहीं खींचते हैं

उन्हीं की सब्जी सींचते हैं[3]

आग जीवन के लिए अपरिहार्य है किन्तु बदले परिवेश में गिरते हुए मूल्यों को देख कवि आग को आग नहीं मानने लगा आग की व्यंगात्मक प्रस्तुति यहाँ दृष्टव्य है

१- गुल मेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ३३

२- आग का आइना, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ३९

३- वही, पृ.सं. ६८

आग को / आदमी

बनाये हैं पालतू / अपने लिए

आग अब करती है / आदमी को झुके झुके

सलाम / आग अब आग

नहीं

गुलाम।[1]

कवि ने रात की विवशता का वर्णन करके अधोलिखित पंक्तियों में व्यंग्यात्मक चित्र का अवलोकन कराया है।

न पथ है / न पंथी

न रथ / न घोड़ा

विवश है

दिन-रात का जोड़ा[2]

नेताओं के मनुष्यता से परे आचरण पर कवि का दुखी होना स्वाभाविक है शासन-व्यवस्था की विसंगतियाँ कवि को कुछ कहने के लिए मजबूर कर देती हैं तभी कवि अपने व्यंगात्मक तेवर से बोल पड़ता है-

शासन की नदिया गहरी

बहती है मद से अफरी

किन्तु नहीं भरतीं गगरी

सुख सुविधाओं से एक घरी[3]

राजनीति में व्याप्त छल-छिद्र कवि के हृदय को उद्वेलित करते हैं पदलोलुपता वश नेता लोग रातों रात दल बदल लेते हैं ओर छल-छदम का घिनौना रूप प्रकट करते हैं इस बात को बादलों के माध्यम से कवि ने दल बदलुओं पर मार्मिक व्यंग किया है।

दल बदल के

१- कहें केदार खरी-खरी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १६८

२- आग का आइना, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ८७

३- कहें केदार खरी-खरी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १२७

बादलों को छल खुला है

जल मिला तो वह मिला

विषय से घुला[1]

सितार को संगीतज्ञ बजाता है अथवा वाद्य यंत्र को समझने वाला मनुष्य भी कुछ संगीत के स्वर को उभार सकता है किन्तु कवि ने मच्छरों के द्वारा सितार बजाया जाना दिखाया है जो मार्मिक व्यंग्य का प्रतीक है।

मच्छर / बजाते हैं।

समय का सितार / अंधकार में नाचती हैं

निहंग आदिम प्रवृत्तियाँ / विराट हो रहा है।

देश के दिल में संगीत-सम्मेलन[2]

कवि केदारनाथ ने विकास व्यंगात्मक रूप में कैसे प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है यह उनकी इस पंक्तियों में देखा जा सकता है-

त्रास हो / या संत्रास

रोये बादल / या सूखे घास

फिर होगा फिर / बारह मास विकास[3]

समय का चक्र सबको अपनी औकात समझा देने की क्षमता रखता है सब प्रकार से सक्षम लोग भी मौसम की मार के सामने घुटने टेकते हुए दिखाई पड़े हैं। बदलते मौसम में सबसे अधिक तेजवान सूरज भी निष्प्रभ हो गया है। सूरज रहते हुए भी प्रकाश दृष्टिगत नहीं होता अंधेरा ही दिखाता है कवि ने इसी आशय को व्यंग के रूप में सूरज को प्रतीक के रूप में ग्रहण कर चित्रित किया है।

आज का दिन

कौड़ियों-सा पट्ट पड़ा है

दाँव हारा सूरज

१- आग का आइना, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ५०

२- वही, पृ.सं.५८

३- वही, पृ.सं. ८९

हथेलियों में छिप रहा है।

आग

जल रही है

किताबों में

लपालप!

कागज नहीं जलता!

हाथ में उठाये किताब सूरज की

आदमी

अंधेरे में बैठा है।[1]

युवावस्था के आगमन का कुछ अलग ही वासन्ती आलम होता है प्रखर तेजस्वित, दैदीप्यमान चेहरा चढ़ती जवानी का आभास कराता है अगर ऐसा नहीं तो किशोर पन, युवा पन और बुढ़ापे का क्या अन्त किया जा सकता है। बजपन में ही बुढ़ापा घेरना दुखद है इसको दो पंक्तियों में ही व्यंग के रूप में चित्रित कर दिया है

नयी आई धूप

हो गई है धुँआ[2]

मनुष्य में जब मनुष्यता का वास नहीं होता उसका हृदय रसवत्ता से विहीन होता है तब वह सब दिन पाषाणवत परिलक्षित होता है नीरस व्यक्ति के मन में भी बसन्ती बहार में रस का संचार कुछ न कुछ तो होना ही चाहिए किन्तु यदि ऐसा नहीं होता तो कवि को व्यंग रूप में कहना पड़ता हैं।

कोई है कि देखे

मेरा मनुष्य पत्थर हो गया है

बहार के दिनों में[3]

समाज और राष्ट्र के कणधारों का दायित्व है कि वे सामाजिक विसंगतियों, विद्रूपताओं

१- आग का आइना, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ९३

२- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १७१

३- वही, पृ.सं. ६१

व विषमताओं के इस साम्राज्य को विनष्ट कर समता का वातावरण प्रस्तुत करें और राष्ट्र की अस्मिता को सदैव संरक्षित करें जन-जन को सुख सुविधाओं से आवृत्त रखे। जब कवि ने इसके विपरीत देखा तो उससे न रहा गया और सूर्य के ऊपर व्यंग करके उसे यह बात कहनी पड़ी।

ऐसा भी हुआ है कभी
कि सूर्य मरा हुआ पैदा हुआ है सवेरे
और आदमियों ने फिर भी
अंधकार को ललकारा है
कि वह भाग गया है
दुम दबाये हुए कुत्ते की तरह[१]

५. **प्रतीकात्मक रूप में प्रकृति चित्रण-** कवि केदार नाथ अग्रवाल के द्वारा चयनित प्रकृति-प्रतीकों का जंगल अत्यन्त सघन और मनोरम है। हाँ यह बात अवश्य है कि मार्क्सवादी चिंतन से मंडित होने के कारण प्रतीकों के चित्रांकन करने का उनका अंदाज औरो से कुछ अलग है। कवि ने अपनी 'कोयले' कविता में कोयले को श्रमजीवी का प्रतीक माना है जो क्रान्ति की चिंगारी से शिवनेत्र की भांति दहकने लगा है, पंक्तियाँ उद्धत हैं-

जल उठे हैं तन बदन से,
क्रोध में शिव के नयन से।
खा गये निशि का अंधेरा,
हो गया खूनी सवेरा।[२]

'फूल नहीं रंग बोलते हैं' में संकलित कविता 'घन-जन' में कवि ने बदलों की गर्जना को श्रमजीवी की गर्जना का प्रतीक माना है। सागर को बंदी सदृश देखकर उसे मुक्त कराने हेतु बादल गंभीर घोष करते हैं क्षत विक्षत हिमालय को देखकर और धरती की छाती को जर्जर देखकर भी बादल घोर गर्जना करते हैं।

घन गरजे जन गरजे

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १८२

२- वही, पृ.सं. १८३

बंदी सागर को लखकातर

एक रोष से

घन गरजे जन गरजे

क्षत विक्षत लरय हिमगिरि अन्तर

घन गरजे जन गजरजे

एक रोष से

क्षिति की छाती को लाख जर्जर

एक शोध से

घन गरजे जन गरजे

देख नाश का ताण्डव वर्वर

एक बोध से।

घन गरजे जन गरजे[1]

कवि केदार नाथ अग्रवाल ने जनवादी सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति के लिए भी प्रकृति के प्रतीकों का प्रयोग किया है 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' में संकलित कविता 'दो जीवन' में कली पूँजीवादिता का प्रतीक है जबकि सर्वहारा व्यक्ति का प्रतीक है बबूल। कविता उद्धत है-

कली निगाह में पली,

हिली डुली कपोल में,

हृदय-प्रदेश में खिली,

तुली हँसी की तोल में।

गरम गरम हवा चली,

अशान्त रेत से भरी,

हरेक पाँखुरी जली,

कली न जी सकी मरी।

बबूल आप ही पला,

हवा से वह न डर सका,

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २३

कठोर जिन्दगी चला,

न जल सका, न मर सका।[1]

'गुलमेंहदी' में संकलित 'गेहूं' शीर्षक की कविता में गेहूँ श्रमजीवी व्यक्ति की शक्ति का प्रतीक है-

आर पार चौड़े खेतो में

चारों ओर दिशाएं घेरे

लाखों की अगणित संख्या में

ऊँचा गेहूँ डटा खड़ा है।

ताकत से मुट्ठी बांधे हैं,

नोकीले भाले ताने हैं

हिम्मत वाली लाल फौज-सा

मर मिटने को झूम रहा है।[2]

'गर्रा नाला' श्रमिक शक्ति का प्रतीक है। रोड़ों से जब वह लोहा लेता हुआ बहता है और बहाव के वेग से अर्राने की ध्वनि सुनाई देती है तब कवि के मन में यह भाव जगता है कि मानों गर्रा नाला आगे बढ़ने हेतु श्रम जीवी वर्ग को प्रेरित कर रहा है-

काली मिट्टी, काले बादल का बेटा है।

टक्क्र पर टक्कर देता, धक्के देता है।।

रोड़ों में वह बेहारे लोहा लेता है।

नंगे, भूखे, काले लोगों का नेता है।।

आगे, आगे, आगे, आगे सिर्राता है।

खोए, सोए मैदानों को थर्राता है।।

आओ, आओ, आओ, आओ, अर्राता है।

जीतो, जीतो, जीतो, जीतो नर्राता है।।[3]

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २४

२- गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २१

३- वही, पृ.सं. २५

जो किसी की स्वायत्ता बधित करते हैं, अपने साम्राज्य में विलय करने हेतु अतिक्रमण करते हैं, ऐसे वर्ग के प्रति कवि सजग हैं। वह अपनी कवित से समता मूलक समाज को उत्साहित करता है। आशा का संचार करते हुए उसमें जोश भरता है। इसी विचार धारा से मंडित होकर 'कोहरा' कविता का जन्म हुआ। कोहरा उस वर्ग विशेष का प्रतीक है जो किसी की स्वायत्तता पर अनावश्यक अतिक्रमण करता है और दिनकर समतामूलक प्रगतिशील समाज का प्रतीक है

पर निश्चय है, दृढ़ निश्चय है इतना

दिनकर जन्मेगा लपटों से लिपटा।

भस्मीभूत करेगा कोहरा क्षण में,

प्यारी धरती को स्वाधीन करेगा।।[1]

कवि केदार नाथ अग्रवाल ने 'तेज धार का कर्मठ पानी' कविता में पानी को उस युवा वर्ग का प्रतीक माना है जो अपने अधिकारों के लिए निरन्तर संघर्षरत है। जो समाज रूढ़ियों से ग्रसित हैं, अपने ही विचारों के बन्धन में ही सबको बांधना चाहता है, अपने ही साम्राज्य के घेरे में सबको रखना चाहता है, ऐसे रूढ़िवादी समाज का प्रतीक है चट्टानी तट जिसे तेजधार का कर्मठ पानी तोड़कर अपना मार्ग प्रशस्त करता है-

तेज धार का कर्मठ पानी,

चट्टानों के ऊपर चढ़ कर,

मार रहा हैं

घूसे कस कर

तोड़ रहा है तट चट्टानी।[2]

कवि ने सामाजिक यथार्थ को स्वर देने के लिए प्राकृतिक प्रतीकों का सर्वाधिक प्रयोग किया हैं। 'युग की गंगा' कविता में युग की गंगा को इतिहास की गतिशीलता और सूर्योदय को भविष्य की सामाजिक संरचना का प्रतीक माना है।

पंक्तियां दृष्टव्य हैं-

१- गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २४

२- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ९७

युग की गंगा

गुहा-गर्त से

आगे जाकर

सूर्योदय से खेलेगी ही।[1]

'पत्थर के सिर पर दें मारो अपना लोहा, कविता में कवि ने पत्थर को अवरोधक तत्वों का प्रतीक ओर लोहा की जनवादी शक्ति का प्रतीक माना है। प्रगति के रास्ते पर सामन्त शाही और रूढ़िवादी जन अवरोधक के रूप में खड़े हो जाते हैं, उन्हें अपनी शक्ति से तोड़ देना चाहिए और अपने लक्ष्य तक साहस के साथ कदम बढ़ाते जाना चाहिए, यही संदेश कवि देता है जो इन पंक्तियों से ध्वनित होता है।

पत्थर के सिर पर दे मारो अपना लोहा।

वह पत्थर जो राह रोकर कर पड़ा हुआ है,

जो न टूटने के घमण्ड में अड़ा हुआ है,

जो महान फैले पहाड़ की

अंधकार से भरी गुफा का,

एक बड़ा भारी टुकड़ा है,[2]

'किसानों का गाना' कविता में तीव्र जनवादी स्वर हैं, क्रान्ति का संदेश है।। हल श्रम जीवी का और बंजर रूढ़िवादिता का प्रतीक है-

हमारे हाथ में हल है,

हमार हाथ में बल है,

कि हम बंजर को तोड़ेगे।

बिना तोड़े न छोड़ेगे।

'जुताई का गाना' कविता में खूंनी अंगारे कठोर श्रम और क्रांन्ति स्वर के प्रतीक हैं-

मेरे खेत में हल चलता है

मैं युग की निद्रा खोता हूँ

१- गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १९

२- वही, पृ.सं. १३२

गेहूँ चना नहीं बोता हूँ

खूंनी अंगारे बोता हूँ

दुर्दान्त साम्राज्यवादी शक्ति से कठोर और लम्बे संघर्ष के बाद भारत स्वतंत्र हुआ। जनता की अपनी सरकार बनी। किन्तु अनेक प्रयत्नों के बाद भी जनता का जीवन स्तर सुधर न पाया। आज स्वतंत्रता ऐसी हो गयी है लगता है किसी ने उसके पंख काटकर उसे असहाय छोड़ दिया है-

"चाँदनी के पर किसी ने काट डाले

और वह आकाश से उतरी धरा पर रो रही है

कुंज का कल्लोल कुण्ठा ग्रस्त है

देश की यह दुर्दशा करूणा जनक है।[१]

कवि गरीबी की मार से कराहते हुए आदमियों को देख कर अत्यन्त द्रवित हो जाता है। कवि प्रतीकों के माध्यम से कहना चाहता है कि उसे समाजवाद की रानी के आगमन की प्रबल प्रतीक्षा है। समय बहुत बीत गया है लेकिन दरिद्रता का सूर्य अस्त नहीं हुआ है। हर जगह दरिद्रता का तांडव नृत्य हो रहा है। ये पंक्तियां अवलोकनीय है-

हे मेरी तुम,

सोपकेस में सोप नहीं था

एक बूंद भी तेल नहीं था

कंघा परसों टूट चुका था,

पैसे की डिबिया में पैसा एक नहीं था

आलू और अनाज खत्म था

अब बोलो तुम कब आओगी

घर सवांरने?[२]

५. **मानवीकरण रूप में प्रकृति चित्रण-** मधुमास के आगमन पर प्रकृति का रूप अत्यन्त मोहक रूप में निखर कर मन को लुभाने लगता है। कवि ने 'बसंती हवा' कविता शीर्षक में

१- समीक्षाएं एवं मूल्यांकन, डॉ. रामचन्द्र मालवीय, पृ.सं. ८३

२- हे मेरी तुम, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ३७

हवा का मानवीकरण करते हुए उसे मस्तमौला मुसाफिर के रूप में चित्रित किया है-

हवा हूँ हवा में बसन्ती हवा हूँ
बड़ी मस्तमौला नहीं कुछ फिकर हैं
बड़ी ही निडर हूँ, जिधर चाहती हूँ
उधर घूमती हूँ मुसाफिर अजब हूँ।।[1]

बसन्ती हवा कभी महुए के वृक्ष पर चढ़कर धमाचौकड़ी करती हैं, कभी आम के पेड़ पर बढ़कर उसके कान में 'कूँ' का स्वर भरती है और कभी हरित क्रान्ति का संदेश सुनाते हुए खेतों में वह लहराती हुई चलती है।

चढ़ी पेड महुआ थपाथप मचाया
गिरी धम्म से फिर चढ़ी आम ऊपर
उसे भी झकोरा किया कान में कू।
उतरकर अभी मैं हरे खेत पहुंची
वहां गेहुंओं के लहर खूब मारी।[2]

'उदास दिन' कविता में दिन पेंशन पाये और जुएं में हारे मनुष्य सदृश्य लगता है। माँ से बिछुड जाने पर वियोजन्य पीड़ा से जिस प्रकार पुत्र कारूणिक रूदन करता है उसी प्रकार रवि रो रहा है, परित्यक्ता पत्नी सी दुखी धूप पड़ी हुई है, हवा के पांव कटे हैं। और वह लढ़ी पर लेट कर अस्पताल की ओर जा रही हैं यहां पर दिन, रवि धूप और हवा का मानवीकरण परिलक्षित है-

यह उदास दिन
पेंशन पाये चपरासी सा
और जुएं में हारे जन सा,
आपे में खोये गहदे सा,
मौन खड़ा है।
रवि रोता है

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २१

२- वही, पृ.सं. ३४

माँ से बिछुड़े हुए पुत्र-सा।

धूप पड़ी हैं।

परित्यक्त पत्नी सी कातर।

पांव कटाये

हवा लढ़ी पर लेटे-लेटे,

धीरे-धीरे

अस्पताल की ओर चली है,

सुबुक रही है।

'खेत का दृश्य' कविता में हवा का मानवीकरण किया गया है जहां पर हवा पेड़ो पर थाप लगाकर ढोलक बजा रही है। इस कविता में खेत नर्तन करते हुए दिखाये गये हैं यह मानव परिदृश्य का परिचायक है

माती थाप हवा की पड़ती,

पेड़ो की बज

रही एुलकिया,

जी भर फाग पखेरू गाते,

ढरकी रस की

राग-गगरिया!

मैंने ऐसा दृश्य निहारा,

मेरी रही न

मुझे खबरिया,

खेतों के नर्तन उत्सव में

भूला तन-मन

गेह डगरिया।[१]

कवि ने प्रकृति के प्रति इतना अटूट अनुराग दिखाया है कि पेड़ो को उन्होंने पृथ्वी के वंशज और मानव के अग्रज तक कह डाला है-

---

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ३१

पेड़ नहीं,

पृथ्वी के वंशज हैं,

फूल लिये,

फल लिय-

मानव के अग्रज हैं।[1]

कवि ने सरिता में मानवोचित क्रिया कलापों का आरोपण कर उनका मानव रूप प्रकट किया है

हे मेरी तुम सोयी सरिता!

उठो,

और लहरों से नाचों [2]

कवि को नदी से अथाह अनुराग है वह मानता है कि वह मुझे कभी न भूलेगी क्योंकि वह जलधार रूपी रस से लबालब हैं। उसने मुझे भेंटा है और मैंने भी पूरी मन से उसे भेंटा है इस बात के लिएसूरज साथी है क्योंकि मेरे और नदी के इस आलिंगन को घण्टों वह देखता रहा है।

न भूलेगी मुझे

निर्तांबनी, / श्वेताम्बिनी

जलधार से भरी नदी

जिसने मुझे भेंटा, / मैंने जिसे भेटा

सूर्य ने घण्टों हमें देखा।[3]

'चन्द्ररात्रि' कविता में चाँद ओर निशा में मानवीकरण का चित्रांकन किया है

चाँद की गागर निशा के शीष पर है।

चाँदनी की श्वेत आँचल भूमि पर है।।[4]

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ३५

२- वही, पृ.सं. ५३

३- वही, पृ.सं. १४०

४- गुलमेहंदी, पृ.सं. १४५

कवि केदार नाथ अग्रवाल ने निम्नांकित पंक्तियों में स्वर्ण किरण ओर पेड़ों का बड़ा खूबसूरत मानवीकरण किया है।

पथ चूम लिया मैंने रज का,

पाषाण-शिलाओं पर दौड़ी

मैं लाल लजीली स्वर्ण किरण

वृक्षों के तन से जा लिपटी।

वे पेड़-बड़े सन्यासी हैं,

निस्तब्ध खड़े तप करते है

लेकिन मेरे भुज-बुधन में

वे आत्म-समर्पण करते हैं [१]

चाँद आकाश मण्डल पर अपनी ज्योत्स्ना बिखेरता है कवि कल्पना करता है कि विश्व रूपी वट वृक्ष के शिखर पर मानो चाँद चढ़ गया है और वहाँ से वह अपनी धवल चाँदनी अर्पित करता हुआ ऐसा प्रतीत होता है। मानों वह दूध की बाहें पसार कर धरती का आलिंगन कर रहा है।

विश्व के

वट-वृक्ष के ऊँचे शिखर पर

चाँद चढ़ कर,

चाप से नीचे निखरकर,

दूध की बाँहे पसारे,

मानवी मधुरा धरा को भेंटता है,[२]

सुगंधित और शीतल हवा जब कवि के कमरे में प्रवेश करती है तब वह सिहर उठता है प्रेम के रस में नहायी हवा बावली सी कवि को लम्बे अन्तराल तक अपने अंक में ऐसे लगाये रही जैसे कि वह उसकी प्रिया हो और वह उसका प्रियतम हवा के मानवीकरण के साथ ही कवि की अनुभूति दृष्टव्य है।

१- जमुन जल तुम, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ७६

२- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २९

केवड़े में डूबी

और चाँदनी में ठण्डी हुई

आयी हवा कमरे में

बावली-सी

और मुझे, पहरों तक

अंक से लगाये रही,

जैसे वह मेरी-मैं उसका हूँ।[१]

कवि केदारनाथ अग्रवाल ने जिस ढंग से बादल और बिजली का मानवीकरण किया है वह इन पंक्तियों में देखा जा सकता है।

श्यामकाय

प्रभु विष्णु मेघ जो प्राकृत नट है

धीर, वीर गम्भीर और निःशंक निपट है,

महाभूत

उस पूर्ण पुरूष से विद्युत बनिता

हेर-फेर मुख लिपटी छूटी क्षण-क्षण चकिता।[२]

कवि का मन जब अत्यन्त प्रमुदित होता है, उल्लास से भरा हुआ होता है, प्रिय मिलन को उत्कट अभिलाषा जागती है तब वह इस भाव को प्रकृति के माध्यम से बड़ी कुशलता के साथ व्यक्त करता है जहाँ प्रकृति का मानवीय रूप प्रकट होता है।

आज खुशी से पागल सागर,

उमड़-उमड़ कर मन के भीतर,

जीवन की नदिया से मिलता,

जीवन की नदिया से कहता,

मेरे अलिंगन में आ कर,

मेरे अंग-अंग से मिल कर

१- जमुन जल तुम, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ११८

२- गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १८५

अपनी सुधि-बुधि सब खो डालो,

फिर न अलग हो गले लगा लो।[1]

कवि वृक्षों को सन्यासी कहकर सम्बोधित करता है सन्यासी शब्द मानवीय स्वरूप को व्यंजित करता है

वे पेड़ बड़े सन्यासी हैं।

निस्तब्ध खड़े तप करते हैं

कवि प्रिय की चाह में शशि-स्वामी को भी निरन्तर चमकते रहने को कहता है जब तक शशि स्वामी चमकता है तब तक रजनी का ही राज्य स्थापित रहता है कवि की इच्छा है कि रात पर्याप्त लम्बी हो। वह शशि-स्वामी से गिरि माला को भेटने और सरिताओ को चूमने हेतु निवेदन करता है क्योंकि उसे गिरि मालाएं एवं सरिताएं सम्मिलन का आमंत्रण देती है शशि स्वामी गिरिमालाएं और सरिताएं यहां मानवीय स्वरुप को प्रकट करती है।

तुम शशि स्वामी! इसी तरह से रहो चमकते,

रात तुम्हारी और हमारी लम्बी होवे,

तुम्हें बुलाती है गिरिमाला उसको भेंटो

तुम्हे बुलाती है सरिताएं उनको चूमों [2]

कवि ने सरिता और चांद का मानवीकरण करते हुए कविता की ये पक्तियां सृजित की है

प्यारी! जल में चांद चमकता,

सरिता के हृत्तल पर अपना सिर धर हंसता।[3]

कवि छोटे कनेर को देखकर कहता है कि यह कनेर गंभीरता को धारण किये हुए आज शान्त खड़ा हुआ है यह नहीं समझ में आ रहा कि न जाने ये अपना लड़कपन क्यों भूल गया है आज नन्हीं घास मुझसे घबरा रही है वह लिपटकर मेरे पांव नहीं चूमती मुझसे प्रेम प्रलाप नही करती वायु भी आती है लेकिन मधुर प्रभावी गीत नही गाती चुपचाप मुझसे

१- जमुन जल तुम, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ७६

२- वही, पृ.सं. १०४

३- गुल मेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ७८

कतरा कर चली जाती है इन सबमें मानवीय संवेदनाओं का स्फुरण परिलक्षित हुआ है।

मेरा छोटा-सा कनेर प्यारा चुपचाप खड़ा है,

आज लड़कपन भूल न जाने क्यों बन गया बड़ा है।

नन्ही घास हृदय की प्यारी मुझसे ही घबराती,

नहीं लिपटकर पांव चूमती प्यार नहीं दरसाती।

आती वायु नहीं गाती है मीठी प्राण-प्रभाती

आती है चुपचाप चल यह हम सबसे कतराती।[१]

पत्तियां पकड़ कर हवा का खड़ा होना तथा हवा का पेड़ से टिकना, हवा का मानवीय रूप प्रदर्शित करता है।

नींद में डूबा

नींद में जी रहा है भैरव

पत्तियां पकड़े

पेड़ से टिकी हवा खड़ी है।[२]

मधुर एवं मादक रूप में प्रकृति चित्रण

कवि केदार नाथ अग्रवाल ने प्रकृति के सरस-मधुर एवं मादक मोहक चित्र खींचे है। कवि प्रकृति में मस्ती उल्लास और आनन्द की अनुभूति करता हैं। नैराश्य के वातावरण में भी प्रकृति उनमें आशा का संचार करती है ' बसन्ती हवा' कविता में हवा सबको मधुर प्रेम का आस पिला कर जीवन्तता बांट रही है-

वहीं हां वही जो सभी प्रणियों को

मिला प्रेम आसव जिलाये हुए हूं,

हवा हूं हवा मैं बसन्ती हवा हूं।

कवि 'बसन्ती हवा' में मादक सौन्दर्य के दर्शन करता है हवा निर्भय होकर स्वच्छन्दता के साथ सब जगह विचरण करती है

कसम रूप की है कसम प्रेम की है

१- गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ९२

२- आग का आइना, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ५८

कसम इस हृदय की सुनो बात मेरी

अनोखी हवा हूँ बड़ी बावली हूँ

जिधर चाहती हूँ उधर घूमती हूँ।[1]

कवि को प्रेम के रस की अगाध प्यास है। वह प्राकृतिक व्यापारों में भी अपनी मादकता देखता है।

मैं पागल हूँ पिये हुए हूँ कविता का मद प्याला

अधरों पर मेरे झूमी है रस करन की मधु-शाला

फूल है शोणित सरिता में मस्ती का गुल्लाला,

उच्छ्वासों में घनीभूत हो छाई वारिद-माला।[2]

कवि केदार को केन नदी बहुत भाती है। वह उसे प्रेयसी के रूप में मानता है। वह उसके रूप सौन्दर्य पर मुग्ध रहता है। कवि का मानना है कि वह नदी चौमासे में पूरी तरुणाई के साथ दिखाई पड़ती है और मदमस्त होकर वह कवि से मिलने आती है। चित्र दृष्टव्य है-

चौमासे में चढ़ी जवानी में मदमाती

केन नदी इठलाती गाती मिलने आती [3]

कवि ने पावस की रात के वर्णन में जिस मादकता उल्लास मधुरता एवं सौन्दर्य के चित्रों को अंकित किया बहुत ही मार्मिक हैं। निम्नांकित पंक्तियों में मधुर एवं मादक चित्रों का संदश्रन किया जा सकता है-

ओ पावस की मेरी रात!

आज देखता हूँ मैं तुझमें है असीम उल्लास,

कामिनियों के कुच लहराये,

मोरों के प्रिय पर फैलाये

यौवन के मद में इतराये

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २०

२- जमुन जल तुम, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ३३

३- गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १५१

दल पर दल बादल घिर आये[1]

कवि प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से यथार्थ प्रेम की स्रोतस्विनी में सबको नहलाता है। रस में डूबा कवि प्रेम की मधुरता का आसव पिलाकर सबको मस्त कर देता है। मादक संदृश्य का एक चित्र देखें-

फूले हैं फूल

और गाती है कामिनी

यमुना को चूमती है

पूनम की चाँदनी!!

आसव में डूबी है

यौवन की यामिनी

आँखों से हँसती है जैसे किरातिनी।।[2]

कवि प्रकृति के प्रणय का मधुरिम आभास करता है प्रकृति से प्रणय की सही शक्ति प्राप्त कर कवि का मन भी उस ओर उन्मुख होने लगता है।

प्रकृति में प्रणय रस समाने लगा है

प्रणय में समर्पण समाने लगा है

कि तुम पास आओ

अधिक पास आओ

पवन अब प्रमद डगमगाने लगा है।[3]

केदार नर-नारी के आकर्षण को स्वाभाविक मानते हैं और स्वाभाविक रूप में ही उसे प्रत्यक्ष व्यक्त करने के प्रबल समर्थक हैं-

प्रिय न ऐसा करना

अंगूरी यौवन अंगों का मद ऊषा में भरना।

मैं पी लूंगा, हंसना, मुझको प्रियतम कहना।।[4]

१- जमुन जल तुम, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ३७

२- वही, पृ.सं. ८२

३- वही, पृ.सं. ८९

४- समीक्षायें एवं मूल्यांकन : केदारनाथ अग्रवाल, डॉ. रामचन्द्र मालवीय, पृ.सं. ४३

कवि को सौंदर्य से गहरा लगाव है। प्रणय प्रसंगों पर मुग्धकारी चित्रांकन करने में कवि सिद्ध-हस्त है। प्रकृति के माध्यम से दर-दर कवि ने राग के मधुर चित्र खींचे हैं। ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

अंग में अनंग लिये

रंग-रूप राग की तरंग लिये,

चन्द्रमा-चकोर चाव संग लिये

वायु चली प्रेम का प्रसंग लिये [1]

'गुलमेंहदी' नामक कविता में गुलमेंहदी को लेकर कवि ने जिस मादक सौन्दर्य का चित्रांकन किया है, वह हृदयस्पर्शी है-

यह गुलमेंहदी अब जवान हो फूल उठी है

लाल खिले दहके फूलों की माला पहने

इतने सुन्दर फूल नहीं खिलते गालों में

जितने सुन्दर फूल खिले हैं अबकी इसमें

यह सुर-सुन्दरियों से सुन्दर गुलमेंहदी है।

इसको मेघों ने अवनी ने मुझे दिया है।[2]

कवि अपनी प्रियतम को देखने के लिए अत्यन्त व्याकुल है। वह उससे मिलने के लिए मतवाला हो रहा है। उसे बिना देखे उसको तनिक भी चैन नहीं है। मन का यही कार्य व्यापार कवि प्रकृति में इस प्रकार देखता है-

वल्लरियाँ मदमाती देखूँ, विचलित यौवन देखूँ

गुंजन-गंध-अमंद लिये तरु का पागलपन देखूँ [3]

कवि के मन में जब प्रेम की धारा उमड़ने लगती है तब वह प्रकृति में मधुरिम प्यार की बहार का चित्रांकन करने लगता है। देखिये ये पंक्तियाँ-

मीठे-मीठे प्यार की बहार है

१- जमुन जल तुम, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ९७

२- गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ९३

३- वही, पृ.सं. ७६

चाँदनी के आज रूप-रश्मि का सिंगार है
फूली हर एक डाल फूल से अपार है।
फूल में सुगंध है मरंद है निखार है।
फूल की सुगंध में वसन्त का विहार है।।[1]

८- **पौरुष में प्रकृति चित्रण-** केदारनाथ अग्रवाल की कविता का मूल स्वर संघर्ष है मजदूर, किसान, श्रमिक, शोषित व सर्वहारा वर्ग के प्रबल पक्षधर हैं। सामन्तशाही के खिलाफ कवि आवाज को बराबर बुलन्द रखना चाहता है। वह साम्यवादी विचारधारा को अक्षुण्ण बनाये रखना चाहता है। मानवीय मूल्यों की बगिया को हरा-भरा देखना चाहता है। इंसानियत की नदी में निरन्तर अवगाहन करने का इच्छुक है। गरीब और अमीर के बीच की खाई पाटना चाहता है। मार्क्सवादी दर्शन से पूर्णतः प्रभावित है। संघर्ष के स्वर को मजबूती देने के लिए प्रकृति में भी पौरुष और कठोरता का संदर्शन कवित करता है। कवि ने 'गेहूँ' नामक कविता में पौरुषरूप की अभिव्यक्ति की है। प्रकृति के पौरुषमय कठोर रूप को कवि ने अपनी कल्पना का विषय बनाया है। जो प्रबल शक्ति से मुट्ठी बाँधे हुए है और नुकीले भाले ताने हुए मर मिटने को जूझ रहा है। गेहूँ की लाल फौज को सेनानियों के रूप में प्रस्तुत करना प्रकृति के पौरुष रूप का ही सूचक है।

लाखों की अगणित संख्या में
ऊँचा गेहूँ डटा खड़ा है।
ताकत से मुट्ठी बाँधे है
नोकीले भाले ताने है
हिम्मत वाली लाल फौज सा
मर मिटने का झूम रहा है।[2]

फागुनी मस्ती के झोंके गेहूँ को शिथिल करना चाहते हैं और धूप की ऊष्ण गोद में उसे सुलाकर अस्तित्व मिटा देना चाहते हैं। लेकिन गेहूँ उनसे डरता नहीं है। हिम्मत नहीं हारता है अपना दृढ़ पौरुष दिखाता है अपने बलिदानों से वह किसानों को शक्तिवान बनाता

१- जमुन जल तुम, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ७२
२- गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २१

है।

लेकिन गेहूँ नहीं हारता

हँसिया से आहत होता है

तन की, मन की बलि देता है

पौरुष का परिचय देता है

सतत घोर संकट सहता है

अन्तिम बलिदानों से अपने

सबल किसानों को करता है।[1]

कवि 'गुम्मा ईंट' नामक कविता में प्रकृति के पौरुष रूप को चित्रित करता है। ईंट अपने दम से बड़ा से बड़ा निर्माण करती है। वह किसी से डरती नहीं है वह हर मुसीबत से लड़ती है। वह तोड़ती है। यहाँ प्रकृति का पौरुष रूप प्रदर्शित है। 'युग की गंगा' कविता मे इसी रूप का चित्रांकन है-

युग की गंगा

पाषाणों पर दौड़ेगी ही।[2]

पलाश के उन्नत पेड़ रण में ढाल लिये खड़े हैं। वे सूर्य से युद्ध करने को तत्पर हैं। बुरे दिन में भी साहस नहीं छोड़ते, मुरझाते नहीं हैं। अपना पौरुष दिखाने के लिए उद्यत हैं निम्नांकित पंक्तियों में यह दृष्टिगत है-

उन्नत पेड़ पलाश के

ढाल लिये रण में खड़े

सम्मुख लड़ते सूर्य से

बाँह बली ऊपर किये

दुर्दिन में रह कर हारे

छाँह छनी भू पर किये [3]

१- गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २२

२- वहीं, पृ.सं. १९

३- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १६०

सैन्य शक्ति की प्रतीक हवा वेग से चलती है जो अविजेय है जिससे तीव्र हलचल हुई। यहाँ प्रकृति के पौरुष रूप का चित्रांकन है।

वायु चली अविजेय सैन्य की
हलचल दौड़ी
नीड़ों से निकले प्रभात के जागे पंछी
पंख पसारे फैल गयी ललकार लहर की,[१]

कवि 'धरती' नामक कविता में धरती के पौरुष का चित्रांकन किया है। भयानक मेघ भीषण गरज से धरती को प्रकम्पित नहीं कर पाते उसका कुछ भी बिगाड़ पाने में समर्थ नहीं होते हैं यह धरती प्रलय के सागर में डूब कर भी अपनी ताकत से ऊपर आई है प्रलय सिन्धु उसे आत्मसात नहीं कर पाया है। भयंकर भूचाल भी उसे मिटा नहीं पायें-

भीषण बादल
आसमान में गरज गरज कर
धरती को न कभी हर पाये
प्रलय सिन्धु में डूब-डूब कर
उभर-उभर आयी है ऊपर
भूचालों-भूकम्पों से यह मिट न सकी है।[२]

'बादल राग' कविता में बादलों की शक्ति का उद्‌घाटन किया गया है। पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

श्याम के उपमान बादल
आग पानी से बने द्युतिवान बादल
जल न बरसे
आज बरसे बान बादल।[३]

कवि ने प्रकृति के पौरुष का दिग्दर्शन केन नदी की निरन्तर प्रवाहमान धारा में किया

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १६८
२- गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ५६
३- वही, पृ.सं. १४४

है। उसकी धारा को कोई रोक नहीं पाया है -

रोक सका है कौन प्रवाहित युग का पानी

आदिकाल से काट रहा है तट चट्टानी [1]

इतना ही नहीं सामन्तों ने अपने साम्राज्य के विस्तार हेतु इस धरती पर त्रास की बस्तियाँ बसायीं सम्पूर्ण धरा को अपने अधीन करना चाहा परन्तु कोई भी सामन्त केन नदी को जीत पाने में सफल नहीं हो सका है, उसके प्रवाह को कोई बाधित नहीं कर सका है, यह केन नदी की पौरुष की ही कहानी है-

वीरों ने जब मुक्त नदी को स्वीय बनाया

सामंतो ने प्रिय धरती पर त्रास बसाया

केन नदी को तब भी कोई जीत न पाया

उसकी धारा का पथ कोई रोक न पाया [2]

९- **संवेदनशील रूप में प्रकृति चित्रण-** प्रकृति में संवेदनात्मक चित्र अंकित करने में कवि को सम्यक सफलता मिली है। देश में अशान्ति का ताण्डव नृत्य हो रहा था ऐसे समय में शान्ति के कबूतर आकाश में उड़कर नेहरू जी की धरती में शान्ति स्थापित करना चाह रहे थे। कबूतरों की आवश्यकता जंगल को थी आकाश को नहीं। जंगल बेचारा लाचार और कातर होकर उड़ाये गये कबूतरों को देखता रहा लेकिन कबूतर उसे नहीं मिले और वह बहुत विफलता से ग्रसित हो गया

जमीन का जंगल

जमीन में खड़ा रहा

विकल

लाचार

न मिले कबूतर

न हुआ सजीव। [3]

१- गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं॰ १५०

२- वही, पृ.सं॰ १५१

३- वही, पृ.सं॰ १५१

संताप से व्याप्त वातावरण को देखकर कवि दुखी है, फूल रोते हैं नदी क्षुब्ध है। संवेदनात्मक संदृश्य इन पंक्तियों में दृष्टव्य है-

रात में गाऊँ भला मैं कौन से प्रिय गान?

आज तो व्याकुल व्यथित है प्रेम के स्वर तान।

फूल भी रोये, अनिल में व्याप्त है संताप!

स्नेह से प्रेरित सरित की क्षुब्ध है जल धार।[1]

नीम के पेड़ में कवि उदासी देखता है और संवेदना के स्वर में बोल उठता है-

यह उदास-सा नीम खड़ा है मन को बिल्कुल डाले

डाल-डाल की बाँह बिछी है सोते निर्मम छाले

नहीं झूमता एवर-ग्रीन ले लाल कुसुम के प्याले

खड़ा हुआ है जैसे-तैसे अपनी साँस सम्भाले।[2]

विषम वातावरण की मार से जनमानस ही नहीं प्रकृति भी व्यथित है। कवि को प्रकृति से गहरा लगाव है। प्रकृति की वेदना से कवि का हृदय संवेदित होना स्वाभाविक है। कवि दुःखी तो होता है। लेकिन रुदन को मुस्कान मे बदलने का साहस रखता है-

रो रही है आज मिट्टी

फूल की प्रिय पाँत रोती

चन्द्रमा है ओस रोता

मैं हंसा दूंगा दिशाएं।[3]

जब कोई उपेक्षित जन शोषण का शिकार होता है, अभाव से जूझता है, करुण क्रन्दन करता है तब कवि व्यथित होता है और दुखिया के आँसू पी जाने को उद्यत होता है। प्रकृति में संवेदनात्मक चित्र इन पंक्तियों में देखा जा सकता है-

मैंने आंसू सोख लिये हैं

और पिये हैं

१- गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ९२

२- वही, पृ.सं. ९३

३- वही, पृ.सं. १२३

बेला और चम्पा गुलाब के डब-डब आंसू
मौलसिरी के
छल-छल आंसू
जैसे सूरज पी लेता है
हरी घास के लकदक आंसू।[1]

कोमल वसुन्धरा की छाती पर घोर अन्धकार का महाक्रूर प्राणलेवा निशाचर मजबूती के साथ बैठा हुआ है और वह आघात की छुरी भोंक रहा है। पृथ्वी के ऊपर हो रहे ऐसे जघन्य कुकृत्य को देखकर आकाश सहमा और हतप्रभ है। अन्धकार की निष्ठुरता को देख तारागण भी बहुत निराश हैं। ऐसी दयनीय स्थिति में संवेदना के आंसू निकलना स्वाभाविक है-

शस्य श्याम कोमल वसुधा के हृत्प्रदेश पर
महाकार तम का विमूढ़-मति निष्ठुर निश्चर
बैठा दृढ़तर, प्राणहर
करता विषमाघात है!!
कुटिल कृत्य यह देख गगन सहमा हताश है,
तारों का व्यापक-कुटुम्ब चुप है निराश है।
खोई ज्योतित आश है।।
अतिशय दुःख की बात है।[2]

पितृ-गृह पर्वत को छोड़कर गंगा नदी जा रही है। उसके कारूणिक दृश्य से सहृदय जन की क्या बात है पत्थर हृदय भी पिघल रहा है। वह अत्यन्त आकुलता के साथ जब वृक्षों को भेंटती है तब किसका हृदय करूणा से नहीं भर जायेगा। बिछुड़न की पीड़ा किसे नहीं व्यथित करती। प्रकृति जन्य गहन संवेदना का एक हृदय स्पर्शी चित्र दृष्टव्य है।

छुटता है मेरु, गंगा जा रही है
पत्थरों का भी हृदय पिघला रही है।

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ६१

२- जमुन जल तुम, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ५७

पादपो को भेंटती अकुला रही है

गीत मिलनातुर विकल अब गा रही है।[1]

जब सूर्य का प्रकाश धरती छोड़कर विलुप्त हो जाता है तो दुखी भूमि का शोक अन्धकार की तरह उमड़ने लगता है। धरती की इस वेदना से कवि हृदय संवेदित हो उठता है और तब फूट पड़ती हैं कविता की ये पक्तियां-

भूमि छोड़कर

चला गया है सूरज का आलोक

अन्धकार से उमड़ रहा है

खिन्न भूमि का शोक।[2]

कवि ने 'एक भूल' कविता में प्रकृति की दुख जनित स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है।

मूर्छना की धूप फैली है हताहत।

रात को फांसी लगी है,

तारिकाएं मुंह छिपाये रो रही हैं।[3]

तानाशाही कुकृत्य से सामान्य जन ही नहीं प्रकृति को भी कवि विकलावस्था में पाता है।प्रकृति की विकलता को देख संवेदना का स्फुरण होना स्वाभाविक है-

गंगा -यमुना की धाराएं

तानाशाही की गोदी में तडप रही है।

उपजाऊ धरती के अंकुर कुचल गये है,

सुन्दर कलियां, फूल महकते मसल गये है !! [4]

१०. नाम परिगणन के रुप में प्रकृति चित्रण- कवि केदार नाथ अग्रवाल का नाम परिगणन के रुप में भी प्रकृति चित्रण मार्मिक है। 'बसन्ती हवा' नामक कविता की ये

१- जमुन जल तुम, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ८५

२- फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ.सं. ११७

३- कहें केदार खरी-खरी, पृ.सं. २५

४- वही, पृ.सं. १०१

पक्तियां इस सन्दर्भ में दृष्टव्य हैं-

जहां से चली मैं जहां को गयी मैं,

शहर, गांव, बस्ती,

नदी, रेत, निर्जन, हरे खेत, पोखर,

झुलाती चली मैं झुमाती चली मैं,

हवा हूं हवा में बसन्ती हवा हूं।[1]

कवि को अपनी धरती के प्रति अमित प्रेम है। कवि अपना प्रत्येक प्रण मातृभूमि को समर्पण करता है कवि को श्रम और कर्म पर भरोसा है। उसे आशा है कि ऊसर भूमि भी उर्वरा शक्ति पनपायेगी और वह गेहूं, जौ, चावल, चना, और टमाटर, उपजाने में समर्थ हो सकेगी-

कौन फूल है ऐसा मनहर,

नहीं खिलेगा

जो मेरी धरती के उर पर?

ऊसर भी अब होगा उर्वर,

उपजेगा- / गेहूं जौ, चावल, चना, टमाटर,

सोने के सुख का संवत्सर!! [२]

बसन्त के वर्णन में कवि एक पंक्ति में ही अनेक प्रकृति से संबन्धित संज्ञाओं को गिनाता है जो नाम परिगणन के रुप में प्रकृति चित्रण का संदृश्य उपस्थित करता है-

यह बसन्त जो

धूप, हवा, मैदान, खेत, खलिहान, बाग में

निराकार मन्मथ मदान्ध-सा, रात दिवस सांसे लेता है,

जानी अनजानी सुधियों के कितने-कितने संवेदों से सस्वर सरिता,

लता-गुल्प को तरु-पातों को छू लेता है [३]

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २१

२- कहें केदार खरी-खरी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १०१

३- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २२

११. वातावरण सृजन रुप में प्रकृति चित्रण- दिन के तिरोहित होने पर रजनी का आगमन होता है। संध्या के दस्तक देने पर प्रकृति के जिस गंभीर वातावरण की समुपस्थिति कराई है उसे कवि की रात नामक कविता की इन पंक्तियो में देखा जा सकता है-

दिन हिरन-सा चौकड़ी भरता चला,
धूप की चादर सिमट कर खो गयी,
खेत, घर वन गांव का
दर्पण किसी ने तोड़ डाला,
शाम की सोना चिरैया
नीड़ में जा सो गयी,
पेड़ पौधे बुत गये जैसे दिये, [१]

कर्म और श्रम का सूरज जब तमतमाता है तो अन्धकार की सबल सेना हताहत हो जाती है। धरती प्रमुदित हो उठती है। आकाश भी अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करने लगता है। सर्वत्र उल्लास का वातावरण छा जाता है-

हताहत हो गयी
अंधकार की सेना
और अब
सीने से लगाये सूरज का तमगा
सामने खड़ा है दिन
जमीन पर आसमान खुश है
जवान धूप से। [२]

घर के बाहर ही हरे नीम के पेड़ पर संध्या के पहले ही कौवे अपना अड्डा जमा लेते है। सभी कौवे एक साथ मिलकर कर्कश स्वर में कांव-कांव करते है जिससे अशान्ति का वातावरण पैदा हो जाता है ये फटा हुआ वातावरण कवि के मन को प्रभावित करता है और वह बोल उठता है-

---

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ५८

२- आग का आइना, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ८९

घर के बाहर खड़ी नीम की हरियाली पर
बैठे कौए आ कर यहां शाम से पहले
एक साथ ही कांव-कांव करते कर्कश
शान्ति भंग होती है उनके
कोलाहल से
वातावरण फटा रहता है जोर जबर से [1]

विविध फूलों के सुगन्ध को समेटे जब मस्त हवा चलती है तब उल्लास पूर्ण वातावरण का सूजन होता है, देखे ये पक्तियां-

बाग की बहार लिये,
बेला के फूलों का हार लिये,
गीत का सितार और प्यार लिये,
वायु चली झूमती सिंगार किये।[2]

१२. **उपदेशिता रुप में प्रकृति चित्रण-** केन नदी बांदा के पास से होकर बहती है कवि उसी केन के माध्यम से बांदा वासियों को उपदेश परक बात कहता है। वह पुरातनता और रूढ़िवादिया की चट्टानों को तोड़कर वर्तमान के वातावरण में विचरण करते हेतु बांदा वासियों को मुक्त करना चाहता है। पंक्तियां दृष्टव्य है-

केन नदी कहती है मेरा पानी पी लो
'नीलकंठ' से मेरे बांदा वासी जी लो
काटो कल की चट्टानो को, तोड़ो कारा
जल्दी जल्दी वर्तमान की मोड़ो धारा [3]

कवि केन नदी के माध्यम से शिक्षा देना चाहता है कि मनुष्य का वास्तविक अलंकार पुष्प नही है। बल्कि वास्तविक आभूषण जीवन की गतिशीलता है। कवि को प्रसादी जीवन नहीं भाता है, जो श्रम करते हुए जीवन को जीता है वहीं जीवन सार्थक होता है। नदी के

१- फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १७०

२- जमुन जल तुम, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १५१

३- वही, पृ.सं. ९७

द्वारा कवि समाज को प्रेरणा देता है-

पहना कब उसने फूलो का कोई गहना

सीखा कब उसने बन से रानी सा रहना

गहना है उसके जीवन का गति का बहना

सीखा है उसने श्रमधारा बनकर रहना [१]

जो संवेदन शील होता है वह प्रेम और ममता से भरा होता है जिसमें मनुष्यता होती है, वह अपना सब कुछ लुटा कर भी सब के लिए सन्तुष्टि का सूरज उगाता है। करुणा से सराबोर मानव बिलखते मानव के अश्रु पोंछता है। और उसमें जिन्दगी जीने की दृढ़ता पैदा करता है इस है। इस परिप्रेक्ष्य में केन पर लिखी गयी कवि की ये पंक्तियां देखी जा सकती हैं।

उसने पय से प्यार किया है, ममता की है आंसू से भीगे मानव को दृढता दी है।[२] इस प्रकार से कहा जा सकता है कि कवि केदार की कवितायें व्याकरणशास्त्र, छन्द विधान, शिल्प विधान आदि सभी दृष्टियों से पूर्ण खरी उतरती हैं। श्रेष्ठ कविता के समस्त गुण उनकी कविता में विद्यमान हैं। हिन्दी काव्य साहित्य में उनकी कविताओं का विशिष्ट स्थान है।

१- गुलमेहंदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १५१

२- वही, पृ.सं. १५२

अध्याय चतुर्थ

केदारनाथ अग्रवाल का कथा साहित्य

केदार का उपन्यास, कथा साहित्य एवं संस्मरण

साहित्य का मूल लक्ष्य मानव के अन्दर मानवीय संवेदना का विकास कर उसको जीवन-दृष्टि देना होता है, जिसके माध्यम से वह श्रेष्ठ जीवन जी सके तथा मानवोचित आचरण कर सके। राष्ट्र को सुयोग्य नागरिक तैयार कराने का कार्य भी काफी हद तक साहित्यकारों का है।

"अंधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है।
मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है।"

चूँकि मनुष्य प्रकृति की अनुपम जीव रचना है अतः तत्सम्बन्धित साहित्य की ही व्यापक उपयोगिता है। साहित्य चाहे वह गद्य हो, पद्य या कोई अन्य विधा सबकी अपनी उपादेयता है।

उपन्यास हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है, जिसमें कि विपुल मात्रा में साहित्य सृजन किया जा रहा है। केदारनाथ अग्रवाल जी ने भी दो उपन्यासों का सृजन किया है- १- पतिया, २- बैल बाजी मार गये। दोनों उपन्यासों का विवरण निम्न प्रकार है-

पतिया

यह नायिका प्रधान उपन्यास है। जिसमें भारतीय ग्रामीण नारी की त्रासदी, स्थानीय रंगों में रंगकर प्रस्तुत की गयी है। केदार जी ने इसे अपने रचनाकाल के प्रारम्भिक चरण में लिखा था। इसका प्रकाशन वर्ष १९८५ है, इससे यह ज्ञात होता है कि उनके अन्दर एक कवि और समालोचक के साथ-साथ कोमल और प्रगतिशील कथाकार भी है। पतिया एक ग्रामीण बाला की कहानी है, जिसके जन्म लेते ही उसके जीवन पर संकटों का दौर शुरु हो जाता है। तरह-तरह की यातनाओं, कष्टों और अभावों से जूझते हुये उसका जीवन आगे बढ़ता है। जिसका ब्याह बचपन में ही हो जाता है। यौवन का अल्प विकास इसी दोष को इंगित करता है। यहाँ तक उसके किशोरावस्था या यौवन की उमंगों की जरा भी समझ नहीं क्यों कि उसे यह भी याद नहीं कि वह दुल्हन कब बनी थी, वह बातचीत से ही समझ पाती है कि वह पछौंहा गाँव की लड़की व कमासिन गाँव की बहू है। उसके जीवन में अनेक

परिवर्तन आते हैं, वह बिना बताये अपने पति के घर से मायके भाग आती है। क्योंकि ससुराल मे उसे केवल काम करने वाली मशीन समझा जाता है। एक बार वह लखनपुर मेले में जाती है और वहाँ से केवल दो-दो विरोधी भाव वाले खिलौने, चरखा कातती हुयी गुजरिया तथा सिगरेट पीता मूँछ ऐंठता छैल चिकनियाँ लाती है।

जीवन में चलने वाली विधि घटनाओं के मध्य उसकी माँ मर जाती है और माँ को दिये वायदे के अनुसार वह पुनः ससुराल आ जाती है, क्योंकि माँ के मरने के पूर्व उससे इसके लिये कहा था, किन्तु वाह रे जीवन की विडम्बना उसका पति स्वामीदीन भाग गया होता है।

केदार जी के इस उपन्यास 'पतिया' में फणीश्वरनाथ 'रेणु' के मैला-आँचल केक समान गुण-धर्म दिखाई देते हैं। 'पतिया' की सास, जिसका यौवन अब ढल चुका है, इसलिये गाँव का जमींदार ठाकुर रामदीन उसे प्रेम की दृष्टि से देखना छोड़ चुका होता है। उपन्यास में 'पतिया' की ननद मोहनी को एक चंचल युवती के रूप में दर्शाया जाता है। जो कि निठल्ली घूमती रहती है लेकिन अपने यौवन को सम्भाल कर रखती है। इसके विपरीत पतिया घर का पूरा काम करने के बाद दूसरों का चौका बर्तन भी करती है, सास भी पतिया को स्नेह देती है।

केदार जी ने पतिया के माध्यम से भारतीय नारी-जीवन की त्रासदी का वर्णन किया है। पतिया के माध्यम से केदार जी ने भारतीय नारी के उदात्त गुणों का श्रेष्ठ सम्मिलन कराया है। यद्यपि उसका स्वामी एक बिगड़ैल युवक है जो घर में निठल्ला बना रहता है और बाहर जाने पर लड़कियों का धंधा करने लगता है। वह पतिया को भी बेंचने का प्रयास करता है, लेकिन वह मूल्यों से डिगने वाली नारी नहीं है।

पतिया मानवीय मूल्यों के संदर्भ में भारतीय समाज की श्रेष्ठ झाँकी प्रस्तुत करती है। इस उपन्यास के माध्यम से केदार के गहरे मानवीय बोध को परखा जा सकता है। उपन्यास कला की दृष्टि से सभी मूल तत्व विद्यमान हैं। पात्र एवं चरित्र-चित्रण प्रसंगानुकूल है। भाषा की गहरी पैठ इसमें परिलक्षित होती है। भारतीय नारी जीवन पर आधारित यह एक श्रेष्ठ उपन्यास है। गद्य होने के बाद सुन्दर दृश्य चित्र सजीव हो उठे हैं-

"शाम का समय। पश्चिम में दिन ढल रहा था। सुनहला रंग, छाया था। पैर के पास मिट्टी, आस-पास के पेड़ और आसमान सब सुन्दर रंगीन हो गये थे, पतियाँ भी पश्चिम की लाली पर रंग गयी, मैली धोती का रंग निखरकर सुनहला हो गया।[१]

उपन्यास पतिया में कहीं-कहीं सुन्दर दृश्य विधान उपस्थित हुआ है, शब्द संयोजन अत्यन्त सटीक है-

"चूल्हा अपनी जीभ लपलपा कर तवे को चाट रहा था, तवे पर पड़ी रोटी अपने भाग्य को कोस रही थी।"[२]

कहीं-कहीं उपन्यास में श्रंगारिकता के कारण भद्दापन आ गया है, जो पाठकों को खटक सकता है-

"बड़ी-बड़ी आँखों में काजल खिंचा है। दाहिनी ओर गाल पर एक तिल है, चेहरे पर तेल की चिकनाहट जवानी को चमका रही है। कोई कुरता या सलूका नहीं पहने है। माँजते वक्त उसके दोनों उरोज छलक पड़ते हैं।[३]

निष्कर्षतया यह कहा जा सकता है कि पतिया भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व करने वाला एक श्रेष्ठ उपन्यास है। अगर कहीं दुर्बलताएं हैं तो उन्हें मानव के सहज गुण-दोष को दिखाने के लिए बिम्बित किया गया है। साहित्यिक दृष्टि से यह उपन्यास है।

बैल बाजी मार गये

यह केदार जी का अप्रकाशित दुर्लभ अपूर्ण उपन्यास है, जिसका विशिष्ट महत्व प्रतिपादित किया गया है तथा साहित्यिक दृष्टि से इसकी विशेष उपादेयता है।

बिन्दा उस किस्म का आदमी था जो ऊपर उठने की कोशिश मे सदा नीचे गिरता गया, उसका सही कदम विवेक और बुद्धि से न उठ कर बल और बलात्कार से उठता था उसमे सांड की सी ताकत और तूफान की सी हिम्मत थी। काश, वह न्याय और नीति के पथ पर चल पाता तो आदमी बन जाता, दानव न हो पाता, लेकिन गॉव की सामाजिक पृष्ठ

१- पतिया, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. ११

२- वही, पृ.सं. १४

३- वही, पृ.सं. २५

भूमि मे जब तक वह अपना निर्वाह, न्याय और नीति को लेकर, करता रहा तब तक वह अन्याय और अनीति का ही शिकार होता रहा; किसी ने उसकी रक्षा नही की, किसी ने उसका साथ नही दिया। सबने सौ तरह से उसे नुकसान ही पहुँचाया।

अब वह इस समय तीस वर्ष का था, सोलह वर्ष की अवस्था से ही वह छत्त (सीना) तान कर अखाड़िये पहलवान की तरह चलता था। जहाँ पैर रखता वहाँ जमीन जवान हो जाती थी, जहाँ नदी में नहाता, वहाँ पानी शराब हो जाता था। हवा तो उसका शरीर छूकर अलग होना चाहती ही न थी। जब वह खेत में हल चलाता तब खेत की मिट्टी उर्वरा हो जाती थी। उसके हाथ से बोया दाना सोना होकर खेत में चमचमा उठता था। ऐसा लगता था कि जैसे वह बड़ा भाग्य लेकर माँ के पेट से पैदा हुआ है और कभी भी तकलीफ न उठायेगा, मगर गाँव के लोग यह कब देख सकते थे। वह अकारण ही उससे जलते थे और उसे पानी पी-पी कर कोसते थे, न जाने क्यों लोग उसका बुरा ही चाहते थे। वह था कि किसी को सताता नहीं था और न किसी के भाग्य से बुरा मानता था। दूसरे का धन और अनाज छूना उसके लिए पाप था। बहू-बेटियों को ताकना तो वह जानता ही न था। अपनी सीधी राह चलता और जीवन निर्वाह करना उसका परम ध्येय था।

बीस साल का हुआ ही था कि उसका बाप परलोक सिधार गया। घर का सारा भार उसी के मजबूत कंधों पर आ पड़ा। वह परेशान तो जरूर हुआ किन्तु एकनिष्ठ होकर उसने जब अपने घर की, खेतपात की देखभाल शुरू की तब उसकी परेशानी काफूर हो गयी और वह लायक पूत की तरह सारा काम-धाम सम्हालने लगा, लोग सोचते थे कि बाप के मरने पर इस चढ़ी जवानी में वह आवारा और बदचलन हो जायेगा और उसकी सारी मस्ती और हंसी-खुशी मिट्टी में मिल जायेगी, मगर लोगों का यह ख्याल गलत निकला।

वह खेत से गेहूँ-चना की लांक लढ़ी में लाद कर गाता हुआ खरिहान पहुँचता और वहाँ माँड़ और ओसा कर दानों का ढेर लगा देता और साल भर तक सुख-चैन से दिन काटता था, गाय भैंस पाल रखी थीं उसने, खूब सेवा करता था और खुद ही दूध दुहकर उसे सिझा कर भर कटोरा पीता था। क्या मजाल कि कोई नस ढीली पड़ जाये और कंधा झुक जाये या जाँघों का माँस लटक जाये!

तभी भाग्य ने उस पर वार करना शुरू किया। चौबीस वर्ष की आयु में सबसे पहली अशुभ घटना यह कि रातोंरात गाँव वालों ने उसकी गेहूँ-चन की लहलहाती हुई फसल को जानवरों से इस तरह चरा लिया कि जैसे उसके खेत में एक दाना भी न बोया गया हो, भोर होने पर जब वह खेत पर पहुँचा तब उसकी हालत देख कर दिल बैठ गया। फिर उसके भीतर का ज्वालामुखी अग्नि उगनले लगा औरवह इसका बदला लेने के लिए विकल हो उठा, उसने बहुत कोशिश की कि दुष्टों का पता पा ले, किन्तु जब न पा सका तो उसके हृदय में पहली बार दूसरों के खेतों का अनाज उखाड़ने की और दूसरों को मिट्टी में मिला देने की लालसा जगी, तभी से उसकी बुद्धि उसे विपथगामी बनाने लगी, इसी घटना के दूसरे दिन ही तो उसने बीच बाजार में खड़े हो कर गला फाड़ कर कहा था : मैं बजरंगबली की कसम खा कर कहता हूँ कि मेरी फसल चराने वाले को जिन्दा रहने का कोई हक नहीं है, जिसने मुझे मिट्टी में मिला दिया है उस पर ही अब मेरे नये निर्वाह के तरीकों की सारी जिम्मेदारी होगी। मैं बदला लूँगा और उसी बदले के लिए अपना जीवन उद्दण्ड कर लूँगा, ताकि अब फिर मुझे कोई सता न सके।

इसे कहे हुए एक साल भी न बीता था और उसकी कसम के शब्द अब भी हवा में गूँज ही रहे थे कि एक दूसरी घटना घटी जिसने बिन्दा को मथ कर बेकाबू कर डाला और वह निर्दय और कठोर हो गया, न जाने किसने उसके गाय और भैंस को ज़हर खिला दिया और वह मर गयीं, दोनों एक साथ एक ही दिन चल बसीं, बेचारा बिन्दा उसनकी लाशों के पास बैठा उसी तरह रो रहा था जैस माँ के मरने पर लड़का रोये। उसको रोते देख कर ऐसा मालूम होता था कि कोई पहाड़ पानी होकर रो रहा है, घंटों डूबी नाव-सा शोकमग्न बना रहा, अन्त में दोनों लाशों के सामने दाँत भींच कर किटकिटा कर बोला :तुम्हारे दूध की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं इस जघन्य अपराध का बदला किसी भी रोज ही तमाम गाँव के लोगों से लूँगा, मेरे पास पैसा नहीं है कि उसके बल पर सबाको चकरघिन्नी खिलाकर जेरबार कर सकूँ, किन्तु मेरे हाथों में बल तो है और सीने में आग तो है। मैं स्वयं दण्ड दूँगा और लोगों को मजा चखाऊँगा कि देखो अपने पशुओं की अकाल मृत्यु कर क्या आघात होता है फिर चमार (दलित) को बुलावा कर दोनों लाशें उठा ले जाने को कह कर पैरों से

गाँव की मिट्टी को मसलता हुआ अपने घर चला गया।

इसके बाद उसके चेहरे पर कठोरता आ गयी और तन और मन दोनों की हँसी गायब हो गयी, उसे यह अच्छी तरह महसूस हो गया कि उसके जीने के लिए अब केवल एक ही रास्ता रह गया है और वह यह है कि अपने बल और पौरुष के द्वारा ही अन्याय का बदला अन्याय से ले और किसी एक से नहीं, उन सब लोगों से ले जो ऐसे अन्याय के समर्थक और मौन दर्शक हैं और जो उसे परास्त होते देखकर मन-ही-मन प्रसन्न होते हैं।

उसने अपने खेत बटाई पर उठा दिये, दोनों बैलों को बेच डाला, बटाई से मिले गल्ले से ही अपना पेट भरने लगा।

ताकतबर तो था ही, उस अपनी ताकत को पुलिस के सहयोग से उसने और महत्वपूर्ण बनाने की ठाल नही, वह थाने का अंग बन गया, उसने दारोगा को मुट्ठी में ले लिया, आपराधियों को मिलाकर-उनसे घूस दिला कर और उल्टी-सीधी तरकीबों से झूठे गवाहों की जमात खड़ी कर ली, दारोगा ने भी उसको प्रोत्साहित किया और उसका साथ पाकर वह मनमानी लूट-खसोट करने पर उतारू हो गया। दरोगा का ख्याल था कि राज-काज बिना गुंडों की मदद से नहीं चलता, अभी तक जो भी सहयोगी थे वे सब दब्बू और कमजोर किस्म के थे। बिन्दा वाकई में दारोगा के हाथ की टामीगन-सा बन गया।

गाँव के बड़े खतिहर छोटी जाति वालों से बेगार लेते थे। बिन्दा ने बेगार में पकड़े जाने वालों का साथ दिया और उनसे बेगार लेने वालों के खिलाफ रपटें कराईं। गवाहों में अपने बस के आदमियों का नाम लिखाया। इसका असर यह हुआ कि खेतिहरों के खेत जुत न पाने लगे और घोर असन्तोष फैल गया। उसके जवाब में जब खेतिहरों ने अपने चमारों और अहीरों को गाली गुल्ला दिया या मारा-धमकाया तब उनकी ओर से बिन्दा ने नाजायज मजमा कायम करा कर तरह-तरह से उद्यम कराये। उसने इस बात को चमारो और अहीरों के हृदय में खूब अच्छी तरह भर दिया कि कर्जे की वसूली के डर से वे लोग काम पर न जायें। अगर उनके ऊपर कोई कर्जा किसी का है तो वह अदालत के जरिये वसूल करें। इसका असर इतना पड़ा कि बिन्दा के मारे गाँव के लोगों का जीवन निर्वाह करना दूभर हो गया। बिन्दा जब किसी को सिर पर हाथ धरे परेशान देखता तो उसके पास से, हाथ में

पोलहायी लाठी लिये, दो चार के साथ, इतराता हुआ निकल जाता और बेहद खुश होता कि उसका प्रतिशोध-यज्ञ पूरा हो रहा है।

बेगार के कई चालानी मुकदमें चले। उनमें से कई में वह गवाही भी बोला, कइयों को जुरमाना हुआ और उसकी साध पूरी हुई।

इस सबका परिणाम यह हुआ कि गाँव में दो पार्टियाँ बन गयीं। एक में वे लोग थे जो बिन्दा की हरकतों से आजिज आ गये थे। दूसरी में बिन्दा था और उसके साथ के वे सब थे जो गाँव में दिन-प्रतिदिन कदम-कदम पर सताये जाते थे। पहली पार्टी को अपने एका का भरोसा था। दूसरी पार्टी को यानी बिन्दा को थाने के सब सिपाहियों का और सबसे ज्यादा वहाँ की उस कलम का भरोसा था जो स्याह को सफेद और सफेद को स्याह करने में सदा से अपराजित रही हैं और सदा ही अपराजित रहेगी।

अतएव वहीं हरकतें होने लगीं जो बिन्दा के साथ हुई थीं। लोगों के खेत उखड़ने लगे। खलिहानों से गल्ला चोरी जाने लगा, लोगों के जानवर फाटक में बेड़े जाने लगे और गायब किये जाने लगे। रामनाथ भी बिन्दा की विरोधी पार्टी में थे, अतएव उनके साथ भी वही होने लगा और वह भी चिन्तित रहने लगे। पैसे वाले थे इसलिये रामनाथ ने दो-चार मुकदमें भी इस्तगासा देकर चलाये परन्तु महीनों दौड़-धूप क बाद वह भी खारिज हो गये और तब तो उनकी नाक नीची हो गयी और वे खिसिया कर बिन्दा की जान के पीछे पड़ गये। एकाध बार यह भी सुना गया कि उन्होंने किरायो के कातिल बुला कर बिन्दा को मरवा डालना चाहा। लकिन दारोगा साब की मेहरबानी से वे कातिल अपराध होने से पूर्व ही पकड़ लिये गये और हत्याकांड न हो सका। परन्तु रामनाथ ने इसे ऐसी खामोशी से सम्पन्न कराया था कि उनका नाम तक जाहिर न होने पाया। वह परदे के पीछे छिपे रह गये थे।

किराये के कातिलों के पकड़े जाने पर बिन्दा की रामनाथ से जानी दुश्मनी हो गयी। अब तो वह इस पर उतर आया था कि अपने सहयोगियों को लेकर वह रामनाथ के खेत का गल्ला खड़े-खड़े कटा लेता था और उनके जानवरों को जानबूझकर चुरवा लेता िा।

यह बात नहीं है कि रामनाथ ने दारोगा के खिलाफ पुलिस कप्तान से शिकायत न की हो। ऐसा उन्होंने स्वयं जा कर किया और जब न जा सके तब पत्र भी भेजे। लेकिन

दारोगा इतना खुर्राट था कि पुलिस कप्तान उसका कुछ नहीं कर पाता था। अखिर बेचारा पुलिस कप्तान करता भी क्या खिलाफ जब उस दारोगा से उसे तरह-तरह के लाभ होते रहते थे। वह रामनाथ की सुन लेता था और जांच करा कर सर्किल इन्स्पेक्टर के खिलाफ रिपोर्ट आने पर रामनाथ को उल्टा डाँट पिलाता था। बात यह थी कि सर्किल इन्स्पेटर खुद ही दारोगा के अनेकों एहसानों से दबा रहता था।

यह सब दो-तीन साल तक बराबर होता रहा। इससे रामनाथ की तथा उनकी पार्टी की ताकत कमजोर पड़ गयी और उन सब की यह दशा हो गयी कि वे फिर आफत को चुप-चुप बरदाश्त करने लगे और चुप-चुप बिन्दा के विरुद्ध अपमान की साजिशें करने लगे। बिन्दा की प्रतिशोध की भावना इतनी तीव्र थी कि वह किसी प्रकार कम न हा सकीं और वह इस दशा में पहुँच चुका था कि अब उसे कोई मटियामेट नहीं कर सकता था। वह तो पहले ही मिट चुका था। अब उसके पास कुछ बचा ही क्या था कि उसका अपहरण कर उसे और मेटा जा सकें।

इसके बाद फौरन ही एम.एल.ए. के चुनाव की चर्चा छिड़ गई। रामनाथ को दूर की सूझी। वे एम.एल.ए. का चुनाव लड़ने के लिए तत्पर हो गये। उन्होंने गाँव-गाँव दौड़ कर जाति-विरादरी वालों को समझाया-बुझाया। उनका सहयोग प्राप्त कर पूरी तरह रुपया लगा कर जीतने का स्वपन देखने लगे। उनके मन में तो यह था ही कि जीतने के बाद वह अपना असर बढ़ा कर तब बिन्दा को मिट्टी में मिला देंगे। सिवाय इसके कोई दूसरा उपाय उन्हें नजर नहीं आया। अतएव उन्होंने अपनी सारी शक्ति इसी ओर केन्द्रित कर दी। बिन्दा को यह सब मालुम तो हुआ पर उसकी शक्ति सीमित थी और व्रह इस लायक भी नहीं था कि रामनाथ के चुनाव जीतने के प्रयत्न विफल कर देता। उसका क्षेत्र तो खुद का गाँव था। गाँव के बाहर बिन्दा का कुछ भी प्रभाव न था।

अतएव पैसे के बल पर और बिरादरी के लोगों के सहयोग से रामनाथ चुनाव जीत सके और अब शहर में किराये का मकान लेकर वहाँ से बिन्दा के तथा उसके सहयोगियों के खिलाफ योजना बना कर उनको रसातल पहुँचाने का स्वप्न देखने लगे थे।

बैल बाजी मार ले गए। उनकी बन आयी। उन्हें जीवित रहने, कमाने-खाने, और

सोना पैदा करने का पाँच साल का अवसर और मिल गया, जो मैल और मिट्टी इधर कई बरसों से उनके धवल अंगों पर जम गई थी और जिससे वह अपना स्वभाविक रंग रूप खो बैठे थे जीत की इस नयी खुशी में वह मैल और मिट्टी बात-की-बात में झर गई, जैसे कभी रही ही न हो। गँदले बैल उजले हो गए, बैलों पर दूध की सफेदी, बर्फ और चाँदी की सफेदी, और खद्दर क थान की सफेदी अतनी अधिक चढ़ गई कि वे अपनी कीर्ति की सफेदी में बगुलों को मात करने लगे।

रामनाथ काँग्रेसी हैं; पढ़े-लिखे नामचार को हैं, लेकिन किसी योग्य न होकर भी जेल जाकर पूरे योग्य सिद्ध हो चुके हैं, और इसीलिए, हाँ, इसीलिए इस योग्यता के पुरस्कार में उन्हें चुनाव लड़ने का "काँगरेसी" टिकट मिला और वह भी इस शान के साथ कि पढ़े-लिखे, समझदार, और होनहार उम्मेदवारों को उनके मुकाबले में टिकट न मिल सकने के कारण तरसते रह जाना पड़ा।

उनके विरोध में बरगद खड़ा हुआ, दीपक जला और जगमगाया, सूरज प्रकाशमान हुआ, और हँसिया और गेहूँ की बालें मैदान में उतर पड़ी। एक साथ इतने दुश्मन देख कर रामनाथ घबराये। उनका हिसाब छुटने लगा। उन्हें ऐसा लगा जैसे कि वे न जीतेंगे। बड़ी भाग-दौड़ होने लगी। तार-पर-तार जाने लगे। चुनाव के पंडितों की नींद हराम हो गई। एक नहीं, कई कई मंत्री आये; गाँव गाँव दौड़ने लगे; गाँधी जी के नाम पर उनके लिए वोटों की भीख माँगने लगे। इस करतब के आगे किसी का कुछ करतब न चला दुश्मन बकते रह गए, हो-हल्ला मचाते रह गए, जमीन आसमान एक करते रह गए, और मोरचों पर अलग-अलग नाकाबंदी करते रह गए लेकिन रामनाथ जीते और कई हजार वोटों से जीते, हालाँकि उनके बक्से में कम-से-कम और विरोधियों के बक्सों में ज्यादा-से-ज्यादा वोट पड़े। क्या हुआ, कैसे हुआ, कोई कुछ न कह सका। जादू हुआ, अचरज हुआ, कोई कुछ न जान सका। गाँधी जी के पुण्य प्रताप से कम वोट भी ज्यादा हो गए। रामनाथ के बक्से भर गए और दूसरों के, दुश्मनों के, खाली हो गए, किसी ने कहाः दगा हुई-किसी ने कहाः गड़बड़ हुई। किसी ने कहाः बेईमानी हुई। किसी ने कहाः सील तोड़े बिना ही वोट निकाल लिए गए, बड़ा बावेला चमा, पैर की धरती काँप गई। सिर का आसमान डोल गया। रामनाथ ने कहाः नहीं,

ऐसा नहीं हुआ; सौ फीसदी ईमानदारी हुई है; बैल की जीत गाँधी जी की जीत है; गाँधी जी की जीत कांग्रेस की जीत है; कांग्रेस की जीत मंत्रियों की जीत है; मंत्रियों की जीत देश की जीत है; देश की जीत जनता की जीत है; जनता की जीत मेरी जीत है; और मेरी जीत सत्य, अहिसां के परमधर्म की जीत है-

अफसरों ने कहाः चलो, अच्छा हुआ, नेकनामी हुई-

ऊपर के मंत्रियों ने सुना, कहाः कांग्रेस अमर है।

सबेरे ही सबेरे लोगों का ताँता लग गया, बहुमुखी धराएं समुद्र से मिलने दौड़ पड़ी, भारी-भरकम सेठ आये। मोटे तोंदियल साहूकार आये। बड़े-बड़े चोरबजारी आये। महाजन और मुनीम आये। सटोरिये और जुआरी आये। बनिये और दल्लाल आये। चुगुलखोर और हरामखोर आये। हाकिम और हुक्काम आये। एस.पी. और कलेक्टर आये। लाँच-घूस पर जीने वाले बहुत बहुत इंसान आये, सबने अपने ढंग से बधाई दी। रामनाथ ने सब की बधाई बड़ी कृतज्ञता से स्वीकार की।

इस मेल-मिलाप में और बधाई के तारतम्य में कांग्रेसी शासन की रूप-रेखा बन चली। ऐसा स्पष्ट हो गया कि अब कांग्रेस के भाग्यविधाता पूँजीपति, मुनाफाखोर, सूदखोर और प्रातिक्रिंयावादी होंगे; वही एम.एल.ए. के हाथ-पैर, दिल और दिमाग बनकर स्वार्थनीति से देश की राजनीति चलायेंगे; और जो न होना चाहिए वह होगा और जो होना चाहिए व न होगा।

हाँ, इस मेल-मिलाप में, बधाई के तारतम्य में, ईमान की कमाई खाने वाले, मर-खप कर जीने वाले, पहरों मेहनत करने वाले, महँगाई से भरे रहने वाले, और झूठ को झूठ और सच को सच कहने वाले एक मिनट को भी शामिल नहीं हुए।

रामनाथ की नाक ऊँची हो गई। बैल की जीत ने हारी कांग्रेस को सहारा देकर जमीन से उठा कर खड़ा कर दिया। जिस झण्डे को शहीदों ने हाथ पकड़ कर स्वाधीनता की लड़ाई शुरू की थी और अंग्रेजों के जमाने में जिस झण्डे के लिए फाँसी पर झूल गये थे, हाँ, उसी झण्डे के लिए, जिसे सत्य-अहिंसा के पुजारियों ने शहीदों की विरासत में करोड़ों की जान के रूप में पाया था, और जिस झण्डे की शान में महान शासनाधिकारी अंग्रेज प्रभु

भारत छोड़ कर चले गये थे, हाँ, उसी झण्डे के लिए, जिसकी क्रांतिकारी परम्परा सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन का यप ग्रहण करती हुई भारत भू- को दो खण्डों में विभाजित करा सकने में समर्थ हो सकी और जो सर्वशक्तिशाली हो कर भी चोरबजारी, रिश्वतखोरी, अपहरण और अत्याचार का सर्वनाश नहीं सकी, और जो अब अन्न अकाल और हाहाकार की परम्परा बनाती जा रही है, यह जीत ऊँचा लहराने का कारण बन गई। नगर का बदनाम काँग्रसी वातावरण दानवी से एकदम दैवी बन गया। जनता का विरोधी स्वर इस अप्रत्याशित हार के मारे निर्बल और नपुसंक हो गया। लोगों में मुँह खोलने की ताब आई थी, इस हार ने वह ताब भी हर ली। आलोचना का शस्त्र बेकार हो गया। चलते-फिरते, उठते-बैठते, यहाँ-वहाँ, जहाँ भी मौका हुआ, कितनी नहीं खरी-खरी बातें कांग्रेस के विरुद्ध कही गई, किन्तु आज वे बातें महत्वहीन हो गईं-मुरदा हो गई। दिन में, धूप में, हवा में, और रात के सूनसान में हतोत्साह और उदासी अत्यधिक मात्रा में समा गई। केवल राह चलता बैल ही हुँकारता, सींग दिखाता नजर आने लगा। अधिकांश स्वार्थी परोपकार की कामना से ही रामनाथ के शुभ-चिंतक बन गये।

गोपाल इस अनहोनी से हिल गया। उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व एक बार इसी निराश जन-समुद्र में डूब गया, जैसे तमाम दिन चमकने वाला सूरज शाम को निष्प्रभ होकर जलमग्न हो जाये। वह स्वयं चुनाव नहीं लड़ा था कि चुनाव की हार-जीत उसके लिए कोई व्यक्तिगत महत्ता रखती। न उसने यह ही आशा की थी कि चुनाव के बाद कांग्रेस के हारते ही, वह कोई महापद प्राप्त कर लगा। किन्तु इस पर भी उसने इस जीत की देश के हित में अच्छा नहीं समझा। वह अभी नया खिलाड़ी था और पुराने खिलाड़ियों की तरह धक्का बरदाश्त नहीं कर सकता। वह तिलमिला उठा। प्रत्येक मिनट वह चोट खाये हुए शेर की तरह तड़प रहा था। कमरे में बैठा इसी हार-जीत पर सोच-विचार कर रहा था कि उसके साथी गनेश ने वहाँ पहुँच कर पुकारा, गोपाल! क्या कर रहे हो शाम हो गई है-टहलने चाहते हो?

गोपाल कमरे की बंद हवा से मैदान की हवा में टहल कर विचार-विनिमय करना चाहता था। इस हेतु वह तैयार हो गया और बोला, चलो, आज तुमसे गम्भीर बात करना

है; आशा है कि तुम निष्पक्ष भाव से मेरे साथ तर्क-वितर्क करोगे।

दोनों एक साथ नदी की तरफ चल दिये। घर से निकलते ही गोपाल ने चुनाव चर्चा छेड़ दी।

"जानते हो इस जीत का क्या मतलब है?"

"ऊहूँ!"

"क्या ? इतनी बड़ी घटना हो गई और कहते हो ऊहूँ"

"क्या कहा कि घटना हो गई? अरे यार ऐक्सोडेन्ट क्यों नहीं कहते?"

"सच कहते ही दोस्त! इस बार कांग्रेस की जीत देश के लिए एक बड़ी भारी दुर्घटना हो गई है-वह बड़ी-बड़ी रेल की दुर्घटना से भी बहुत बड़ी है! मुझे तो मर्मान्तक दुःख हुआ है!"

"तुम भी गोपाल! अजीब दिमाग के आदमी हो, आखिर इस हार-जीत से ऐसा घबराने की बात क्या है? अरे, एक-न-एक व्यक्ति तो हारता ही है। ऐसी घटनाएँ हमारे-तुम्हारे लिए अधिक महत्व नहीं रखती। हमें तो यों ही सदा पिसना है-कोई राजा ही, कोई जोगी, हमें तो मध्यमवर्ग की घुटन में ही घुटना है।"

"तुम तो इतने उदासीन हो कर बात कर रहे हो जैसे वीतराग संन्यासी हो गये हो? उधर तो चुनाव को अत्यंत दुखद दुर्घटना कहते हो और इधर उसके प्रभाव से ही भी अछूते रहना चाहते हो। यह कैसे सम्भव हो सकता है! क्या तुम समझते हो कि इस दुर्घटना से तुम घायल नहीं हुए हो? क्या जब हाथ, पैर सिर या रीढ़ की हड्डी हीं टूटती है तभी खून निकलता है और दुर्घटना होती है? क्य लोगों का रोटी-रोजी के लिए पागल कुत्तों की तरह घूमना यह बड़ी से बड़ी दुर्घटना नहीं है? क्या इस सम्स्या का जनवादी तरीके से निकारकरण नहीं होगा? यह स्वयं एक बहुत बड़ी दुर्घटना नहीं है? इसके पहिले कि तुम कुछ कहा करो सोच तो लिया करो। क्या खूब कहते हो कि कोई राजा हो, कोई जोगी हो, हमें तो मध्यमवर्ग की घुटने में ही घुटना है? यह कायरों की बात है। यह निष्क्रिय दार्शनिकों का सिद्धांत है। यह गुलामों की संतुष्टि है। यह जीवन दर्शन नहीं है। मैं इससे बुरी तरह से आहत हो गया हूँ। ऐसा लगत है जैसे किसी ने दौड़कर आग बुझाने वाले के पैर पकड़ लिए

हैं, किसी ने नये उगते हुए सूरज को निगल लिया है, और किसी न इस धरती को सर्वनाश में बंद कर दिया है।"

"लेकिन किया क्या जाय? मुरदे की गाड़ी घसीटना है घसीटे जाओ। उफ करन से कोई छू मंतर तो न हो जायेगा कि देश की राजनीति बदल जायेगी, खुशहाली हो जायेगी, और सार्वजनिक कल्याण फलने-फूलने लगेगा। तुम क्या कर सकते हो? मैं क्या कर सकता हूँ? बकार खिझलाने और खून सुखाने स लाभ? हमें तो दर्शक की तरह, होने वाले नाटक को, देखते रहना है।"

"लाभ? तुम नहीं जानते गनेश, इस खिझलाने और खून सुखाने से कितना लाभ है। क्या अपने अमर शहीदों की कुरवानी से हमें नवजीवन नहीं दिया? क्या उन शहीदों की अस्थियों ने हमारी इन हड्डियों को फौलाद नहीं बनाया? क्या उनकी बदौलत हमारे किसान-भाई आज खेतों को अपनी सम्पत्ति नहीं समझने लगे और क्या आज हमारे मजूर भाई कारखानों को अपने कारखाने नहीं समझने लगे? यही लाभ है कि हम जीना चाहते हैं, खुलकर हँसना चाहते है; अंगुलियों से सितार बजाना चाहते है; हाथो से बड़े-बड़े सुन्दर भवन बनाना चाहते है; औश्र धरती का आँचल सहस्रदल कम की भाँति सुख, सुषमा, और पराग से भरना चाहते हैं। क्या तुम इस लाभ को लाभ नहीं समझते? इस लाभ की कल्पना करो। गनेश, नहीं, नहीं, इसकी गहरी अनुभूति करो, तब तुम भी मेरी ही तरह परेशान हो उठोगे और दर्शक की तरह हार-जीत का यह नाटक देखना भूल जाओगे.......तब....तब तुम मेरी ही तरह तिलमिला उठोगे और इस हार की समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगोगे। समझ्ते हो न!"

"तुम ठीक कहते हो! यह तुम्हारी ही नहीं करोड़ों की दशा है। करोड़ों की इस समस्या को लेकर ही चुनाव की लड़ाई लड़ी गई थी, कांग्रेस हारती तो भ्रष्टाचार हारता, शोषण हारता, दण्ड और दमन हारता, अभिशाप की सेना हारती, और अन्न काल और बेकारी हारती। किन्तु कांग्रेस जीती ओर ये सब जीते। सच कहता हूँ, दोस्त, यह बेसुध रहने का समय नहीं है। माना कि बेसुध रह कर तुम दिन प्रतिदिन कल की तरह, परसों की तरह, और न जाने कितने दिनों की तरह अपने इस अनुपयोगी कब्रिस्तानी जीवन को लकर

अभी कई वर्षों तक निरंतर घसिटते रह सकते हो; लेकिन सचेत रह कर तुम दिन-प्रतिदिन अभिशापों के विरुद्ध घनघोर संघर्ष करते रह कर, सुन्दर भविष्य के हँसते-खिलखिलाते गीत गाते एक से एक रगीन दिनों को अवतरित कर सकते हो और शान से सूरज की तरह चमकते-जागते अनको वर्षो जी सकते हो-न ग्राम होगा; न गम का नाम होगा; बुढ़ापे में भी जवान लगोंगे; और तुम्हारी हर साँस का अपने देश के लिए बहुत मूल्य होगा।"

"मित्र! तुम्हारे शब्दों में हजारों हाथियों का बल है किन्तु अभाग्यवश मैं क्या सारा देश उस बल को अपनाने में असमर्थ हैं। हमने जन्म से लेकर आज तक मूर्छित और हताश रह कर जीना सीखा है; भला फिर कैसे हम तुम्हारे जीवन-दर्शन को ग्रहण कर सकते हैं। यह कठिनाई तुम्हारे शब्दों से न हटेगी, तुम्हारे चीखने-चिल्लाने से न हटेगी वरना पहले भी महापुरुष बहुत चीखें -चिल्लाये हैं और सदियों जनता के हित के लिए कुरबान होते चले आये हैं और अब तक हमारे देश से क्या समस्त विश्व से सब तरह की बुराई हट गई होती और हम में से हरेक समझदार भलामानुस, ईमानदार, और दुनिया को स्वर्ग बनाने वाला इंसान होता। लेकिन हमने देखा, इंसान ऊपर उठने के बजाय नीचे गिरता चला जाता है। मुझे तो विश्वास नहीं है कि इस तरह के चुनाव से कुछ भी नतीजा निकलेगा। सच पूछों तो यह मनुष्य के, अपने स्वार्थों की लड़ाई में, कामयाब होने का स्वांग है; चुनाव नहीं, चुनाव बहाने उसकी ओट में अपना प्रभुत्व जमाने का आधुनिक तरीका है।"

"ऐसा न कहो गनेश! तुम तो आज शून्यवादियों की तरह बात कर रहे हो! आखिर तुम्हें हो क्या गया है? ऐसी बहस मैंने तुमसे कभी न सुनी थी। मुझे तो आश्चर्य हो रहा है। तुमने तो मानव-विकास की युगों की सुन्दर-से-सुन्दर परम्पराओं को एकदम समूल नष्ट कर दिया, जैसे अब तक मनुष्य ने जो सोचा-चमझा, किया-कराया, खोजा-बनाया और प्राप्त किया, वह सब मिट्टी में मिल गया। यह बड़ी ही खतरनाक मनोदशा है-अच्छा हुआ कि चुनाव चर्चा के सम्बन्ध में तुमने यह व्यक्त कर दिया। अब मैं तुम्हे सम्हालने का प्रयास करूँगा।"

"मैंने जो कुछ कहा है वह दुनिया देखकर कहा है। मैंने देखा है "राम राम" के कहने वालों के रावण जैसे काम होते हैं। मैंने देखा है मीठी चासनी चढ़ी बात कातने वालों को पीठ

पीछे छूरी भोंकते। मैंने देखा है बंदरों को चना खिलाकर स्वर्ग जाने वालों को चौराहों पर मरते हुए मनुष्यों की उपेक्षा करते हुए। मैंने देखा है संस्कृत और सभ्यता के नाम पर सभाओं में मर मिटने वालों को उससे बाहर आकर संस्कृति और सभ्यता की चमड़ी उधेड़ते हुए। क्या कहते हो यार! बहुत सुन चुका, बहुत गुन चुका। अब रहने दो। ऊब गया हूँ इस बहुरूपियेन से !"

"गनेश ! तुम दया के पात्र हो, मेरी घृणा के पात्र नहीं। ऐसा न समझो कि तुम्हें आदर से नहीं देखता, मेरे कहने का केवल यही उद्देश्य है कि तुम पर वस्तु-जगत की परिस्थितियों की प्रक्रिया ठीक नहीं हुई। तुम्हीं क्या, करोड़ों इसांन इसी तरह सोचते-समझते जीते-मरते हैं। जब आदमी प्रयास करने पर भी मुक्त न होकर बार-बार आफतों में जकड़ने लगता है और जब बार-बार एक आफत के बजाय उस पर सौ आफतें और गिरती हैं तब बेचारा आदमी, हाँ, निस्सहाय आदमी, चाहे वह पहले कितना ही कर्मठ और आशावादी क्यों न रहा हो, अपने पूर्वार्जित विकास पर, अपनी समस्त परम्परा पर आस्था रखना छोड़ देता है और वह सबसे बड़ा शून्यवादी हो जाता है। ठीक यही हालत तुम्हारी हैं। तुम कितनी बार नहीं दिन में घात-प्रतिघात सहते; तुम कितनी बार नहीं घर और बाहर मर्महत होते, उन्हीं अपनों से जिन्हें तुम अपना समझते हो, जिन्हें तुम अपना पड़ोसी समझते हो, जिन्हें तुम दुख-दर्द का उपचारक समझते हो और जिन्हें तुम देवता और धर्मात्मा समझते हो। तब क्यों न तुम और करोड़ों इंसान एक ही प्रकार से सोचें। गलती तुम्हारी नहीं वह मनुष्य के ज्ञान की गलती थी जो तुमने भी विरासत में पाई और जिसके सहारे तुम अँधेरे में ही टटोलते रह गये। बुरा न मानना, मैं कोई अपने पूर्वजों की और पूज्य महापुरुषों की बुराई नहीं कर रहा। एक सत्य का उल्लेख कर रहा हूँ। वह बड़ी लगन के सत्य के अन्वेषक थे और सत्य की खोज में आजीवन तपस्या कर सकते थे किन्तु उनकी दृष्टि आकाश के 'चिर सत्य' की ओर थी, इस संसारी जीवन के सत्य की ओर नहीं कि वह सामाजिक शोषण का निदान समाज से ही खोज निकालते, आकाश के तारे तोड़ कर नहीं. मैं फिर कहता हूँ कि मैं उन्हें दोष नहीं देता. उनकी उस युग में, अपनी असमर्थताएं थीं. वह रास्ते पर चले और उन्होंने समझा उसी पर चल कर कल्याण होगा. अतएव वह उसी पथ पर

चलते गये और यहाँ तक चले कि धरती और धरती की तपस्या दूर छूट गई. किन्तु उनके युग में उनके वे अन्वेषण भी मनुष्य जाति को जीने के लिए प्रेरित करने में समर्थ हुए क्यों कि भौतिक जीवन इतना जटिल नहीं था और संघर्ष का यह वर्तमान रूप न था. मैं कहता हूँ गनेश! तुम्हें इस तरह का सोचना छोड़ना पड़ेगा! मेरी तुमसे यही प्रार्थना है."

"तब क्या सबके पीछे डंडा लेकर दौड़ूँ और सबके सिर फोड़ दूं? क्या यही कहते हो?"

"नहीं, कदापि नहीं. सिर तोड़ना कभी नहीं कहता. न यह तुम कर सकते हो, न मैं कर सकता हूँ. मैं तो तुमसे एक मित्र के नाते प्रेम से यह आग्रह करता हूँ कि जो हो रहा है उसे सही रूप में सोचो-समझो और असत्य का पर्दाफाश करो. बस इतनी ही, केवल इतनी ही, मेरी विनम्र प्रार्थना है।"

"तो तुम्हीं बताओ कि चुनाव की हार-जीत का ऐसा कौन सा महत्व है जो हमें समझना चाहिए. मैं तो जिस दृष्टि से उसे देखता था वह कह चुका. अब तुम अपना सही दृष्टिकोण बताओ."

"काँग्रेस की जीत से कई नतीजे निकलते हैं।"

"पहला तो यही है कि लोगों की आस्था उसी पर है, और किसी अन्य पार्टी पर नहीं", बीच में ही गनेश बोल उठा.

"यदि आस्था कहते हो तो मैं कहूँगा कि वह आस्था काँग्रेस के काम के कारण नहीं, गाँधी के नाम के कारण हो सकती है. लेकिन मैंने तो लोगों में काँग्रेस के प्रति आस्था नहीं देखी इसलिए मैं आस्था नहीं कह सकता. हाँ, काँग्रेस की सरकार थी और उसके पास गाँव-गाँव से लेकर बड़े से बड़े शहर तक में वोट की सहस्रों मछलियाँ मार लाने वाले बड़े सयाने जालिये मछुवाहे थे जिन्होंने नादान, अशिक्षित, भोली-भाली मीनों को ऐशो आराम के काल्पनिक जलाशयों में तैरते रहने का स्वप्न दिखाकर अपने वश में कर लिया था. मछलियाँ अपनी ताकत को नहीं पहचानती थीं. न उन मछलियों का कोई अपना रखवाला था जो उनके हित की बात रह मछली को बताता! बेचारी मछलियाँ अहिंसक मशहूर जालियों के फंदों में फँस गईं. दूसरों से वह अपरिचित थीं और उनके बारे में जालियों ने न

जाने कितनी-कितनी क्रूर कहानियाँ प्रचलित कर दी थीं. मेरी राय में तो कांग्रेस की जीत का यही मुख्य कारण है.''

''यह तो तुमने देश भर की बात कह डाली. अरे, रामनाथ की जीत ने तो तुम्हें विचलित कर रक्खा है उसके विषय में कहो.''

''गनेश! मुझे उसके बारे में भी तुम्हें कुछ बताना पड़ेगा. तुम स्वयं समझते-बूझते हो क्या तुमने देखा नहीं अपनी ही इन आँखों से कि वोटर किन-किन भूलभुलैयों से नहीं घुमाया गया और किन किन तरकीबों से नहीं चकराया गया. उसे कंन्ट्रोल के पुराने व्यापारियों ने जो अब लाखों रुपया कमा कर धन दौलत के मालिक बन बैठे हैं उसे पुलिस के खैरख्वाहों ने जो रात दिन जुआ खेलाना जानते हैं और डाकुओं और चोरों को पनाह देते हैं, उसे गाँव के पटवारियों ने जो कम तनख्वाह में बड़ी-से-बड़ी तनख्वाहों के अफसरों को भी पीछे पछाड़ देते हैं उसे पंचों-सरपंचों ने, जो चमारों और गरीबों को अपने खेत जुतवाने के लिए और जानवर चराने के लिए लाठी के हूदे के नीचे ही जन्म-जन्मान्तर तक दबा रखना चाहते हैं, अर्थात हरेक ने बैल के बकसे में वोट डालने के लिए विवश किया था. तब जाकर बैल जीता है. मुसलमानों की चिट्ठी-पत्री रोज सेंसर होती थी. हर मुसलमान पर पाकिस्तान का एजेन्ट करार दिये जाने का भय सवार था. उन्होंने इसी दबाव से काँग्रेस को वोट दिया! यह क्या कोई भूल सकता है!''

''फिर शिकायत क्या है? जब हमने खुद ही अपनी पसंद का मूरख बैल पसन्द किया है तब हमें क्षोभ क्यों है? अब तक कोई व्यक्ति किसी तरह की शिकायत करे तो कह देना कि तुम्हीं ने तो यह नौबत बुलाई है. हम क्या करें, भुगतो!''

''लेकिन भाई! इस कह देने से देश की समस्याएं हल न हो जायेंगी. रामनाथ के चुनाव से और देश की समस्याओं से एक अत्यंत निकट का पारस्परिक संबंध है जिसके अच्छे होने पर ही देश का उन्नतिशील होना सम्भव है और खराब होने पर ही रसातल पहुँचना सम्भव है. मैं इसीलिए चिंतित और व्यथित हूँ. यह देश मेरा भी उतना ही है जितना राजेन्द्र बाबू का, जवाहर जी का, और राजगोपालाचारी का. मुझे भी अधिकार है कि मैं वस्तुस्थिति पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर फिर अपने विचार प्रकट करूँ. यही नही, जिस

बात को मैं बुरा समझूगाँ उसके विरोध में उठ कर संघर्ष करने का भी बल मुझे प्राप्त है. यह कहाँ का न्याय है कि मूर्खों की अपाहिज सेना बनाई जाय और उनके बेकार हाथों के बल पर कुछेक व्यक्ति ही उल्टा-सीधा काम करें. शासन के संचालकों पर जनता के तपे-तपाये विचारशील कर्मठ व्यक्तियों की कड़ी निगाह का रहना सदैव आवश्यक है अन्यथा संचालक अपने मन मुताबिक चलने लगते हैं और जनता के लिए महान संकट उत्पन्न कर देते हैं. जब जनता उस संकट के प्रति अपना विद्रोह प्रकट करती है तब संचालक शासन की सम्पूर्ण शक्ति लगा कर उन विद्रोहियो को कुचलने पर लग जाते हैं. मैं यह सोच कर ही कुनमुना उठता हूँ."

" पर हरेक चीज का समय होता है. जब समय आयेगा तब यह समस्या भी हल हो जायेगी.अभी देश की परिस्थिति कुछ ऐसी ही है."

" यही तो काँग्रेसी भी कहते है कि धीरे-धीरे चल कर रामराज्य स्थापित हो सकेगा, बेकार ऊधम मचाने से नहीं. तुम कोई नई बात नहीं कह रहे हो.यह भी एक भयानक भ्रम है जिसका पूरा-पूरा प्रचार जनता में है और इस भ्रम के सहारे ही वह अपनी विद्रोही प्रवृत्ति को परास्त किये रहती है!किसके पास वह ज्ञान है कि कोई बता सके कि वह समय आ गया है. हम तो अपने कष्टों को मिटाना चाहते हैं ऐसा करने का हमें हर समय अधिकार है. तुम तो वैसा ही कह रहे हो जैसा हर स्वार्थी कहा करता है. खाना पकाने के लिये लकड़ी इकट्ठा करते है, आग जलाते हो और बहुत-सा काम करते हो. जब कही रोटी बनती है और तग कहीं पेट में पहुँचती है. यदि रोटी अपने आप मिल जाने की प्रतिक्षा में बैठे रहोगे तो तुम्हें रोटी युगयुगान्त तक न मिलेगी, इस सत्य से इनकार कर अपना सर्वनाश करना है. ठीक हैं न?"

"यार मेरे, तुमने तो आज का घूमना चौपट कर दिया, मेरा दिमाग खा गये, अब तो मेरी जान छोड़ो और नदी की धार पर शाम के सोहागी सिन्दूर की लाली देखो, वह देखो, वह दूर के पेड़! वह दूर के पेड़ ! मालुम होता है जैसे किसी कलाकार ने चित्रपट पर रंगों से रंग कर खड़े कर दिये हैं और वह कठोर-हदय पहाड़ी वह भी जवान हुई लोल कुमारी सी आकर्षक और सुन्दर हो गई है हवा ऐसी है जैसे किसी भावुक कवि के छंदों की परम सुन्दर

सागर लहर है या तो चुप रहो या इस प्राकृतिक सौन्दर्य पर सर्वस्व समर्पण करके शांति प्राप्त करो, मैं अब तर्क-वितर्क से मुक्त हो कर अपने हृदय में इस सुनहली संध्या की रूप-राशि को समेट कर घर लौटना चाहता हूं ताकि रात में मीठी-मीठी नींद आये और दिन की समस्याएं उस समय न सतायें"

गोपाल चुप हो गया उसने समझ लिया कि गनेश अधिक समय तक समस्याओं के गंभीर चिंतन के कारण परेशान हो गया है वह स्वयं अपना भाग्यविधाता नहीं बनना चाहता किसी दूसरे के सहारे जीना चाहता है उसकी हालत वही है जो एक रोगी की होती है वह अपना इलाज नहीं कर सकता दवा कोई दूसरा देता है वह विशेषज्ञों के बल पर जीवन सुरक्षित रखना चाहता है प्राकृतिक सौन्दर्य उसे इतना अत्यधिक इसीलिए आकर्षित कर रहा है कि उसके निरीक्षण में उसे सुख और शांन्ति मिल सकेगी जो सुख और शांति घर और नगर में विकृतियों के कारण नहीं मिलती,

गोपाल ने भी संध्या का सौन्दर्य देखा, वह ऐसा अनुभव कर रहा था कि यह प्रकृति इससे भी अधिक सुन्दर हो सकती है मनमोहक हो सकती है यदि हमारी कला उसको भी संवारने में लग सके, वह सुन्दर है परन्तु इतनी नहीं कि सुन्दरता की पराकाष्ठा हो,

एक दिन सबेरे पहर रामनाथ अपने मौरूसी तखत पर पटट लेटे हुए, जाड़े की नरम-गरम धूप में, अपने गांव से नये आये हुए गंधू नाई से श्याम शरीर पर कड़ुवे तेल की मालिश करा रहे थे, गंधुवा के कठोर रसज्ञ हाथ नस-नस में तेल पेवस्त कर रहे थे, ऐसा लगता था कि जैसे काली मिट्टी काम लायक बनायी जा रही थी, किसान को शायद इतनी मेहनत अपने खेत की सिचाई में नहीं पड़ती जितनी मेहनत गंधु को पड़ रही थी, ताखन बढई को इतना परिश्रम सम्भवतः रंदा करने में नहीं पड़ता जितना परिश्रम गधु को पड़ रहा था, चंदुआ चमार को भी चमड़ा घोटने में इतनी अधिक रपटन नहीं करनी पड़ती जितनी अधिक रपटन का अभ्यास गंधु को करना पड़ रहा था, सारांश यह कि गंधुवा उस पट्ट पड़े हुए रामनाथ के भीमाकार शरीर से धकापेल मल्ल-युद्ध कर रहा था और इस पर भी वह विकट शरीर परास्त होना नहीं जानता था, गंधू की देह पसीने से ठीक उसी तरह पसीज उठी थी जैसे कि आग पर चढ़े जलते तवे पर पड़े वासी पराठे की देह पसीज उठती है,

मालिश का परम सुख बही जानता है जिसने धूप में घंटो, दूसरे से मालिश करायी है, उस परम सुख के सम्मुख संसार का सब सुख तुच्छ से भी तुच्छ मालूम होता है, आदमी उस समय यही अनुभव करता है जैसे कि वह, भगवान विष्णु की तरह शेषनाग की शैय्या पर लेटा हुआ, क्षीर-सागर में लक्ष्मी जी से अपने पैर दबवा रहा है रामनाथ अपने को विष्णु भगवान से किसी प्रकार कम नहीं समझ रहे थे, वह अपने काठ से उस चतुष्पाद को शेषनाग की शय्या और उस फैली हुई धूम को क्षीर सागर ही समझ रहे थे,

गंधू का रंग-रूप लक्ष्मी जैसा नहीं था, फिर भी, वह रामनाथ की तुलना में, सुन्दर और सुडौल था, नाई कुल में उत्पन्न होने के कारण ही वह रामनाथ से नीचा था हालांकि रंग-रुप में रामनाथ से ऊंचा था, लड़कपन में गांववाले गंधू को "गोरी" और रामनाथ को "कलुआ" कहते थे, लेकिन बाद को जब गंधू गांव की धूप और धूल खाकर चरेर हो गया तब लोगों ने उसे "गोरी" कहना छोड़ दिया और उसका असली नाम "गंधू" प्रचलित हो गया, इसी प्रकार बाद को जब रामनाथ धन-सम्पति के अधिकारी बन गये और कुलीन-कुल की मान-मयार्दा से विभूषित हो गये तब लोगों ने उन्हें "कलुआ" कहना छोड़ दिया और उसका नाम " रामनाथ" प्रचलित हो गया,

गंधू अभी हाल में ही गांव से बुलाया गया था, वह बीस मील पैदल चल कर यहां आया था, वह ठेठ देहाती था, उसका रोआं-रोआं देहाती था, उसकी देह उस घोड़े के समान थी जिसको सईस ने खुरहरे से चिकनाया नहीं था, वह यहां आया था केवल मात्र रामनाथ की देह चिकनाने, उनकी धोती धोने, और उनके झूठे बरतन मांजने जब से वह यहां आया तब से वह इन्हीं कामों में व्यस्त रहता,

रामनाथ एम.एल.ए. हो गये थे, शहर में किराये का एक मकान लेकर रहने लगे थे, अभी हाल में ही वह शहर आये थे और अपने गंवई रहन-सहन को शहरी नहीं बना पाये थे इसी लिये तखत पर पट्ट लेटे हुए, घर के सामने के तीखर में, खुली धूप में, गंधू से श्याम शरीर पर, विसुध हो कर, विशुद्ध कड़वे तेल की मालिश करा रहे थे और अभी उन्हें इसकी अनुभूति का ज्ञान तक नहीं हुआ था कि शहर में लोग इस तरह खुले खजाने तेल की मालिश नहीं करवाते और इस तरह तेल लगवाने वाले को गंवार कहते है अतएवं अपने

ग्राम्य स्वभाव के अनुसार, शीतकालीन परम्परा के अनुरूप ही, रामनाथ तेल लगवाने में लगे थे, यह कहना गलत होगा कि शरीर को सुन्दर बनाने के लिए रामनाथ इस प्रकार स्नेह का स्निग्ध सेवन कर रहे थे हां इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि तेल लगाये बिना वह शरीर से रुक्ष दिखते थे और तेल लगा लेने पर, पेड़ से अभी तोड़ी हुई साफ सुथरी चिकनी जामुन की तरह दिखते थे,

यद्यपि उनका अंग-प्रत्यंग स्नेहाभिसिक्त होकर कोमल और स्निग्ध हो गया था फिर भी रामनाथ तेल लगवाये जा रहे थे और गंधू तेल लगाये जा रहा था दरअसल में यह उनका नहीं उनके अंगो का कुसूर था जो कि, रह-रह कर फिर-फिर, दुबारा तिबारा और चौबारा मालिश कराते रहने पर भी, स्नेह से तृप्त नहीं होते थे और गंधू के हाथों के मर्दन से मसल-मसल जाने की क्रिया में ही, सुख और शांति पाते थे,

रामनाथ के लिए एम.एल.ए. का पद अनोखा था और गंधू के लिए शहर का आगमन विचित्र दोनों के मन सिंधु की तरह तरंगित थे, रामनाथ तो इस परम पद के प्रताप से अपने सब दुख-दोष दूर करने की कल्पना में संलग्न थे, गंधू मालिक की महती सेवा-सूश्रूषा में जीवन समर्पित कर गंवार से मध्य बनने की और सभ्व बन कर घरबार और परिवार की दशा सुधारने की बातें सोचने लगा था, बहरहाल दोनों की मानसिक क्रिया में उत्तेजना आ चुकी थी और उनमें से हरेक अपने स्वभाव, वंश और परम्परा के अनुरूप ही अपना भविष्य बनाने का स्वप्न देखने लगा था,

इस समय नितान्त एकान्त था और रामनाथ को मालिश से पर्याप्त शारीरिक संतोष मिल चुका था इसीलिए उन्होने सहज सुख के आवेश में गंधू से संलाप शुरू किया गंधू कभी हाथ, कभी पांव, कभी पखौरे और कभी पीठ पर मालिश करता ही जाता था.

"तुझे शहर कैसा लगा?"

" मालिक ! नीक तो लाग है पै जिउ गांवै मां धरा रहत है"

" हां, अभी नया-नया यहां आया है, तेरी वही हालत है जो एक बैल की नये खूंटे में बंधने पर होती है, है न रे! यही बात?

" और का मालिक!"

" कोई तकलीफ तो नहीं है तुझे ?"

" ना, मालिक! तकलीफ तौ तुम्हरे चरनन का छुई कै भाग जाति है,"

गंधू ने यह बात कोई खुशामद भाव से नहीं कही थी. जाति का नाई होने के कारण रामनाथ के कुटुम्ब का आश्रय उसे निरन्तर मिलता रहा है और उसी को पाकर वह और उसका कुटुम्ब पलता रहा है. वह शुद्ध हृदय से यह कह रहा था और उसका ऐसा कहना उसके विश्वास का ही घोतक था, अतएव उसके मुंह से यह सुनकर रामनाथ को कोई पुलक अथवा कम्प नहीं हुआ.

गंधू ने सिर में तेल लगाना शुरु किया, उसकी दसो उंगलिया रामनाथ के गोल गुम्बद ऐसे सिर पर घुडदौड़ करने लगी, कैश छोटे-छोटे थे, इसलिए उंगलियों की भागदौड़ में रत्ती भर भी अड़चन नहीं पड़ी, सिर की इस मालिश से रामनाथ और भी वाचाल हो गये.

" अब तो गांव में हमसे कोई हड़पड़ी न करेगा? सब की नानी मर गयी होगी."

"हड़पड़ी? अरे मालिक! हड़पड़ी कौन सार करी? जब से चुनाव जीते हौ तब से वैरिन कै बधिया बैठि गै है. चाहे जेत्ता जो कोऊ कानाफूसी करै पै अब मोरचा मां नही आय सकत."

" कहता तो ठीक है तू. लेकिन अभी हमारे दुश्मन मौके-बे-मौके वार करेंगे. यह मै खूब जानता हूं और उसका बन्धेज भी करने ही वाला हूं"

" लेकिन मालिक! गांव के दरोगा का उनसे बड़ा मेलजोल है. वही कारन उनपर दबदबा बना रहत है और कुछ-न-कुछ खिलाफ करतै रहत हैं"

" यह में सब जानता हूं दारोगा की अब हिम्मत नहीं है कि मेरे खिलाफ उनसे मिला रहे और मेरा नुकसान होने दे, मै तो उसको हाथ की लोई कर लूंगा."

" एक बार मैं यहै दरोगा के लगे शिकायत लैकै गये रहौं तो दिखेंव कि ऊंइ पंचै बैठे पान चबात हैं और मोहीं देख कै अस बिदुरान कि कहतै नहीं बनत वहै बिन्दा का कहत सुनेऊं कि "आयगा सार" मैं तो खून पी कै रहि गयेंव. जिउ मां तौ आवा कि वही दरै मां दइ मारौं पै थाना जान कै चुप्पै चला आयेंव. मालिक! वह बात नहीं बिसरत."

" यह ससुरा बिन्दा!.... खुद तो सुअर है.... अपनी करनी नहीं देखता..... अब

सब सालों को देख लूंगा..... फिकिर न करना.....

गंधू ने यह सुनकर अपने प्रतिशोध को समर्थ बनाया और वह दिन देखने की कामता करने लगा जब उसको भी कोई सुअर न कह सकेगा।

रामनाथ की बिन्दा से बहुत दुश्मनी थी बिन्दा था तो अब दो कौड़ी का आदमी बिल्कुल गया-बीता-परन्तु गुंडागिरी में इतना बढ़ा-चढ़ा था कि गांव के ऊपर उसका दबदबा पूरा-पूरा कायम था. वह दस नंगों की पार्टी बनाये था और क्या छोटे क्या बड़े सबको परेशान करता था. रामनाथ भी उसके कारन आजिज थे. कभी उनके खेत ही रात को चरवा लेता था! कभी चोरी-चोरी खेत ही कटवा लेता था. कभी राह से जानवर नहीं निकलने देता था. न जाने क्या क्या इसी तरह की अनेकों खुराफात बिन्दा किया करता था और रामनाथ की नाक में तो दम ही कर रक्खा था. उसकी बात सबसे बड़ी यह थी कि वह पुलिस का पिटठू और दलाल भी था. घूस दिलाना उसका नित्य का नियम था. झूठ गवाही देना-दिलाना जीवन का व्रत था. इन्हीं कारणों से आज तक उस बिन्दा को रामनाथ भी परास्त नहीं कर सके थे. इसी बिन्दा की ओर गंधू ने इशारा किया था.

बिन्दा का नाम सुनते ही रामनाथ को रोष आ गया और उनके मुंह का स्वाद कुछ कडुवा हो गया. उस स्वाद को तमाखू की कडूवाहट से मारने के लिये उन्होने गंधू को हुक्का भर कर लाने की आज्ञा दी, स्वयं वहीं तीखर में बज्र-खम्भ की तरह धूप में नंगे पांव टहलने लगे. गंधू हुक्का लाने घर के भीतर चला गया था.

रामनाथ के चरण जमीन पर तो पड़ रहे थे लेकिन ऐसा लंगता था कि जैसे वह उस बिन्दा की छाती पर पड़ रहे हैं इसमें सन्देह नहीं कि अब बिन्दा के बुरे दिन आ गये थे. इसीलिए रामनाथ चुनाव जीत कर एम॰एल॰ए॰ हो गये थे.

गंधू गया ही था कि सामने से एक गांड़ी आती हुई नजर आई. बैल पूरे नादिया थे ऊँचे कद के भरी पूरी काठी के ! आंखे भी बड़ी-बड़ी त्रिलोकदर्शी थी. पूंछे जमीन छूने को लालायित थी. बिल्कुल नई उमर के नौजवान थे. रंग उजाले सा उजला पर देहात के रास्ते की धूल से लसा था. सींग, भगवान के नहीं किसी होनहार कलाकार के बनाये मालुम होते थे. जोड़ी भी खूब थी एक सांचे की ढली ऐसी शान से आगे चले आ रहे थे जैसे बड़े वेतन-

भोगी अफसर हों गाड़ी भी कोई पुरानी-धुरानी नहीं, एकदम नयी थी. सैला, गिरांव, डंडे, जुआं, और पहिये इत्यादि सब नये थे. छोटी भी नहीं, काफी बड़ी थी पांच छः आदमियों के बैठने लायक थी ऊपर से पाखरी पड़ी थी जो अभी भूसे की गंध से गंधित नहीं हो सकी थी. उसमें तीन आदमी और एक औरत ये ही तीन प्राणी थे. हांकनेवाला आगे औगी लिए अलग बैठा था. उसकी पोशाक उन तीनों से भिन्न थी. बदन पर एक मैली-सी पुरानी, दोहरे कपड़े की, बंडी थी, सिर पर एक चिरकुटिया साफी कुडंली मारे थी, कमर से एक उटग धोती लिपटी थी. मालुम होता था कि वह इन्हीं कपड़ो के पहन्ने के लिए आदमी बनाया गया था. उन तीनों में से दो की एक-सी पोशाक थी. दोनों कत्थई रंग के कुरते पहने थे जो घुटनों तक लम्बे और अच्छी तरह गीजे-मीजे थे. दोनों तरफ जेबें थी जिनमें सुपारी की बटुइयां अपना मौरूसी अधिकार जमाये थी. दोनों लट्ठे की मजबूत धोतियां पहने थे. दोकछियाँ, फेंटेदार कंधों पर लाल चौखाने की अंगोछियां थीं. सिर उघारे थे, बाल-चावल इतने छोटे थे! गांव के नाई ने अपने देहाती छूरे से उनके खत बनाये थे भवें भी बनीं और मूंछे भी कतरीं और बनी थी. इन दोनों से उस तीसरे आदमी की पोशाक अच्छी थी. उसका कुरता अच्छे कपड़े का साफ था. धोती फाइन कपड़े की थी.सिर उसका भी खुला था. बाल अंग्रेजी कटे थे. अंगौछे की जगह उसके कंधे पर खद्दर की तौलिया थी. इससे यह व्यक्ति उन दो संगियों से ज्यादा मालदार मालुम होता था. आकृति में रामनाथ से मिलता-जुलता था.

औरत एक लाई पहने, घूंघट काढ़े थी. वह तौलिए वाले आदमी के पास ही सिकुड़ी बैठी थी. उसके तन पर चांदी के गहने जरूर थे पर स्पष्ट नहीं दिखाई देते थे.

गाड़ी पास आकर रूक गई वे लोग नीचे उतरे. रामनाथ झपक गये थे. आहट से आंख खुल गयीं वह लेटे ही थे कि लपक कर तौलिया वाले आदमी ने रामनाथ के पैर छुये उन दोनों ने भी राम-राम की. रामनाथ ने उन तीनों को आशीर्वाद दिया. हलवाहा बैलों को खोलने की क्रिया में लग गया. औरत की ओर रामनाथ देखते ही रहे कि तौलिया वाला आदमी उसे अन्दर लिवा ले गया. इतने में गंधू हुक्का ले आया और वे दो व्यक्ति भौ तखत पर बैक कर बातचीत करने में व्यक्त हो गये.

" कहो गांव में अच्छी-भलाई है?" रामनाथ ने पूछा

" हां मालिक! सब कुशल-मंगल है" एक बोला.

" कैसे चले?" आतुर स्वर से रामनाथ ने पूछा.

" छोटे मालिक के साथ आये हैं राह में साथ के लिए लिवा लाये है" दूसरा बोला

" अच्छा! तड़के पहर चले होगे?"

" हां वही मुर्गा बोले चले थे."

रामनाथ हुक्का गुडगुडाते बात कर रहे थे पर उनको उस औरत के विषय में जानने की उत्सुकता अधिक बढ़ आयी थी, इससे कुछ दबे स्वर से बोले,

" वह कौन है?"

" छोटे मालिक अपने खातिर लाये हैं हमसे बोले कि रास्ते का मामला है साथ चले चलो. यही कारन से हम लोग लट्ठ लैके साथ चले आये विशेष तो वही बतैहैं"

गंधू को मौका मिला उसने भी उन दोनो से राम-राम की और गांव-घर के हाल-चाल पूछे अपनी राम कहानी कह सुनाई तब तक हलवाहे ने बैलों को पीपल के पेड़ की जड़ों से बांध दिया और वह भी वहीं तखत के पास आकर जमीन पर गंधू के निकट ही बैठ गया. वह गंधू का पुराना जान-पहचानी था. दोनों बात करने लगे आपस में रामरमौअल करके.

" वाह रे गंधू! अब तो त्वार भाग खुलिगे!"

" अस न कहु साथी. मोहीं हियां तनिकौं नहीं नीक लागत. गांव का उबियात रहत हौं."

" हां यार! मेहरारू कै सुधि आवाति होई."

गंधू, उन दो व्यक्तियों के सामने यह सुनते ही, लजा गया. लेकिन कोई चारा न देख कर बोला.

" तैं तो यार! वहै ऊटपटांग बर्रात हा. अच्छा. बताव तो. गांव घर मां सब भलाई है?"

" तोर महरार मिली रहै. कहति रहै कि वहिसे कहि दीन्हेव कि अब बैटौना नीक ह्वैगा है. काल्हि से जर नहीं आवा. दुखन वहिका लटियाय दिहिस है पै चिन्ता न करी. मालिक कै सेवा निकी तरा करी."

यह कह कर वह गंधू को प्रसन्न आंखों से देखते लगा. गंधू पर इस स्वाभाविक संदेश का वही प्रभाव पड़ा जो सूरज की प्रातः कालीन किरनों का सरोज पर पड़ता है. गंधू से रहा न गया और वह अपना दिल खोलकर बोल ही तो उठा,

"भला तौ! वही मोर सुरता तौ है।"

यह कह कर गंधू ने सुख और संतोष की सांस पूरी तरह ली भी न थी कि हलवाह ने उसे और रससिक्त करने के लिए कह ही तो दिया,

"अरे गंधू! तै वही नहीं जनते. वा तौ तोंही दुनिया ऊपर चहति है और तैं अस कहत हा. बिचारी, तोरी सुरता मां घुरी जाति है."

गंधू को अपनी नाइन की याद ने बेचेन कर दिना. रामनाथ के पास से गांव जाने की कोई आशा न देख कर और अलग ही बने रहने की कटु कल्पना मात्र से वह गहरी सांस छोडता हुआ कह गया,

" जानै कबै जइहौं! हियों तो एक एक दिन नहीं काटे कटत. भाय! तौ कहेसु कि मजे मां है जबै अइहौं तबै वहिके बरे एक जोड़ धोती लइहौं... अउर बेटौना के बरे एक कुरता."

हलवाहा गंधू के हदय की तीव्र प्रमानुभूति से पुरी तरह परिचित हो गया था. वह स्वयं भी उसी स्वभाव का था. इसलिए वह गांव छोड़ कर स्वयं भी कहीं नहीं जाता था कि कुछ अधिक कमाई कर ले.

इतने में रामनाथ ने भीतर से गंधू को आवाज लगाई और वह हडबड़ा कर चला गया.

हलवाहे ने रामनाथ के दरवाजे पर, पहुंचते ही अफसर लोगों की भीड़ देखने की कल्पना कर रखी थी और लम्बरदार से ही रास्ते में ऐसा होने की बात सुनी थी इसीलिए जब उसने वहां पहुंचने पर किसी पदाधिकारी के दर्शन न पाये तो अधीर स्वर से पूछ ही तो बैठा,

" लम्बरदार! तुम तौ कहत रहौ कि अब मालिक के दुआरे अफसर-अमला ठाढ़े सलाम झुकावा करिहैं पै हियां तौं चिरइब न देखान! का बाति है?"

एक व्यक्ति सुपारी काटता रहा दुसरा बोला,

" तौं तो गैंवारै रहे, ससुर नहीं तौ! भँवरी परतै कतौ दुलहिनी के पेट से बेटवा भा है कि आजै होई?"

यह बात उतने ही मार्मिक ढंग से कही गयी थी जितने मामिक ढंग से हलवाहे ने प्रश्न पूछा था. उत्तर का वही मुंहबंद कर देने वाला प्रभाव पड़ा जो पड़ना चाहिए था.

बात का असर कम करने के लिए हलवाहे ने बात बदल दी और अब एक ऐसे तथ्य को लेकर बोल उठा जो उन दो व्यक्तियों को भी खटक रहा था.

" लम्बरदार ! घर तौ दयाखैं मां नीक है पै सार यह तखत घर कै सोभा मारे है. मालिक से कहा यही कि या सारे का उठवाय कै टारि देयं न होय तो कउनौ नवा बनुवाय लेंय, और न होय तौ खटोली डराय लेंय."

वे दोनों व्यक्ति इस तखत को देख तो रहे थे ही किन्तु देख कर भी वे इस हद तक उसकी अपमान-जनक स्थिति से क्षुब्ध नहीं हो सके थे कि हलवाहे की तरह पहले ही कुछ कह पड़ते उसके कहने से उन दोनों पर ठीक वही प्रतिक्रिया हुई जो उस पर हुई थी. हलवाहा था तो निम्न स्तर का और था भी उन दोनों से कम ही चतुर किन्तु उसके मन पर बाह्य परिस्थितियों की फौरन ही सही प्रतिकिया पड़ती थी. यही कारण था कि उसकी जबान उसके मन की प्रतिकिया को प्रकट करने से बाज नहीं आती थी!

सुपारी काट कर अपने दूसरे संगी के हाथ में देते हुए दूसरे व्यक्ति ने समर्थन के स्वर में कहा,

" हां, यार! लम्बरदार! या हरवाह तौ ठीक कहत है! न होय तो गांव से दुआरे वाला तखत मंगाय लीन जाय. यह ससुर कौनौ काम का नहिं आय!

लम्बरदार ने सुपारी चबाते हुए परम्परानुसार वहीं पर फक्क से पीक थूकते हुए अपना सिर हिला कर धीरे से ऐसे कहा जैसे कि कोई अफसर कुरसी पर बैठ कर कम महत्व की बात को भी बड़े महत्व की तरह, मंद स्वर से अपने मातहत के पूछने पर कहता है.

" अबै नहीं! रसे-रसे अब होई एकै दिना मां केंचुल नहीं बदलत होई.... सब होई!

देखिहौ कि का से का होई."

लम्बरदार यह कह कर उसी तरह ओठ सीकर बैठ गये और सुपारी का पुनः चर्बण करने लगे जैसे पागुर करता हुआ यह कोई जन्मजात जानवर हो.

हलवाहा इस मंद और अल्प स्वर-पात के पीछे छिपे हुए उस सामाजिक परिस्थिति का वास्तविक रूप निरखने में और उसके समझने में इस प्रकार सचेत नहीं था जिस प्रकार एक राजनीतिक कार्यकर्ता सचेत होता है.फिर भी सरल हदय होने के कारण वह यह बखूबी समझ रहा था कि लम्बरदार के कहने में पुरातन प्रणाली का ही निर्वाह किया गया था.

इसी समय भीतर से गंधू एक पीतल की परात में लम्बरदार और उसके दूसरे संगी के लिए सीधा लेकर आ पहुंचा उसने झुककर लम्बरदार को परात दिखाते हुए यह जानना चाहा कि इतनी सब सामग्री पर्याप्त होगी अथवा नहीं.

लम्बरदार की दो आँखें और उसके संगी की दो आँखें मिलकर चार हो कर, उस परात में रखे हुए आटा, दाल,घी,आलू, हल्दी,नमक, मिरचा, और अचार को देख कर संतृष्ट हो गयी. सामान इतना था और ऐसा था कि उनकी तीव्र क्षुधा को पूर्णतया परास्त होना पड़ेगा.

गंधू ने हलवाहे को देखा तो उसे कुछ अधिक चुप पाकर उत्साहित करने के भाव से तत्काल ही कहा,

" मरा न जा यार! तोरे बरे अबै सेतुवा और गुड़ लावत है तनी लम्बरदार हरन का चोका-चूल्हा ठीक कइ देवं."

सुनते ही हलवाहे में मुंह में पानी भर आया. गुड का स्वाद बिना खाये ही उसे मिलने लगा वह कनखियों में गंधू की ओर देख कर अपनी मौन कृतज्ञता पूर्व ही प्रकट करने लगा. गंधू गरीबी की मार को स्वयं जानता था और गुड़ का अपने जीवन में वही महत्व मानता था जो राष्ट्र के लिए आजादी का होता है. हलवाहे की ओर मधुर दृष्टि से निहारता हुआ, परात कंधे पर हाथ के सहारे रखे हुए, परछतिया की ओर चला गया लम्बरदार और उसका दूसरा साथी भी उसी ओर गये.

परछतिया खपरैल से छाई थी. मिट्टी के दो खम्भों पर छप्पर रखा था. बैंलों का गोबर ला कर गंधू ने फौरन ही चौका लगा दिया उस ने सात ईटे जल से स्नान करा कर चुल्हें की तरह बना कर रख दी. फिर उसने कुछ सूखे चैले उस चुल्हे के पेट में घुसेड़े और दौड़ कर भीतर घर से आग ला कर लजा दी. कुएं के ताजे पानी से दाल का अदहन चूल्हे पर रख कर वह लम्बरदार और उसके साथी को कुएं पर पानी खींच कर नहलाने ले गया, कुंआ वेसा ही था जैसा कोई पुराना खददरधारी गंधू ने उससे उसी तरह बाल्टी पानी निकाला और दिया जैसे कोई ब्राम्हण देवता अपने यजमान को तत्काल आर्शीवचन देता है दोनों व्यक्तियों ने नहाया तो किन्तु उनकी पीठें और धोतियां कुछ-न-कुछ कोरी ही रह गयी नहाकर उन्होने अपनी अंगौछियां कमर से लपेट लीं और भाग कर चूल्हे के निकट पहुंच गये इधर गंधू ने उनकी उतारी हुई धोतियां पछाड़ कर सूखने को डाल दीं,

हलवाहे ने परछतिया से आते हुए गंधू की ओर सतृष्ण नेत्रों से देखा तो गंधू समझा कि वह सत्तू और गुड़ की याचना कर रहा है इसीलिए वह हलवाहे से जरा देर और धीरज धरने के लिए कह कर भागता हुआ भीतर की तरफ बढ़ा लेकिन हलवाहा अपने लिए नहीं बैलों के लिए चारा की याचना कर रहा था, गांव से चलने समय भूसा न लाया गया था क्योंकि छोटे मालिक ने मना कर दिया था और कहा था कि वहां प्रबंध हो जायेगा अतएव हलवाहे ने मौन खड़े जानवरों की तरफ इशारा कर के गंधू को ध्यान दिलाया कि उसी का नहीं, इनका पेट भी खाली है गंधू देहात का था ही फिर जाति का नाई जानवरों से प्रतिदिन का काम पड़ता था, उसे समझने में देर न लगी. वह दौड़ कर गया कोठरी से भूसा ला कर उसने बैलों के सामने टोपरी में रख दिया.

हलवाहा हंस दिया. गंधू भी मुस्कुराता हुआ यह कहता फिर भीतर चला गया कि अब सत्तू लेकर आता ही है तत्क्षण ही एक पीतल की थाली में काफी सत्तू और गुड़ लेकर वह भीतर से आया और उसने इस तरह उस हलवाहे के सामने रख दिया जैसे कि वह वरदान हो पास ही एक बाल्टी में पानी भी रख दिया।

इस प्रकार "बैल बाजी मार ले गये" शैलीगत नवीनता, भाषा, शब्द संयोजन की दृष्टि से उत्तम उपन्यास है। केदारजी के इस उपन्यास में ग्रामीण मिट्टी की सोंधी महक आती

है। भाव प्रवणता, नवीन परिवेश से युक्त है।

नर्तकी

मायापुर का बड़ा प्रसिद्ध देवालय था। त्यौहारों के अवसर पर यहाँ उत्सव होता था। दो दिन रात लगातार देवालय जनसमूहयुक्त रहता था। बड़ी दूर से गवैये आते थे। भगवान की प्रभामयी मूर्ति के सम्मुख महफिल सजाई जाती और वहीं पर नाना नाच रंग भी होते। प्रख्यात नर्तकियाँ बुलाई जाती थीं। सारे प्रान्तों के महन्त और मठाधीश इस समय उपस्थित होते थे। महफिल की शान और ठाठ का क्या कहना था। राजा महाराजाओं के राजप्रसाद की श्री यहाँ फीकी दिखाई देती। जरीदार क़ालीन, मसनद और चद्दरें चारों ओर बिछाई जाती थीं। सोने केफ़ काम की वस्तुएं दर्शनीय थीं। सर्वत्र सुगन्ध सिचिंत किया जाता था।

प्रतिवर्ष भगवान की वर्षगाँठ होती थी। यह अवसर चूकने का न था। यही प्रमुख उत्सव का समय होता। धन की कमी न थी। देवालय में कई ग्राम लगे थे। बड़े-बड़े राजाओं की विशेष दयादृष्टि इस पर रहती। आमदनी जायद थी। सम्पत्ति का स्वरूप यहीं देखते बनता था। भोग के समय वह माल छनता था जो कि अमीरों को भी कभी नसीब नहीं होता। देवालय की दीवारों के अन्दर आनन्द गूंज उठता था।

भगवान की सेवा में प्रतिपल भोग की सामग्री उपस्थित की जाती थी। गर्मी में हिमगिरी की शीतलता का आनन्द आता था। जाड़े में मेवों की बहार रहती थी।

देवालय की नर्तकियाँ साधारण नहीं होती थीं। उनको कई ग्राम के दिये जाते थे। वे केवल ऐसे अवसरों पर ही नृत्य करने आती थीं। उन्हें सदाचार और शुद्ध रहकर जीवन व्यतीत करना पड़ता था। प्रत्येक नर्तकी से यह प्रतिज्ञा ले ली जाती थी। कोई ५ वर्ष तक यह कार्य करती और कोई दस या बारह बरस तक। बहुत तो अपना जीवन ही भगवान की सेवा में बिता डाला था। नित्य नई नर्तकियों की भरती होती और पुरानियों की छुट्टी होती। यदि इस बीच में कहीं यह पता चल जाता कि क़िसी नर्तकी का जीवन शुद्ध नहीं है तो उसे उचित दण्ड का भागी होना

पड़ता था। उसकी जीविका छीन ली जाती थी। उसे बड़े-बड़े महन्तों की क्रूरता का भाजन बनना पड़ता। कभी कभी ऐसे उदाहरण देखने को मिल जाते थे।

सम्वत् १९७० में भगवान की वर्षगाँठ हुई। इस समय का उत्सव अपार आनन्ददायक था। महीनों पहिले से साज ठीक किया गया था। बाहर से नामी गिरामी गवैये बुलाये गये। आलीशान महफिल सजी। नर्तकियों की भी अधिक संख्या थी। एक से एक चढ़ बढ़ कर थीं। परन्तु इस वर्ष एक नई भरती हुई थी। इस नर्तकी का यौवन सावन की नदी के समान उमड़ा पड़ता था। केश कुंडली पर खिले हुये पुष्प लगे थे। आँखों में वह मस्तानी और मदमाती ज्योति उदित थी कि शशि की चन्द्रिका लज्जित हो जाती थी। गुलाबी कपोलों पर रूप-वीथिका अंगड़ाइयाँ ले लेती थी। मृदुल मधुर अधरों पर पतली मुस्कान की रेखायें खिंच जाती थीं। चाल भी नाज से भरी थी। कटि में गजब की लचक और पतलापन था। उसकी यौवन-सुगन्धि प्रातः काल की विकसित कलिका की भाँति सर्वत्र बिखरी पड़ती थी। सब की आँखें उसी विद्युत-ज्योति की ओर खिंच आईं।

रात दो घड़ी बीत गई थी। कई नर्तकियाँ अपना कौशल सत्यापित कर चुकी थीं। लोग और बूढ़े महन्त तक नई नर्तकी के नृत्य की लालसा में विस्फारित नेत्र से उसी ओर देख रहे थे। वह लचीली बलखाती हुई अपने सर पर कमल करों का भार रखे उठी। महफिल में आई। प्रत्येक दिन मस्त हो गया। वाद्ययंत्रों का स्वर स्फुट हो निकला। स्वर मिलाया गया। अक्सीरी रंग की साड़ी पहने नर्तकी ने नृत्य प्रारम्भ किया। प्रत्येक पद ताल सुल से मिलता हुआ पड़ता था। ऐसी छोटी और अप्रौढ़ अवस्था में कठिनता से ही इतनी कला कुशलता और दक्षता देखी गई थी। वाह-वाह की उच्चध्वनि से मण्डप का चंदवा भी आनन्दातिरेक के आवेग में हिल उठा। भगवान भी इस समय अपना अपार रूप लावण्य बनाकर रसिया की भाँति शरीक हुये थे।

थोड़ी ही देर नृत्य होते हुआ था कि इसी बीच में एक महन्त महफिल में उठकर नृत्य को बन्द करने का आग्रह करने लगें। सारी सभा अवाक हो गई।

नर्तकी की उंगली सुन्दर दातों के नीचे जा पहुँची। आँखें सम्पूर्ण खुलकर उस ओर देखने लगीं। अभी तो उसने नृत्य प्रारम्भ ही किया था। उसकी उच्च कला का अंकन तो हुआ ही नहीं था। इस अकारण रोक ने आश्चर्य और भय की आशंका उत्पन्न कर दी। महन्तों में आपस में कानाफूसी प्रारम्भ हुई। गुरु महन्त ने इसका कारण पूछा। महन्त ने उत्तर दिया कि यह नर्तकी शुद्ध आचरण की नहीं है। इसने पापमय जीवन बिताया है। देवालय से इसे शीघ्र हटा दिया जाय। ईश्वर की यही इच्छा प्रकट होती है।

रोषावेग में पड़कर नर्तकी को बन्दी बनाया गया। रंग किरकिरा हो गया। गुरु महन्त के सम्मुख वह लाई गई। पास ही प्रतिद्वन्दी महन्त भी खड़ा था। कामिनी के लोचनों ने पहचाना। दाँतों ने क्रोध से वज्र की शक्ति पैदा कर ली। आँखों का रूप विकृत और भयावह हो गया। उनसे विकराल ज्वाला की लपक सी निकल कर महन्त के तन को जलाने का उद्योग करने लगी। नर्तकी ने अपने मन में कहा प्रतिशोध का इतना भीषण रूप। ओ नीच महन्त के बच्चे ! यह झूठा अपवाद भगवान के सम्मुख मैं तेरी काम वासना की पिपासा की पूर्ति न बन सकी इसी हेतु तूने इतना पापमय वचन निकाला। ओफ! उसी का प्रतिशोध! .... की चरम सीमा यही तो है। भगवान देखो क्रूरता की योजना। स्वार्थपरता का ऐसा कलुषित उदाहरण!

सब ने नर्तकी के मुख के भाव देखे। परन्तु रहस्य कोई भी न समझ सका। महफिल बन्द हो गई। नर्तकी एक कोठरी में बन्द कर दी गई। पापी महन्त का आनन्द फूट निकला।

प्रतिघात की सफलता जीवन में सरसता उत्पन्न कर देती है।

प्रातः काल गुरु महन्त की अध्यक्षता में पंचायत की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। दर्शकों की भीड़ इकट्ठी हुई। जिज्ञासा ने निश्छल रूप धारण कर लिया। ऐसी रूपराशि को क्षण भर में महन्त समुदाय न जाने क्या का क्या कर डालें।

गुरु महन्त ने गम्भीर स्वर में पूछा - क्या शिष्य महन्त की बात सच है/ तुम्हें इसके विरुद्ध कुछ कहना है। यदि यह सत्य है तो तुमने बड़ा पाप किया।

यह सुनकर नर्तकी के हाव भाव में कुछ भी फर्क न हुआ परन्तु गौरव की एक किरण ने उसके तन की आभा बढ़ा दिया। उसने मधुर स्वर में कहा- गुरु जी महाराज! मैं इस विषय में कुछ भी नहीं कहना चाहती। जो कुछ होना होगा वह होगा ही। भगवान की इच्छा के विरुद्ध कौन शक्ति सामर्थ्यवान हो सकती है। परन्तु इसके पहिले कि मुझे दण्ड दिया जाय मेरी एक विनम्र प्रार्थना ईश्वर के नाम सुन ली जायै। यही मेरी अन्तिम इच्छा है। आशा है कि आप इसे पूर्ण करेंगे।

गुरु ने कामिनी के मुख की लिपि पढ़ते हुये कहा, कहो ! जहाँ तक हो सकेगा तुम्हारी कामना पूरी की जायेगी।

हाथों को जोड़ते हुये नर्तकी ने विनय की- भगवान तो मुझसे क्रुद्ध हैं। परन्तु यदि गुरुद्वारा के भीतर नही तो बाहर ही मेरा एक नृत्य आज ही हो जाये। फिर जैसी इच्छा।

बहुमत तो अवश्य हुआ परन्तु फिर एक मत से यह स्वीकार हो गया। बाहर ही नृत्य का सारा प्रबन्ध किया गया। आधे घण्टे के भीतर ही सब ठीक हो गया। वाद्य-नायकों ने अपने यंत्रों को मिलाया। नर्तकी ने नृत्य प्रारम्भ किया। मयूरनृत्य का ऐसा सुन्दर रूप कहां देखा गया था। उसने कायल किया। लोचनों ने भरकर देखा। अंग-प्रत्यंग लचक गये। कामुक महन्त की वासना जागरित हो उठी। साहस का रूप धारण कर वासना ने लोकापवाद की सीमा त्याग दी। पद की महत्ता चूर चूर हो कर बिखर गई। वह अपनी प्रेयसी को आलिंगन करने को आगे बढ़ा। वह उसे अपने भुजपाश में बाँधना ही चाहता था कि अन्य महन्तों ने दौड़कर उसे हटा लिया। कोलाहल की गूंज छिड़ गई। नृत्य बन्द हुआ। महफिल विसर्जित हो गयी।

पापी महन्त भी बन्दी किया गया। पंचायत का कार्य पुनः प्रारम्भ हुआ। गुरु महनत ही अध्यक्ष थे। वे ही सरपंच थे और सम्बुद्ध थे। उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी नहीं हो पाता था। नर्तकी भी पंचायत भवन में लाई गई। कामी महन्त भी

उपस्थित किया गया। दो प्रतिद्वन्दी एक दूसरे के सामने खड़े हुये।

घृणा से अपने सतीत्व को नष्ट करने की इच्छा रखने वाले महन्त की ओर देख कर नर्तकी ने हाथ जोड़ कर गुरु महन्त से प्रार्थना की - महाराज जी ! मेरी कुछ सुनाई होगी।

स्वीकृति सूचक उत्तर मिल गया। उसने कहा- जिस व्यक्ति ने मुझपर दोषारोपण किया था उसका चरित्र तो आपने देख ही लिया। भला ऐसी कामी और नीचात्मा के बताये का विश्वास करना उचित है?

गुरु ने रहस्य समझना चाहा और कहा - अपराधी शिष्य ! तुम सुनते हो नर्तकी क्या कह रही है। तुम्हें कुछ कहना है।

पापी महन्त की आकृति बदल गई। काम की बिजली तन भर में दौड़ गई। परन्तु वह अपराध के भार से लज्जित हो कर मौन था।

नर्तकी ने पुनः विजयोल्लास में कहा - अपराधी क्या कह सकता है। जो शुद्ध है उसे दण्ड से क्या भय।

गुरु महन्त ने नर्तकी से पूछा - जो हम कैसे जानें कि तू शुद्धाचरण है।

नर्तकी को भगवान पर अटल विश्वास था। सत्य का कभी भी बाल बाँका नहीं होता। उसने निर्भय की भाँति मस्तक ऊँचा करके विनीत शब्दों में कहा- महाराज ! मैं निर्दोष हूँ। वह गुलाब का फूल लेकर आपही भगवान के चरणों में रख दीजिए, यदि वह उस स्थान से गिर जाय तो जानियेगा कि मैं शुद्ध हूँ अन्यथा मुझे पापपूर्ण समझियेगा और उचित दण्ड का विधान करियेगा। अब इससे अधिक प्रमाण क्या हो सकता है।

गुरु के हृदय में यह बात चुभ गई। भगवान पर नर्तकी की इतनी प्रगाढ़ भक्ति। वह इस बात से शीघ्र ही सहमत हो गये। भगवान के चरणों पर फूल रखा गया। सांच को आंच कहाँ। तत्क्षण ही फूल अपने स्थान से गिर पड़ा। नर्तकी की विजय हुई। हर्ष से सारा मण्डल पुलकित हो उठा। नर्तकी को अपराध मुक्त किया गया।

गुरु को इस रहस्य को जानने की उत्सुकता बढ़ रही थी। उन्होंने महन्त शिष्य से पूछा- अपराधी! तुमने झूठ वाणी का प्रयोग किया है। नर्तकी तो शुद्ध है। भगवान ने भी इसकी पुष्टि कर दी। परन्तु तुम्हारे दोषारोपण का कारण क्या है?

नर्तकी ने बात काट कर कहा- गुरु जी! यदि मुझे आज्ञा हो तो मैं एक बात कहूँ। मैं आपकी जिज्ञासा सम्भवतः पूर्ण कर सकूं। परसाल जब मैं अपनी माता के साथ भगवान के दरबार में आई थी तब नीच की काम पिपासा ने मेरे जीवन को ही अपनी तृप्ति का साधन समझा था। परन्तु मैंने रूखा उत्तर दिया इस पर इस कामी महन्त की क्रोध ज्वाला भड़क उठी और उसने मुझसे इसका प्रतिकार लेने की प्रतिज्ञा की। मुझे असहाय मानकर और अपनी शक्ति पर अनंत दर्प करके वैरशोधन किया।

गुरु ने अपराधी से पूछा - क्यों ? जो कुछ बात कही गयी वह ठीक है कि नहीं?

अपराधी महन्त की जिह्वा पाप की अग्नि में भस्म हो चुकी थी। उसने गुरु की बात का कुछ भी उत्तर न दिया।

परिणाम स्वरूप महन्त अपराधी ठहराया गया। उसे कलंकित जीवन व्यतीत करने का दण्ड मिला। उसे संध्या के पहिले ही ५ बजे प्राणदण्ड मिलेगा यह बात सर्वत्र फैल गई। पंचायत का कार्य समाप्त हुआ। अपराधी लाकर बन्दीगृह में डाल दिया गया।

पाठक को यह ज्ञात होना चाहिए कि महन्तशाही और जारशाही में बहुत कम अन्तरं है। कभी कभी तो महन्तशाही का रूप जारशाही से भी विकराल और भयंकर हो जाता है। प्राणदण्ड कोई कड़ा दण्ड नहीं था। महन्तों की क्रूरता का भाजन ईश्वर करे किसी को न बनना पड़े। परन्तु वे जिस पर प्रसन्न हो जांय फिर उसके भाग्य खुल जाते हैं। मालामाल हो जाना एक साधारण सी बात है।

शाम चार बज गये थे। दण्ड की योजना का पूर्ण प्रबन्ध था। दर्शक इधर-

उधर खड़े थे। महन्त गुरु अपने अन्य शिष्यों के साथ गद्दी पर बैठे थे। एक विशालकाय हाथी स्थान पर झूम रहा था। अपना प्रलय शक्ति को आह्वान करने के लिए सिर हिला कर हाथी यमदेव की अनन्त आराधना कर रहा था। पांच बजने में १५ मिनट रह गये थे। घंटा बजा। अपराधी महन्त लाया गया। उसे भूमि पर लिटा दिया गया। दर्शक शांतभाव से देख रहे थे। घंटे पर वज्र प्रहार हुआ। टनाटन पाँच बजा। चीख मार कर सरपट चाल से आकर हाथी अपराधी का मस्तक चूर-चूर करने वाला ही था कि इतने में गुरु महन्त घोड़े पर सवार हो कर वहीं उपस्थित हुए और दण्ड की योजना रद्द करते हुये यह घोषणा पत्र सुनाया गया। (दूसरे घोड़े पर नर्तकी सवार थी। कैसा हंसमुख और प्रसन्न बदन था।)

"गुरु महन्त ने आज से देवालय की नीति में परिवर्तन किया है। दण्ड विधान धाराएं बदल दी गई हैं। प्राण दण्ड की योजना नितान्त घृणास्पद समझी गई। क्रूरता का साम्राज्य शीघ्र ही नष्ट किया जायेगा।

अपराधी महन्त को दीन दुखियों और आते-जाते पथिकों की सेवा करने का कार्यभार सौंपा जाता है। यही दण्ड-धारा प्रयोग की गई है। जाड़े में जंगल से लकड़ी काटकर पथिकों की शीत निवारण का उचित प्रबन्ध करना और ग्रीष्म में शीतल जल भर कर पिपासा शान्त करना ही आज से अपराधी का काम होगा। और आज से वह अपने महन्त पद से उतारा गया। सेवा-भाव से जब उसकी आत्मा परिष्कृत एवं शुद्ध हो जाएगी तब उसे देवालय में पुनः प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त होगा।

इस नये दण्ड निर्माण धारा में गुरु महन्त और दण्ड-विधायक-समिति को नर्तकी से बड़ी सहायता प्राप्त हुयी है। हम उसके बड़े कृतज्ञ है। आशा है इसका विरोध न किया जायगा।

इसके बाद भीड़ हट गयी। अपराधी महन्त मुक्त कर दिया गया। उसने गुरु महन्त और नर्तकी के चरणों पर सर रख कर कृतज्ञता पूर्ण शब्दों में कहा- आज भी ज्ञान चक्षु खुले। महन्त बन कर ही हम परम पद के अधिकारी नहीं हो सकते।

सती के तेज की रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है। मैं अपने कार्य को दत्तचित्त से पालन करूंगा। सेवा की महत्ता असीम है। मैं अपने पथ से कभी विचलित न होउंगा। जो मेरी आत्मा मे मलिनता आ गई थी आज वह दूर हो गयी। नर्तकी ! तुम देवी हो ! सेवाभाव ने तुम्हारे जीवन में महत्ता भर दी है।

गुरु महन्त ने आना हाथ उठा दिया। इसके बाद वे नर्तकी के साथ देवालय के भीतर चले गये। उत्सव समाप्त हो चुका था। अतिथि लोग अपने अपने सहन की ओर चल दिये। नर्तकी भी चली गयी। देवालय कुछ सूना सा हो गया। पापी महन्त ने भी अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। पथिकों को बड़ी सुभीता होने लगा और वह उनकी सद् भावनाओं और कृपा का भाजन बन गया। उसे सुख का अनुभव होने लगा।

संस्मरण

केदार जी को 'सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार मिलने के बाद रूस यात्रा का निमंत्रण मिला था, इस संस्मरण में कवि की रूस यात्रा का सजीव वर्णन है। केदार जी ने बहुत सजीव व मार्मिक ढंग से इसका वर्णन किया है।

बस्ती खिले गुलाबों की

(रूस की मेरी यात्रा)

गत ११ मई की को पालम एयरपोर्ट से लगभग ९:१५ बजे, सबेरे, मैं अपने अन्य साथियों के साथ, एरोफ्लोट से, सोवियत संघ की राजधानी मास्कों के लिए उड़ा। यह मेरी पहली हवाई-यात्रा थी इसलिए एक हल्की से परेशानी और घबराहट महसूस कर रहा था कि ऐसा न हो कि कोई दुर्घटना हो जाये और मैं फिर अपनी भारत भूमि को न लौट सकूँ। लेकिन वर्षों की मनोकामनापूरी हो रही थी इसलिए मेरे अन्दर उमंग और उत्साह उछाल ले रहा था और उस उछाल में शंका की एक हल्की सी छाया झलमला जाती थी। हवाई जहाज एक बड़ी लम्बी-सी मछली की तरह था जिसके पेट के भीतर हम और दूसरे यात्री बैठ गये थे। इस पेट में एक तरफ तीन आराम कुर्सियों की पंक्तियाँ, आगे-पीछे, लम्बान में लगी थीं।

बीच में एक काफी चौड़ी गैलरी थी जिसमें लोग आ-जा सकते थे और जिसमें यान की परिचारिकाएँ ट्राली में खाने-पीने का सामान रख कर ले आतीं और वितरण करने के बाद वापस चली जाती थीं। इस गैलरी की दूसरी बगल में आराम कुर्सियों की वैसी ही आगे-पीछे, दो-दो की पंक्तियाँ थीं। हम लोगों के बक्से वहाँ पहले ही पहुँचकर एक प्रकोष्ठ में अलग रख दिए गये थे। हम लोगों में से लगभग हर एक के पास अपना-अपना ब्रीफकेस व किसी-किसी के पास एक-एक हैण्डबैग भी था जिसमें सुविधा की कुछ आवश्यक वस्तुएँ थीं। वे सब कुर्सियों के पास ही, रख लिये गये थे। यान के अन्दर का वातावरण शान्त और प्रिय था। न कोई हल्ला था, न कोई हलचल थी, लोग अपनी-अपनी जगह आराम से बैठे थे। यात्रियों में औरतें भी थीं, बच्चे भी थे, और पुरुष भी थे। दोनों तरफ की कुर्सियों के ऊपर, यान की छत से कुछ नीचे, सामान रखने के लिए टाँड़ें बनी थीं और ठीक कुर्सियों के ऊपर यान की छत में पेंच लगे हुए थे जिन्हें घुमा देने से सीटों पर ठण्डी अवा आने लगती थी और बन्द कर देने से रुक जाती थी। हर बगल वाली सीट के पास ही दोनों तरफ गोलाकार शीशे की पारदर्शी खिड़कियाँ लगी थीं जिनसे यात्रीगण बाहर का दृश्य बराबर देखते रह सकते थे। हर खिड़की के पास ही एक हल्के नीले रंग का छोटा पर्दा लगा था जिसे खिसका देने पर खिड़की का शीशा उसी रंग का हो जाता था और तब बाहर का दृश्य भी उसी के हल्के रंग से रंगा हुआ दिखायी देने लगता था। हर-एक कुर्सी में एक-एक बेल्ट लगी हुई थी जिसे, उड़ने से पूर्व और उतरने के पहले, यात्री को अपनी कमर से बाँध लेना पड़ता था। उड़ने से पहले यान-परिचारिका एक ट्रे में लेमन ड्राप्स और टाफी लाती थी और हर-एक यात्री को देती थी जिसे उसे खाना पड़ता था ताकि उड़ने और उतरने के बीच कोई मानसिक कष्ट न हो या कि मिचली वगैरह न आये।

यान उड़ने को हुआ तो उसका शरीर चालू हुए इंजन की धकधकाहट से हल्का-सा थरथराने लगा और हल्की-सी आवाज यान के अन्दर पहुंचने लगी और हम सब यात्रियों को वह आवाज सुनायी देने लगी लेकिन वह ऐसी नही थीं कि उसके सुनते रहने से कोई कष्ट हो या कान सुन्न हो जाएं। मेरे साथ के किसी यात्री ने आवाज से बचने के लिए कान में न तो अपनी उंगली लगायी न रुई की कोई ठेपी। यान जहां खड़ा था वहीं वह कुछ देर तक

धड़धड़ाता रहा और फिर उसके बाद जमीन पर उसके पहिये सरकने लगे और वह बड़ी मछली, धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी जैसे हवा के सागर में भीतर घुसने लगी। वहां से इस तरह चलकर और थोड़ी दूर आकर वह मछली एक जगह फिर रुक गई और अब अधिक वेग से थरथराने लगी। यान का इंजन वेग से चालू किया गया था और वह अपनी पूरी ताकत से जोर पकड़ रहा था। कुछ मिनटों के बाद यान वहां से आगे चला और अब उसकी गति तेज से तेज होती गयी। कुछ दूर जाकर उसके पहिए जमीन से ऊपर उठे और वह, गन्तव्य मार्ग की ओर, हवा में सरसराता हुआ ऊपर चला गया। मैं खिडकी के पास बैठा अचरज से भरा था। इसलिए बराबर खिड़की के बाहर का दृश्य देखता ही रहा। दिल्ली, नीचे, दूर होती जा रही थी, बड़ी से छोटी होती जा रही थी, और फिर थोड़ी देर में यान के ऊंचाई पा लेने पर, गायब भी हो गयी।

मुझे अपना गांव याद आया अपने पुरजन व परिजन याद आये। मेरा बांदा मुझे याद आया। लड़कपन में लढ़ी पर की हुई यात्राएं याद आयीं। इक्का, रिक्शा, तांगा और मोटर की मेरी छोटी-बड़ी यात्राएं और रेल की लम्बी यात्राएं भी दिमाग में कौंध गयी। यह सब शायद इसलिए हुआ क्योंकि इन्हीं सवारियों से मेरा जीवन जुड़ा हुआ था और अब मैं इन्हें छोड़कर एक बड़े वेगवान वायुयान पर चढ़ा दूर देश की यात्रा पर जा रहा था, जहां मेरा कोई स्वजन नहीं था, मेरा कोई मित्र नहीं था, और हो सकता है कि जहां मैं अकेला महसूस करता। इसके बावजूद भी जब यान बादलों की परत भेदकर उनसे ऊपर उठ गया और धरती का धरातल पूर्णतया लोप हो गया और यान के दोनों तरफ ऊपर और नीचे भी, आकाश और हवा ही रह गयी, तो मुझे यह दृश्य देखने में आनन्द आने लगा। मैंने देखा लगातार बराबर तरह-तरह की आकृतियों के बादल फैले-बिखरे, बैठे, खड़े इकट्ठा है और उनका सिलसिला अनन्त और अछोर है। उन बादलों की आकृतियां बहुत कुछ कभी-कभी क्या ज्यादातर ही, बुढ़े आदमियों की व जवानों की व औरतों-बच्चों की लगती थीं। वे कहीं सभी में बैठे सामूहिक संलाप में संलग्न मिले तो कही, लेटे और पसरे, एक दूसरे से आलिगित और आलिप्त मिले। कोई पगड़ी बांधे था तो कोई शरीर पर लम्बा चोगा पादरियों जैसी पहने था। औरतें, तरह-तरह के केश विन्यास किए हुए, मुलायम स्निग्ध बादलों के ही

खुले और अधखुले वस्त्र पहने थी। कहीं कहीं तो ऐसा भी लगा कि दूध के समुद्र में आर-पार मलाई जम गयी है और कहीं-कहीं ऐसा भी लगा कि धुनी हुई मुलायम रुई के बड़े-बड़े ढेर ज्यामितिक ढंग से, आप-ही-आप इकट्ठा हो गये हैं। मेरे कवि-मन को यह सब बहुत भला लगा और मैं बराबर इससे प्रभावित होता रहा। मेरी कल्पना काम करती रही और मैं बादलों के देश में निःसंकोच बिहार करता रहा। मुझे यह भूल गया कि मैं यान में हूं और यान से बाहर नहीं हूं। मैं यह महसूस करता रहा कि मैं उनके पास पहुंच गया हूं और मैं उन्हीं के देश का सौन्दर्य अपनी इन्द्रियों से आत्मसात कर रहा हूं। मुझे कालिदास याद आये, निराला और पन्त याद आये। शेली भी याद आये उनकी अमर रचनाएं याद आयीं। लेकिन मुझे ऐसा लगा कि जैसे इन कवियों ने भी ऐसे दृष्य नहीं देखे जैसे दृष्य मैंने देखे हैं। मुझे आज तक कोई ऐसी कविता नहीं मिली जिसमें कवि स्वयं बादलों के परिवार का सदस्य होकर उन्हीं के बीच जी रहा हो। मेरी अनुभूतियां नितान्त भिन्न थीं। मैं बादलों का कुटुम्बी हो गया था, बादलों की हर एक भंगिमा को देख रहा था, और वह क्या कर रहे हैं या कि उनका मनोजगत कैसा है यह सब जान रहा था और इस सबसे मुझे बडा आत्मसंतोष और सुख मिल रहा था। ऐसी थी वह बादलों के साथ जी रही मेरी जिन्दगी कि मैं कविता लिखना भूल ही गया और अब यह इच्छा हुई है कि मैं बादलों की कविता लिखूं।

यान को कहीं रुकना नहीं था। सीधे मास्को पहुंचना था। बीच-बीच में कभी-कही, नीचे होकर जब वह उड़ता था तब जमीन दिखायी दे जाती थी और कई बार तो ऐसा लगा कि जमीन में हरे-हरे खेत बिछे है और मकान तो ऐसे दिखे कि जैसे किसी ने जमीन पर पटिया रख दी है और नदियां पतली, बहुत पतली, नालियों की लकीरों सी लगी। रास्ते कमरबन्द की तरह पतले दिखे। मुझे मार्ग में कहीं-कोई जानवर या आदमी नीचे चलता हुआ नहीं दिखायी दे सका।

यान में हमें यान परिचारिका ने पहले मिनरल वाटर व शर्बत दिया जिसे हम लोगों ने बड़े चाव और रुचि से पिया।

फिर दोपहर का भोजन, ट्राली में भरकर, वह लायी और उसने हर एक को दिया। हम लोगों ने अपने आगे सीट की पीठ में लगी छोटी छोटी मेजों को अपनी तरफ खोला और

उन्हीं पर अपने भोजन की ट्रेज रक्खी। मैं निरामिष भोजी था। इसलिये मैने मांस नहीं लिया। मुझे खाने में गोल डबल रोटी, ब्राउन ब्रेड के कतरे, मक्खन और पनीर, खीरा और हरी पतली सब्जी का डन्ठल, नमक व मिर्च के छोटे पैकेट्स शर्बत को छोटा गिलास, मिनरल वाटर की बोतल और पैकेट बन्द छुरी-कांटे मिले। मैने मजे से खाया और खाते-खाते बाहर के दृश्य भी देखता रहा। मेरी बगल में नव भारत टाइम्स के न्यूज एडीटर श्री हरिदत्त बैठ थे। वे भी निरामिष भोजी थे। उन्होने भी यही किया। उनके बगल में श्री गुलाब रब्बनी तावां बैठे थे। वे मांसाहारी थे। उन्होने अपना भोजन स्वाद से किया। हम लोगों के साथ दिल्ली की कु॰ शान्ता गांधी व मद्रास के श्री चोखलिगम व केरल के उपन्यासकार शंकर पिल्लई व हिन्दी के लेखक और कवि श्री उपेन्द्रनाथ अश्क व कलकत्ते के श्री चिन्मोहन सेहानवीस व कु॰ चारु सक्सेना थी। उन लोगों ने भी अपनी-अपनी पसन्द का अपना-अपना भोजन किया। मैं नहीं जानता कि इन लोगों के मन में क्या हो रहा था।

यान् की गति तेज थी। दूरी छोटी होती जा रही थी। मास्को नजदीक आनेवाला था। दोपहार के तीन या साढ़े तीन बजे के लगभग हमारा यान मास्को पर उतरा। अब एयर-पोर्ट पर पांच बजे शाम तक हम लोगों के कागज-पत्तर की जांच परख होती रही और मैं अब पिछले दृश्य को भूलकर मास्को के एयर-पोर्ट पर सोवियत संघ के बारे में सोचने लगा। मुझे उसका इतिहास याद आया। उसकी अक्टूबर क्रांति याद आयी। मुझे महान लेनिन याद आये और उनकी प्राणलेवा संकट की घड़ियां याद आयीं जब वहां के निवासी जार के खिलाफ, स्थान-स्थान पर, लड़ाई लड़ रहे थे और पुरानी भू-दासता व सामंतवाद को धूलधूसरित करके समाजवाद की स्थापना के लिए प्राण दे रहे थे। मैं अन्दर से रोमांचित हो गया था और उस दिन वहा़ं पहुंच कर अपने को बड़ा धन्य समझने लगा था। मुझे उसदेश के दर्शन मिलेंगे, जिसे देखने की लालसा दिन-पर-दिन तीव्र होती जा रही थीं यह दिन मेरे लिये बड़े गौरव का दिन था। गौरव का दिन इसलिए था कि सोवियत संघ की वजह से आज दुनिया में शोषण समाप्त करने के लिए हर तरह की लड़ाई लड़ी जा रही है और हर एक देश में मनुष्य स्वाधीन होकर अपने विकास की ओर प्रयाण करने के लिए तत्पर है।

वहां से हम कार द्वारा रूसिया होटल ले जाए गये। यहीं हमें ठहराया गया। मैं उसके

कमरा नं.२२५४ में ठहरा। कमरे में टेलीविजन सेट, रेडियो लगा था। वह साफ-सुथरा व सुसज्जित था। साथ में बाथरूम था जहां ठण्ठे व गर्म पानी का प्रबन्ध था। हम लोगों ने चाय काफी आदि पी, फिर रात का भोजन किया। इसके पहले हम लोग मास्को शहर शाम को देख आये थे। मास्को और लुलुम्बा विश्वविद्यालय बाहर से देखा, नगर की सड़कों पर इधर-उधर कई जगह घूमे। नगर की सफाई व व्यवस्था देखकर मैं तो बहुत प्रभावित हुआ। सड़कों के इधर-उधर हरी वृक्षावली लगी थी। वृक्षावलियों के बीच से आदमियों के चलने का पथ बना था, बेंचे पड़ी थीं और कहीं कोई गन्दगी नहीं थी। जो लोग आते-जाते दिखे वे संतुष्ट और प्रसन्न दिखे। नगर में हीं कोई तनाव या उदासी नहीं दिखी। मुझे तो वहाँ की इमारतें तक सहृदय लगीं और ऐसा लगा जैसे बड़ी शान से कह रही हों कि हम दूसरे असमाजवादी देश क नगरों की ऊँची इमारतें नहीं हैं कि अपने यहाँ के आदमियों को निगल जाएँ; वह खो जाएँ और उनका व्यक्तित्व दूसरों के दबाव से दब जाए। वे यह भी कह रही थीं कि हम अपने नगरवासियों का स्वागत करती हैं। उन्हें सुख-सुविधा व आराम देती हैं और उन्हें अपनी छाया में लेकर उनके दुख-दर्द मेटती हैं और उन्हें राज कर्मण्य जीवन जीने केलिए अपने से बाहर खेतों, फैक्टरियों, मदरसों, अनुसधान शालाओं, दूकानों और कामकाज के विभिन्न स्थलों की भेजती हैं कि उन्हें युद्ध की विभीषिका फिर से न देखनी पड़े और वे संसार में रहकर शांति से समानता के आधार पर जीवनयापन कर सकें। मैं बड़ा खुश हुआ।

केदार जी मास्को को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने यह कविता लिखी-

देखा मास्को

जनता का जीवंत नगर,
सबके लिए खुला,
दगादार के लिए-दुष्ट के लिए बुरा,
सहज बन्धु के लिए सनेही,
सुखकर संगा, भला।

मानव,

गले हों दुनियाँ में,

यहाँ न गलता;

शोषण, चले कहीं

दुनिया में,

यहाँ न चलता;

अच्छी सच्ची, राजनीति है

पूरी पक्की ;

जन-जन की हो रही इसी से

खूब तरक्की ।

फिर १२ मई सबेरे का नाश्ता करके हम लोग मास्को के एयरपोर्ट पर आये। यहीं हम फिर १० बजे दिन को ऐरोफ्लोट पर चढ़े और लेनिनग्राद पहुँचने के लिए उड़े। धूप चमक रही थी। आसमान का नीलापन श्वेताम्बरी हो रहा था। एक घण्टे की यात्रा के बाद हम लोग लेनिनग्राद के एयरपोर्ट पर पहुँचे। एयरपोर्ट पर यहाँ मास्को से अधिक ठंडक थी। मुझे गरमकोट पहने रहने पर भी अन्दर तक ठंडक मालूम हुई। लेकिन वह भी सह्य थी। इसलिए मैंने परवाह नहीं की। हम लोग कारों द्वारा एस्टोरिया होटल पहुँचाये गये। कारें सरकार की होती है। रास्ते में काफी समय लगा। धूप वहाँ भी थी। सड़कें साफ सुथरी, लम्बी-चौड़ी चमचमा रही थी। दोनों तरफ लम्बे-लम्बे चले गए पेड़ों की पंक्तियाँ, झीनी-झीनी छाया जमीन पर छोड़ रही थीं। बच्चे, औरतें, व आदमी आते-जाते प्रसन्न मुद्रा में दिखे। यहाँ की इमारतें भी ऊँची और भव्य तथा कई मंजिलों की हैं। पत्त्थरों की बनी हैं। मैं एस्टोरिया होटल के कमरा नं॰ ५१२ हरीदत्त शर्मा के साथ ठहरा। शाम को ४ बजे से ६ बजे तक 'विंटर पैलेस' देखा। यहाँ १५०० कमरे हैं, म्यूजियम है, कमरे बड़े हैं। देखते-देखते हैरत हुई। मुझे इस नगर की सांस्कृतिक अभिरुचि का गहरा एहसास हुआ। जब मैंने विन्टर पैलेस के भीतर का म्यूजियम देखा। रूसी लोग अपनी तमम तरह की भौतिक, आध्यात्मिक, और सांस्कृतिक उपलब्धियों की ऐसी देखरेख करते हैं और उन्हें ऐसे सुरक्षित करते हैं कि जैसे वे उन्हें प्राण से भी अधिक प्यारी हैं। यहीं बात रह-रह कर मुझे मोह रही थी और मैं

उनके प्रति मन-ही मन कृतज्ञता प्रकट कर रहा था। जो लोग यह कहते हैं कि रूसी लोग प्राचीन के प्रति अत्यन्त अनुदार हैं और वे प्राचीन सभ्यता की समस्त देन को विनष्ट कर देते हैं और वे निरंकुश और निर्मम हैं उनकी यह बात मुझे सरासर गलत मालूम हुई। रूसी लोग इतिहास को और उसके प्रत्येक चरण के चिन्हों को अपने लिए सुरक्षित रखते हैं ताकि वे आज भी यह कह सकें कि कैंसे किन-किन परिस्थितियों से होकर आज वे समाजवाद को अपने यहाँ अवतीर्ण कर सकें। मुझे याद है कि नाजी लोग या अमरीकी फौजी लोग या कि दूसरे असमाजवादी देशों के फौजी शासक जब जहाँ अपने पाँव रखते हैं तब वहाँ की सभ्यता और संस्कृति के समस्त इतिहास की उपलब्धियों का चकना-चूर कर देते हैं। इसलिये मुझे यह देखकर विश्वास हुआ कि वे जहाँ और जब भी गये होंगे या जायेंगे उन्होंने वहाँ भी उसकी ऐतिहासिक उपलब्धियों को नष्ट न किया होगा और न वे करेंगे आगे भी।

सोवियत संघ की राजनीति समाजवादी राजनीति हैं इसलिए वह सही अर्थों में मानववादी हैं और ऐसे ही जनतांत्रिक स्वभाव की हैं।

इस 'विंटर पैलेस' यानी शिशिर प्रासाद पर २६ अक्टूबर को क्रांतिकारियों का अधिकार हो गया था और साथ ही चोदनोवंस्की को इसका कमाण्डैन्ट नियुक्त किया गया था जिसके तुरन्त ही बाद वह लेनिन से मिलते स्मोल्नी गये थे। यह प्रासाद मुझे प्रभावित कर सका और मैंने अपनी नोट बुक में उसे देखकर ही लिखा : Simply grand! इसे भीतर बाहर से देखता रहा और देखते-देखते उन दिनों का इतिहास सोचता रहा अैर इतिहास को सोचकर तब की की गयी क्रान्ति का महत्व आँकता रहा। अब यह प्रासाद रूस की सारी जनता का प्रासाद है। इसे देखने देश-विदेश की जनता आती है आर देख-देख कर दातों तले उंगली दबा कर चकित रह जाती है। शाम के छः बज चुके थे। प्रासाद बन्द होने जा रहा था। इसलिये उसे देखकर फिर होटल वापस आया। मैंने देखा कि आठ बजे रात को भी सूरज पश्चिमी आसमान में काफी ऊँचे चमक रहा था। रात दस बजे सूरज सोया था। रात होटल में सोता रहा और जब तीन बजे सुबह उठा तब देखा कि सूरज का प्रकाश फैल चुका था।

दूसरे दिन, तेरह मई को दस बजे दिन, होटल से बस से चला और PESKEREVSKOE-

MEMORIAL देखने पहुँचा। यह २६ हेक्टर क्षेत्रफल में था। प्रवेश करते ही सामने दिखायी दी विशाल खड़ी हुयी, प्रतीकात्मक माँ की मूर्ति। बताया गया कि यह १९४२ के वीरों का समाधिस्थल है। यहाँ लगभग पाँच लाख आदमी दफन हुए थे। यहीं पर कवियित्री ओल्गा बेल्ग्रास भी दफन हुई हैं। मैंने देखा कि तमाम बच्चे आये थे और साथ में फूल मालाएं भी लाये थे। वे सब समाधियों पर मालाएँ चढ़ा रहे थे। समाधियों पर हँसिए-हथौड़े अंकित थे। यहाँ का वातावरण मर्मस्पर्शी था। करुणा से द्रवित प्रत्येक दर्शक शान्त भाव से वीरों को नमन कर रहा था। मैं भी सन ४२ के रक्त-पात और तब की की गई नृशंस-बर्बरता को देख-देख कर क्षण-प्रतिक्षण विचलित होता रहा और हत्या करने वालों को कोसता रहा और मरने वालों की याद कर-कर उनको अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करता रहा। सोवियत सरकार ने इस स्थल को सुरक्षित करके आने वाली पीढ़ियों को यह जता दिया है कि युद्ध कितना भयंकर और विनाशकारी होता है कि फिर से उसकी पुनरावृत्ति कोई न करें। टेलीविजन वाले वहाँ आए हुए थे उन्होंने भी प्रसारण के लिये उस समय चित्र लिए।

साढ़े ग्यारह बजे दिन को हम लोग Smolni (स्मोल्नी) पहुँचे। यही वह स्थान है जहाँ रात के सवा दो बजे चोदनोवस्की लेनिन से मिल थे। तब लेनिन कमरे में काम करते हुए नई आज्ञाप्तियों के मसाविदे लिख रहे थे। इसके बाद यहीं सोवियतों की दूसरी कांग्रेस की बैठक हुई और मजदूरों सैनिकों तथा किसानों के नाम लेनिन ने एक अपील लिखी जो कांग्रेस ने स्वीकार की। उस अपील का एक अंश इस प्रकार है :- "मजदूरों, सैनिकों और किसानों के बहुमत की इच्छानुसार पेत्रोग्राद में हुए मजदूरों और नगर-सेना क विजयी विद्रोह का समर्थन पाकर कांग्रेस सत्ता अपने हाथ में लेती है ....अस्थायी सरकार का तख्ता उलट दिया गया है...... सैनिकों, मजदूरों और कर्मचारियों क्रांति जिन्दाबाद।" लेनिन ने युद्ध को मानव जाति के विरुद्ध सबसे बड़ा अपराध घोषित किया था। यहीं लेनिन ने भूमि सम्बन्धी वह आज्ञाप्ति निकाली थी जिसके अनुसार सारी भूमि की स्वामिनी जनता मानी गयी और यहीं लेनिन के नेतृत्व में दूसरी कांग्रेस ने सरकार बना दी और जनता ने कम्युनिस्ट पार्टी को देश का शासन सौंपा। पहले यहाँ संभ्रांत और प्रतिष्ठित कुटुम्बों की औरतों के पढ़ने के लिये कालेज था। यह १८०८ में बनी इमारत है। यहीं ब्रोत्स्की चित्रकार

की, सन १९२७ में बनायी हुई, लेनिन की आदमकद, रंगीन, तस्वीर देखने को मिली। तस्वीर में लेनिन खड़े हैं, अपनी सहज साधारण गरिमा के साथ और उनके पीछ वह रही है एक नदी । दीवार पर पूरा संविधान सुनहरे अक्षरों में लिखा है। इस तस्वीर को देखते-देखते यही सोचता रहा कि कितना महान था लेनिन, जो अपनी जनता के लिए ही रात-दिन जीता जागता सोचता-विचारता और क्रांति की निश्छल अगुवाई करता था। काश ऐसे नेता हमें भी हमारे देश में मिलते-हमारा देशा धन्य होता ।

फिर मैं वहाँ से लेनिन का एक दूसरा घर देखने गया । वह भी लेनिन का म्यूजियम बना दिया गया है । यहाँ लेनिन का रिकार्डेड भाषण, उन्हीं की आवाज में सुना गया । मैं उसे समझ तो नहीं सका लेकिन स्वरों के आरोह और अवरोह और व्यंजनों के प्रवाह से मुझे यह लगा कि उनके भाषण में उतार-चढ़ाव नाम-मात्र को था और वह कोई दो टूक बात कर रहे थे, इस म्यूजियम को देखकर बहुत-सी और बातें मालुम हुई कि लेनिन यहाँ कैसे रहे और किसके साथ व कब तक रहे।

वहाँ से होटल आया। खाना आया, फिर सवा पाँच बजे "फ्रेंडशिप पैलेस" देखने के लिए गया। यहाँ इन्डों-सोवियत कल्चरल सोसाइटी का स्वामित्व है। वहाँ की म्यूनिसिपैलिटी ने, दूसरे महायुद्ध से नष्ट हो जाने पर, इसका पुनरुद्धार कराया था और इसे उक्त सोसाइटी को सौंप दिय था। इसमें, नष्ट होने के पहले, सोने का तमाम काम दीवालों पर अंकित था। युद्ध के बाद चौदह किलो सोना लगाकर म्यूनिसिपैलिटी ने उसे वैसा ही रूप दे दिया जैसा पहले था। यहीं कई लोगों से बातचीत हुई । चाय-पानी हुआ । यहीं मिलें :- (एक) वित्तर बालिन प्राध्यापक भारतीय-भाषा विभाग, लेनिनग्राद विश्वविद्यालय (दो) रूदोल्फ वी. वाराबनोब, १९२० X ११ लेनिनग्राद फोन्टैन्का - २१, (तीन) पेत्तचेंको वाई. ओरियन्टल फैकल्टी, लेनिनग्राद विश्वविद्यालय, लेनिनग्राद । साहित्य पर और कला पर बातें होती रहीं। यहीं पेत्तचेंको महोदय न मुझे एक किताब दिखाई । उसमें लेनिन के ऊपर लिखी मेरी कविता का रूसी अनुवाद छपा था । अपना नाम तो मैंने पढ़ लिया लेकिन कविता नहीं पढ़ सका। तब उन्होंने उसे पढ़ा और अर्थ बताया, निश्चय ही वह मेरी थी । यह बड़ी सुखद बात हुई । मैं प्रसनन हुआ कि इस दूर विदेश में भी मेरी कविता को सराहा गया और मेरे आने

पर पेत्तचेंको महोदय ने मुझे पढ़कर सुनाया । काव्य में ऐसी रुचि बहुत कम लोगों में होती है। लेनिनग्राद में काव्य-कला और साहित्य और संस्कृति के प्रति निश्चय ही अत्यधिक अभिरुचि मिली । यहाँ भी टेलीविजन के लोग साथ आये थे और अपना काम कर रहे थे। हम लोगों की तस्वीरें खिंचती रहीं। यहीं प्रसिद्ध रूसी लेखक टालस्टाय के परिवार की एक महिला ने आकर हिन्दी में अपनी रुचि का प्रदर्शन किया। वे हिन्दी बोल रही थीं। अच्छी-खासी तन्दरुस्त महिला हैं : रंग गेहूँआ हैं। देखने में यूरोपियन नहीं लगती। स्वभाव से शालीन और मर्यादित । मुझे इनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं इन्हें देख कर इनमें टालस्टाय की मूर्ति देखता रहा ।

फिर रात आयी और होटल में सोया -

चौदह मई को साढ़े दस बजे दिन होटल से दास्तोवस्की स्ट्रीट गये। यहाँ उनका घर था । यह रूस के महान उपन्यासकारों में हैं, किरये के मकान में रहते थे। लेनिनग्राद में ही कई घरों में किराये पर रहे थे। यह घर उन्हीं में से एक था। इसी घर में उनके नाम का म्यूजियम है। यह म्यूजियम दो भागों में हैं। एक भाग में उनका साहित्य संग्रहीत है-दूसरे भाग में उनके कालेज और बचपन के दिन बीते थे। वे १३ अक्तूबर, १८२१ को पैदा हुए थे। इनकी माँ, मास्को के एक व्यापारी की पुत्री थी, जिनका देहावसान १८३७ में हुआ। इसके पिता ने इन्हें पेत्रोग्राद के इन्जीनियरिंग कालेज में पढ़ाया। लेकिन दास्तोवस्की को, उनकी प्रतिभा ने, इन्जीनियरी से हटाकर उपन्यासकार बनाया और वे मानवमन की अतल गहराइयों के सूक्ष्म चित्रण के विश्वविख्यात उपन्यासकार हो गये। इनके उपन्यासों में अपराधी वृत्तियों के नर-नारियों के मनोजगत का बड़ा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मिलता है। इनके उपन्यासों के पात्रों से तब के आदमियों के जीवनवृत्त का आकलन मिलता है और यह मालूम होता है कि उस समय के गये-गुजरे लोग, अपने समाज में, कैसे जीवन-यापन करते थे और किस बुरी तरह से संत्रस्त और उपेक्षित रहते थे, ओर इस पर भी किन-किन तरीकों से जिन्दगी जीते और अपनी आयु अन्धकार को समर्पित करते थे। इसी म्यूजियम में उनकी पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ देखीं। छपी हुई उनकी पुस्तकें देखी। तब के छपे हुए अखबारां में उनके बारे में टिप्पणियाँ देखी। उनके चित्र भी देखे। उनके उपन्यास के पात्रों के, तब के बनाये गये, चित्र

भी देखे। इन्हें देखकर कुरूपता और विरूपता का एहसास हुआ और साथ-ही-साथ यह भी एहसास हुआ कि दोस्तोवस्की स्वयं इनको चित्रित करने के लिए कितना कुछ नहीं, इनके साथ मिल-मिलाकर वैसा ही भोगते रहे होंगे। शायद कोई दूसरा यह काम नहीं कर सकता था, अगर दोस्तोवस्की न होते तो ऐसे उपन्यासों के लिखे जाने की संभावना कम ही होती और अगर होती भी तो उनके बहुत बाद होती। यहाँ एक सम्मति पुस्तिका रखी हुई थी। इसमें आये-गये लोग अपनी प्रतिक्रिया अंकित कर जाते थे। मैंने भी इसमें हिन्दी में ही यह नोट किया-"मानव-मन को गहराइयों में उतरने वाले इस महान उपन्यासकार के इस म्यूजियम को देख कर मुझे प्रसन्नता हुई" मुझे विश्वास है कि मेरे न रहने पर भी मेरे ये शब्द कालान्तर तक वहाँ उस देश के हृदय पृष्ठ पर अंकित रहेंगे।

इसके बाद सोवियत संघ के लेखक-संघ की लेनिनग्राद शाखा में गया। वहाँ उस शाखा के मंत्री जी० होलोपोव, कवि वी० तोरोपीजिन से भेंट और वार्ता हुई। मंत्री महोदय ने बताया कि सोवियत संघ में यह शाखा द्वितीय है। साहित्य की सभी विधाओं के लेखक, कवि, और नाटककार इसके सदस्य हैं, इसका प्रत्येक लेखक कोई विषय चुने या लिखे वह स्वतंत्र हैं। किसी पर काई दबाव या जोर-जबर नहीं है। संघ का कर्त्तव्य है कि वह लेखकों को एकताबद्ध करें। मंत्री महोदय को छूट है कि वह जीवन के प्रमुख विषयों पर लिखने के लिए लेखकों को अपना सुझाव दे सकते हैं। पर वे उन्हें कोई आदेश नहीं दे सकते। इस शाखा के कई भाग है, कवियों, उपन्यासकारों व नाटककारों इत्यादि से सम्बन्धित यहाँ लेखक आते हैं। अपनी समस्याओं पर विचार-विनिमय करते हैं। कोई भी लेखक अपनी कृति को ले जाकर शाखा के अपने विभाग के लेखकों से उस पर विचार-विनिमय कर सकता है। वहाँ के लोग उन कृतियों की आलोचना-प्रत्यालोचना भी करते हैं, कभी-कभी कोई-कोई लेखक इससे बुरा भी मान जाता है। हाँ, एक बात और मंत्री महोदय ने बताई कि छपने से पहले किसी भी उपन्यास को वहाँ के चार सम्पादक देखते हैं और तब वह छपने को भेजा जाता है। नई कविताएं और नये उपन्यास पहले मासिक पत्रिकाओं में छपते हैं और फिर पुस्तक रूप में, लेखकों को पहले ही कुछ धन मिल जाता है, संकट की घड़ियों में शाखा लेखकों को आर्थिक सहायता भी देता है, दवा-दारू की व्यवस्था भी करती है।

सैनीटोरियम भेजने में मदद करती है। जरूरत पड़ने पर अर्थहीन लेखक को मासिक वेतन भी देती है, और यह भी व्यवस्था करती है कि वह देश को देखें और देखकर लिखें, शाखा देश के दूसरे स्थानों के लेखकों से मिलने-मिलने के अवसर भी प्रदान करती है, और सम्पर्क सूत्र भी स्थापित करती है। इसमें लेखकों का क्लब भी है, इस शाखा में लेखकों को कमरे भी दिए जाते है कि वे वहाँ बैठकर अपना लेखन-कार्य कर सकें। उनके खाने इत्यादि का प्रबन्ध भी होता है।

इसके बाद कवि महोदय ने हमें बताया कि जब घर में लिखना संभव नहीं होता तब वे यहाँ आकर लिखने का कार्य करते हैं। इन्होंने मंत्री महोदय की बातों का समर्थन किया और बताया कि आरोरा (Aurora) नामक मासिक पत्रिका भी निकाली जाती है। उनकी रचनाएँ भी छापी जाती हैं। प्रसिद्ध लेखकों की रचनाएँ भी छपती हैं। नये रचनाकार अपनी रचनाएँ दूसरी पत्रिका में भी छपा सकते है, कोई रोक-टोक नहीं है। यह पत्रिका नये रचनाकारों की मदद करती है। यहाँ से एक वार्षिक पुस्तक भी प्रकाशित होती है जिसका नाम "यंग लेनिनग्राद" होता है। पेशेवर लेखकों को भी यहाँ पर सुविधाएँ उपलब्ध हैं। किसानों, मजदूरों, कालेजों, नगरों और गाँवों के नये पुराने सभी लेखकों को यह अपनी सहायता दिया करती हैं। इस संघ को यह श्रेय प्राप्त है कि यह कई प्रतिभाशाली नये लेखकों को सामने ला सका है- वे विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित है। और बौद्धिक व्यक्तित्व रखते हैं। कवि महोदय ने साहित्य के विषय में बताया कि वह एक तो नागरिकता प्रधान होता है और दूसरे काव्यमय होता है जिसमें परम्परा को अपनाया जाता है और अच्छी कविताएँ लिखी जाती हैं। उनकी शाखा की सबसे कम उम्र की महिला कवियित्री अलेक्सीव है। पाठक उनकी कविताओं को बड़ी रूचि से पढ़ते हैं और उनका बड़ा मान-सम्मान है।

इस महानगर लेनिनग्राद को देखकर मैंने लिखा :-

"देखा

लेनिनग्राद,

अदेखा सूरज देखा;

सहस्रार से

खिले नगर का

अचरज देखा।

देखा

मानववाद,

अदेखा उत्सव देखा;

जनता से

प्रतिबद्ध काव्य का

सौष्ठव देखा।"

मास्को राजनीतिक चेतना का महानगर है। लेनिनग्राद सांस्कृतिक चेतना का कलात्मक महानगर है। दोनों अपने-अपने ढंग के महत्वपूर्ण महानगर है।

फिर रात को होटल आया और वहाँ से इरीवाल (Yere Van) जाने क लिए अर्धरात्रि के बाद लेनिनग्राद से हवाई-अड्डे पर पहुँचा। बड़ा सुन्दर हवाई-अड्डा है। रात को ही हवाई जहाज से उड़े। दूसरे दिन सबेरे छः बजे के लगभग इरीवन के हवाई-अड्डे पर उतरे। वहाँ से 'ANI' होटल गये। वहाँ के फ्लैट नं. ७ के कमरा नं. ६१८ में मैं और श्री हरिदत्त शर्मा एक साथ ठहरे। इस होटल का नामकरण वहाँ के प्रसिद्ध साहित्यकार सदरुद्दीन ऐनो के नाम पर हुआ जान पड़ता है।

दोपहर को मारटिरास सारियान (Martiros Sarian) म्यूजियम देखने गया। यह इसी नाम के प्रसिद्ध चित्रकार की यादगार में बनाया गया, इन्हीं के चित्रों का संग्रहालय हैं। चित्रों को दखेता रहा। चित्रों में व्यक्त चित्रकार के दिल और दिमाग से निकले रंग-रूप में अंकित वहाँ के परिवेश और इसमें जीने वाले आदमियों को अपने इंद्रियबोध से पकड़ता रहा। मैं तन्मय और तल्लीन रहा। कलाकार अदृश्य से जैसे बोलता रहा, और मैं उसे सुनता रहा। मुझे चित्रों की भाव भंगिमायें समझ में आने लगीं। उनका मौन भी सार्थक वाणी बन गया। मैं उस वाणी से विभोर होता रहा। अपने से बेसुध मैं उन्हीं में खोया रहा। रंगों का सूक्ष्म तरल प्रवाह प्रकृति के देह की चित्रमयता निरूपित करने में पूर्णतया सक्षम हुआ था। मानव शरीर की आकृतियों से पौरुष और कर्मठता साकार हुई थी जहां कला अमूर्तन का

आभास देती थी वहां भी वह कलाकार के अन्तर्मन के गहरे मानवीय बोध को ही व्यक्त करती थी। मैने उन चित्रों में न आदमी खोया हुआ पाया, न उसका भीतरी और बाहरी परिवेश। कला सफल हो गई थी, आदमी की सेवा में लगकर। उदास आदमी भी आदमी लगा- वह न झील में डूबा कुरूप बादल का टुकड़ा लगा, न कील से लटकता टंगा, मैला-कुचैला कपड़ा। उदास प्रकृति भी प्रकृति लगी- वह मरे हुए कुत्ते की लाश नहीं लगी। आज की अमूर्त कला से भिन्न इस चित्रकार की अमूर्त कला थी। आज तो अमूर्त कला विसंगतियों को उकेरती है और जो नहीं है- जो नहीं हो सकता-उसको रूपायित करती है इसीलिए किसी की समझ में नहीं आती। कोई भी कला जब मानवीय सम्पर्क से वचित हो जाती है अन्यथा उसके परिवेश से पलायन कर जाती है और तांत्रिकों की अथवा अघोरियों की वृत्तियों का विदूषण पा लेती है तो वह कला नहीं रह जाती, वास्तव में अनाप-सनाप हो जाती है। मैं इस प्रसिद्ध कलाकार की सराहना करता रहा और उसकी मानवीयता से अभिभूत होता रहा। इनका जन्म २८-२-१८८० में हुआ था।

यह म्यूजियम तिमंजिला है। इसमें सारियान की १५० तसवीरें और ग्राफिक्स हमेशा देखी जा सकती है। पेरिस में सन् ३७ में उनकी चित्रों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी हुई थी वह आरमीनिया की विज्ञान अकादमी के सम्माननीय सदस्य सन् १९५६ से रहे। सन् १९६० में उन्हें सोवियत संघ का जन कलाकार होने का पुरस्कार मिला।

म्यूजियम से लौट कर होटल आया। लंच लिया। उसके बाद इरीवान से, बस द्वारा, हम लोग ७० किलोमीटर का रास्ता तय करके वहां पहुंचे जहां सेवान झील थी इसे सागर भी कहा जाता है। यह विशाल है। इसके एक तरफ रेलवे स्टेशन है। स्टेशन कुछ ऊंचाई पर हैं। यहां के लोगों ने हम लोगों को अपने स्नेह से भाव-विभोर किया। पानी बरसा, बादलों की फुहार को हम लोगों ने अपने ऊपर लिया। उन्हीं लोगों ने हमें स्वादिष्ट भोजन खिलाया। पेय भी पिलाया। उनके आतिथ्य-सत्कार की याद आज भी ताजा है। झील के दूसरी तरफ ऊंची पहाड़ी का सिलसिला चला गया। जल में उठती लहरियां अनंत काल की सूक्ष्म से सूक्ष्म संवेद्य चेतना का नाद-नृत्य कर रही थी। मैं काल के अन्तर्मन में डूबा अपनी धरती का सौन्दर्य निहार रहा था। आकाश के आक्रोश में भी वह धीरज नहीं छोड़ती और अपने कर्मठ

पुत्रों को आश्रम और अवलम्ब दिये रहती है।मैं खड़ा तो तट पर रहा बड़ी देर तक, परन्तु खडे-खडे में ही जल के बल्कल वसन पहनकर नाच नाच उठता रहा। देर हो रही थी।फिर हम लोग वापस चल दिये। मैंने दिन को बिदा दी। उसने हमें बिदा दी। हम फिर उसी रास्ते से अपने होटल आये। रात होटल में बिताई। मैं उस झील के सपने देखता रहा। उसकी मछलियों की कहानी सुनता रहा।

दूसरे दिन १६/५ को सुबह होटल से बाहर निकल आस-पास की सड़कों में टहला-घूमा। दुकाने देखता रहा। दुकानों में भरा माल देखता रहा। आते-जाते लोगों की चाल-चलन देखता रहा। जिसे देखता उसी के मन में बैठने का प्रयास करता और कुछ-न-कुछ गुपचुप जान लेने का उपक्रम करता । मैं भाषा की सामर्थ्य छोड़कर, भाषा से परे पहुँच कर, केवल भाव-भागिमाओं से हाव-भाव से, नाक-नक्शे से, गति गमन और शरीर संतुलन से उस नगर के निवासियों की चित्तवृत्तियों को जानता-पहचानता रहा और यह निष्कर्ष निकाल सका कि यहाँ के लोग-बाग तन और मन से खुशहाल हैं और दीन-हीन मनों दशाओं के शिकार नहीं। उन लोगों को देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई और मैं आश्वस्त हुआ कि मनुष्य यहाँ भी अपनी गरिमा तो पा रहा है।

१०:३० बजे दिन इरीवान स्थित बच्चों की चित्र गैलरी देखने गया। चार साल पहले गैलरी में प्रदर्शनी दिखाने का काम शुरू हुआ था। तब से अब तक साठ प्रदर्शनियों का आयोजन हो चुका है। इस प्रदर्शनी में जिसे हम देखने गया। चार साल पहले गैलरी में प्रदर्शनी दिखाने का काम शुरू हुआ था। केवल एक स्कूल के बच्चों के बनाये हुए चित्र दिखाये गये थे। अब यह प्रदर्शनी बराबर हुआ करेगी। विदेश के स्कूलों के बच्चों के चित्र भी यहाँ मंगाये जायेंगे और दिखाये जायेंगे। यहाँ से भी रूसी बच्चों के बनाये चित्र प्रदर्शन हेतु विदेश भेजे जायेंगे वहाँ वे बच्चों के चित्रों की प्रदर्शनियों में दिखाये जायेंगे। इस एक ठोस प्रयास से मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। मुझे यह जान कर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि सोवियत भूमि में बच्चों की कलात्मक प्रतिभा को बड़े उत्साह और लगन के साथ विकसित किया जा रहा है। सोवियत सरकार समाजवादी चेतना के अंकुरों को अपनी ममता से इस काबिल बना रही है कि वे भविष्य के सिरमौर बनें और उनकी कला से मानव समाज का

कल्याण हो। अन्य देशों में बच्चों की कलात्मक अभिरुचि के विकास की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। तभी तो विरले ही प्रसिद्ध होने का अवसर पाते हैं। साधारणतया तो वहाँ कला का भी पूर्णरूपेण शोषण किया जाता है और बचपन में ही प्रतिभाओं को कुंठित कर दिया जाता है।

मैंने एक चित्र में एक पेड़ बना देखा। पेड़ में एक लाल फल देखा। उस एक फल को ही तोड़ रहा था एक आदमी जो घोड़े पर सवार था और घोड़ा था कि जमीन से उठा उड़ा जा रहा था। मैंने इस चित्र को देखकर स्तम्भित रह गया। उस चित्र का अर्थ लगाने लगा। उससे बालक-चित्रकार की चेतना के अन्दर पैठने लगा। निश्चय ही बच्चा अपने परिवेश से पूरी तरह जुड़ा हुआ है। दृश्य में घोड़ा है। वह पूरी ताकत से जमीन से उठा उछाल की स्थिति में है। बालक ने इस स्थिति में कभी-न-कभी घोड़ें को देखा ही होगा। तभी तो वह इस चित्र में आ गया। घोड़ा है तो घुड़सवार होना ही चाहिए, जो घोड़े को अपनी सफलता के लिए इस्तेमाल करें। चुनान्चे घोड़े पर सवार है एक सवार। प्रकृति उदार होती हैं। पर अपने फल सहज ही नहीं देती। आदमी को कठिन प्रयास करना पड़ता है कि वह फल पा सके। पेड़ ऊँचा है। आदमी उस पर चढ़ सकता था। परन्तु नहीं उस बालक चित्रकार ने आदमी को पेड़ पर नहीं चढ़ाया क्योंकि उसे सविशेष प्रयास करने का एक जीवंत चित्र खींचना था और ऐसे ही प्रयास का चित्रण उसने घोड़े पर सवार को चढ़ा कर और घोड़े को उछाल कर फल की ओर गया दिखा कर किया। इस कलात्मक विम्बविधान से एक साधारण से दृश्य में जान पड़ गयी और देखने वाला मुग्ध हुए बिना न रह सका।

समाजवादी चेतना का यह प्रारम्भिक प्रदर्शन मात्र था। ऐसी चेतना ही तो आगे चल कर बड़े-बड़े असम्भव कार्यों को सम्भव करती है और साहसिक इतना होती है कि ज्ञान की खोज में अंतरिक्ष में संदेह प्रवेश करती है और संसार को चकित कर देती है।

एक चित्र में हाथी दिखाया गया। बच्चों को हाथी विशेष प्यारा है। हाथी देखने में सबसे बड़ा होता है और अपनी स्थूल काया से सूँड लटकाये हुये चलने-चलने में सब कुछ लपेट लेने की मुद्रा में अजूबा भी लगता है। धूल उड़ाता है तो अपने और दूसरों को धूल-धूसरित कर देता है। जब सूँड़ में पानी भर-भर कर फहारे मारता है तो रिमझिम बरसात

कर देता है। जब बड़े-से-बड़े बोझ को पीठ पर लाद कर चलता है तो आँखे देखती ही रह जाती हैं। तब वह पहाड़ ही लगता है। शायद इसी सब को व्यक्त करने के लिये बालक चित्रकार ने हाथी का चित्रांकन किया था। घोड़े कई चित्रों में दिखे। स्वाभाविक है ऐसा अश्वप्रदर्शन। घोड़े तो सहज में ही दुनिया में हर जगह दिख जाते हैं। फिर सरकस में हाथी और घोड़े तो अपना-अपना कमाल दिखाते ही रहते हैं और बच्चों को सरकस देखना भी बहुत अच्छा लगता है। सम्भवतः इसीलिए तो बालकों को समाजवादी चेतना में पशुओं को बिम्बित होने का प्रश्रय मिला।

एक दूसरा चित्र, देखते ही, अपनी क्रूरता से क्षुब्ध कर देता था। एक घोड़ा था। घोड़े की दुम के बालों से आदमी के सिर के बाल बांधे थे। घोड़ा गति की मुद्रा में था। आदमी जमीन में घसिट रहा था। बालक तो स्वभावतः कोमल और दयालु होते हैं। ऐसी निर्दयता उनमें नहीं होती। फिर भी उस बालक चित्रकार में ऐसी प्रवृत्ति के दर्शन हुये। ऐसा क्यों हुआ? मैं सोचता रहा। समाजवादी देश में तो बालकों के प्रति आदमी से अधिक महत्व का हो गया, क्यों? शायद बालक आदमी को, उसके किसी जघन्य अपराध के लिये दंडित कर रहा है। यह समाजवादी समाज के बालक का नैसर्गिक दंड विधान मालुम पड़ता है। हो सकता है कि बालक ने यह सोचा हो कि उसके देश में आदमी के प्रति वही ऐसा क्रूर बर्ताव कर सकता है जो व्यक्ति मदांध होकर अपनी आदमियत खोर, पाशविक वृत्ति का हो गया हो।

एक दूसरे चित्र में दूल्हा-दुलहिन का चित्रांकन किया गया था। दूल्हा श्वेत शरीर का काले कपड़ा पहने था। दुलहिन लाल ओंठों वाली हरे वस्त्र पहने थी। आकर्षक रंग-योजना थीं, एक अन्य चित्र में शेर और जेबरा भी देखने को मिले। नदी, नाव, मछली, जाल, तालाब इत्यादि भी बच्चों को प्रिय लगे थे। उन्होंने इनका भी चित्रांकन किया था। एक काला चीता बनाया गया था। उसकी आँखे, उसका मुँह, उसके दॉत विशेष आकर्षक बनाये गये थे। वैसे चीता काला नहीं होता। परन्तु उसे काला बनाकर उसकी आँखों, उसके दाँतों और मुँह को उभार गया था। उस पशु की बर्बरता साकार हो गयी थी।

एक ऐसा भी चित्र था जिसमें सिर तो स्त्री का और शेष शरीर पक्षी का था। शायद

बच्चे के मन में यह आया रहा हो कि चिड़िया भी रहे और स्त्री रहे। तो स्त्री के एवज में उसका सिर आ गया। बच्चा माँ बहन की मुखाकृति से ही तो अधिक प्रभावित होते हैं। चिड़िया का उड़ना बच्चों को बहुत भाता है। इसलिये मां हो या बहन वह शेष अंगों से चिड़िया बना दी गई कि उसके ऐसे चित्र से उसकी भावनायें दोनों के प्रति व्यक्त हो सकें। न वह मां-बहन को छोड़ सकता है न पक्षी को। सिर छोटा और आंखे छोटी और मुंह भी छोटा ही होता है। वह बोलता भी है तो समझ में नही आता। मां बहन का बोलना प्यार की अभिव्यक्ति करता है। फिर आज के युग में अन्तरिक्ष यान की यात्रायें हो रही है। बालक मन में ऐसे यान. का आकार अभी बन नहीं पाया इसलिये उसने यान के बजाय स्त्री को पक्षी बनाकर उसे अन्तरिक्ष की उड़ान करा दी।

एक गाड़ी में लाल रंग का घोड़ा जुता है। गाडी में बैठा है एक लड़का जो गिटार रहा है। गिटार को खड़ा किये है, सम्भाले है एक कुत्ता। यह सब साधारणतया नहीं होता। बाल-मन ने ऐसा चित्रांकन करके अपनी मनोभावना को प्रकट कर दिया है। बच्चे को कुत्ता प्रिय है। उसे संगीत प्रिय है। उसे घोड़ागाड़ी प्रिय है। कुत्ता उसका प्यारा साथी है। इसलिए वह गिटार बजाता है। दोनों आनन्द लूटते हैं और उसकी साथी कुत्ता उसके संगीत समारोह में उसकी सहायता करता है। समाजवादी समाज का बालक संगीत को अपने पूरे परिवेश से जोड़ता है और दूसरों के लिए भी प्रभावशाली बनाता है।

एक बालक ने अपने चित्र में उल्लू बनाया था। साधारणतया आस पास उल्लू कम दिखाई देते हैं। फिर भी इस बालक चित्रकार ने उसे कहीं न कहीं देखा ही होगा तभी तो वह उसे चित्रांकित कर सका। मैं इस चित्र प्रदर्शनी को देख कर अपने देश के बच्चों के बारे में सोचता रहा। काश उनकी रचनात्मक प्रतिभा को ऐसे ही विकसित करने के साधन उपलब्ध होते तो वह अपने परिवेश और देश से जुड़ सकते और उनकी भावनायें संस्कारित हो सकती। ऐसा नहीं हो पा रहा अपने देश में। तभी तो हमारे देश के बच्चें उच्छृंखल और उद्दंड होते जा रहे हैं। केवल स्कूल में जाकर ही वह कभी भी अब सुधर नहीं सकते।। उनको ज्ञान तो किताबों से मिल सकता है परन्तु पुस्तकें उनकी चित्त वृत्तियों को दृष्टि और दिशा देकर माता-पिता के गुणों से सम्प्रक्त नहीं कर सकती। आवश्यकता है इस ओर तुरन्त ध्यान देने

की।

बारह बजे दिन 'आरमीनियन' चर्च देखने गये। बहुत बड़ा कम्पाउण्ड थां उसमें साफ सुरक्षित गिरजाघर था। एक बजे दिन तक देखते रहे। यह गिरजाघर कैथोलिक और प्रोटेस्टैंन्ट गिरजाघरों से भिन्न था। इस चर्च में वे सब उपहार जो भिन्न देशों के इसके मतावलम्बियों से बरसों पहले, इसे मिले थे संग्रहीत देखे। अठारहवीं सदी में मद्रास से इसे दो कपड़े के चित्र (दीवाल में टाँगने के) मिल थे उन्हें देखकर ऐसा लगा कि जैसे हम मद्रास पहुँच गये हों। दोनों नगरों के बीच की दूरी समाप्त हो गई थी।

सवा एक बजे दिन स्थल को देखने गये जहाँ खुदाई करके भू-गर्भ से एक गिरजाघर का अवशेष निकाला गया था। यह ज्वार्थनोटज नामक कथीड्रल था। इसके ३ खण्ड थे। गोलाकार इमारत की शकल में था। इसका फन की शकल का गुम्बद था। इसकी खुदाई सन् १९०५ में शुरु हुई थी। सन् १९३७ में इसका म्युजियम स्थापित किया गया। यहाँ मुझे अपने देश की बनी मिट्टी की बड़ी डहरी जैसी एक डहरी भी देखने को मिली। अन्य बरतन भी देखे जो मिट्टी के ही बने थे। लोहे की चाभियाँ और ताले भी देखे। बिल्कुल अपने यहाँ के जैसे, वैसे ही बड़े-बड़े, भारी और मजबूत जैसे हमारे देश में पहले बना करते थे। पत्थर की बनी जमीन पर अंकित सूर्य घड़ी देखी। इसमें गिनती के बजाय आरनियम भाषा के अक्षर अंकित थे। इसमें बीच में एक छेद था। मेरे गाँव के मदरसे में सन् २१ में जैसे खपड़े छाये रहते थे वैसे ही खपड़े यहाँ खुदाई में मिले देखे। पुरानी कारीगरी भी देखने को मिली। पत्थर पर खुदी अंगूरलताएं देखीं। अलंकरण का शिल्प मन मोह रहा था। एक बड़ा गड्ढा भी देखा। बताया गया कि इसमें अंगूर से निकाला गया रस संचित किया जाता था। और भी अवशेष देखे। रहने के घरों में पत्थरों के बीच में मिट्टी (पकाई हुई) की पाइपलाइन ले जायी गयी थी। इन पाइपलाइनों से पानी बहकर आता था इसके अलावा वहाँ पानी गरम करने के पहले के स्थल देखे। तब के जमाने में आरमीनिया का प्रतीक ईगेल था। वह भी एक पत्थर पर खोद कर तब बनाया गया था। अब तक सुरक्षित है।

एक कुआँ भी देखा। वह ५० मीटर की गहराई का था। तब भी इतना ही गहरा था। उसी से उस गहराई से तब पानी निकाला जाता था।

लगभग दो बजे दिन को हम लोग बराक्का का स्टेटफार्म देखने गये। वहाँ ३०० हेक्टर भूमि पर अंगूर की खेती की जाती है। १०० हेक्टर भूमि पर अन्य फलों की खेती होती है। यहाँ चार सौ आदमी रहते हैं जो किसी न किसी रूप में इस फार्म से सम्बद्ध हैं। कुछ के अपने घर हैं। कुछ फार्म के घरों में रहते हैं। यह फार्म छोटे बच्चों की देखरेख का पूरा प्रबन्ध करता है। यहाँ उनके लिए किंडरगार्डन स्कूल स्थापित है। उसे देखा, बहुत-बहुत तरह के खिलौने थे। बच्चों के सोने के लिए व्यवस्थित और सुन्दर प्रबन्ध था। पालनों में स्वच्छ सफेद गद्दे और तकिये लगे थे। औरतें उन बच्चों की देखरेख कर रही थीं। यह पक्की इमारत थी, दो खंड की। हर कमरा सुसज्जित था।

अंगूर का खेत देखने गये। अभी पौधे बड़े न हुये थे। अगस्त में फल आना शुरु होगा। जाड़े में इन पेड़ों को मिट्टी से ढंककर दबा दिया जाता है ताकि बरफ इन्हें मार न डाले।

शाम ७।। बजे एक 'बैले' देखने गये। यह एक पुराने संगीतज्ञ (कम्पोजर) के जीवन पर आधारित नाट्यप्रदर्शन था! बताया गया कि उस संगीतज्ञ ने जब अपने देश का करुण इतिहास पढ़ा तो वह असंतुलित मस्तिष्क का हो गया। तुर्कों ने आरमीनिया पर हमला किया और उसे ध्वस्त किया था। उस ध्वंस का इतिहार वेदनामय था। वेदना की तीव्र अनुभूति ने आरमीनिया के उस संगीतज्ञ को पागल बना दिया। इसी मार्मिक घटना को लेकर संगीत-नृत्य नाटिका लिखी गयी थी। उसी नाटिका का प्रदर्शन था। इसमें जनता से एक हो कर अपने देश का पुनरुद्धार करने की ललकार और पुकार का अभिव्यंजन हुआ था। हम लोग देखते रहे। संगीत से प्रभावित होते रहे। हमारे हृदय द्रवीभूत हुए। इसके द्वारा जो सामूहिक नर-संहार हुआ था वह साकार हो गया था। जलियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड जब हमें अत्यधिक मर्माहत कर सका तो यह तो उससे भी बड़ी दारुण और हृदयविदारक घटना थी। हम सब तब इससे क्यों न प्रभावित होते।

'बैले' का स्वरान्त निराशाजनक न होकर मानवीय गुणों का पोषक एवं उत्साहजनक और आशप्रद था। फिर जनता देश का निर्माण करती हुयी दिखायी गयी थी। यह सब मंच पर सामूहिक रूप से दिखाया जा रहा था। इसे 'राष्ट्रीय बैले' की संज्ञा दी गई है। हम अपने

देश में अभी भी इस तरह के प्रदर्शन करने की ओर सक्रिय नहीं हुये। हमारे देश की नाट्य और नृत्य प्रतिभा अभी भी मन बहलाने के लिए ही प्रयुक्त होती है। भविष्य में यदि ऐसा न किया गया तो हमारा रंगमंच जन-जीवन से कटकर कुछ दिनों में नष्टप्राय हो जायेगा।

रात में होटल में रहे।

दूसरे दिन सुबह दस बजे हमने होटल छोड़ा। एक प्रसिद्ध म्यूजियम देखने गये। वह इस दिन बन्द था। हम उसे न देख सके। वहाँ से लौटकर हम लोग शहीदों का स्मारक देखने गये। कंकरीट का बना था। विशाल आकार का था। वहाँ पर ऊँचा होता चला गया, नोकीला होता गया, स्पाइरल की शकल को साकार किया गया था। देखकर हैरत होती थी। ज्यादा देर तक देखना दूभर था। गरदन पिराने लगती थी। उस कंकरीट के बने स्मारक से लगातार आग की एक लाल लपट निकला करती है। साथ ही साथ एक कोमल दर्द भरा संगीत-स्वर भी अनवरत रूप से बजता रहता है। यह स्वर नीचे के खण्ड से उठकर ऊपर आता है। मैंने भी शहीदों को अपनी और अपने देश वासियों की श्रद्धांजलि अर्पित की।

राजदान नदी के तट पर बसा यह इरीवान नगर अपने प्राकृतिक सौन्दर्य में अनूठा है। यह अरारात घाटी के उत्तर-पूर्व में स्थिति है। कई बार पदाक्राँत हो-होकर बार-बार जी उठा और जन-जीवन का प्रिय केन्द्र बन चुका है यह नगर इसी से इसकी शोभा और भी अनूठी है। इसके चारों तरफ के खड़े दमदार पहाड़ बरफ से ढके हुए हैं। इसकी नदियाँ भी वहीं संघर्ष भोगकर प्रवाहित होते-होते अब इसके रूप के अनुरूप ही इसका गुनगान करती रहती हैं। यहाँ के लोग बड़े रंगीन मिजाज के दिखे ऊपर से और भीतर से । सौन्दर्य का वरण तो कर ही लिया है यहाँ की कामिनियों ने। प्रकृति भी उनके सौंदर्य से मुखदा फलदा और प्रमदा हो गई है।

केदार जी ने इस मनोहर नगर पर भी एक कविता लिखी।

वह इस प्रकार है-

चुम्बकीय

आकर्षण का यह नगर

मनोभव की माया से

क्षण-क्षण नूतन,

हृदय-हृदय को

मोह मोह कर,

दिक दिगन्त को वशीभूत कर, जरा-मरण को जीत चुका है।

इसे जीत कर,

मुग्ध-मगन-मन

नाच रही है मेरी कविता,

परा और अपरा मुद्रायें

साज रही हैं मेरी कविता।

रात होटल में बिताई।

१७/५ को मैंने टेलीविजन वालों को अपने विचार रेकार्ड कराये। फिर सदियन की पेंटिग देखने गया।

फिर बारह बजकर पचपन मिनट पर दोपहर के समय इरीवान से हवाई जहाज पर चढ़कर उड़े। हम लोग दोशांबे ६ बजे शाम पहुँचे। दोशाँबे नाम के शानदार होटल में ठहरे! सोने के पहले इधर-उधर सड़कों पर चहलकदमी की। देखते सुनते रहे। गुलाब-ही गुलाब, बड़े-बड़े गुलाब, जहाँ देखों वहाँ खिले थे। होटल के कम्पाउंड में, होटल से बाहर, बसन्त-सी शृंगार किये मन मोह रही थी। इसनगर में भी जादू जैसा प्रभाव पड़ा।

अठारह मई को होटल से हम लोग सामूहिक फार्म (कोलखोज) देखने गये। इसका नाम था "कलेक्टिव फार्म सेकन्ड पार्टी कान्फ्रेन्स" यहाँ तेईस किलोमीटर लम्बी पानी की नहर थी। इसमें कुल मिलाकर तीन हजार व्यक्ति काम किया करते हैं।

एक स्कूल भी इसी के अन्तर्गत हैं। उसे भी देखा। स्कूल में अमीर खुसरो, जेबुन्निसा, हाफिज और सादी के चित्र देखने को मिले। दीवारों पर टंगे थे। द्वितीय महायुद्ध के वीरों के चित्र भी लगे हुए थे।

यहाँ हमने खाना खाया। नान की बड़ी रोटी खाने को मिली। बड़ी मुलायम थी। कई दिनों के बाद भारत छूटने पर अब रोटी के दर्शन हुये थे। जी खुश हो गया। चाय पीने को

मिली। साथ में किशमिश भी दी गई। मैंने खूब खाई। बादाम के शकल की एक नमकीन भी सामने आई। वहाँ से लगभग ढाई दोपहर हम लोग वापस आये।

तीन बजने पर हम लोग फिर घूमने-फिरने गये।

एक बड़ा सुन्दर म्यूजियम हैं। यहाँ अक्टूबर क्रांति के पहले की हालत का दृश्य दिखाया गया। फिर उस क्रांति के बाद की स्थिति दिखाई गयी है। पहले वहाँ की स्थिति दयनीय थी। न सड़कें थीं। खेतीपाती की दुर्दशा थी। बिजली भी अप्राप्य थी। बाद की स्थिति खुशहाली की तस्वीर प्रस्तुत करती है। सब तरह के सुधार किये गये है। शोषण समाप्त हो गया है। शिक्षा केन्द्र स्थापित हो गये हैं। खेती में आमूल परिवर्तन किया गया है। जनता के स्वास्थ्य की फिकर की व्यवस्था की गई है। बेकारी समूल नष्ट कर दी गई है। बिजली का प्रकाश दूर-दूर तक पहुंचाया जा चुका है। सिचाई की पर्याप्त व्यवस्था अमल में लाई गई है। इस क्रांति के बाद ही तो तजाकिस्तान की यह रिपब्लिक बनी है। वहां के वीरों के चित्र देखने को मिले।

यहीं एक किताब की दुकान में गये। वहां संस्कृत के एक बड़े महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक का रूसी भाषा में अनुवाद देखने में आया। इस ग्रन्थ के प्रणेता अभिनव गुप्त थे। यह काव्य से सम्बन्धित पुस्तक है!

इसे देखकर मालूम हुआ कि हमारे देश के साहित्य में रूसियों की गहरी रुचि है और वे लोग हमारे साहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन कर रहे हैं। कभी यह सोचा भी न होगा किसी ने कि यह ग्रन्थ रूसी भाषा में अनूदित भी होगा। इसका अनुवाद बड़े परिश्रम से करना पड़ा है।

फिर वहां से निकल कर एक चायखाना में चाय पी। यह चायखाना जनसाधारण के लिये बने हैं। तखतपड़े हैं। कुरसियां लगी हैं। तखत पर साफ-सुथरा बिछावन बिछा है। लोग आते हैं। बैठते हैं। चाय पीते हैं। नाश्ता करते हैं। दाम देते हैं। फिर चले जाते हैं। मुझे यहां बैठे-बैठे अपने यहां की सड़क के किनारे की छोटी-छोटी दुकाने याद हो आयीं। उसी माहौल में हमने यहां चाय पी और वह नान रोटी बड़े स्वाद से खाई।

एक कृत्रिम झील बनाई गई हैं। वहां गये। उसे देख। सुन्दर थी। उसमें नाव खेने की

प्रतियोगिता चल रही थी। खूब खिले हुये गुलाब देखे। करीब साढ़े सात बजे शाम होटल वापस आये। अब भी सूरज आसमान में था। शाम हमारे यहां की जैसा नदारद थी। धूप चमक रही थी। अजीब-सा लगा था।

उन्नीस मई को दोशांबे में स्थित ताजाकिस्तान का ऐतिहासिक म्यूजियम देखने गये। दस बजे से लेकर ग्यारह बजे दिन तक देखते रहे। पसन्द आया।

सवा ग्यारह बजे यहीं एक फिल्म देखा। ताजाकिस्तान के ऊपर था। इसमें ताजाकिस्तान केक़ बरफीले पहाड़ देखे। उनके सौदर्य से प्रभावित हुये। भेड़ों के झुन्ड देखे। बैजनी रंग के फूलों की बहार देखी। सेब देखे, पेड़ो से लटके बड़े-बडे। मुंह में पानी भर आया। औरतें आदमी उन्हें तोड़-तोड़ कर टोकरियों में रख रहे थे। शिक्षा संस्था दिखाई गई थी। लड़के-लड़कियां और शिक्षक थे। कई कमरे थे। प्रयोगशाला दिखाई गयी अंगूर तोड़ना भी फिल्म में ही देखा। एक स्वास्थ्य केन्द्र भी आंखों के सामने आया। बढ़िया था।

इसी फिल्म में नाच-गाना भी होता दिखाया गया। वहां की संस्कृति का प्रतिबिम्बन हुआ। यूरोपीय आधुनिकता से वह अब भी विनष्ट नहीं हुई।

औरतों को कुरता, इजार (पायजामा) और टोपी पहने देखकर कश्मीर याद आ गया। इसी फिल्म में उत्तरी ताजिकिस्तान के फ्रेस्कोज भी दिखाये गये। बड़े ही रंगमय हैं।

नाचती हुई महिला को लंहगा लहराते देखा। अपने यहां की गांव की औरतें याद आयीं। यह साम्य देख कर एकता महसूस की।

कसीदाकारी का संस्थान भी प्रदर्शित हुआ। मखमल पर काम किया जा रहा था सुरहरे तारों से। देखकर उन हाथों और आंखों की सराहना करना नहीं भूला जो तुरत-फुरत सपाटे से जादू ऐसी कारीगरी कर देती थी। मुग्ध होता रहा। अपने यहां ऐसा देखने का अवसर मुझे नहीं मिला था। मैंने तो अपने गांव के दरजी को कपड़े की नाप लेने पर भी छोटा बनाते ही देखा।

एक बैले देखा। याद नहीं रहा कि उसमें क्या देखा। मैंने उस समय कुछ भी नोट नहीं किया था।

इससे उसका नाम तक भूल गया।

उन्नीस मई को ही केन्द्रीय फिरदौसी पुस्तकालय गये। बताया गया कि यहां बहुत किताबें हैं। संख्या शायद दो मिलियन बताई गई थी। यह तो याद है कि बहुत बड़ा पुस्तकालय हैं। इसमें एक अलग प्रकोष्ठ स्थापित किया गया है जहां पूर्वीय देशों की प्राचीन की मूल पांडुलिपियां संग्रहीत हैं। यह सन १९२८ में स्थापित किया गया था। यहां ही मुझे सदरुददीन ऐनी के प्रसिद्ध उपन्यास दाखुन्दा का हिन्दी अनुवाद देखने को मिला। अनुवाद किया है राहुल सांकृत्यायन ने।पुस्तकालय औपचारिक तरीके से सन १९३३ में जनता के लिए खोल दिया गया था।

यहां फारसी-अरबी और ताजिक भाषा की अत्यन्त प्राचीन पांडुलिपियां सुरक्षित देखने को मिलीं। यहां २००० से अधिक दुर्लभ पांडुलिपियों का संग्रहालय है।

यहां की नवीं शताब्दी के तबरिस्तान का इतिहास लिपिबद्ध देखने को मिला। यह देश कैसपियन सागर के तट पर तब बसा था।

फिरोजशाह तुगलक का इतिहास अलबरूनी का लिखा देखा।

फिरदौसी की कृति, १३ वीं सदी की, शाहनामा देखी। इसे तीस वर्ष में लिखा गया था। यह गजनवी को जब बेंचा गया था तब एक प्याला चाय का दाम ही मिला था। यह पुस्तक मूल शाहनामें की सोलहवीं शताब्दी की प्रतिलिपि है।

इस पुस्तकालय को देखने स्वर्गीय श्री जवाहरलाल नेहरू और श्री जाकिर हुसेन आये थे। यहां की विजिटर बुक में उनके हस्ताक्षर हैं।

अन्य़ आये कई भारतीयों की रायें और दस्तखत देखे। स्वर्गीय वृन्दावन लाल वर्मा के भी हस्ताक्षर देखे। कैफी आजमी, मजरूह सुल्तानपुरी, एहतेशाम हुसेन, और डी.पी. धर भी यहां आये थे। उन्होने भी अपनी राय लिखी थी और अपने दस्तखत बनाये थे।

अमीर खुसरो का दीवान देखा।'खमसा' एक प्रकार की उनकी शायरी है।

फिर वहां से हम लोग मोटर द्वारा एक घाटी देखने गये। यह वहां से बहुत दूरी पर स्थित थी। सड़क खूब उम्दा और चौड़ी थी। मोटरें भी बढ़िया थीं। वे चलीं तो चलती चली गयीं और रूकीं तो वही पहुंच कर रुकीं। यह घाटी बड़ी रमणीक लगी। सैलानियों का मन-पसन्द भ्रमण स्थल यही घाटी है। तमाम लोग तमाम जगह देखे। वारजोब नदी के दोनों ओर

लोग-बाग, पूरे रास्ते भर, खाना बनाते और मछली मारते दिखे। महिलायें भी संग साथ में कहीं-कहीं दिखीं। बच्चे और जवान भी मजा मार रहे थे। कहीं कोई मछली पकड़ने के लिये बक्र ध्यान लगाये बैठा दिखा। यह नदी वेगवती है। इसका पानी साफ और निर्मल है। इसके दोनों ओर पहाड़ हैं। ऊंचे चले गये ये सुदृढ़ प्रहरी बर्फ की टोपर लगाये हैं इनमें कहीं-कहीं ग्लैसियर भी दिखाई दिये। बादल तो हर क्षण, सिर पर इन पहाड़ो के चलते-फिरते नजर आते हैं। सड़क सीमेन्ट की है और वक्राकार चली गयी है,मोड़ लेती हुई। सभी सैलानियों को कामकाज से फुरसत थी। नदी का किनारा, किनारे पर लगे पेड़, वह भी छायादार और तब फिर कौन चुकता कि वहां न पहुंचता और पिकनिक न मनाता। मौसम सीने से लगा लेने वाला था। मज आ गया। इस घाटी में पहुंच कर मैंघाटी का हो गया।

हम लोग नदी के सीने पर आधी दूर तक, चले गये। होटल के बड़े छज्जे पर या कहें बुर्ज पर-दिन के ४ बजे भोजन किया।नीचे नदी के पानी की पायल बज रही थी। ऊपर हमारे साथी आरमीनिया के अंगूरों की बनी शराब छाल रहे थे और मस्ती से गा-गुनगुना रहे थे। यहां गरमा गरम भोजन मिला। फिर नान रोटी मिली। मक्खन, पनीर, खीरा, हरी धनियां, पालक, चुकन्दर सब कुछ खाने को मिला। यूरी ने रुसी भाषा में लिखी अपनी कविता हम लोगों की प्रशस्ति में सुनाई। मुझे भी अपनी एक कबिता सुनानी पड़ी। गीत था, मांझी न बजाओ बंशी। गा तो न सका पर सुना गया। अंग्रेजी में अनुवाद भी करता गया। दुभा-षिया रूसी में अनुवाद करता रहा। फिर आग्रह हुआ तो दूसरा गीत सुनाना पड़ा। वह था 'धीरे उठाओ मेरी पालकी।'दुभाषिया थे मिस्टर सुस्कोव। हमारे साथी पं. हरिदत्त शर्मा ने विशेष जोर डाला था तब मैं सुना पाया था। वे भी आंखों से उमरखैयाम हो रहे थे। मैं भी पद्माकरी मनः स्थिति में था। खूब मजा आया।

७ बजे शाम हम लोग वापस होटल आये।

फिर हम चार जने एक ओपेरा देखने गए जो ७.३० बजे से शुरू हुआ था। समझ में तो आया नहीं। लेकिन बिना समझे भी आरकेस्ट्री सुनने में मजा आता रहा। एक व्यक्ति खड़ा होकर दोनों हाथ फैलाये वादक कलाकारों को, इशारे से, लय और ध्वनि का उतार-चढ़ाव बताता जाता था। उसके हाथ भी बड़ी सतर्कता से उठते-गिरते मंद और क्षिप्र होते थे।

फिर होटल आये। सोये-सोये।

बीस मई को दस बजे दिन होटल छोड़कर वक्ष घाटी आये। इस घाटी में बसा आधुनिक नगर नरेक है जो सन १९६२ में अपने इस नये रूप में अस्तित्व में आया। पहले तो यह एक छोटा गांव ही था। इस नगर में मेयर सुकूरोफ बोइनारजाब है। यहां हाइड्रो इलैक्ट्रिक इन्स्टालेशन के उच्चतम अधिकारी हैं मुखामीदेपेव वालीरीनि-जामोविच। इतना बड़ा नाम है कि उच्चारण करने में दिक्कत होती है और समय भी पर्याप्त लगता है। काम बड़ा है शायद इसीलिये नाम भी बड़ा है। हमारे यहां तो दो-दो अक्षरों के छोटे-छोटे नाम ज्यादातर हैं। इसलिए बोलने में आसानी होती है। यहां बारह बरस पहले नाम-मात्र को आबादी थी। लोग भेड़े पालते और ऊन का व्यापार करते थे। अब तो यहां एक हजार पांच सौ मीटर की लम्बाई घेर कर नई इमारतें तामीर कर दी गई हैं। अब तो चौबीस हजार की इसकी जनसंख्या है। यहां तीस स्कूल हैं। सात नर्सरी और किडरगार्डन मदरसे हैं। पुस्तकालय भी हैं। स्टैडियम्स भी हैं। अस्पताल तो हैं ही। पैलेस आफ कल्चर भी हैं। सिनेमा घर भी हैं। व्यापार होता है। तमाम दुकानें हैं। श्रमिक लोग भी कविता और साहित्य की रचना करते हैं। पेशेवर कवि नही हैं। कवि और कलाकार तजाकिस्तान के अन्य स्थानों से भी वहां आते हैं। मासिक पत्रिकाएं भी प्रकाशित होती हैं। यहां नूरेक से सम्बन्धित तीन सौ पुस्तकें हैं जिन्हें कवियों और साहित्यकारों ने लिखा है। यहां के लोग दूसरे नगरों के नाट्य प्रदर्शनों में जाकर भाग लेते हैं और अपनी कला को जनप्रिय बनाते हैं।

फिर हम लोग इस नगर की सोवियत के दफ्तर गये। वहां चाय मिली। मिनरल वाटर मिला। हम लोगों ने पिया।

यहां की सोवियत जब, कमीशन के अन्तर्गत निर्माण की अनुमति देती है तब यहां निर्माण किया जाता है। यहां श्रमिकों को, कमकरों को खाद्य सामग्री और अन्य आवश्यक वस्तुएं दी जाती है।

यहां की शिक्षा सुरक्षा और स्वास्थ्य की पूरी जिम्मेदारी यहां की सोवियत लिए है। काम सुचारु रूप से चलता है। पुलिस विभाग भी यहां की सोवियत के अन्तर्गत कांम करता है।

सन १९३० की १६ वी पार्टी कांग्रेस ने मास्को में निर्णय लिया था कि ताजिकिस्तान में हाइड्रो इलेक्ट्रिक पावर स्टेशन स्थापित किया जाय। बांध भी बांधे जायें, नदी के पानी से असिचित भूमि को सींचने के लिये। सन १९३६ में ताजिकिस्नान से सुझाव दिये गये इस सम्बन्ध में।

यहां गैस भी घरों में ईधन के लिए मिलती है। नगर की सफाई का उम्दा प्रबन्ध है। कोई संकामक रोग न फैले इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। इस काम के लिए ६ डांक्टर तैनात रहते हैं। २५ आदमी माध्यमिक मेडिकल योग्यता के काम करते हैं। २४ आदमी यहां की सफाई का प्रबन्ध करने में जुटे रहते हैं। यहां का जल-कल विभाग अपने कर्मचारियों की नियुक्ति करता है और वहीं से उसे सफलता पूर्वक चला कर पानी दिया करते हैं।

हर चौथे साल यहां की ८१ चुनी हुई डिपुटी सोवियतें बनती हैं।वयस्कता की आयु १८ वर्ष की है। पिछले चुनाव में १२००० लोगों ने मतदान दिये। यह नूरेक नगर ३०० मीटर की ऊंचाई पर बसा है। कृत्रिम झील १० किलोमीटर लम्बी हैं। लगभग नौ हजार हेक्टर भूमि की सिचाई होती है। यहां से ही अल्युमिनियम संस्थान को बिजली दी जाती है। दूसरे औद्योगिक संस्थानों को भी यहीं से बिजली पहुंचाई जाती है। सन १९६२ से सन १९६६ तक इस नगर के निर्माण और यहां की सड़कों के बनाने का काम चालू रहा था।

पहला विद्युत संचार मई सन १९७३ में शुरू हुआ था। वक्ष नदी लगभग ४०० मीटर लम्बी है। नूरेक सागर (कृत्रिम झील) में हमें मोटर वोट में घुमाया गया। काफी दूर तक हम गय। यहां से बांध बांधने के पूरे क्षेत्र को हमने देखा। इसका बस १६०० मीटर का है और शिखर १८०० मीटर का है। यहीं होटल में हमने खाना खाया। फिर ७ बजे शाम दोशांगे वापस पहुंच गये।

२१/५ को दोशाम्बे स्थित ताजिकिस्तान के लेखक संघ गए। साढ़े दस बजे से पौन बजे तक यहां रहे। यहां गुलरुखसारा व गुलचेहरा नाम की दो कवियित्रियों से भेंट हुई। रुखसारा युवा पीढ़ी की हैं। गुलचेहरा अधिक उम्र की हैं।

मीर शकर लम्बे कद के पुरानी पीढ़ी के प्रौढ़ साहित्यकार हैं। मोमिन करपारा कवि हैं। इन्होंने लेनिनग्राड पर नये शिल्प की एक कविता लिखी है। यह ईरान भी हो आये हैं।

वहां इन्होने पी.ई.एन. के जलसे में शिरकत की थी। इन दोनों से भी वही भेंट हुई।

मिखाइल मीर शकर ने लेखकसंघ के बारे में बहुत-सी बातें बतायीं। उन्होने कहा कि उनके लिए भारत जाना पहचाना देश है। उनके देश से और भारत से बहुत पुराने व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे हैं। उनका देश भारत के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ है कि उनके यहां की काव्य पुस्तकें बम्बई में मुद्रित और प्रकाशित हुई तब, जब उनके यहां छापाखाना नहीं था। उनके यहां अमीरखुसरो देहलवी की शताब्दी मनाने की योजना बनी है और वह बड़े धूमधाम से मनायी जायगी। महाकवि गालिब और कश्मीर के कवि गनी उनके यहां भी प्रख्यात हैं। इन कवियों की भाषा इनके देशवासियों को समझ में आ जाती है क्योकि इन कवियों की भाषा इनके देशवासियो की भाषा के निकट पड़ती है। स्वर्गीय मुहम्मद इकबाल भी इनके यहां पढ़े जाते हैं।

मीर शकर ने आगे बताया कि उनके यहां का इतिहास हजारों साल पुराना है। वह गौरवपूर्ण है और संघर्षमय भी है। उनके यहां १८० साल तक सामन्ती स्टेट रही। यह रेनेसां का वक्त था। परन्तु दुश्मनों के आक्रमण से यह स्टेट खतम हो गयी, विभाजित हो गयी। लोगबाग आपस में ही झगड़ने लगे। इस समय की सभ्यता का ताजिक के फारसी साहित्य का पिता अबूअली था। इनकी कविता में दर्द व्यक्त हुआ है।

फिर उन्होने और बताया कि अक्टूबर क्रांति के पहले उनके यहां पांच प्रतिशत शिक्षा थी। क्रांति के बाद शिक्षा सबको उपलब्ध हुई है। उनके लोग बड़े भावुक और संवेदनशील हैं। उनके यहां के साहित्य के संस्थापक रुदाकी हुए हैं। उन्हें ईरान भी स्वीकार करता हैं। अब वे लोग हजारवें साल की जुबली मनाने वाले हैं। नई कविता के सम्बन्ध में उन्होने कहा कि वह मुक्त छन्द में लिखी होती है। लेकिन वह जनता में लोकप्रिय नहीं हो सकी। उनके बाद श्री मोमिन कनयात ने बताया कि वह युवा कवि हैं। मास्को में एक लाख की जनता टिकट खरीद कर कवियों की कविताएं सुनती है। वे कवि जनता के विरुद्ध नहीं होते। कोई कवि किसी शेर या पशु को कविता सुना कर जन-जीवन से विमुख होने का दम नहीं भरता। उनके यहां की जनता कविता पसन्द करती है और कविता के 'बादों' से घबराती है। हाल में दस दिन तक काव्य समारोह मनाया गया था। इस समारोह में विभिन्न सोवियतों से

आये हुए चौंतीस कवियों ने काव्य-पाठ में भाग लिया था। वे जगह-जगह गये भी थे और वहां उन्होने जनता को अपनी कविताएं सुनाई थी। जनता उनकी काव्य पुस्तकें पढ़ने के लिए ललकती रहती है।

मैं तो इसके पहले यही समझता था कि हम लोग ही अपने देश में कवि सम्मेलनों का आयोजन किया करते हैं और कहीं दूसरे देश में ऐसे व्यापक स्तर पर ऐसे आयोजन होते ही नहीं। श्री मोमिन कनयात के मुंह से इसके विपरीत बात जान कर बेहद हार्दिक प्रसन्नता हुई। यह जान कर दूनी चौगुनी खुशी और हुई कि वहां की जनता काव्य संग्रह खरीदती और पढ़ती है। हमारे यहां जनता सम्मेलनों में काव्य-पाठ तो सुन लेती है परन्तु दाम लगाकर काव्य-संग्रह नहीं खरीदती। यह दुर्भाग्य की बात है।

इसके उपरान्त हम अपने होटल आये। वहां रहे। डिनर खाया।

फिर ढाई बजे दिन हम ताजिकिस्तान की विज्ञान अकादमी के प्राच्य अध्ययन संस्थान गये। वहां के सहायक डायरेक्टर श्री सैयद मोरादोव हैं। वह दर्शनशास्त्र के डाक्टर हैं। वहां के भारत और पाकिस्तान विभाग की जिम्मेदारी श्रीमती शरफजान पोलोतावा पर है। वह भाषा विज्ञान की विशेषज्ञ हैं। उन्होने उर्दू और फारसी भाषणों पर अनुसंधान किया है।

कामरेड गुफारोव भी उन्हीं की विद्वता और विशेष योग्यता के हैं।

मालूम हुआ कि अध्ययन संस्थान की स्थापना अप्रैल सन ७० में हुई थीं। इस संस्थान में ६९ व्यक्ति काम में लगे हैं। इनमें से कुछ टेकनिकल योग्यता के आदमी हैं, कुछ रिसर्चस्कालर हैं।

इस संस्थान के ६ भाग हैं। एक भाग अफगानिस्तान से सम्बन्धित है। दूसरा भाग ईरान से, तीसरा भारत और पाकिस्तान से, चौथा अरब देशों से, पांचवा टेक्सटालोजी से और छठवां सभी प्राच्य लिपियों से सम्बन्धित है। इसका सोवियत भूमि में तीसरा स्थान है। यहां लगभग बारह हजार पुस्तकें हैं। दुर्लभ पांडुलिपियां हैं। इसने अब तक किताबों की सूची चार भागों में छापी हैं। यहां कामरेड उसमान अकबर से सम्बन्धित विभागों में काम करते हैं। उर्दू में यह महत्वपूर्ण काम चालू है। यह उसमान साहब एक साल तक विशाखापट्टम

में रह आये हैं। यह हम लोगों से उर्दू में बोलते रहे।

हिन्दी में यहां काम करते हैं श्री उसमान मुमताज, यह लेनिनग्राद विश्वविद्यालय के स्नातक रहे हैं। सन् १९६८ में यहां आये हैं। भाषा विज्ञान में यह काम करते हैं। यह यहां हिन्दी भाषा के क्रियापदों का ताजिक और तुर्की भाषाओं के क्रियापदों से तुलनात्मक अध्ययन कर रहे हैं।

मुझे इन सब लोगों से मिल कर भारी प्रसन्नता हुई।

फिर वहां से हम लोग ३.३० बजे दिन पायनियरपैलेस देखने पहुंचे।

वहां लडके-लडकियों ने हम लोगों का स्वागत किया। हमने उनमें रुचि दिखाई। नतीजा यह हुआ कि वे और हम आत्मीय हो गये। उन्होंने एक गीत भी गया। पायनियर बच्चे-बच्चियां हम लोगों के देश के बालचरों से ज्यादा जिम्मेदार लगे। अभी से समाजवादी उददेश्य की महत्ता समझते हैं और इसके लिए अपना समय-श्रम सहर्ष देते हैं।

वहां से होटल आये। रात १२ बजे श्री गुलाम रब्बानी तावां साहब ने अपने होटल के कमरे में हमें फोन करके बुलाया और मीर शकर के दिये हुए पेय से हमारा अभिनन्दन किया। हम लोग दिलचस्प बातें करते रहे और एक दूसरे के चेहरे देखते रहे। किसी के मुंह पर दुनियाई उदासी न थी। सब हंसमुख और प्रसन्न थे। रात में हम लोग बैले की तरह खिल उठे थे।

केदार जी ने दोशाम्बे पर छोटी-सी एक कविता लिखी।

हंसती पंखुरियों की वस्ती
लिखे गुलाबों की दिलकश देखी
दोशीजा नगरी दोशाम्बे की

२२/५ को हम लोग १० बजे दिन दोशाम्बे से मास्को के लिए हवाई जहाज पर उड़े। पांच घंटे में मास्को पहुंचे। फिर रूसिया होटल में ठहरे। मैं बारहवें खंड के कमरा नं. ७३८ में श्री हरिदत्त शर्मा के साथ ठहरा। आज कहीं नहीं गये। कमरे में श्री सुरेन्द कुमार आये। वह वहाँ अनुवाद का काम करते हैं। युवा हैं। सह्रदह हैं। उनसे बातें होती रहीं। उन्होंने भी मास्को के वातावरण की और वहाँ के लोगों की तारीफ की। खुले दिल से की। उनके कहने

में कोई बनावटी भाव न था। उन्होंने बताया कि उनकी लड़की रात १२ बजे भी अपने कॉलेज के समारोह से अकेल वापस लौटने में कोई खतरा महसूस नही करती। वहाँ के लोग बहूदा हरकतों के आदी नहीं हैं। वहाँ के लड़कियों की आबरू पर आँच नहीं आने पाती। उन्होंने मुझे हर तरह की सुविधा देने का अश्वासन दिया और चाहा कि मैं कुछ दिन और वहाँ उनके घर में रह कर बिताऊँ और मास्को को पूरी तरह से पहचान लूँ। पर मैं इसके लिए तैयार नहीं हुआ। मुझे अपना वीसा बनवाना पड़ता और यह बात इस प्रोग्राम के बाहर की हो जाती। मैं न रुका।

वहीं उसी कमरे में १५/१७ साल से मास्को में रह रहे मधु जी आये। उनसे बातें होती रहीं। वे भी खूब बाते करते हैं। जो कुछ कहते हैं साफ कहते हैं। छिपाते कुछ भी नहीं। मास्को की बातें हुई। उन्होंने भी कुछ ऐसा नहीं बताया कि वहाँ हर आगन्तुक के पीछे 'खुफिया' लगा दी जाती है और लोग बात करते डरते हैं। मैंने पूछा भी। पूंछने पर भी यही कहा कि ऐसी बात नहीं है। ऐसा होता तो वह क्या कोई भी भारतीय वहां रह ही नहीं सकता। मिलने-जुलने में रोक-टोक नहीं है। बात करने की मनाही नहीं है। कर्तव्य कीजिए, खाइए पीजिए और अच्छी जिन्दगी बिताइये। कविता के बारे में मैंने उनसे बातें कीं। उन्होंने बताया कि रूसी लोग पुश्किन को बहुत बड़ा कवि मानते हैं और उसकी कविता पर तो जी-जान से फिदा है। पुश्किन रूसी भाषा का माहिर कवि है। काव्य का सौंदर्य उसकी कविता में भरा पड़ा है। जब मैंने आधुनिकता की बात चलाई तो उन्होंने भी बताया कि नए कवि आधुनिकता का काव्य लिखते हैं पर जनता आधुनिकता से प्रभावित नहीं होती। आधुनिकता से और प्रतिबद्धता से जानी दुश्मनी है। इसीलिए समाजवादी कवि आधुनिकता के व्यक्तिवादी अथवा अहंवादी कथा और शिल्प को नहीं अपनाते।

श्री सुरेन्द्र कुमार ने यह बताया कि मास्को में पेट्रोल, गैस, खाने की चीजें, बच्चों की चीजें और मकान बहुत सस्ते हैं। ट्रान्सपोर्ट की सहूलियत बहुत अच्छी है। मेडिकल विभाग बहुत सक्रिय और कर्तव्यनिष्ठ है। बड़ी जल्दी डॉक्टर मिल जाता है। फोन होते ही १५ मिनट के अन्दर वह आ जाता है। पूरी लगन से काम करता है।

रात होटल में ही खाना हुआ। सोये।

२३/५ को साढ़े दस बजे दिन हम लोग टैक्सियों से विश्व के महान् उपन्यासकार लियो तालस्ताय का स्मारक देखने के लिए रवाना हुए। वह स्थान मास्को से १८० किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। रास्ते में उससे कुछ पहले तूले शहर मिला। वह अच्छा खासा शहर दिखाई दिया। सड़क से देखा तो दोनों तरफ ऊँचे-ऊँचे पक्के मकान दिखे। सड़क भी साफ सुथरी और काफी चौड़ी थी। ट्राम चलती नजर आयी। एक महिला को चलाते देखा। मुझे तो उसे देखकर लखनऊ के हजरतगंज की याद आ गयी।

मास्को से यसयाना पोलियाना तक साँप के पेट की तरह चिकनी सपाट एक जैसी, पक्की, चौड़ी सड़क प्रबाध रूप से सरकती चली गई है। कहीं ऊँची उठती है तो कहीं नीचे झुकती है। बहरहाल बिना अन्जर पंजर हिलाये वह यात्रियों को निकल जाने देती है। इसके दोनों तरफ दूर-दूर तक, हाल की उगी हरी फसल की मखमली बिछावन, खेतों में आर-पार बिछी दिखी। खेतों में मेड़ तो कहीं दिखी ही नहीं। उन्हें ट्रैक्टर से जोता बोया जाता है। हाँ, कई जगह मुझे १०-१२ महिलाएं झुके-झुके निराई करती हुई नजर आयीं। उनके कपड़े न फटे थे न गन्दे। वह शरीर से भी पुष्ट और स्वस्थ थीं।

हवा बढ़िया थी। मोटर की खिड़की खोले हवा का संस्पर्श करते हुये हम चले जा रहे थे। आँखों में वहाँ का पूरा-पूरा दृश्य समाया चला जा रहा था। सड़क के दांयें बायों खेतों के किनारों पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर, रहायशी पक्की 'कार्टेजेज' दिखीं। चूँकि सरदी बहुत पड़ा करती है और बरफ गिरती है इसलिए वे झोपड़ियाँ सब तरफ से बन्द और सुरक्षित दिखीं। लेकिन कई-कई खिड़कियाँ और द्वारा थे उनमें। शायद दोहरे-दोहरे शीशे लगे थे उनमें। ऊपर ढाँचा इनका लकड़ी का बना था। इनके पास व इर्द-गिर्द सेहेन की कुछ भूमि पड़ी थी जिसमें पेड़ पौधे लगे दिखे। वहीं कहीं-कहीं मुझे मुरगियाँ घूमती नजर आयीं। लेकिन उस समय मुझे इन झोपड़ियों में आदमी का पुतला तक नहीं दिखाई दिया। सम्भवतः तब सभी व्यक्ति काम-काज पर गये होंगे। बच्चे पढ़ने गये होंगे। सब झोपड़ियाँ निश्चय ही बन्द दिखीं। उनमें भीतर बाहर आदमी के साँस की कोई हरकत नहीं नजर आयी। हाँ, जब शाम लौटे और फिर उन्हें देखते हुये निकले तो खिड़कियों से भीतर जलती हुई बिजली का प्रकाश दिखाई अवश्य दिया था। इससे समझ सका था कि उनमें लोगबाग अपने परिवार के

साथ रहते हैं।

खेतों में हमारे यहाँ की तरह जानवर छूटे हुए नहीं दिखे। खेतों के इधर-उधर मुझे कोई तार खिंचे हुये नहीं मिले। किसी भी तरह का कोई खतरा फसल के चर जाने का नहीं था। हमारे यहाँ खेत की रखवाली करनी पड़ती है। ऐसी कोई बात मैंने वहाँ नहीं देखी।

इतने बड़े रास्ते में आते-जाते में मुझे एक जगह अपने यहाँ का धैर्य-धन जानवर गदहा दिखाई दे ही गया। समाजवादी देश में उसका वहाँ होना इस बात का प्रमाण था कि वह मूर्खता का अवतार ही था।

एक जगह एक बूढ़ा घास लादे घोड़े पर सवार आता दिखा। एक बालक अपनी पीठ पर घास का पुलिंदा लटकाये राह-राह चलते दिखा। एक जगह एक बूढ़ी औरत खेत में गाय का दूध बाल्टी में दुहती हुयी नजर आयी। बैल तो एक भी न दिखाई दिया। अन्य पशु भी वहाँ मुझे नजर नहीं आये।

यासयाना पोलियाना का रकबा बहुत बड़ा है। लम्बे बर्च के पेड़ सघन संख्या में लगे हैं। फर के पेड़ भी हैं। नाला भी दिखाई दिया। जंगल है वहाँ। इसी के अन्दर दूर चलने पर तालस्ताय का एक मौरूसी घर मिला। उसी से हट कर, करीब में ही उनका अपना रहायशी मकान है। पूर्वजों के घर के अन्दर मैं नहीं गया। उन्हीं के मकान में मैं गया। बाहर लम्बे-चौड़े जूते अपने दोनों पैरों में बाँधे पड़े थे। उन्हें पहन कर ही अन्दर चलकर प्रत्येक कमरा देखते रहे थे हम लोग। सीढ़ी थी। उससे चढ़कर ऊपर के कमरों में गये। फर्शों पर काठ जड़ दिया गया है। उसी पर होकर चलना पड़ता है। कहा गया कि यह मकान उसी हालत में ज्यों का त्यों अब भी है जैसा तालस्ताय के जमाने में रहा था। उनकी प्रत्येक चीज उसी जगह रखी है जहाँ जब तब रखी थी। दीवारों पर उनके ओर उनके तमाम कुटुम्बियों के फोटोज टंगे हैं। कोई किसी उम्र का है कोई किसी उम्र का। कोई किसी अवसर का है। कोई किसी अवसर का। बड़े भव्य हैं ये चित्र। सोफिया उनकी पत्नी थीं। उनके भी अनेकों चित्र थे। वह जवानी में बड़ी सुन्दर दिख रही थीं। तालस्ताय की चाची ने उन्हें और उनके बच्चों को पाल-पोस कर बड़ा किया था। वह अपनी चाची को बहुत मानते थे। उन्हीं के साथ रहते थे। चाची का कमरा अगल था। अन्य लोगों कमरे भी अलग थे।

सब सुसज्जित हैं। हरेक में हरेक रहने वाले व्यक्ति की तमाम चीजें यथास्थान रखी हैं। उनके कपड़े टंगे हैं। हाथ की घड़ियाँ टंगी हैं। घुड़सवारी का सामान, जूते इत्यादि भी सुरक्षित हैं। जो उपहार तालस्ताय को समय-समय पर लोगों से मिले थे वे भी वहाँ मौजूद हैं। पुराने ढंग का ग्रामोफोन भी उनमें से एक है। एक बड़ी सी घड़ी एक जगह रखी है। उन कमरों में वहाँ फर्नीचर भी हैं जो तब वहाँ था। हाँ कुछ न कुछ मरम्मत कर दी जाया करती है ताकि वह नष्ट होने से बचा रहे।

तालस्ताय के पुत्र ऐन्ड्री ने अपनी माँ की मूर्ति बनाई थी। वह वहाँ है। उनका बाजा पियानो भी है। वह पुश्किन के दूर के रिश्तेदार होते थे।

एक अलग प्रकोष्ठ उसी मकान में इसलिए था कि वहाँ तालस्ताय आये हुये व्यक्तियों से गम्भीर बातें करते थे। वहीं वह अपनी रचनाएं पढ़ते थे।

उन्होंने सन् १८९५ में अपने उपन्यास रिसरेक्शन के परिच्छेद ऐंन्टन चेखब को पढ़कर चुनांये थे।

वह रूसी लोक संगीत अत्यधिक पसन्द करते थे।

दो वर्ष की उम्र में उनकी माँ मरी।

छै वर्ष की उम्र में उनके पिता चल बसे।

इनकी पत्नी सोफिया ने इनके उपन्यास 'युद्ध और शान्ति' की पाण्डुलिपियाँ सात बार हाथ से लिखीं थीं।

इनका उपन्यास रिसरेक्शन दस वर्ष में लिखा गया था। छः बरस में लिखा गया था 'युद्ध और शान्ति'। चार साल में पूरा हुआ था लोकप्रिय उपन्यास "अन्नाकरीना"।

बतांया गया कि उनके इस मकान में उनकी २२ हजार पुस्तकें हैं। इन सबको उन्होंने पढ़ा था। तालस्ताय जबरदस्त पढ़ाकू थे। वह कई भाषाओं के ज्ञाता थे।

वह अपने यहाँ के किसानों और मजदूरों को बहुत प्रिय थे। वे उनका बहुत आदर करते थे। वे लोग अकेले और संगी साथियों के साथ तालस्ताय से अकसर मिलने बातें करने, अपनी समस्यायें बताने और उचित सलाह लेने आते थे। तालस्ताय भी उनसे घिरे रहने में अपने को धन्य समझते थे।

मुझे यह सब देखने-सुनने के बाद महसूस हुआ कि तालस्ताय एक बड़े जमींदार किस्म के शिक्षित बौद्धिक व्यक्ति थे और उनकी रुचि साहित्य में थी ही। अपने समय को वह अच्छी तरह से परखते थे। तब चर्च और बड़े भू-स्वामियों का युग था। वहाँ के खेतिहर शोषित थे। जाबिन के भौतिक मूल्यों का पालन नहीं होता था। स्त्रियाँ पति की दासियाँ थीं। शिक्षा अल्पतम थी। विकास और निर्माण न्यूनतम था। दिल के सहृदय होने की वजह से तालस्ताय जन-सम्पर्क से जनवादी उपन्यासकार बने और भू-स्वामियों की पोलें खोलीं। उनके सजीव और सटीक चित्र खींचे। वहाँ की किलबिल करती जनता भी अपने पूरे परिवेश के साथ सटीक व्यक्त हुई है उनके उपन्यासों में। जीवन की जीवंत और गर्हित झाँकियाँ दोनों ही मिलती हैं। तालस्ताय जनता से प्रतिबद्ध होते चले गये। वह समाजवाद से प्रतिबद्ध नहीं थे। उनकी विचारधारा सुधारवादी थी। वह आदर्शवादी थे। तभी तो वह अंत में घरबार छोड़कर चले गये और एक स्टेशन में अनजान मर गये। उन्हें उस जीवन से घृणा हो गई जिसे वह जीते आये थे और जिसे वहाँ की जनता जीने की लिए विवश थी। उनके लिए कोई दूसरा रास्ता ही नहीं बच रहा था। वह सक्रिय रूप से राजनैतिक चेतना के आदमी न थे। भावुक थे इसलिए किसी को मजबूर नहीं कर सकते थे कि वह लाजमी तौर से अच्छा जीवन जिये और शोषण न करे। वह समाजवादी थे। उनकी मानवता लाचार मानवता थी। वह क्राँतिकारी कार्यक्रम से उदभूत और संवर्धित मानवता नहीं थी।

उन्होंने अपनी वसीयत में यह लिखा था कि उनकी कब्र पर न तो पत्थर लगाया जाय, न उसे पक्का किया जाय। वह उन्हीं की मनोकामना के अनुसार आज तक मिट्टी की साधारण सी बनी है। उसके चारों तरफ लम्बे बर्च के पेड़ खड़े हैं।

यहाँ का सारा प्रबन्ध सरकार करती है।

एक युवती अंग्रेजी में यह सब बताती थी। उसे हरेक बात जैसे कंठस्थ थी।

हमारे साथ के सहयोगी श्री सहालनवीस ने उससे कई बातें पूछीं। जिन्हें वह बता सकी। तालस्ताय अपने अंतकाल से पूर्व जो पुस्तक पढ़ रहे थे उसका वह पृष्ठ भी उसने बता दिया। मैं तो चकित रह गया। मैं उस युवती का नाम भूल गया हूँ। फिर उसके प्रति आभार प्रकट करता हूँ कि छुट्टी के दिन भी अपने घर से आकर हम लोगों के साथ वहाँ गई

और घंटों चक्कर लगाती रही और तालस्ताय के विषय में पूरी जानकारी देती रही।

उसने हम लोगों से पूछा कि तालस्ताय हम लोगों को बहुत प्रिय हैं क्या? तो हम लोगों ने उसे बताया कि वह बहुत पहले से हमारे देश में पहुँच कर प्रिय हो चुके हैं। हमारा देश भी खेतिहर देश है। इसलिए भी तालस्ताय हमारी जनता को प्रिय हैं। वह भी तो खेतिहरों के कथाकार हैं। धर्म हमारे यहाँ भी बुरी तरह से अपढ़ जनता को जकड़े है। इसलिए भी धर्म से उद्धार पाने के लिए भी हमारे यहाँ तालस्ताय के उपन्यास कई पीढ़ियों से पढ़े जाते हैं। उस युवती को संतोष हुआ। उसने फिर पूछा कि क्या भारत में दास्तोवस्की के उपन्यास नहीं पढ़े जाते। क्या वह उपन्यासकार लोकप्रिय नहीं है? हमने बताया कि दास्तोवस्की युवा पीढ़ी को प्रिय है। पुरानी पीढ़ी के भारतीयों में वह प्रिय नहीं हो सके। लेकिन हमने उपन्यासकार की महत्ता को स्वीकार करते हुये बताया कि हम अभी हाल में ही तो इस उपन्यासकार के म्यूजियम को देख कर यहाँ देखने आये हैं।

इस स्थान में लोगों की भीड़ लगी रहती है। स्थल भी रम्य है। एक झील है। दर्पण की निर्मल उसमें चार बतखें तैर रही थीं। वे बिल्कुल दुग्ध धवल थीं। मुझे तो कलहस याद आ गये उन्हें देखकर न धूल है कहीं न धुआँ। न शोर न गुल। बाहर होटल है। एक बुकस्टाल भी था वहाँ इस स्थान से सम्बन्धित चित्र और पुस्तकें भी मिलती है। रूसी भाषा में हैं। अंग्रेजी में भी हैं। लोग लेते हैं। पैसे देते हैं और प्रसन्न-प्रसन्न वापस जाते हैं।

हमने यह स्थान पौने आठ बजे छोड़ा। रास्ते में कई घंटे लगे। रात ग्यारह बजे होटल में सोये। खाना वहीं से शाम को चलने से पहले खा आये थे। भूख न थी। इससे होटल में डिनर नहीं लिया।

२४/५ का दिन हमें मिला था कि हम लोग मास्को में खरीद फरोख्त कर लें। हमने यही चाहा था।

यही हुआ भी। परन्तु पानी बरसने लगा। मैंने और ताबाँ साहब ने श्री आर.एन. व्यास के साथ कुछ दुकाने देखीं। बच्चों की मशहूर दुकान में भी गये। बच्चों के साथ खिलौनों, कपड़ों, तमाम तरह-तरह के सामान से वह खचाखच भरी थी। सब तरह की भीड़ थी। ठेलमठेल थी। हम लोगों को खरीदते देखते रहे। अच्छा लगा कि समाजवादी शहर में

बच्चों की प्रति इतना ध्यान तो दिया जाता है। हम अपने बच्चों की ओर वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं रखते जो हमें रखना चाहिए। हम उन्हें अक्ल से खारिज समझते हैं। हम उनकी भावनाओं की कतई परवाह नहीं करते। हम उन्हें बकरी के बच्चों की तरह रखते हैं। बन्दरों की मार-पीट से सीधा करते हैं। उन्हें सताते हैं और अपनी तरह बनाने का धर्म निबाहते हैं। हम यह नहीं देखते कि उसकी रुचि किस तरह की है। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चा न अपने परिवेश से जुड़ पाता है न हमसे आत्मीय हो पाता है, न उसकी प्रतिभा का विकास होता है न वह देश को अपना देश समझता है। वह तो वैयत्तिक इकाई बना कर अपने स्वार्थ व जीवन जीने के लिये तैयार भर कर दिया जाता है। खिलौने निर्जीव अवश्य होते हैं परन्तु वे बच्चों की प्रवृत्तियों को संस्कार देते हैं और अपने माध्यम से पूरे देश के परिवेश से जोड़ते हैं और उनमें देश-प्रेम की नींव डालते हैं। खिलौने बेकार नहीं होते। निर्जीव होकर भी वह सबसे अधिक ममता और प्यार देते हैं बच्चों को। बेचारे बालक की हर तरह की गुस्ताखी बर्दाश्त करते हैं। जहाँ फेंक दिये जायें, पड़े रहते हैं। तोड़ दिये गये तो उफ तक नहीं करते। फिर उठा लिये गये तो फिर जी उठते हैं। उसी दिल से बच्चों को बहलाते हैं जिस दिल से वह पहले पहल बहला सकते थे। उनका स्नेह कम नहीं होता। मैंने भी कुछ चीजें खरीदी। फिर शाम को ६ बजे होटल के नोबस्ती न्यूज एजेन्सी वालों की तरफ से हम लोगों का डिनर था। मैं देर से पहुँचा, पानी बरस रहा था। दूकान में सौदा लेने में देर हो गयी। फिर टैक्सी न मिल सकी। एक उदार रूसी ने हमें भीगता देख कर हम पर कृपा की और हमें होटल तक छोड़ गये। हम उसे किराया देने लगे तो उसने नहीं लिया। शायद वह हमें भारतीय समझ कर सहृदयता व्यक्त कर रहा था। हम उसके आभारी हुये। जब डिनर की मेज पर पहुँचे तो कुछ लोग चले गये थे। हमने डिनर खाया बातें कीं।

यह वहाँ से प्रस्थान की बेला थी। रात को ही होटल से मास्को के हवाई अड्डे पर पहुँचना था इसीलिए आखिरी बार जी भर कर सब को देख लेना चाहते थे। फिर आने का अवसर मिले न मिले। श्री सुरेन्द्र कुमार थे। पं. हरिदत्त शर्मा वहीं उनके यहाँ रुक कर पोलैंड और पूर्व जर्मनी जाने का प्रोग्राम बनाये थे। इससे वह उधर उनके यहाँ गये और हम लोग कमरों में बैठ कर हवाई अड्डे गये। रात में वहाँ वायुयान से उड़ कर सबेरे पहर दिल्ली पहुँच

जाना था। २५/५ तक हम वहाँ रह सकते थे पर २६/५ को वहाँ से कोई हवाई जहाज दिल्ली न जाता था इसलिए २४ और २५ मई के बीच की रात को ही हम वहाँ से चलते कर दिये गये।

हमारा यान सीधे दिल्ली न जा सका। मौसम खराब था। धूल धुँध छाया था। दिल्ली के आसपास कि उसका वहाँ उतरना असम्भव था। इसलिये दिल्ली के पहले ही उसे आदेश हुआ वह वहाँ न आये। मरता क्या न करता। चालक उसे कराची हवाई अड्डे पर लाया। वहाँ हम उतरे। एक बड़े हाल में ठहरे रहे। चाय पानी का प्रबन्ध भी न था वहाँ। हमारे यान की ओर से भी प्रबन्ध किया जाना जल्दी में असम्भव था। वह लोग कर ही रहे थे कुछ न कुछ इन्तजाम की एक घण्टा में सूचना आ गयी कि दिल्ली साफ है चल दो। हम खुश हुये। सब फिर उड़े और दिल्ली में आ धरे सकुशल। वहाँ सम्बन्धी आये थे। उन्होंने राहत की सांस ली। फिर हमने मातृभूमि के दर्शन किये और सबसे मिले।

यह २५/५ याद होगी। विशेष रूप से इस दिन हम कराची हवाई अड्डे पर उतरे थे जहाँ हम दुश्मन थे। इस दिन हम वहाँ से दिल्ली सही सलामत आ गये। इस दिन हमने एक ऐतिहासिक यात्रा समाप्त की थी और अपने देश के प्रति अधिक कर्तव्यनिष्ठ होकर लौटे थे।

मैं कई दिन तक दिल्ली में ही अपने दामाद के यहाँ रहा। २७/५ को प्रेस कान्फ्रेन्स हुयीं उसमें अंग्रेजी में अपनी बात कही गयी। मैंने हिन्दी में अपने ढंग से वह सब कुछ संक्षेप में कहा जो मुझे कहना था।

एक लेख भी लिखा। समाजवादी समाज में लेखक का दायित्व। इसे मैंने सोवियत भूमि में दिया। यह लेख जनयुग, जनशक्ति, आज आदि कई जगहों के अखबारें में छपा।

आगरा आ गया। वहाँ भी अपनी इस यात्रा का विवरण सुनाया।

इसके बाद केदार अपने शहर बाँदा आया। यहाँ भी एक सभा में मैंने अनुभव सुनाये। यही सब बातें अपने लोगों को बतायीं जो बातें मैंने इस सफरनामें में लिखीं हैं।

प्रश्नों के समय लोगों ने मुझसे पूछा कि क्या मैं रूस में किसी नागरिक के घर गया और उसका घर-परिवारिक जीवन देखा और यह जानने का प्रयास किया कि गृहस्थी कैसे

चलती है? मैंने उत्तर में कहा कि यह तो मैंने नहीं किया। हमारे प्रोग्राम में यह नहीं था। मैं लोगों की इस जिज्ञासा को समझता हूँ। ऐसा प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है। इसका उत्तर साक्ष्य सहित मिलना चाहिए था। मैं न दे सका। इसका दोषी मैं नहीं वरन् वह न्यूज एजेन्सी है जिसने हमारी यात्रा का प्रोग्राम बनाया था। हो सकता है कि यदि हम जोर देते और कहते तो वह हमें किसी भी नागरिक के घर ले जाते और उसका घरू जीवन दिखाते। किन्तु इतना कुछ देखना-दाखना था कि इस ओर ध्यान ही नहीं गया और यह जानकारी न हो सकी। लेकिन एक बात इस सम्बन्ध में कह दूं। आवश्यक है।

मैं जानता हूँ कि कोई व्यवस्था क्यों न हो सब कुछ पूरा का पूरा जीवन व्यवस्थित नहीं हो सकता। इसकी वजह यह है कि लोगबाग अभी भी अपने दैनिक घरू जीवन में अपने पहले के संस्कारों से लिप्त रह कर ही उन्हीं के मुताबिक अपना आचरण करने के अभ्यस्त हैं। पहले के संस्कार जल्दी नहीं आते। वे टूटते हैं पर कई दशकों में । इसलिये मैं मान कर चलता हूँ कि रूसी नागरिक का घरेलू जीवन वैसा ही न होगा जैसा रूस का आगे बाहरी जीवन जैसे मैंने वहीं देखा है। लेकिन इससे रूस की समाजवादी व्यवस्था को बुरा नहीं कहा जा सकता। वह व्यवस्था भरपूर प्रयास करती रहती है कि प्रत्येक नागरिक का घरेल जीवन भी सुखी और सम्पन्न हो। तभी तो अब वहाँ आवश्यक वस्तुएं सुलभ कर दी गईं हैं। रहने के लिए मकान दिये जा रहे हैं। सब को काम दिया जा रहा है। सब से स्वास्थ्य की देखरेख की जा रही है। बच्चों को पूरी तरह से निगरानी की जा रही है। बुढ़ापे में पेंशन दी जाती है। बीमारी में दवा। और जहाँ तक सवाल है मियाँ-बीवी का वह भी अपनी जिम्मेदारियाँ समझते हैं और पारम्परिक व्यवहार में एक दूसरे का ख्याल रखते हैं। इस पर भी अगर न पटे तो तलाक ले लें और अपना घरेलू जीवन अपनी स्वेच्छा के अनुसार चलायें। सरकार घर के अन्दर घुस कर उन्हें एक दूसरे का क्रीतदास नहीं बनाये रख सकती। क्या हम लोग अपने घरों में तनाव में नहीं रहते? क्या हम लोग नहीं लड़ते-झगड़ते? क्या हम अपने भाई-भतीजों के प्रति उतने ही सहृदय होते हैं जितने अपने बच्चों के प्रति? तो बुराइयाँ तो घर घर में रहेंगी ही, चाहे वह घर समाजवादी का हो चाहे गैर समाजवादी का। यह तो प्रत्येक नागरिक पर निर्भर करता है कि वह किस हद तक अपना घरेलू जीवन सुखी और

सम्पन्न बनाये। इसलिए इस सम्बन्ध में जानकारी हासिल भी कर लेता तो भी बात साफ न हो पाती।

निष्कर्ष- केदार जी का यह संस्मरण मानवीय मूल्यों से ओत-प्रोत है। संस्मरण में यह प्रतीत होता है कि वह रूस से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं इतना सुन्दर, सटीक और सजीव वर्णन दुर्लभ है।

अध्याय पंचम

केदारनाथ अग्रवाल के समीक्षात्मक निबन्ध

क्रमशः बांये से नरेन्द्र पुण्डरीक, महेश अग्रवाल, डॉ॰ रामगोपाल पाण्डेय अध्यक्ष, हिन्दी विभाग हाथरस श्री बद्री नरायण को (सम्मान देते हुए)
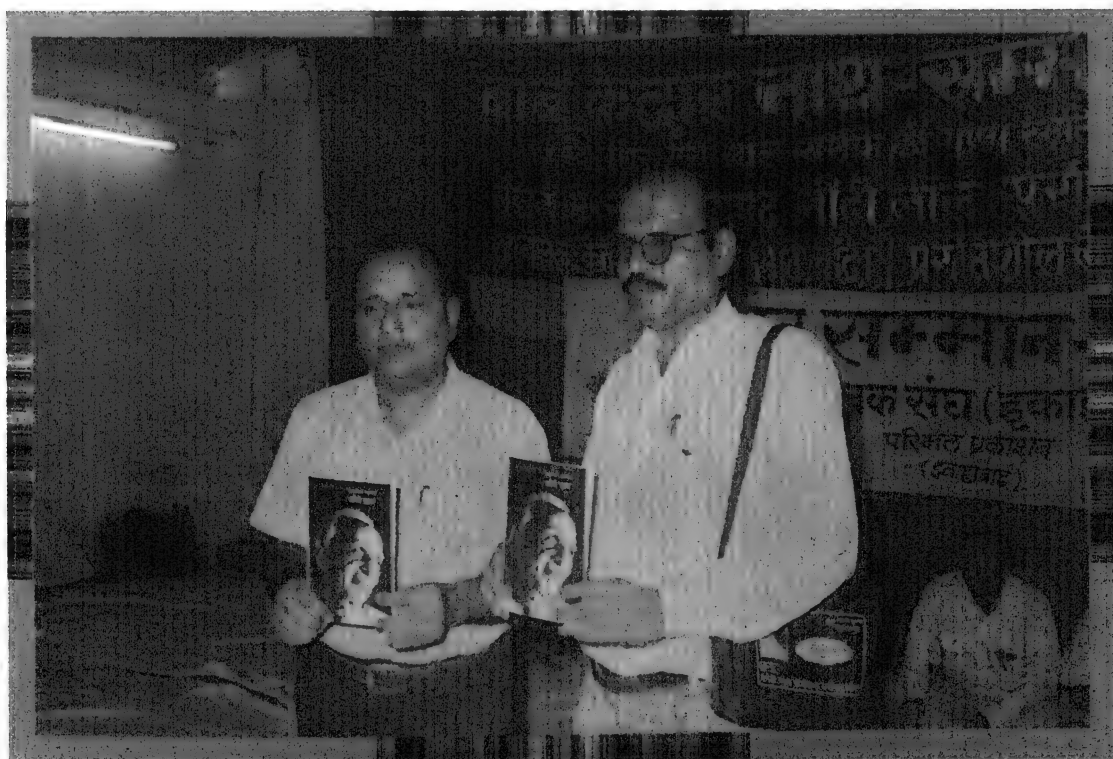
पुस्तक छोटे हाथ, विमोचन करते हुये विनोद शुक्ल व श्री नरेन्द्र पुण्डरीक

काव्य पाठ करते हुए-बोधसत्व, राजेन्द्र कुमार, केदारनाथ अग्रवाल,
परमानन्द श्रीवास्तव व डॉ॰ दूधनाथ सिंह

बायें से क्रमशः श्री शिव कुमार सहाय, राजेन्द्र कुमार, बाबू जी,
वाचस्पति उपाध्याय, श्री हरिश्चन्द्र पाण्डेय, एहसान आवारा, योगेश श्रीवास्तव,
श्री नरेन्द्र पुण्डरीक, अवध बिहारी गुप्ता व चन्द्रपाल कश्यप।

बायें से क्रमशः (प्रथम पंक्ति में)
अरूण कमल, नासिर अहमद सिकदर, शिव कुमार सहाय, अरूण कमल, केदारनाथ अग्रवाल, नरेन्द्र पुण्डरीक, चन्द्रपाल कश्यप आदि
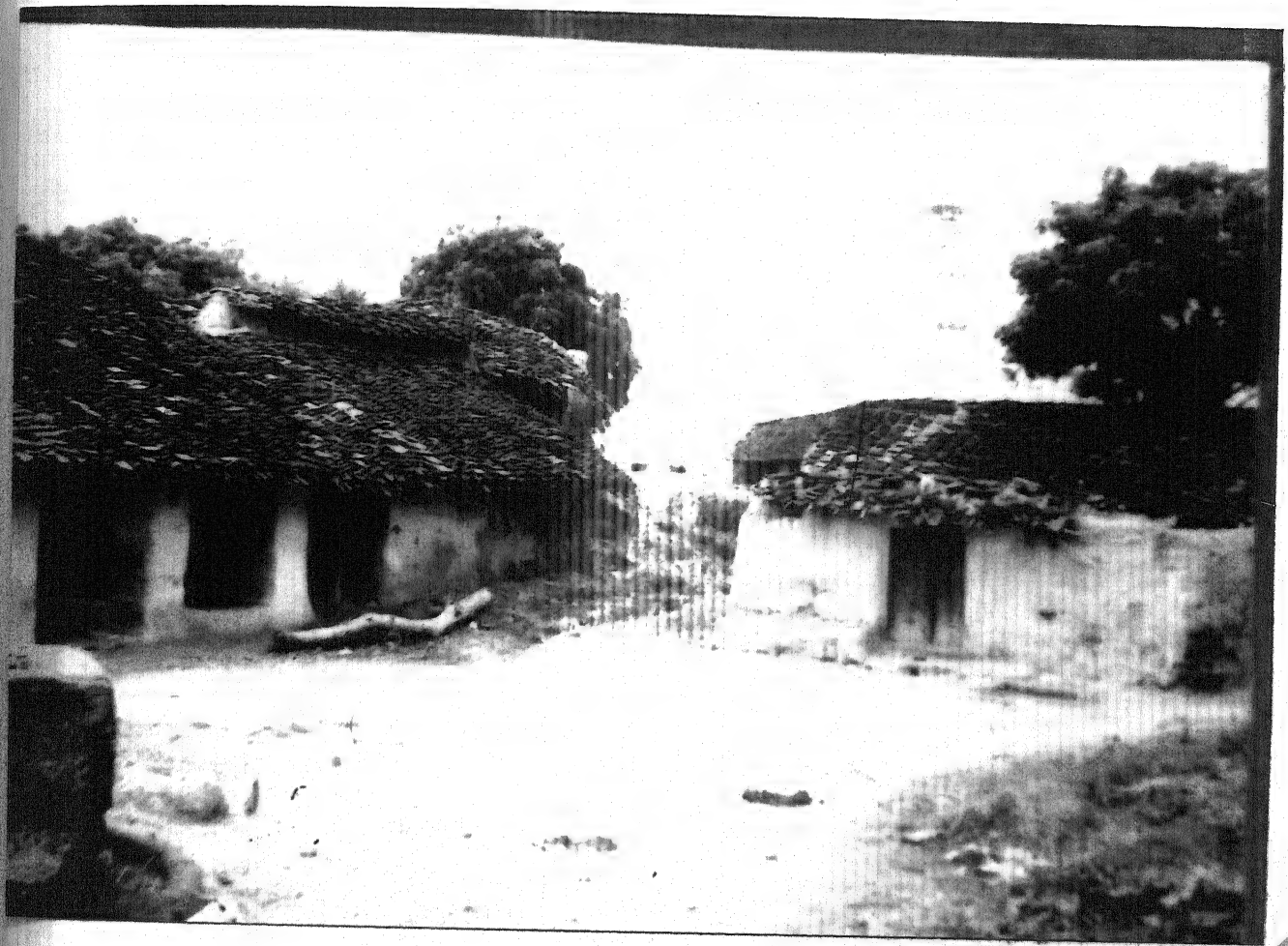
केदारनाथ जी का पैतृक निवास स्थान (ग्राम कमासिन, जिला बाँदा)
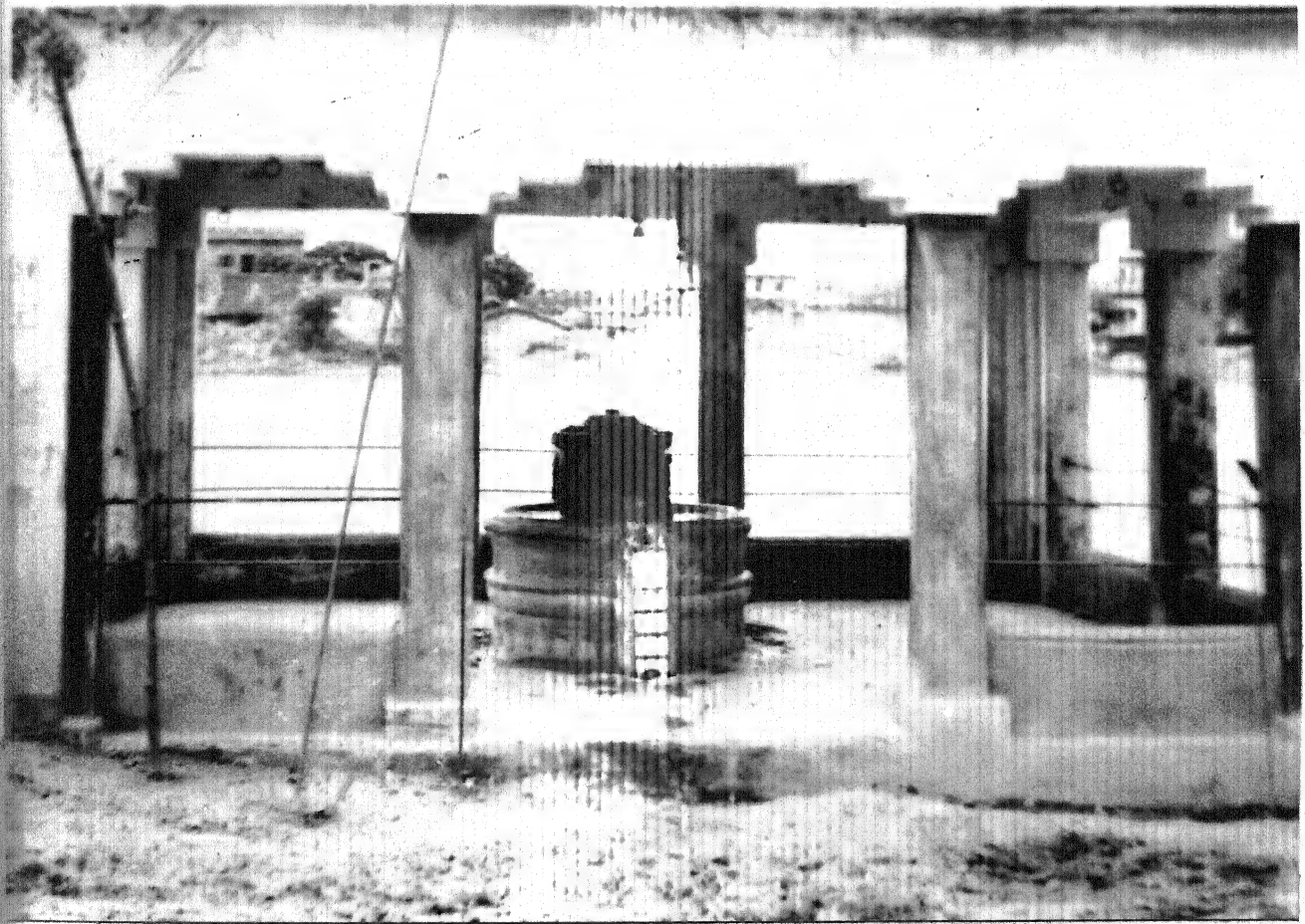
ग्राम कमासिन में ही स्थित प्रेम तीरथ, धार्मिक स्थान
(जिस पर केदार जी ने लम्बी कविता लिखी)

केदारनाथ अग्रवाल जी का युवावस्था का चित्र
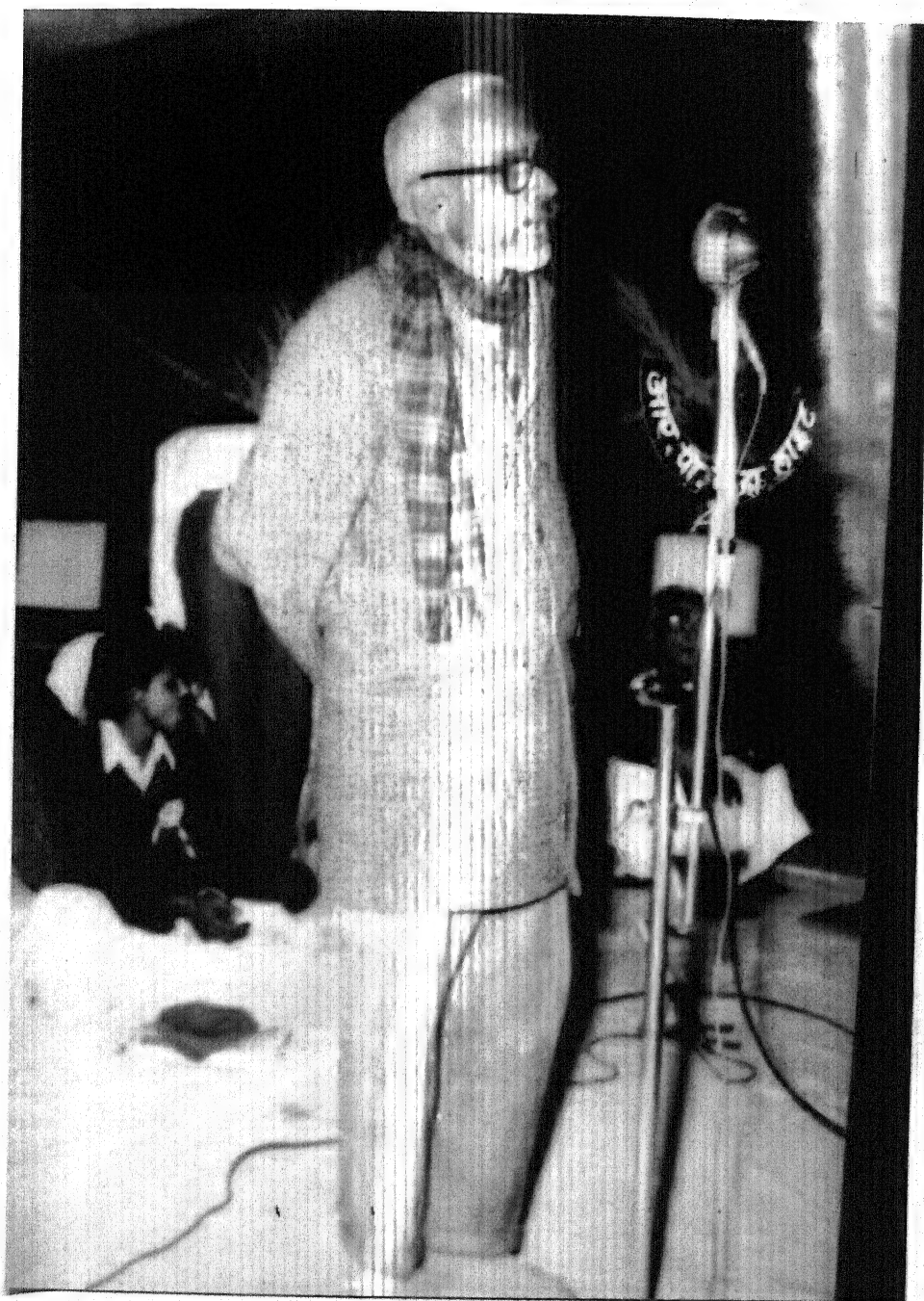
कवि वैद्यनाथ मिश्र 'नागार्जुन' (१९७३) में बाँदा में सम्पन्न हुए कवि सम्मेलन में काव्य-पाठ करते हुये

केदार जी की रचना भूमि (सिविल लाइन्स, बाँदा)
वर्तमान में यह 'केदार शोध पीठ न्यास' के नाम से जाना जाता है।

अखिल भारतीय प्रगतिशील हिन्दी साहित्यकार सम्मेलन, बाँदा में बाँये से क्रमशः
केदारनाथ अग्रवाल, आनन्द भदन्त कौत्सायन व वक्तव्य देतीं कवयित्री महादेवी वर्मा

क्रमशः बायें से दायें धूमिल, केदारनाथ अग्रवाल व डॉ. रामविलास शर्मा
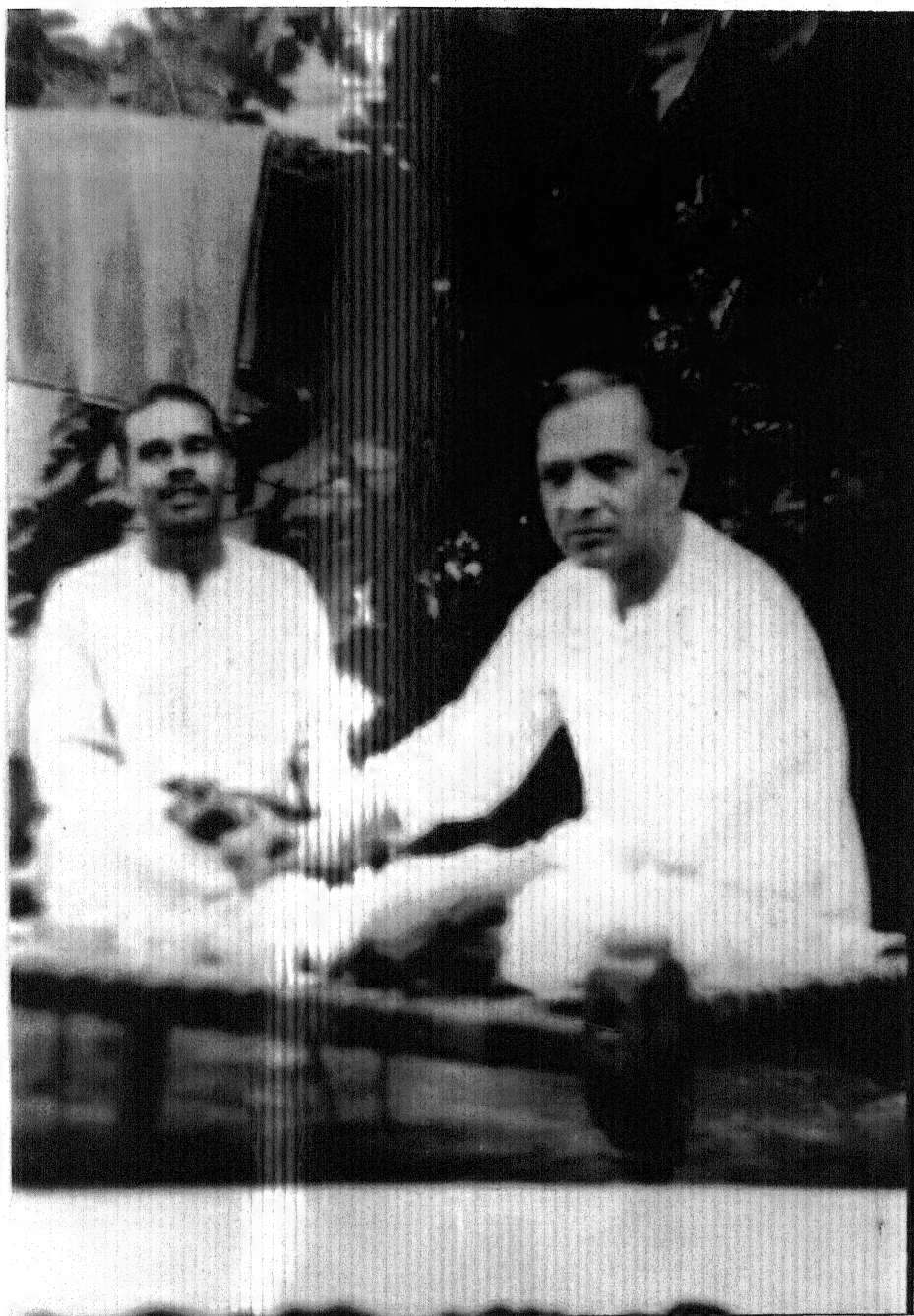
कवि केदार की रचनां भूमि (स्वयं के निवास के आंगन) में
बाबा नागार्जुन के साथ कवि केदारनाथ अग्रवाल
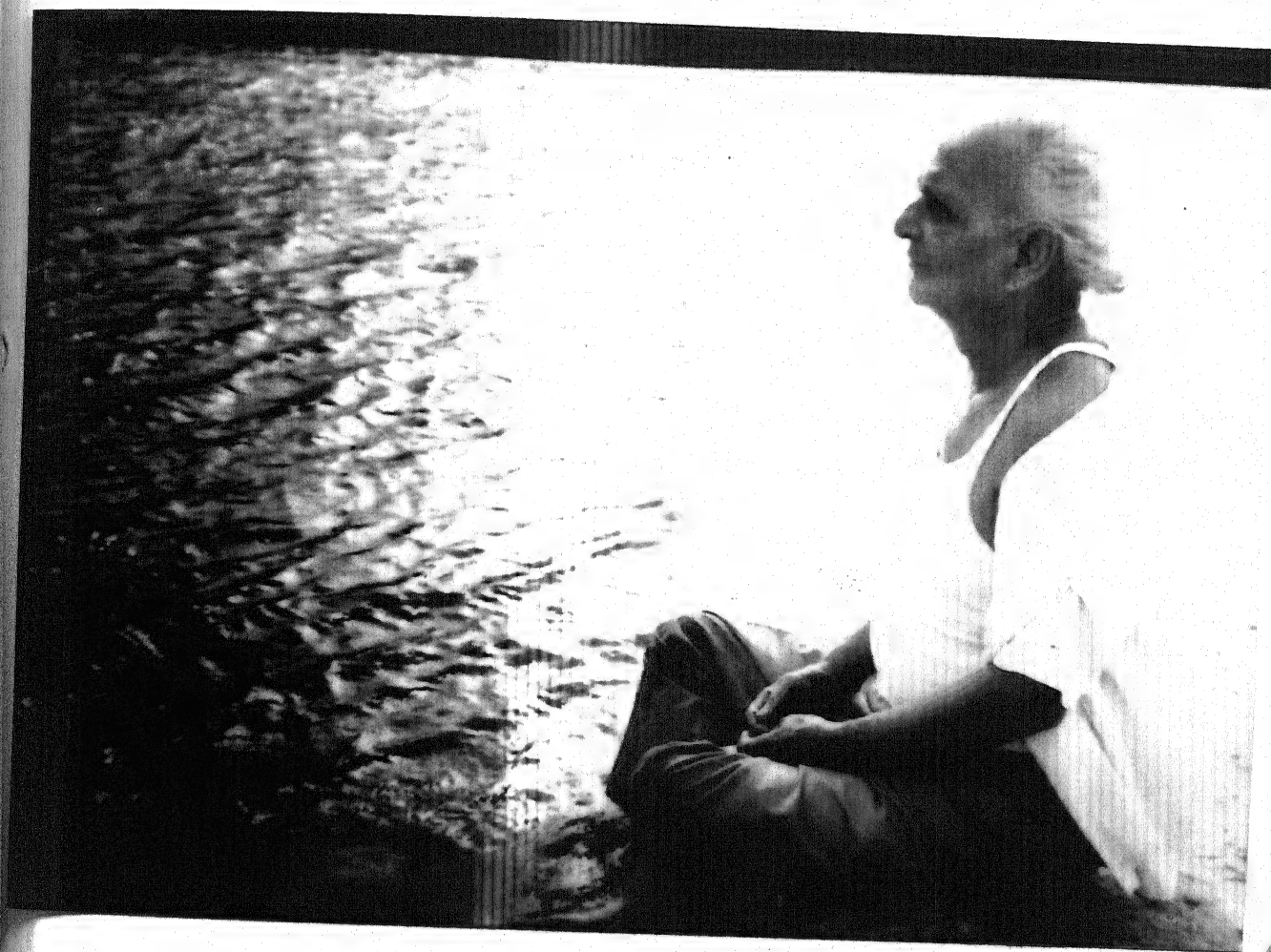
केन सुन्दरी के सौन्दर्य का अवलोकन करते हुये
कवि केदारनाथ अग्रवाल

केदारनाथ अग्रवाल जी एवं साथ में हैं प्रिया प्रियम्बद पार्वती (धर्मपत्नी)

बायें से क्रमशः डॉ. रामविलास शर्मा, मध्य में साहित्यकार केदारनाथ अग्रवाल व रामशरण शर्मा 'मुंशी' (रामविलास जी के छोटे भाई) जो वर्तमान में 'सचेतक' पत्रिका के सम्पादक हैं

'महत्व' केदारनाथ अग्रवाल (जबलपुर) आयोजन वर्ष १९८०-८१
बायें से दायें क्रमशः डॉ॰ विश्वनाथ त्रिपाठी, गोपाल गोयल, केदारनाथ अग्रवाल व श्रीकान्त वर्मा
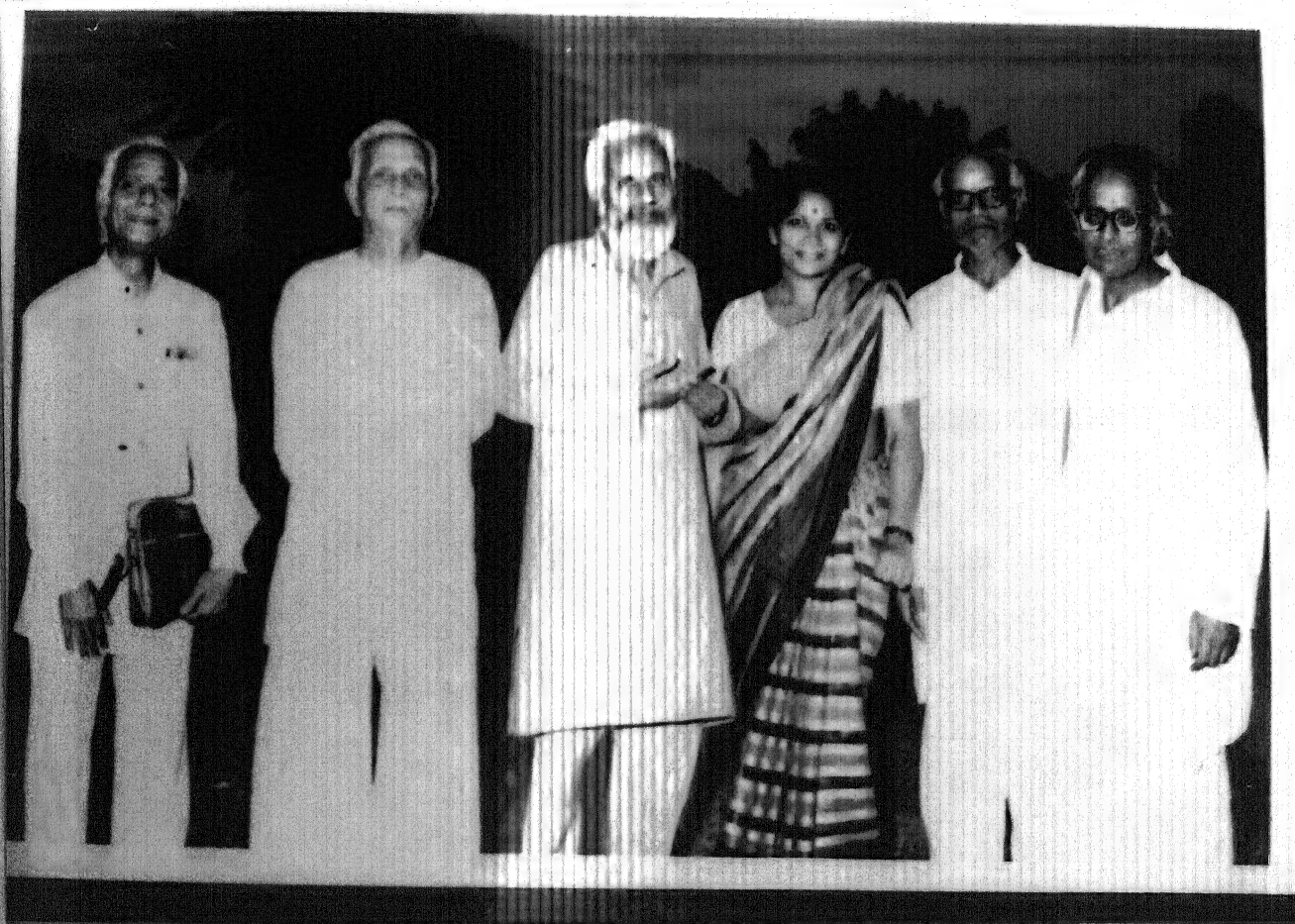
केदार जी का एक दुर्लभ छायाचित्र, जबलपुर (म.प्र.) में आयोजित एक कार्यक्रम में बायें से क्रमशः शील जी, केदारनाथ जी, बाबा नागार्जुनजी, रश्मि वाजपेयी जी, त्रिलोचन शास्त्री जी व शमशेर बहादुर सिंह
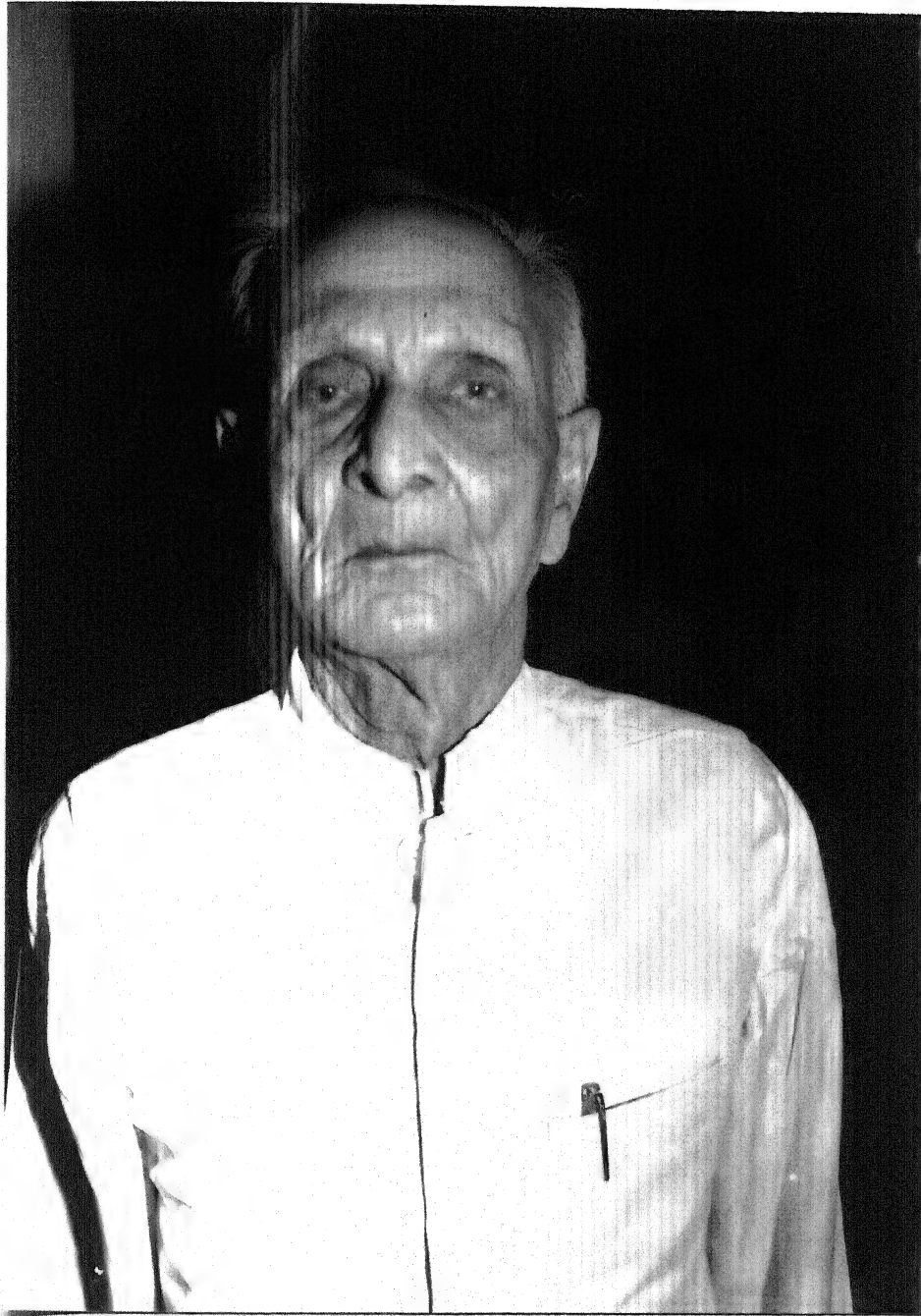
साहित्यकार केदार जी का यह चित्र उनके जन्म दिवस
१ अप्रैल १९९८ को लिया गया

केदार के समीक्षात्मक निबन्ध

केदारनाथ अग्रवाल हिन्दी के शीर्षस्थ कवि होने के अलावा एक कुशल गद्यकार भी हैं, यद्यपि उन्होंने कविता लेखन में ही मन रमाया है, फिर भी हिन्दी गद्य के शिल्प विकास में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने निबन्ध, संस्मरण, उपन्यास व कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं। विभिन्न साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में केदारजी का गद्य-साहित्य प्रकाशित होता रहा है। जिनमें म०प्र० साहित्य परिषद से निकलने वाली पत्रिका 'साक्षात्कार', मुजफ्फरपुर से निकलने वाली पत्रिका आवर्त, आकंठ तथा बनारस से निकलने वाली पत्रिका आर्यकल्प है, इनमें मुख्यता गद्य साहित्य का ही प्रकाशन होता है। इसके अलावा 'कथ्यरूप' पत्रिका में भी इनका गद्य साहित्य प्रकाशित होता रहा है। लेखक के सामाजिक व्यक्तित्व में एक लम्बे अरसे के दौरान उसके अनुभव विकास के साथ-साथ पैदा होती हैं। उनकी समीक्षायें, साक्षात्कार, आदि इसकी पुष्टि करते हैं। समय-समय पर (१९७०), विचार बोध (१९८०) और विवेक विवेचन (१९८१) की विचार सामग्री पाठक की चेतना को झकझोरने के साथ-साथ एक ऐसा परिप्रेक्ष्य भी उभारती है जिससे हमें चीजों को सही ढंग से परखने में मदद मिलती है।

साहित्य और समाज के रिश्तों को साक्षात्कारों के दौरान प्रायः सभी ने उठाया है, स्वयं केदार जी ने अपनी भूमिकाओं और स्वतंत्र लेखों में इन रिश्तों की सार्थकता को बखूबी उद्घाटित किया है। केदार जी की यह पंक्तियाँ गम्भीर अर्थ बोध कराती हैं-

"वस्तु जगत में साम्राज्यवाद और साहित्य जगत में छायावाद और रहस्यवाद दोनों एक दूसरे के सगे भाई मालूम होते हैं....... साहित्य जगत का साम्राज्यवाद चेतन-उपचेतन और अवचेतन प्रदेशों पर अधिकार जमा कर अपना एकछत्र शासन चाहता है। साहित्य और वस्तु जगत दोनों ही क्षेत्रों में आज इस मोर्चे बन्दी केक लक्षण स्पष्टतया प्रकट होते हैं।"

इस प्रकार के अनेक लेखों, टिप्पणियों के साथ-साथ केदार के गद्य लेखन में साहित्य के आंतरिक पक्षों पर भी गंभीर विचार मिलता है। इसका श्रेष्ठ उद्धरण 'छन्दों का उद्भव और विकास' शीर्षक लेख है जिसमें छन्दों को लोक परम्परा से जोड़ा गया है। इसी प्रकार 'अज्ञेय की पाँच कविताएं' शीर्षक लेख केदार पाठक का परिचय कवि दृष्टि सीमाओं से बखूबी कराते हैं। अपने लम्बे और नियमित गद्य लेखन में केदार ने विदेशी कवियों और

व्यापक साहित्यिक धाराओं पर भी विचार किया है, और समकालीन बहसों में शामिल होते रहे हैं।

"कोई तगड़े तन का है, हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ, कोई बना संवरा रसिया छैल छबीला है।...... कोई कंठ लगी उगी है। कोई कठोर मंगला वेश की पार्वती है।"[१]

यहाँ यह भी दृष्टव्य है कि प्रकृति, धरती, किसान, हथौड़े वाले नवजात केन और नीले-नीले पंखों वाली चिड़िया पर मुग्ध यह उसी रचनाकार का गद्य है जो यह मानता है कि-

"कोई भी भाषा जीवन से दूर रहकर, सौदामिनी की तरह चमक कर मनुष्यों की भाषा नहीं हो सकती, भले ही वह कवियों की भाषा हो जाये, और कुछेक उसे संवारते रहे, भाषा का बल और पौरुष देखा जाता है। उसकी गम्भीरता की थाह ली जाती हैं। उसकी हृदयस्पर्शी मार्मिकता आँकी जाती है, यह देखा जाता है कि वह कहाँ तक सामाजिक, राजनीतिक और आत्मिक चेतना को व्यक्त करती है।"[२]

केदार जी का गद्य पुष्ट है, वह मानवीय संवदेना से युक्त है। जीवन के यथार्थ धरातल पर लेखक ने उसका चिन्तन किया है। केदार को जीवन-जगत की गहरी समझ है। वह जीवन में मानवीय मूल्यों, समता व समानता की स्थापना को लक्ष्य समझते हैं

जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण, सहज बोधगम्य व व्यापक परिप्रेक्ष्य वाला है। कविता जगत की ही भाँति उनका गद्य भी विस्तृत फलक वाला है। निबन्धों में ये स्पष्टतया देखा जा सकता है।

१- समय-समय पर (१९७०), केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. १४३

२- विचार बोध, (१९८०), केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं. २२

केदारनाथ जी ने सुन्दर समीक्षात्मक निबन्ध लिखे हैं जो कि सहज और बोधगम्य हैं। प्रस्तुत निबन्ध के माध्यम से लेखक ने सुन्दर ढंग से अपनी बात लिखी है।

(१) समीक्षात्मक निबन्ध

बैल के सींग

बहुत सी ऐसी बातें होती हैं जो रोज सामने आती हैं,पर हम उन पर कभी विचार नहीं करते. हमारी आदत बड़े-बड़े मसलों, पेचीदे सवालों और शास्त्रार्थ की जीत-हार के दाँव फेकनें की पड़ गई है. आज की नहीं, यह बहुत पुरानी आदत है, हमारी ही नहीं, हमारे पुरखों की है. वही अब भी है. हम बदलें तो हैं पर इस तरह नहीं कि जो हमारे पुरखों बात थी वह हममें न हो.एक एक बात हमारी और उनकी बराबर हैं. हाँ फर्क है तो इतना है कि वे पैदल या बैलगाड़ी पर चलते थे, हम रेल या जहाज पर चलते हैं. वे धोती कुर्ते में गुजर कर लेते थे, हम सूट-बूट की इच्छा रखते हैं. जैसे छोटी-मोटी रोज होनेवाली बातों को देखने-सुनने की आदत न थी वैसे ही हमें नहीं है.उन्होंने भी बैल की सींग देखे थे. हमने भी देखे हैं.पर न उन्हांने सोचा समझा और हम सोचते-समझते हैं. मैं तो कहता हूँ कि भूल जाओं बड़ी बड़ी हेर-फेर की बातें. लीग-आफ-नेशन्स को जैसे कहीं सुना ही न हो. हिटलर मुसोलिनी को समझ लो थोड़ी देर के लिये कि वे हैं ही नहीं. गाँधी तक को हिमालय पहाड़ की किसी कन्दरा में बरफ के नीचे दबाकर रख दो और फिर सोचो कि आखिर ऐसी कितनी छोटी-मोटी बातें हैं जो हमारी निगाह में पड़ती ही नहीं. हम उन्हें उसी तरह समझें जैसे अर्थशास्त्री कायले की खादान से कोयला निकालने की तरकीब साचतें हैं तब मालूम होगा कि जीवन में उनकी उतनी ही जरूरत है जितनी बड़ी से बड़ी चोटी की बात की!

बैल का सींग सब ने देखे हैं. पर किसी ने शायद ही इस पर दिमाग से सोचा हो. हम इतना ही जानते हैं कि सींग की जरूरत थी और इसलिये बैल के सिर पर वे हैं. मौके बे मौके बैल की हिफाजत करने में मदद करते हैं. बस, इससे ज्यादा हमनें कुछ नहीं सोचा. लड़कपन में एक बात और देखी है कि इस पर बैठकर कभी-कभी चिड़िया बड़े मजे में अपनी थकन मिटाती थी. बैलराम धीरे-धीरे चलते थे और वह सर पर सवार मन ही मन मज़ाक उड़ाती थी.

मैं तो समझता हूँ कि बैल के सींग की कोई जरूरत न थी. ऐसे न जाने कितने जानवार हैं जो बिना सींग के हैं. तब फिर कौन ऐंसी ख़ास बात थी कि बैल के सींग हों. मुझे तो कोई फ़ायदा नहीं दिखता. बैलराम बोलते होते तो उनसे पूछकर मालूम हो जाता पर वे चुप हैं. और आप बोलते हैं. मैं कहता हूँ फायदा कुछ भी नहीं है आप कहते है. आप समझ नहीं पाते मैं समझाता हूँ कि बैल के सींग बेकार हैं. पहली बात यह है कि सींग कोई ताकत की पहचान नहीं है क्यों बुड्ढे बैल के सर पर भी सींग देखे गये हैं. इससे यही साफ ज़ाहिर है कि सींग कोई शक्ति की निशानी नहीं है. फिर बहुत से बैलों के सींग गिर भी जाते हैं. मेरा यही मतलब है कि चूंकि यह सर पर होते हैं इसीलिये वे फ़ायदे के हे। ऐसा सोचना गलत है. कोई चीज़ है, उससे फ़ायदा ही नहीं नुकसान अकेला ही हो सकता है. जैसे मच्छड़ ! यह है, फायदा कुछ भी नहीं, फिर भी लाखों हैं. नुकसान है. जहाँ देखा मलेरिया का बुख़ार ऐसे ही बैल के सींग हैं.

बैल के सींग कितने खौफ़नाक होते हैं ? पेट में घुसें पेट फट जाय, अंतड़ियाँ बाहर निकल जायें, इनसे चोट की बहुत आशंका है. वे न होते तो पेट फटने का डर न रहता. अगर गुस्सा में कोई बैल उछाल दे तो सात कुलाचें खाकर आसमान से नीचे ज़मीन पर चारों खाने चित्त गिरें और लाश ही मिले ! ऐसे सींग अगर न हों तो अच्छा, कि हों तब अच्छा ?

ठीक यही हाल हमारा है, हमारे सींग तो नहीं हैं पर हमने भी सींग जैसी तमाम तरकीबें ऐसी ज्यादा निकलने दी हैं कि इनसे सबको ख़तरा है. ज़हरीली गैसें ! ऐसे ऐसे औज़ार जो हज़ारों की जान एक क्षण में ले लें. ऐसे ऐसे पनडुब्बे ज़हाज जिनसे खैऱ नहीं है. यही नहीं हम देशों की हत्यारी सेनाओं की संख्या बढ़ाने के भी दोषी हैं. हमें अपने माल बेचने के लिये बाजार चाहिये ! आज सारा संसार इन्हीं बातों से व्याकुल है. बैल के सींग दो हैं, छोटे हैं ! कम ख़तरे के हैं. पर हमारी समझ में हमारे सिर पर इन सींगों से कहीं बढ़कर ज़ोखिम वाले करोड़ों सींग पैदा हो गये हैं. जैसे पुरखे लड़ मरे, जूझ गये बाद को कमज़ोर सन्तान रह गयी जो खून से सनी ज़मीन पर रहने लगे वैसे ही हम भी नया प्रलय रचकर अपनी पूरी ताकत का परिचय देने चले हैं. इस तरह की सभ्यता बहुत घातक है और हमारी हीनता प्रकट करती है. हम उस बैल से किसी तरह कम नहीं हैं जिसकी आँखों में पट्टी लगी हैं, कोल्हू में जुता है और दिनभर उतनी जगह का चक्कर लगाकर फिर भी वैसे

ही दुखी बना रहता है जैसे कि पहले था. हममे से हर एक को अब सोचना चाहिये और हर एक छोटी से छोटी बात का बुरा-भला सोचकर देखना चाहिये. जो बेकार है उसे छोड़ना है, जो हितकर है उसे लेना है, हम सब एक है. एक ही कुटुम्ब है. देश की सीमायें तोड़ना है. सब समान हों. कोई किसी से नीचा न हो. अब ज़माना इतना बदल गया है कि हमें भी बदलना लाज़िमी हो गया है. आसमान और ज़मीन एक हो गयी है. पानी और पहाड़ हमारे लिये अपनी छाती खोल चुके हैं जैसे कि हम अपने कपड़ों की बक्स का पल्ला खोल देते हैं और जिधर चाहते हैं. हाथ डालकर चीज़ ढूँढ़ लेते हैं. ग्रीस और अमेरिका हमारे उतना ही नज़दीक है जितना कि टेबल के दूसरे सिरे पर सामने बैठा हमारा गहरा दोस्त.

अब जो बात हम सोचें उसे सबके लिये सोचें. जो काम करें सबके फायदे-नुकसान को समझकर करें, हमारे अपने निजी हानि-लाभ का तो कोई सवाल ही नहीं रह गया ! यहाँ तक कि हमको इतना तक सोचना चाहिये कि हम वैसा घर न बनवायें जैसाकि दूसरा नहीं बनवा सकता. हमें ही कौन सी उस तरह के घर के बिना तबालत उठानी पड़ेगी. जब हम सब एक हैं तो एक तरह के घरों में रहें. माना कि आज कुछ के पास रुपया है तो वे जो चाहे कर सकते हैं पर ऐसा सोचना इस युग के खिलाफ़ है.

हम हिन्दू हैं, तुम मुसलमान हो, वह ईसाई हैं, वे बाते गये ज़माने की धाँधली थी. अब नहीं चलने की. जब इन धम्मों का जन्म हुआ था तब समय और था. आज का हाल दूसरा है. अब तो हमारा कर्तव्य है कि आस-पास की बातों को पहले सोचें. दूर की बात जाने दें. बहुत सोच चुके राम-रहीम पर. सोचना है कि घर कैसे हों, स्कूलों में कैसी पढ़ाई मिले, तन्दुरुस्ती की दुरुस्ती कैसे हो, शादी कब और किससे हो. यही नहीं, दुनिया भर में सबको सब चीजें मिलना चाहिये. जो एक जगह नहीं पैदा होता वह दूसरी जगह से मँगाकर वहाँ देना चाहिये. कीमत का सवाल ही क्या है ? समस्त संसार को एक परिवार-सा हो जाना है सब काम करें, सबके लिये. एक देश हो जाये. सब कुछ देश का हो जाये. हम सब अपने न रहें. देश के हो जायें. केवल हमारी शक्ति का सदुपयोग देश करेगा।

जैसे आज हम हैं और जैसे हमारी सभ्यता बन रही है वह ख़तरे की है. हमारे सींग उग आये हैं. सीगों की सभ्यता है. इससे हमें बचना है. तरकीब सोचकर इससे फौरन बचना है. इसीलिये हमें चाहिये कि हम बैल के सींग पर विचार करें और अपनी हालत पर

भी पूरी तरह इसी के साथ-साथ ज़रूर सोचें. (माहेश्वरी, कलकत्ता १९३९ में प्रकाशित)

मेरी मेज़

मेरी मेज़, जो मेरी लाइब्रैरी में है, बहुत काफ़ी बड़ी है, वैसी बड़ी मेज़ अक्सर कम देखने में आती है, उस पर पढ़ने-लिखने का सब सामान छोटी आलपीन से लेकर मोटी से मोटी किताब तक, रहता है. यहाँ तक कि कई भारी-भारी पेपरवेट्स भी उस पर पड़े रहते हैं. उसका कोई हिस्सा ख़ाली नहीं दिलतो. हर तरफ़ कुछ चीजों का जमाव बना रहता है. कई बरसों से वह मेरे पास है. इसके पहले मेरे पिताजी के पास थी और इससे भी पहले मेरे बाबा के ताऊ के पास थी. उसका इतिहास बहुत पुराना है जैसेकि ज़मीन की शकल का, पर कभी-कभी पालिश हो जाने के बाद वह जैसी की तैसी मज़बूत और भारी है जैसी बरसों पहले थी.

पुरानापन तो नज़र ही नहीं आता. उस पर नये नये कलम, नई नई किताबें और नये नये कागज़-पत्तर आते हैं, चले जाते हैं, काम की, समझबूझ की चिट्ठियां लिखी जाती हैं, हिन्दी-उर्दू और अंग्रेजी भाषाओं का सम्मेलन होता है. ब्लाटिंग पेपर, राइटिंग पेड, सिगरेट बॉक्स, मैच बॉक्स, सील करने का सामान और बहुत ऐसी ही चीजें मेरी मेज़ पर इकट्ठा है, टाइप राइटर भी खट्खट् हुआ करता.

कोई चीज़ विलायत की बनी है तो कोई जापान की, कोई जरमनी की, अमरीका की. ऐसा कोई भी देश नहीं है जिस देश की चीज. मेरी मेज़ पर न हो. एक तरह से सारी दुनिया मेरी मेज़ पर मौजूद है. और अगर वर्ल्ड मैप बिछा दिया जाय तो उस पर जायेगा, इसमें कोई शक ही नहीं है.

मैं अख़बारों में पढ़ता हूँ कि जापान, चीन पर चढ़ा है तो जरमनी स्पेन पर. इटली अबीसीनिया को खा गया. अरब पैलेस्टाइन का झगड़ा पैदा है. यह पढ़ते-पढ़ते मुझे अक्सर ख्याल हो आता है कि कहीं मेरी मेज़ की चीजें न लड़ बैठें, पर मैंने देखा कि जो जहाँ है वहाँ है, कोई दुश्मनी नहीं है ! मेरी मेज़ पर जो दुनिया है वहाँ के एक दूसरे देश आपस में लड़ना झगड़ना नहीं जानते, मेल से रहते हैं, सबका गुज़र होता है. किसी एक को दूसरे से घबराने का मौका नहीं है. छोटी आलपीन से लेकर भारी कागज़ दबाने के पत्थरों तक हिफ़ाज़त से मेरी मेज़ पर रहते हैं. मैं जिस चीज़ को चाहता हूं, काम में लाता हूं और फिर

रख देता हूं. अगर ये चीजे आपस में लड़ने-भिड़ने लगें और उधम पर उतारू हों तो मेरा सारा काम बिगड़ जाय और मैं कहीं का न रहूँ। कौन जाने कौन सी चीज़ दियासलाई जो मेरी सिगरेट ज़लाने के काम आती है- लेकर आग ही लगा दे. सारा सत्यानाश हो जाय. सारी लाइब्रैरी का पता न लगे और मेरी मेज़ ख़ाक हो जाये.

अगर दुनिया चाहती है कि उसका नाश न हो तो यह जरूरी है कि उसे मेरी मेज़ की तरह होना चाहिये. सब देश एक हो जाये. आपस में लड़ने की बात तक न सोचे ! नाश की दियासलाई न जलायें. (साक्षात्कार, अंक अगस्त-नवम्बर १९८६)

नंगी तलवार

नंगी तलवार बहुत ख़तरे की चीज़ है. जो चाहे पकड़कर चला दे. किसी की गरदन कट जाये. किसी के हाथ-पैर कट जायें ! कोई जान भी न पाये, क्या हुआ, कैसे हुआ. ज़मीन पर, दीवार पर, इधर-उधर, कपड़े-बिस्तर पर जहाँ देखो खून ही खून नज़र आयेगा, कहीं धड़ होगा, कहीं सर होगा, कहीं हाथ होगा, कहीं पैर, जान का कहीं पता न होगा. नंगी तलवार बेहद ख़तरे की चीज़ है.

है तो वह धातु की. इसकी खुद की कोई जान नहीं है. वह मुरदा लटकी रहती है, रक्खी रहती है. न किसी से कुछ कहती है, न कुछ सुनती है. वैसे तो बड़ी अच्छी है. चमकती है ! जी चाहता है कि गले से लगाकर चूम लो. जैसे चाहे बगल में दबा लो. पर नाम तो तलवार है. हथियार तो है. डर इसी से मालूम होता है. सामने देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं. दिल थहर जाता है. साँस रुक-रुक कर आने जाने लगते है. ऐसा भय तो जीते शेर से नहीं लगता जैसा इस बेज़ान तलवार से लगता है।

इसका इतिहास मनुष्य जाति के सर्वनाश का, रक्तपात का इतिहास है, इसके ख़ानदान में इसके पूर्वजों ने मनमानी नृशंस हत्साएँ की हैं, दया-धर्म तो इसको पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिले ही नहीं, इसे मिली है रक्त-पिपासा. इसी पिपासा को लेकर यह युग-युग में अत्याचार करती आयी है. बूढ़े, बच्चे, नौज़वान, सबको इसने मौत के घाट उतारा है. औरतों को स्वर्गधाम भेजा है. इसने खूब छक-छककर लहू चूसा है. नंगी तलवार दैत्य दानव से अधिक खूंखार एवं भयानक होती है. इसे तो परदे की ओट, आँखों की ओट

करना बहुत भाता है.

जब देखो तब यही लगता है जैसे कमरे में हर वक्त ही चमका करती है. हर समय बारम्बार मरते-जीते रहने का दुखद-सुखद अनुभव प्राप्त हुआ करता है. बेमौसम गाज़ गिरने का भय बना रहता है. मौत सर पर नाचा क़रती है. बैठे-बिठाए हर घड़ी जान आफ़त में रहती है. अक्ल मारी जाती है ! नंग तलवार जीते जी मौत से मुकाबला करती है !

म्यान में, खोल में, इसी से यह रखी जाती है कि मखमल में छिपी तो रहे, मुरदा है तो क्या हुआ, अन्दर बन्द तो रहे. धातु की बर्बरता, पैतृक इतिहास की नृशंसता, और उष्ण रक्त की प्यास खोई तो रहे. अपने आप कढ़ नहीं सकती. कोई जानबूझकर निकालेगा ही क्यों ! खतरा, जोख़िम, कुछ न रहेगा. बन्द तलवार हद से ज्यादा बुज़दिल होती है. आदमी चैन से तो सो सकता है ! यह वह बहू है जो अपना घूँघट न खोले तो अच्छा.

छुरी-काँटे से खौफ क्यों नहीं मालूम होता. वह भी तो नंगी तलवार के छोटे-मोटे भाई-बहन हैं. वह भी तो धातु के बने हैं. वह भी तो काँटने-छाँटने, चीरने-फाड़ने के काम आते हैं, इसकी वज़ह है. वह तलवार की संगत में खराब नहीं हुये. उनको रक्त की चाट नहीं लगी. उनकी जीभ को सिर्फ फलों, तरकारियों और मेवों का स्वाद मिला है. आदमी के खून की उन्हें लत नहीं पड़ी. यही कारण है कि उन्हें खोल में नहीं रक्खा जाता. यहाँ-वहाँ, जहाँ-तहाँ उन्हें पड़ा रहने दिया जाता है. बेचारे कुछ चाकू तो इतने सभ्य हो गये हैं कि उन्होंने फल तक काटना बुरा समझा है और अब तो वे केवल पेन्सिल बनाते हैं और दफ्तर के कागजऋ चीरते हैं ! काश नंगी तलवार भी यह सभ्यता अपनाती !

पर सभ्यता और तलवार तो जुदा जुदा रहती हैं और कभी नहीं होतीं. एक होने पर न सभ्यता रह जाती है न तलवार. तलवार के बल पर अतीत की सभ्यताएँ कायम जरूर हुई हैं पर वह भी खूंखारों की सभ्यता थी. उसमें यदि सभ्यता वास्तव में होती तो आज दुनिया को सभ्यता की ओर बढ़ने की लालस न होती. बात तो यह है कि तलवार के बल पर सभ्यताएँ नहीं जन्मीं वरन् राज्य स्थापित हुए हैं. सभ्यता तो राज्यों के स्थापित हो जाने की है. लोग यह गलत कहते हैं कि सभ्यता तलवार के सहारे जन्मी है.

सभ्यता हमें अपने अधिकारों के अन्दर रहना सिखाती है, दूसरों के अधिकारों पर वार करना नहीं, सभ्यता हमें खून बहाना नहीं सिखाती, रोकना सिखाती है, जो जहाँ हैं

उसे पूरा स्वतंत्र रखना पर साथ ही हरेक की स्वतंत्रता को टकराने न देना, यह भी सभ्यता ही करती है. यदि ऐसा न करे तो मेरी घोड़ागाड़ी पड़ोसी के आँगन में बँधने लगे. मेरी पत्नी को बैचेलर साहब ले भगें. तलवार तो इसके बिल्कुल उल्टा ही करती है. वह अधिकारों का अपहरण करती है. स्वतंत्रता छीनती है. तलवार लुटेरी है, बदमाश है. तलवार को सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक अवहेलना भाती है. तलवार आदमी को हैवान बनाती है. खुद दो तलवारें एक म्यान में नहीं रह सकतीं. कट मरती हैं. तलवार के पास समझौते की कोई गंजाइश ही नहीं. और बिना समझौता सभ्यता की गुंजाइश नहीं है.

कलम की नोक और तलवार की नोक में ज़मीन आसमान का अन्तर है. कलम लेखक के खून से कहानी लिखती है पर लेखक को मार नहीं डालती, उसे अमर कर देती है, तलवार जिसके खून से धरती पर लिखती है उसे मार डालती है. सदा के लिये सुला देती है. कलम कागज़ के भीतर से छिपे स्वर्ण अक्षरों को प्रकट करती है. तलवार देश की गाथा के नायकों को चिरनिद्रा में सुला देती हैं. कलम नई सभ्यता नया युग का निर्माण करती है. तलवार नव विनाश को बुलाती है. कलम भिखारी के हाथ में आकर कुबेर के कोष को खोलती है. तलवार पहरा देकर उसे बन्द किये रहते है, कलम ज्ञान की गाथा लिखती है तलवार मौत की स्याही बिखेरती है.

अच्छा होता यदि लोग मेरी इस नंगी तलवार को दफना देते जैसे मुरदा दफना देते हैं. म्यान कहीं खो गयी है. वह न मिलेगी. नई म्यान बेकार होगी.

साहित्यकार का सामाजिक दायित्व

दायित्व के होने न होने की परवाह उन्हें ही नहीं होती जिन्हें अपने होने न होने की परवाह नहीं होती. वे जो ऐसे हैं दूसरों जैसे नहीं हैं. न वे अपने हैं न दूसरों के हैं. आदमी के होने न होने का जीवन औरों के साथ नहीं जीते. इसलिये वे आदमी के होने न होने के जीवन के दायित्व से अनवरत बने रहते हैं और इसी अपनी अनवगतता में आदमियत को नकारते रहते हैं. उनका यह नकारना नंगे आदमी का नकारना होता है. इसलिये दायित्व की समस्या आदमी के नंगे होने न होने की आदिम समस्या से मौलिक रूप से जुड़ी हुई है.

प्रश्न उठता है कि आदमी आदिम प्रवृत्तियों का पुतला बनकर जीना क्यों चाहता है

और अगर उसके जीने को जीना न कहें तो क्या कहें ? क्या वह इसलिये जिये क्योंकि उसे भूख लगती है- क्योंकि उसे काम सताता है- क्योंकि उसे सहजाति की युवती से सम्भोग करना है- क्योंकि उसे किसी पशु (मादा) से रति की तृप्ति करनी है ? निश्चय ही इन प्रश्नों का उत्तर कोई हाँ में नहीं दे सकता।

इनका हाँ में उत्तर देना आदमी की सभ्यता और संस्कृति के विकास-क्रम से इनकार है, ज्ञान, विज्ञान और साहित्य की समस्त सम्पदा से इनकार करना है। आदमी के अब तक के तमाम ऐतिहासिक क्रिया-कलाप पर अन्धकार का परदा डालना है। आदमी को पशु के जैविक जीवन के धरातल पर ले जाकर पशु बनाकर छोड़ देने के समान हैं।

इसलिये आज की दुनिया की समस्याओं के समाधान के लिये यह कोई समाधान नहीं है कि आदमी नंगा हो जाये- आदिम हो जाये- पशु हो जाये और अपने अब तक के सम्पूर्ण विकास को जलाकर राखकर दे और फिर न तनाव अनुभव करे- न संकट में पड़े- न शान्ति के लिये संघर्ष करे- न एक दूसरे से जुड़े न एक दूसरे के लिये जिये न राजनीति रचे - करे - न चन्द्र यात्रा करे.

इसलिये आज की दुनिया निश्चय ही राहत गम्भीर दायित्वों की दुनिया है. इसी दायित्वों की दुनिया में आमदी को आदमी की तरह सोच-विचार कर, एक दूसरे के दायित्वों के प्रति सचेत रहते हुये, दिन-प्रतिदिन का और बरसों और दशकों का जीवन जीना है। ऐसे जीवन जीने से किसी को छुटकारा नहीं मिल सकता। जो छुटकारा चाहे या और से छिटककर स्वयं में समा जायेगा वह अपनी एकमात्र जैविक इकाई को ही जियेगा। ऐसे जीने वाले का कोई अधिकार न होगा कि वह दूसरे का उपजाया अन्न खाये- दूसरे के बनाये घर में रहे- बीमार पड़े तो दूसरे से सेवा या दवा चाहे- मरे तो कोई उसे नदी में फेके या आग में जला दे।

दायित्व में आदमी के आदमी होने की सभ्य और संस्कृत होने की ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में प्रकृति और मनुष्य के रहस्यों को उद्घाटित करके अग्रसर होने की क्षमता निहित है. इसी क्षमता से आदमी ने अपना इतिहास गढ़ा है और इसी से वह अपना वर्तमान गढ़ता है और इसी से वह अपना भविष्य गढ़ेगा। लेकिन जैसे-जैसे आदमी-आदमी का दायित्व दुगुना, तिगुना, चौगुना और पंचगुना होता जाता है वैसे-वैसे, उसी के साथ-साथ उसका

अधिकार-क्षेत्र भी दुगुना, तिगुना, चौगुना और पंचगुना होता जाता है।

दायित्व और अधिकार साथ-साथ चलते और पलते हैं।

जब दायित्व अधिकार की उपेक्षा करता है तब अधिकार भी दायित्व की उपेक्षा करने लगता. व्यक्ति-व्यक्ति में इस द्वन्द्व की सम्भावना सदैव बनी रहती है। व्यक्ति और समाज के बीच भी यही द्वन्द्व होता रहता है। व्यक्ति, समाज और देश के बीच भी इसीलिये राजनीतिक द्वन्द्व प्रकट होता रहता है। ऐसे ही द्वन्द्वों की स्थितियों में पड़कर हरेक संघर्ष करता है. संघर्ष से जीवन को दृष्टि और दिशा देता है. जर्जर रूढ़ियों की तोड़ता है. भाववादी विचारों के मुखौटे उतारता है. आदम-आदमी के लिये पथ-प्रशस्त करता है. युद्धों को अवरुद्ध करता है. शान्ति की अवतारणा करता है. आदमी जो कुछ कहता, सुनता और गुनता करता है वह एक व्यक्ति के लिये नहीं हरेक आदमी की समानता के लिये, हरेक के न्याय पाने के लिये, हरेक के अधिकारों की रक्षा के लिये कहता, सुनता और गुनता करता है.

कोई भी दायित्व, कोई भी अधिकार प्रकृति-प्रदत्त नहीं है. न मौलिक है न शाश्वत है न अक्षुण्य है न दैविक या पारलौकिक है. आदमी के दायित्व आदमी के अधिकार सभी आदमी की अपनी उपलब्धियाँ हैं जो उसने प्रकृति और परिवेश में कर्म कर-करके उनको अपनी सेवा में लगा-लगाकर ही अब तक पायी है। उसने उन्हें उसी रूप में जब-जब सहज़ रखने का प्रयास किया है तब-तब उसने आदमी को अपमानित किया है और उससे किसी व्यक्ति या दल विशेष के हित की ही रक्षा की है.

शोषित और अपमानित जनता के जागरण को, रूप की अक्टूबर-क्रान्ति के पूर्व, तरह-तरह से विरूपित और लांछित किया गया है. धर्म ने भी तमाम प्रतिगामी करनी की है. राजा और रईस तो करते ही चले आये हैं. भू-स्वामी या सामंत तो अपने आतंक के लिये जग-जाहिर हैं ही. दार्शनिकों ने भी आसमानी समाधानों से जन-जन की विचार-धारा को उल्टे बहाया है. मेहनत करने वालों ने जब-जब सिर उठाया है उन्हें कुचला गया है, हालांकि उनकी संख्या दूसरों से कई गुना अधिक है औ वह भी साफ-सुथरा जीवन के वैसे ही अधिकारी है जैसे उनको कुचलने वाले. लेकिन इस सबके बावजूद भी संसार की हालत नहीं सुधरी. दो महायुद्ध हुये। वियतनाम पर अमरीका की बम वर्षा हुई वह ध्वस्त-पर-धवस्त होता गया. लेकिन अजेय जनता ने जय हासिल की और अमेरिका का मुँह काला

हुआ.

मार्क्स ने आकर आर्थिक शोषण की बुनियादी समस्याओं को ऐतिहासिक दृष्टि से देखा और उनको विचार की दार्शनिक पृष्ठभूमि देकर बल और विवेक से उद्घाटित किया। लेनिन ने मजूरों को प्रतिबद्धता का सिद्धान्त दिया और उनके द्वारा ही संचालित किये जाने से राजशक्ति की समस्याओं के समाधान की सम्भावना प्रस्तुत हुई। उन्होंने नकली मानवतावाद की बखिया उधेड़ी। भाववादी आदर्शों को अवैज्ञानिक प्रभाषित किया। कथनी और करनी में उन्होंने ही तालमेल बैठाया। श्रम के शासन में ही निर्माण की उत्तरोत्तर वृद्धि हो सकती है, इस बात को भी उन्होंने बार-बार बल-विशेष के साथ कहा। उनका चिन्तन जीवन से उद्भूत, उससे जुड़ा और उसी के विकास से सम्बद्ध था। लेनिन क्रान्ति के प्रबल समर्थक थे- कोरी अराजकता के नहीं। वह क्रान्ति इसलिये चाहते थे कि क्रान्ति के बाद विश्व में शान्ति की स्थापना के लिये शोषण से मुक्ति के लिये नव-निर्माण के लिये देश देश में भाईचारे की भावना के लिये ज्ञान-विज्ञान, कला और संस्कृति के लिये समाज़वाद के माध्यम से साम्यवाद के लिये युद्ध के निष्कासन के लिये संसार की सरकारें और वहाँ की जनता एकजुट हों और करनी को कथनी के साथ जनहिताय में लगाया जाये।

साहित्यकार भी सामाजिक प्राणी हैं। लेकिन कृतिकार है इसलिये सविशेष हैं। उसका कर्मक्षेत्र साहित्य के सृजन का क्षेत्र है। उस सृजन में निस्संदेह वह अपनी समस्त शक्तियों से क्रियाशील होता है। इसलिये वह वैसा काम नहीं कर सकता जो कि एक बढ़ई करता है या कचहरी का एक क्लर्क करता है या एक तकनीकी आदमी करता है। वह यह भी नहीं कर सकता कि अन्दर पाले और नचाये। निश्चय ही यदि वह सृजन को मनोयोग से करता है तो वह अन्य कामों के लिये समय नहीं दे सकता। इसलिये देश की साधारण स्थिति में वह वही करे जो उसे करना है। किन्तु देश पर आपत्ति आने पर वह भी उस आपत्ति से नहीं बच सकता इसलिये उसे भी उन सब लोगों के साथ, उस आयी हुई आपत्ति से जूझना होगा। तब वह सबसे कटकर साहित्य के सृजन में पूरा समय नहीं खपा सकता। उसे सिपाही की तरह लड़ना होगा। जल्दी में उसे अपनी रचनाएं लिखनी पडेंगी और एक साथ दो काम करने पडेंगे। भले ही वह जल्दी की रची हुई रचना उत्तम न हो। वह उसे बाद को कभी ठींक कर सकता है। साधारण स्थिति में भी उसे समाजवादी दायित्व की कृति देते

रहना होगा।

इसके अलावा, यदि देश की आन्तरिक स्थिति बिगड़े और सरकार उसे अपने राजतन्त्र से सुधार न पाये तो उस बिगड़ी के बनाने में भी साहित्यकार को अपना सहयोग देना चाहिये। यदि उसके सृजन मात्र से दूसरे लोग प्रभावित हो सकें और उसको आन्दोलनों में सम्मिलित होने से मुक्त किये रहे सकें तब तो बात और है अन्यथा उसे उन आन्दोलनों में भी लोगों का साथ देना चाहिये।

किन्तु साहित्यकार को तमाम तरह के आन्दोलनों से मतलब न रखना होगा। उसे तो समाजवादी जीवन-दर्शन के बलबूते पर समाजवादी शक्तियों को ही सक्रिय सहयोग देना होगा। वह यह नहीं कर सकता कि जनसंघी कार्यक्रमों के लिये और मरे. उसे मार्क्सवादी दृष्टि से प्रत्येक आन्दोलन को जाँचना-परखना पड़ेगा कि वह प्रतिभागी शक्तियों को मज़बूत तो नहीं करता. इसलिये साहित्यकार को सरकार के समाजवादी कार्यक्रम में शामिल होने का पूरा हक है. मगर सरकार समाजवादी हो तभी, अन्यथा नहीं. साहित्यकार को यथास्थिति को तोड़ना है. वह इस काम को कलम से तो करेगा ही. जुलूस में सभा में शामिल होकर भी मत व्यक्त करके भी सही को प्रस्तुत करना उसका कर्तव्य हो जाता है। वह किराये पर लिया गया या खरीदा हुआ आदमी नहीं है कि अपने और गलत तत्वों के स्वार्थ के लिये गलत जनमत तैयार करे और सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में काम करे। वैसा करना गलत होगा.

यह कहना कि साहित्यकार अपने सृजन के लिये पूर्णतया स्वतंत्र है। वह चाहे जिस दिशा में भटके चाहे जैसा लिखे असत्य है. सृजन के समय भले ही वह अकेला रहकर रचना में लीन रहे, भले ही वह अपनी समग्र शक्तियों को अपनी रचनाधर्मिता में केन्द्रीभूत किये रहे, लेकिन तब भी उसे समाज से कटा हुआ नहीं जा सकता क्योंकि तब भी वह उस समय वस्तुवत्तीय अवगतता को अपनी आत्मपरकता में व्याप्त किये हुये दोनों की संश्लिष्ट इकाई बनाने में खोया रहता है. इस उसके खोयेपन से उसकी स्वतंत्रता को प्रमाणित नहीं किया जा सकता, न वह बुझा कोयला होता है जैसा किसी ने कहा है. न वह स्थगित उन्मेष की स्थिति में रहता है। सृजन के समय साहित्यकार वस्तुवत्ता और आत्मपरकता का मिला-जुला चेतन और अवचेतन प्राणी होता है जो दोनों के मेल-जोल की सामग्री देख-देखकर

पहलें तो ठिठका और ठगा रहता है लेकिन तदुपरान्त अपनी अनुभूत शक्तियों से संचालित होकर अपनी सृजन क्षमता पा लेता है और उस क्षमता से दोनों की एक भापाई इकाई बना देता है। यदि वह जीवन की भाषा लिखने का अभ्यासी रहा है तो वह उसी भाषा को और अधिक संवेदनशीलता दे देता है और अर्जित किये हुये शिल्प को नये सँवार से सज्जित कर देता है। इसलिये समाजवादी चेतना के समर्थक साहित्यकार से यह कहकर कि वह साहित्यकार नहीं है उसकी रचनाओं को कूड़े में नहीं फेंका जा सकता. वह मानव चेतना का सजग चितेरा होता है. उसकी कृतियों की उपेक्षा नहीं होनी चाहिये. वह मानवीय चेतना की संश्लिष्ट और संपुष्ट संवेदनशील रचनाएं देता रहता है. वह अपने दायित्वबोध को दूसरों के दायित्वों और अधिकारों से जोड़े हुये सम्बद्धता से कृतित्व करता रहता है. उसके कृतित्व का निश्चय ही वह स्वरूप न होगा जो एक हुये साहित्यकार की कृति का स्वरूप होगा.

साहित्य की वृद्धि में भी दायित्वों और अधिकारों की चेतन और अवचेतन बुनावट होती है. यह तो उन शोषकों की दार्शनिकता का प्रतिपादन होगा कि साहित्य में केवल साहित्य रहे मानवीय दायित्वों और अधिकारों की बुनावट न रहे। ऐसा प्रतिपादन किसी भी प्रकार से न्यायोचित नहीं हो सकता.

साहित्य उतना ही साहित्यकार के लिये है जितना दूसरों के लिये.

साहित्य मानवीय चेतना के विकास को बिम्बित-प्रतिबिम्बित करता है. विकास के इस क्रम को अवरुद्ध नहीं किया जा सकता किसी आधार पर, किसी सिद्धान्त के बल पर, न शुद्ध साहित्य के नाम पर. न साहित्य शाश्वत है कि उसकी वही-वही दिशा रहे और उसका वही-वही निरूपण हो।

साहित्य व्यक्ति के कृतिकार की इकाई की देन होता है. वह इकाई भी निरन्तर एकरूप शाश्वत इकाई नहीं होती है. वह इकाई भी परिवेश से युगबोध से आदमी के क्रिया-कलाप से सम्बद्ध और संश्लिष्ट होती है और नये-नये चेतन और अवचेतन सूक्ष्म और ठोस संवेदनों से बनती सँवरती रहती है.

समाजवादी चेतना से प्रतिबद्ध होकर भी श्रेष्ठ साहित्य का सृजन हुआ है और अब भी हो रहा है और आगे भी होता रहेगा. समाजवाद मानवीय चेतना को अपने दर्शन से दृष्टि देता है दिशा देता है। वह उस चेतना की शक्तियों का हरण अथवा अपहरण नहीं करता। न

ही वह उसका शोषण दोहन करता है. इसलिये समाजवाद से साहित्यकार को खतरा नहीं हो सकता. समाजवादी देशों में जो अंकुश कभी-कभी साहित्यकारों पर लगाया जाता है वह वहाँ की परिवेशगत आवश्यकता अथवा वहाँ की राजनीति के कार्यक्रमों से लगाया जाता है. वह अंकुश लगाने का काम गलत भी हो सकता है, सही भी हो सकता है. ऐसी सम्भावना तो सदैव बनी रहेगी. इस सम्भावना के आधार पर समाजवादी चेतना से ही इनकार कर जाना श्रेयस्कर नहीं हो सकता. व्यक्ति और राजनीति का द्वन्द्व तो कभी समाप्त होने का नहीं. द्वन्द्व से कतरा कर अहं की कन्दरा में घुस जाने से काम नहीं चल सकता. द्वन्द्व में संघर्ष करने से साहित्यकार और उसका सृजन नये आयाम पाते हैं. उनकी क्षमता व्यापक होती है. उनकी आत्मपरकता अधिक सम्प्रेषणीय होती है- अधिक संवेदनशील होती है- अधिक सम्प्रेषणीय भाषा का आविष्कार करती है. उस साहित्यकार की कृति देश-काल की वस्तुवत्ता का सही मानवीय आख्यान प्रस्तुत करती है.

एक बात और, साहित्य-जीवी और साहित्य-भोगी होना साहित्यकार के लिये जनता का सदस्य न होने का साक्ष्य नहीं है कि वह जनता से अलग किसी और देशकाल में जिये और अपने लिये भी और औरों के लिये भी गैर बना रहे. साहित्य सम्बद्धता स्थापित करता है. यथास्थिति को जनहिताय में बदले परिप्रेक्ष्य से प्रस्तुत करता है. वह चल है, अचल नहीं.

मैं क्यों लिखता हूँ

सबसे पहले तो मैं, अपने इस लिखने वाले 'मैं' के बारे में बता दूं. तभी अपने लिखने की बात को अपने जीवन के संदर्भ में बताना श्रेयस्कर होगा.

मेरा यह 'मैं' न परमात्मवादी है न पारलौकिक है न प्रकृति से प्राप्त पूर्ण इकाई है- न दैनिक जीवन का व्यवहारी 'मैं' है न यथार्थ और यथास्थिति को स्वीकार करने वाला है- न विशिष्ट-बोधी अवैज्ञानिक प्रवृति और रुचि का 'मैं' है न अतीत की प्रचलित मान्यताओं का पालनकर्ता 'मैं' है- न अविकसित विचारों का राग अलापने वाला 'मैं' है न धार्मिक, पुराणपंथी प्रलापी 'मैं' है न निजता की स्थापना करने वाला 'मैं' है न आत्म-प्रचारी 'मैं' है न ढोंग का दारकता बजाने वाला 'मैं' है- न चारण चापलूस 'मैं' है न मात्र जैविक संस्पर्शी 'मैं' है न इन्द्रियबोध का कला कलापी 'मैं' है न ऐतिहासिक विकास के क्रम में विमुख जाने वाला

'मैं' है न दैवी-देवात्मवाद का संस्थापक 'मैं' है न स्वार्थ साधक व्यक्तित्ववादी 'मैं' है न दलगत सामाजिकता जीने वाला 'मैं' है न प्रभुता सम्पन्नता के लिये ललकता 'मैं' है न रार-तकरार की नीति को समर्पित 'मैं' है न मात्र प्राकृतिक सृष्टि रह कर जीने वाला हिंसक 'मैं' है न प्राकर्षक 'मैं' है- न किंकर्तव्य विमूढ़ी है न द्वन्द्व संघर्ष से बचकर परम्परा का जीवन जीने वाला 'मैं' है मानवीय बोध का परित्यागी 'मैं' है न असंसारी 'मैं' है न भौतिकवाद को नकार कर तथा आध्यात्मिकता का प्रतिपादक 'मैं' है- न वर्तमान को अतीतोन्मुखी बनाने वाला 'मैं' है न भविष्य का अवतारी 'मैं' है न देशकाल से कटकर आदर्श के कल्पित लोक में प्रवेश का महत्वाकांशी 'मैं' है न मनुष्य से बढ़कर किसी दूसरी इकाई की परवशता में जाने वाला 'मैं' है। मेरा यह 'मैं' लड़कपन से विकसित होता चला आया है, इस मेरे 'मैं' का जो विकास हुआ है वह द्वन्द्व और संघर्ष के कारण हुआ है। द्वन्द्व और संघर्ष न करता, सत्य को पकड़ने का प्रयास न करता, भ्रम और असत्य की दुनिया को ही स्वीकार करके जो मैं जीता तो मेरा यह 'मैं' ऐसा न होता जैसा आज है. असत्य को यथार्थ को-ऐतिहासिकता को-अमूर्तन को-जड़ और जठर दार्शनिकता को-भेदकर ही वैज्ञानिक बोध का मंगलकारी मानवीय 'मैं' मैंने बनाया है। मेरा 'मैं' मेरे जीवन का उपार्जित 'मैं' है। मेरा 'मैं' मेरे दीर्घकालीन जीवन के क्रमिक विकास का 'मैं' है.

इसलिये यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि मैं जीवन को लेखन से-साहित्य से पहले मानता हूँ और अपने जीवन को ही श्रेष्ठतर बनाता रहा हूँ इसलिये मैंने जीवन को ही अपने लेखन का आधार बानाया है. इसलिये सामाजिक और राजनैतिक जीवन को भी मैंने अपने लेखन का आधार बनाया है. मैं पूर्णतया आश्वस्त हूँ कि मेरा ऐसा करना सर्वथा वैज्ञानिक है; पूर्णरूपेण मानवीय मूल्यों का संरक्षक और संवर्धक है और लेखन को, जीवन-बोधी, सत्य-सम्पोषी प्रगतिशील बनाता है।

अब प्रश्न उठता है कि क्या जीवन मात्र 'लौकिक' जीवन है ? क्या इस 'लौकिक' जीवन के अतिरिक्त कोई अलौकिक या अन्य प्राकार का जीवन नहीं है ? क्या ऐसे किसी अलौकिक या अन्य प्रकार के जीवन को ग्रहण नहीं किया जा सकता ?

मैं नहीं समझता कि लौकिक जीवन के अतिरिक्त ऐसा ही कोई अन्यत्र जीवन है। मानव का अस्तित्व इसी भूमण्डल में है। इस भूमण्डल के अतिरिक्त ऐसे किसी स्थान का

पता नहीं लगा कि जहाँ लौकिक मानव है, भले ही वह लौकिक मानव से कम विकसित अवस्था में हो, इसलिये लेखन भी इसी लौकिक मानव के जीवन का लेखन है।

यहीं पर यह भी विचारने की बात उठ खड़ी होती है कि लौकिक जीवन-सब-का-सब लेखन से सम्बद्ध है या नहीं. लौकिक मानव पहले तो अपना सहज-साधारण दैनिक दैहिक जीवन होता है. इस दैहिक जीवन जीने के क्रम में मानव ने शताब्दियों से, संघर्ष करते-करते, द्वन्द करते-करते पहले तो देश-काल में अपनी उपस्थिति के अनुभव प्राप्त किये और होते-होते, करते-करते, अपने अनुभव के निष्कर्ष निकालने शुरू किये, तर्क-वितर्क करते-करते विचार बनाने लगा और अपनी वैचारिकता के अनुरूप अपना लेखन बनाने लगा सत-असत् का संज्ञान प्राप्त करने लगा, फिर कालान्तर में सिद्धान्त और दार्शनिकता एक पहुंचकर अपना जीवन भी सिद्धान्त और दार्शनिकता से जांच-परख कर नये मानवीय मूल्यों का-आदर्श का-कर्तव्य और कर्म का सामाजिक और राजनैतिक जीवन जीने लगा. इसमें शताब्दियाँ लगीं. यहाँ तक, अब तक, पहुंचते-पहुंचते तो उसने इतना बहुत कुछ सत्य-संज्ञान प्राप्त कर लिया कि उसी को अपना कर अपने युगीन जीवन की पहचान की, लौकिकता प्राप्त कर, आगे बढ़ने लगा। इसीलिये सत्य-संज्ञान की ऐसी उपलब्धि का लौकिक जीवन ही, वैज्ञानिक बोध का-मानवीय बोध का जीवन ही वास्तव में, सत-संज्ञानी लेखन का विषय बनता चला गया और अन्य प्राकार का दैहिक, ऐन्द्रिक, परिकल्पानात्मक, संकुचित-सीमित, वैयक्तिक और पारम्परिक रूढ़िवादी, संस्कारवादी-जीवन की प्रवृत्तियाँ व्यक्त की जाने लगीं और सच्चे अर्थ में, मानव, लोकवादी मानव हो गया. मैं इसी लोकवादी मानव के जीवन को प्रारम्भ से क्रमशः अपनाता आया हूँ. इसीलिये मेरा 'मैं' दूसरों के अलोकवादी मानव की प्रवृत्तियों का 'मैं' नहीं बना. मेरा लेखन भी इसीलिये दूसरों के लेखन से सर्वथा भिन्न रहा है.

प्रश्न उठता है कि मैंने यह भिन्नता क्यों अपनायी ? मेरे लौकिक जीवन के युगीन संदर्भ ने मुझे वही-वही लिखने के लिये प्रेरित किया जो मात्र मेरे ही संज्ञान की अभिव्यक्ति न हो अपितु जन-जीवन में पैठकर उसको मानवीय और वैज्ञानिक बनाने वाला सिद्ध हो सके। मेरी चेतना की सृष्टि उनकी चेतना की सृष्टि हो जाये और वह भी उन्हीं मानवीय मूल्यों के बोध के हो जायें.

यदि लेखन की क्रिया, आदमी ने अपनायी होती उसने अपने जीवन को लेखन में व्यक्त करने का शुभारम्भ न किया होता-अतीत में जिये जीवन का इतिहास, लिपिबद्ध न किया होता और उसे सुरक्षित न रखता तो वह अपने विकास क्रम को सत्य-असत्य को उचित अनुचित को यथार्थ और आदर्श की प्रवृत्तियों को व्यवहार और उपचार की आवश्यकताओं और उनकी सफलता और असफलता के कारणों और तज्जनित दिशा और दृष्टि को न जान पाता, न आगे के पथ पर चलकर अपने वर्तमान को मानवीयोचित बना पाता, न भविष्य के अदृश्य को भेदकर उसमें प्रवेश कर पाता और सभ्यता और संस्कृति की अवधारणा बना पाता. इसलिये मानवीय बोध का विकसित जीवन प्राप्त करने के लिये, वैज्ञानिक बोध को प्राप्त करने के लिये, सभ्यता और संस्कृति का साम्राज्य स्थापित करने के लिये और अपने मानवीय विकास-क्रम को चालू रखने के लिये ही आदमी ने आदमी को श्रेष्ठतम इकाई बनाने के प्रयास में, लेखन को भी उसी के अनुरूप ढालता और व्यक्त करता चला आया. मैं भी इसी विचार-बोध का प्राणी हूँ. इसीलिये मैं अच्छा, सभ्य, सांस्कृतिक जीवन जीने लगा-ऐसे ही जीवन का पक्षधर बना और ऐसा बनने के क्रम को अपने लेखन द्वारा अत्यधिक सारवान और सार्थक कर सका.

ऐसा लेखन मात्र शाब्दिक अभिव्यक्ति नहीं होता. ऐसा लेखन शाब्दिक, कौतूहली नहीं होता. ऐसा लेखन ही मानवीय जीवन की सम्पूर्ण क्षमताओं को विकसित और पाने के लिये होता है. ऐसा लेखन ही मेरे मानवीय दायित्व का प्रतिबिम्बन करता है. इसीलिये मैं लिखता हूँ कि मैं, निरन्तर मानवीयता को, सोंच-समझकर, पाता रहूँ और विकसिंत व्यक्ति बनकर, उसी स्वभाव और पहचान के लेखन को लिखता रहूँ और केवल जैविक प्राणी बनकर न रहा जाऊँ और मेरा लिखा मात्र शब्दाडम्बरी न हो जाये।

(२) यात्रा वृत्तान्त

यात्रा में यात्री और चिन्तन

कई महीने की बात है. मैं सीवान से गोरखपुर आ रहा था. रेल के डिब्बे में कुली ने मेरा होल्दाल खोलकर बिछा दिया था. मैं पूरी बर्थ पर पैर पसारे आल-इण्डिया-रिपोर्टर पढ़ रहा था. यह बात नहीं है कि मैं सिवाय किताब के और कुछ जानता ही नहीं. मैं पूरा पढ़ाकू

नहीं हूँ, अधकचरा हूँ, पर उस समय इसलिये रोज़ी की पुस्तक का पाठ कर रहा था कि मेरी आँखों को देखने के लिये कोई दूसरा ठौर-ठिकाना उस डिब्बे में न था, लाचार और मज़बूर होकर टाइप के छपे काले अक्षरों से अपनी निगाह लड़ाये था.

अपने डिब्बे में मैं यों तो अकेला न था, कई आदमी बैठे थे, फिर भी, मुझसें और उन यात्रियों से कोई परिचय और सम्बन्ध न होने की वजह से मैं अपने को अकेला ही समझ रहा था. कुछ लोगों की आदत होती है कि जहाँ बैठते हैं चार-यार पैदा कर लेते हैं और बात की बात में, सिगरेट के धुएं में, समय व्यतीत कर देते हैं. मैं इनमें नहीं हूँ. बेमतलब की बात में पड़ना मैंने आज तक नहीं जाना. अगर कभी एकाध बार मेरा इरादा भी हुआ कि मैं अपरिचित से स्वयं अपना परिचय देकर कुछ शुरू करूँ और बात का बंडल खोलने लगूँ पर चुप इससे रहा जाता हूँ कि कहीं, ऐसा करने में, किसी की स्वतंत्रता के साथ व्यभिचार न कर बैठूं. मुझे दूसरों के अधिकारों का उतना ही ध्यान रहता है, जितना अपने अधिकारों का. मेरी राय में यात्री से छेड़छाड़ करना सभ्यता की अनाधिकार चेष्टा प्रदर्शित करना है.

मेरी गाड़ी जोरों से चली जा रही थी. हवा के झोंके, खुली हुई खिड़की से, आ-आकर मेरे चेहरे पर लग रहे थे और सर के बाल, कभी इस तरफ, कभी उस तरफ, उड़-उड़ रहे थे. इससे मुझे एक प्रकार का आनन्द मिल रहा थ. किसी से चुपचाप खेल करने की मेरे मन की इच्छा अपने आप पूरी हो रही थी. पढ़ते-पढ़ते कभी-कभी अपनी आँख खिड़की के बाहर भी उठा देता था. खेतों को देखकर खड़ी फसल का अनूठा स्पर्श भी कर लेता थ. मन में सम्भोग-सुख मुस्करा रहा था. मुझे न जाने क्यों दो-एक बार ऐसा लगा जैसे कि मेरे भीतर होने वाले रहस्य को डिब्बे वाले जान तो नहीं गये. पर सज़ग होकर और तर्क के बल पर मैं यह विश्लेषण कर लेता कि कोई कुछ देख नहीं सकता, यह केवल मेरा भ्रम है जो दिन के उज़ाले में रह-रहकर चौंक पड़ता है.

मैंने यह भी सोंचा, आखिर यह सब मेरे अन्दर क्यों हो रहा है ? मेरी यात्रा से और इस लीला से कोई वास्तविक सम्बन्ध भी तो नहीं है. पर नतीज़ा यही निकला कि पुरुष और प्रकृति का चिरन्तन सम्बन्ध है. इसी का परिणाम है कि मैं इस सम्बन्ध का मधुर अनुभव कर रहा हूँ. दूसरे यात्री ऐसा अनुभव नहीं करते क्योंकि वे अनुचित अवहेलना में गप्प मारने में, उलझे रहते हैं.

दो-तीन स्टेशन आये और पार कर गये. गाड़ी रुकी और सीटी देकर फिर भागने लगी. कुछ लोग उतर गये और कुछ लोग चढ़ आये, मुझे इसका ज्ञान तब हुआ जबकि एक अधेड़ उम्र के यात्री ने मुझसे मेरा नाम पूछा! मैंने किताब हटाकर उसे देखा और नाम बता दिया. जब मैं फिर पढ़ने वाला हुआ कि उसने पूछा क्या आप वकील हैं ? मैंने कहा, हाँ! उस आदमी ने न जाने कितनी बातें शुरू कर दीं. मैंने गौर से देखा पर उसका पेट कोई बड़ा नहीं मालूम हुआ, मामूली मेरे ही समान या, डील-डौल में शरीर भी मध्यम दर्जे का था, उमर ने बाल जरूर दाढ़ी और सर के, पका कर आधे सफेद और आधे काले कर रखे थे, पोशाक साफ नहीं थी, गन्दी और बेढंगी जरूर थी, मतलब यह कि उसमें कोई खास चिन्ह ऐसे नहीं थे जो उसे डिब्बे भर का मेहमान बना देते. वह मेरी ही पास वाली बर्थ पर बैठा था. थोड़ी-थोड़ी बात करते-करते वह इतना अधिक बात करने लगा कि मन हुआ कि कह दूँ, चुप रहो, मुझे ताज़्ज़ुब यह हो रहा था कि उसके पेट में इतनी लम्बी-चौड़ी बातें कैसे भरी रहती हैं- यही जानने के लिये मैंने अपनी निगाह उसके पेट की ओर डाली थी. उसका मुँह क्या था, मशीन था, जो चलकर रुकना जानता ही न था. मेरा पढ़ना और सम्भोग-सुख दोनों ही अचानक और असमय समाप्त हो गये. मैं उससे बचकर चुप न रह सका, कभी उत्तर देता, और कभी प्रश्न कर लेता.

उसकी चतुराई में कोई शक न था. जब उसने देखा कि मुझे मौसम की बातों से, यहाँ-वहाँ की घटनाओं से और हँसी के दास्तानों में रुचि नहीं है और ऊबता-सा हूँ तब उसने मेरे पेशे की बात छेड़ी. मैंने समझा कि यह शख्स भी उसी लय में बोलेगा जिसमें आजकल लोग वकीलों के बारे में बोलते हैं. वहील का पेशा बुरा है, बेचारे घर से कचहरी जाते हैं और कचहरी से घर लौट आते हैं पर ज़ेब में पैसे एक भी कमाकर नहीं लाते, तादाद इतनी बढ़ गयी है जितनी कि बरसाती मेढ़कों की, खासकर नये वकीलों की तो मिट्टी ही पलीत है.

पर, मेरी जान में जान आई सब उसने कोई ऐसी बात नहीं कही.

उसने कहा- आप एक-न-एक दिन बहुत मशहूर और बड़े वकील होंगे. आपकी लगन देखकर, आपका स्वभाव पहचानकर बिना आपसे कुछ बात किये ही मैं जान गया कि आप होनहार हैं.

मैंने अपनी प्रशंसा पहले पहल सुनी तो कुछ सुख अवश्य मुझे अनुभव हुआ पर

क्षणिक था और इसकी कोई कीमत रुपयों-पैसों में नहीं हो सकती ाि. इससे झूठा सुख अधिक देर ठहर न सका, बात की बात में गायब हो गया. मैं फिर उस व्यक्ति की बात सुनने लगा.

मैं गोरखपुर में रहता हूँ और मेरे तमाम मुकदमे अदालतों में रहते हैं. मुझे सब वकील जानते हैं. मैंने बहुतों की वकालत चला दी. मेरा एक निज़ी मुकदमा चल रहा है. यह देखिये तमाम कागज़. इतना कहकर उसने मेरे हाथ में मुकदमा का पिटारा सौंप दिया.

मैं करता ? मैंने इधर-उधर देखना शुरू किया और न समझने की इच्छा रखने पर भी असल मुकदमा समझ ही गया क्योंकि आँखें खुली रहने पर बराबर पढ़ती ही गयीं, रुकी नहीं.

इसके बाद केस के बारे में बहुत-सी बातें हुईं. जब उसे यह पता लग गया कि मैं कुछ अपनी अकल पर खुश हुआ क्योंकि पूरा केस समझ में आ गया तब उसने, मुझे अपनी मुट्ठी में पूरा जकड़ने के लिये, एक नया प्रयोग किया.

उसने कहा- साहब, आप इस कागज़ में अपना पता लिख दीजिये. मैं अवश्य ही अपने केस में आपको पेशी में बुलाऊँगा. मैं किसी ऐसे ही वकील की खोज़ में था. इत्तफाक ऐसा और भाग्य भी ऐसा कि आपसे रास्ते चलते भेंट हो ही गयी. यही कहते हैं, ईश्वर असम्भव को सम्भव कर देता है. मैं गोरखपुर के वकीलों को खूब देख चुका हूँ, वे मुझ पर हँसते हैं और केस बिल्कुल तैयार नहीं करते. मैं उन्हें समझाता हूँ, उन्हें क्लब और टेनिस की याद आती रहती है. आप मेरे केस को खूब ठीक से करेंगे. क्या आप अपनी फीस बतायेंगे ? किराया वगैरह तो मेरे ही जिम्मे रहेगा, इसका संकोच न कीजिये. कहिये.

मैंने सोचा मेरा भाग्य इतना प्रबल नहीं हो सकता कि रेल के डिब्बे में सोने की चिड़िया मेरे हाथ पर आकर बैठ जाय और मैं स्वप्न की सच्चाई दुनिया में पूरी उतरते देख लूँ. यही विचार करके मैंने किसी आशा से नहीं किन्तु, अपने भविष्य की असत्य झलक ही देखने के हेतु कही उससे अपनी फीस (प्रतिदिन की) बता दी. उसने मुझे विश्वास दिलाया कि मैं पत्र पाते ही चल दूँ और केस पूरा तैयार करके आऊँ.

मेरी दिल बहलाव और भुलावे के लिये उसकी यह बातें दिखावे के लिये तो खूब थीं पर वास्तव में इनमें खोखलापन और फकीरापन था. मैं दुनिया को इतना पहचान गया था

कि सहज़ में अब किसी बात पर विश्वास करना मेरे लिये नामुमकिन हो गया था. जिसकी आशा करो, जिस पर विश्वास करो, जब मैंने देख लिया कि वह होता ही नहीं, तब मैंने यह सिद्धान्त बना लिया कि जब कुछ हो जाय तब उसे सच समझो वरना सब झूठ है. इसी से मैं उसे (यात्री को) पूरा झूठा समझ रहा था और बेबस होकर सब कुछ सुन रहा था.

अचानक उसने मुझसे पूछा- क्या आप तेल नहीं लगाते ? मैंने कह दिया- बहुत कम.

बस इसी बात पर उसने मुझे तेल के सब गुण बताये और सीख भी दे डाली कि मैं हमेशा तेल लगाया करूँ.

मैं इस असम्बद्ध 'तेल की बात' की कोई तुक न समझ सका। कहाँ तो अदालती चर्चा और कहाँ तेल. दोनों सामंजस्य के उतने ही बाहर थे जितने तर्क और तुपक. मैं चुप हो गया.

देखिये, मैं आपको एक बोतल तेल देता हूँ. आप इसका सेवन कीजिये, आपको बहुत लाभ मालूम देगा. यह मोमफली के तेल का नहीं बना, शुद्ध तिल्ली का बना है. मैंने खुद बनाया है- उसने कहा.

मैंने आश्चर्य से चकित होकर बोतल अपने हाथ में ले ली कि देखूँ कैसा तेल है. सूँघने पर अच्छा लगा और लगाने की कोई बात हो ही नहीं सकती थी क्योंकि मैं यात्रा में तेल से घृणा करता हूँ.

बहुत नम्र भाव से उसने कहा- वकील साहब आप इसे रख लें. यह बहुत नफीस है, तलाश करने पर भी ऐसा तेल आप न पायेंगे.

मैंने कहा- मुझे न चाहिये. यह आफत अपने बक्स में मैं न बन्द करूँगा, खुल जाय तो मेरे कपड़ों का सत्यानाश हो जाय.

पर उसने इतना अधिक कहा कि लाचार होकर मैंने बक्स में रख लिया पर रह-रहकर यही इच्छा हो कि निकाल कर बाहर फेंक दूँ. मैंने उससे पूछा- आपने इसे कितने में खरीदा ? दाम ले लीजिये.

कुछ नहीं साहब. मैंने खरीदा नहीं. मैं खुद बनाता हूँ. यही एक बोतल बचा है. उसने कहा.

मैं सारा रहस्य समझ गया. एकदम दुनिया की मक्कारी का परदा खुल गया और

तेल बेचने वाले महाशय का असली मतलब भी मिल गया. वह बोतल बेचकर मेरे ज़ेब से नकद-नारायण खींचना चाहता था और बहकाकर, मेरी तारीफ करके, मुझे उल्लू बनाना चाहता था. मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे मैंने किसी पक्के बेईमान को, बुरी तरह से, अदालत के सामने गवाही देते समय पकड़ लिया है और वह निकलकर कहीं जा नहीं सकता.

मैंने जाँच करने के लिये एक बात कही- जो कुछ दाम आप कहें, दे दूँ.

उसने कहा- मैं आपसे क्या दाम माँगू, साहब. यह आपकी ज़िद है जो मुझे दाम लेने को मज़बूर करते हैं. मैं क्या 'कीमत कहूँ ? जो आप समझें दे दें. अच्छा से अच्छा तेल तो दो-डेढ़ में मिलेगा पर मैं भला इतना आपसे माँग सकता हूँ. जो चाहिये, दे दीजिये. अब तो आप कोई दूसरे नहीं रह गये.

मैंने यात्री की बात सुनी, बात सुनकर दिल की तह में पहुंच गया, उसका मतलब समझ गया. सभ्यता की चतुर कला ने ज़रा सा ही घूँघट खींचकर झलक दी थी कि मेरी पारखी आँखों ने उसको घात करते फौरन पकड़ लिया। वैश्या की कटाक्ष और सभ्यता की कला-कुशलता दोनों ही छल-कपट करती रहती हैं पर श्रद्धा और विश्वास की कठपुतलियाँ नचा-नचाकर दुनिया की आँखों को मोहित करके उनका पूर्ण प्रकाश हरने को.

(३) साक्षात्कार

कविता एक सांस्कृतिक उपलब्धि है

प्रश्न- आप वकील हैं और कवि भी हैं, कचहरी और कविता का यह संयोग कुछ समझ में नहीं आता. वैसे ये दोनों विरोधी हैं. आपका क्या ख्याल है ?

उत्तर- वकालत और कविता दोनो भिन्न गोत्रीय हैं. दोनों में कोई सजातीयता नहीं है। दोनों की प्रकृति और दोनों का गठन अलग-अलग है. मैं पेशे से वकील हूँ और बहुत दिनों से हूँ लेकिन वकील होने के पहले से कवि रहा हूँ. इसलिये अब तक कवि हूँ और चूँकि कवि का धन्धा हमारे यहाँ रोटियाँ नहीं देता इसलिये अपने पेशे से अपने कवि के लिये उसे ज़िन्दा रखने के लिये रोटियाँ कमाता हूँ. लेकिन मेरा पेशा भी मुझे मेरी कविताई में मुझे मदद देता है। वैसे अक्सर वकालत कविता के आड़े आती है- मेरा सब समय खा लेती है- मुझे तार्किक और खुड़पेंची बनाये रहती है. फिर भी, उसने मुझे आदमी के भीतर पैठने की दृष्टि दी है-

आदमी को परखने और कसने की क्षमता दी है- और उसने जीवन के विभिन्न पहलुओं से गहरा परिचय कराया है. शायद अकेला कवि होकर, बिना वकील बने हुये, मर्मैं असमर्थ कवि होता. मेरा ख्याल है कि वकालत ने मुझे और मेरे कवि को जीवित रखने में और दोनों को समर्थ बनाने में पूरा योग दिया है. इसलिये वकील होकर भी मैं कवि बना हूँ और मेरी रचना-धर्मिता कम नहीं हुई. जो लोग यह कहते हैं कि कवि को कवि होकर ही जीना मरना चाहिये वह शायद यह भूल जाते हैं कि कवि कभी भी चौबीसों घण्टे कवि नहीं रहता. उसने अपने समय का बहुत बड़ा अंश दिन-प्रतिदिन कवि न बने रहकर बिताना पड़ता है. मेरा बहुत सा समय मुवक्किलों से बातचीत करने में और कचहरी में काम करने में खप जाता है. यह भी कुछ उसी प्रकार है जैसे बहुत से कवियों का समय और भी दूसरे प्रकार की बातों में लगे रहने में निकल जाता है. किसी की आदत कुछ है, किसी की आदत कुछ है. आदतों में सबका अधिकांश समय चला जाता है. वकालत को भी मैं वैसा ही आदत समझता हूँ. हाँ, यह ज़रूर है कि वकालत मुझे आदमियों से अधिक जोड़े रहती है और दुनियाँ से निकटतम बनाये रखती है। शायद इसीलिये मैं अपनी कविता में हवा में नहीं उड़ता। शायद इसीलिये मैं अपने कविता में आदमी और दुनिया को जीता रहता हूँ.

गहरे से नहीं देख पाता जितनी दुनिया गहरे से एक वकील देखता है. आलोचक भी, अन्त समय तक, दूसरों की दुनिया से दूर ही दूर रहता है और घुसपैठ कर उसे नहीं देखता. वह जो कुछ देखता, गुनता और समझता है- किताबों से, रचनाओं से दुनिया को और उसके लोगों को देखता है. बहरहाल हर तरह से आलोचक वकील के मानिन्द दुनिया को नहीं जानता-समझता. आलोचक पर विद्वता, विशेषज्ञता, साहित्यिक सूझबूझ हावी रहती है. वकील पर दुनिया हावी रहती है- वह उसके सीधे सम्पर्क में रहती है.

प्रश्न- लेकिन वकील के लिये उसकी वकालत ख़तरे की चीज़ तो है ही, वकालत कवि को क्रूर, कठहुज्ज़ती, खुशामदी, कला-विमुख, नग्न-यथार्थवादी, संदेही, अकडू और न जाने क्या-क्या बना तो सकती ही है और ऐसे में कविता मर सकती है. आपका क्या विचार है?

उत्तर- ऐसी सम्भावना तो है. इसका ख़तरा है. लेकिन हर वकील तो ऐसा नहीं होता. वकीलों में भी शिष्ट, संयत, समझदा, स्वाभिमानी, परोपकारी, सहृदय लोग होते हैं और

बड़े वकील जो नाम कमाते हैं, वे काव्य-कला और साहित्य एवं संगीत में भी रुचि रखते हैं और अपनी वाक-शक्ति से काव्य और साहित्य को पुष्ट और प्रवीण बनाते हैं और तब अपने क्षेत्र में नाम कमाते हैं। इसी प्रकार कवियों में भी सब कवि एक से नहीं होते. कुछ ही कवि ऐसे होते हैं जो जीवन की जटिलताओं को समझते हुये आदमी को सही दृष्टिकोण देते हैं- टूटे हुये लोगों को सहारा देते हैं- सत्रांस को चीरकर, संत्रास को दूर करने की दिशा और दृष्टि देते हैं. इसलिये मैं वकालत को अपने लिये ख़तरे की वृत्ति नहीं समझता. हाँ, यह बात अवश्य है कि मेरी वकालती दृष्टि और समझ मेरी कविता को बौद्धिक बना देती है और बौद्धिक होकर वह अपनी आम सहज़ता सर्वसाधारण के लिये खो देती है। मेरी कविता इसी वजह से, प्रचलित पैटर्न से अलग होती है क्योंकि मुझे अपनी पकड़ की बात अपने तरीके से कहने में कथ्य को कुछ दूसरे तरीके से और दूसरे शिल्प में ढालकर कहना पड़ता है। यह बगावत नहीं है और न अराज़कता है.

प्रश्न- आपने पहले बहुत सी कविताएँ ऐसी लिखी हैं जो पैटर्न में लिखी गयी हैं और अब आपकी कविताओं में वह पैटर्न नहीं मिलता. क्या वह इसलिये है कि आपसे कविता छूट गयी है और आप कविता न लिखकर कुछ और लिखने लगे हैं ?

उत्तर- सवाल बड़ा अहम है. लोग ऐसा कह सकते हैं. और वे लोग तो ज़रूर ही ऐसा कह सकते हैं जो केवल पैटर्न देखकर कविता को अपनाते या त्यागते हैं. मैं नहीं समझता कि कविता मुझसे छूट गयी है और मैं कविता न लिखकर कुछ और लिखने लगा हूँ. वास्तव में इस प्रश्न का उत्तर इस बात की अपेक्षा रखता है कि मैं इसका उत्तर कई बातों को लेकर दूँ। सबसे पहली बात तो यह है कि पैटर्न वाली कविता रूढ़ हो जाती है और एक ऐसा युग आता है कि वैसी कविता से लोगों को संतोष नहीं होता और न वे वैसी कविता को अपनी कविता समझते हैं. जैसे-जैसे समाज तीव्र गति से बदलता है वैसे-वैसे लोगों को नये-नये संघात से गुज़रना पड़ता है और नये-नये अनुभवों से त्रासित होना पड़ता है. लोग दूसरे ढंग से सोचने, समझने और गुनने लगते हैं. इस दौर में भाषा असमर्थ प्रतीत होने लगती है. तभी वह टूटने लगती है और नये संघातों की नई सम्बद्धता पाने लगती है और इस तरीके से इस दौर की भाषा पहले की भाषा से बदल जाती है. वाक्यों का निर्माण दूसरे तरीके से होने लगता है. शब्दों के संगठन में उलट-फेर हो जाती है। क्रियायें आगे पीछे हो जाती हैं। अभिव्यक्ति का

सिलसिला टूट जाता है. एक ही कविता में कई-कई, विभिन्न, बेमेल भाव और विचार प्रस्तुत होने लगते हैं. कविता की इकाई का रचाव एक तारतम्य से न होकर खण्ड-खण्ड में होने लगता है. पाठक जब ऐसी कविताओं को पढ़ता है तो स्वाभाविक है कि वह उसके पल्ले न पड़े। वह उसका आदी नहीं है. जब वह ऐसी कविताएं पढ़ते-पढ़ते उनसे परिचित होने लगता है तब वह उन्हें धीरे-धीरे आत्मसात करने लगता है. तभी ऐसी कविताओं का उसका विरोध कम होने लगता है। यह कविता के विकास का क्रम है। इसलिये इस क्रम की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। अगर मैंने ऐसी कविताएं लिखी हैं तो मैंने कोई गुनाह नहीं किया है। वे मेरे युगीन विकास-क्रम को प्रदर्शित करती हैं। फिर यह जरूरी नहीं है कि मेरी हर कविता अच्छी ही हो। लेकिन इसके यह माने नहीं है कि मैं ऐसी कविताएं न लिखूँ और फिर पैटर्न वाली कविताएं लिखने लगूँ। इसलिये न मुझे न किसी और को मेरी कविताओं से नफरत होनी चाहिये। कविता में घुसकर कही हुई बात को पकड़ना चाहिये और उसके वैसा कहने के तरीके को समझना चाहिये। तभी कविता अपने को उद्घाटित करती है और उसका मर्म समझ में आता है। कविता कोई इन्जेक्शन नहीं है कि सुई लगी और रोगी पर असर हुआ। कविता तो कवि के संघर्ष की आवेशित चेतन इकाई है जो भाषाबद्ध होकर एक वस्तु बन जाती है और वह वस्तु सबकी वस्तु हो जाती है. हाँ यह जरूर है कि ऐसी रचनाओं के लिखने में कवि अक्सर भटक सकता है क्योंकि उसे नये रास्ते पर नये तरीके से चलना पड़ता है और वह कलात्मक अभिव्यक्ति में डगमगा सकता है. लेकिन, समय सब कुछ ठीक कर देता है। ऐसी गड़बड़ाहट की संभावना दिन-पर-दिन दूर होती जाती है.

प्रश्न- क्या आपको ऐसी कविता लिखने में सहूलियत होती है ?

उत्तर- कविता लिखना स्वयं में सहूलियत का काम नहीं है. पैटर्न में कविता लिखना भी सहूलियत का काम नहीं है और आजकल की तरह की कविता लिखना तो और भी दुष्कर कार्य है। पैटर्न में लिखने के लिये अभ्यास की ज़रूरत होती है और अभ्यास हो जाने पर कोई भी बात एक पैटर्न में कही जा सकती है। आज की कविता के लिये पैटर्न नहीं बन पाये। विदेशी कविताओं के उदाहरण भी पैटर्न नहीं बन सके. इसलिये परिवेश की देन को भाषाबद्ध इकाई बनाने में कई प्रकार से कवि को संघर्ष करना पड़ता है। अब हर कविता एक नई इकाई होती है। शब्दों को नई संकेतबद्धता देनी पड़ती है. छन्दों के टूट जाने से

कविता को नई लय देनी पड़ती है. कविता को अर्थवत्ता देने के लिये नये Syntax की खोज़ करनी पड़ती है। पुराने और परम्परित अनुभूत प्रयोगों से अलग हटकर कथ्य और शिल्प के लिये आमूल नये परिवर्तन करने पड़ते हैं. कविता आज केवल आस्वाद नहीं रह गयी और न वह मनोरंजन मात्र है. अब तो वह जीवन से गहरे जुड़ गयी है और जीवन को उसकी समग्रता से व्यक्त करने की ओर अग्रसर हो गयी है. इसलिये इतने बड़े उत्तरदायित्व को निबाहने के लिये मुझे भी अपनी एक-एक कविता के लिये घनघोर संघर्ष करना पड़ता है और सहूलियत के नाम से तो मैं कोसों दूर रहता हूँ.

प्रश्न- क्या आज़ की कविताएँ जनप्रिय हो सकती है ?

उत्तर- कविता के जनप्रिय होने के लिये समय की अपेक्षा होती है। काफी समय व्यतीत होने पर आज की कविता ही लोग ग्रहण करने लगेगें और, फिर उन्हें इन कविताओं के अतिरिक्त कोई भी कविता अच्छी न लगेगी। जैसे-जैसे समय बीतता जायेगा वैसे-वैसे थे कविताएं ग्रहणशील होने लगेंगी और उनकी सम्प्रेषणीयता बढ़ जायेगी. तब ऐसी कविताओं को पढ़कर न समझ सकने की गुंजाइश न रह जायेगा.

प्रश्न- लोगों को आज की सभी कविताएं करीब-करीब एक-सी ही लगती हैं. इसका क्या कारण है और क्या यह दोष कभी दूर हो सकेगा ?

उत्तर- पैटर्न वाली कविताएं भी तो लगभग एक-सी होती हैं। वहां बार-बार वही तुकें, वही उपमाएं और वही रूपक दिखाई पड़ते हैं। फिर उन्हें इस दोष का दोषी नहीं ठहराया जाता। आखिर ऐसा क्यों है ? यह तो इसलिये है कि पैटर्न की कविताओं से पाठक ने अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया है और वह उन सम्बन्धों को अपनाने का अभ्यस्त हो चुका है. अभी नई कविता के विषय में वह बिल्कुल कोरा है। उसे नई कविता से सम्बन्ध जोड़ना है. उसे आज के संदर्भ में दुनिया को समझना है. उसे आज के मन को पकड़ना है. उसे आदतन कुछ भी नहीं ग्रहण करना है। इसलिये बिना ऐसा किये आज का पाठक आज की कविता को उसके संदर्भ में समझ सकने में दिक्कत महसूस करता है और उसे अछूत समझता है। कालान्तर में ऐसा न होने की भरपूर सम्भावना है. तब तक पाठक को भी कविता से पीड़ित और उपेक्षित रहना है. इसका दूसरा कोई उपाय नहीं है. आज की कविता तो कवि-सम्मेलनों की भी कविता नहीं है. उसे गम्भीरता से एकान्त में मन लगाकर पढ़ना पड़ता है

और तब वह अपने कथ्य और शिल्प को प्रकट कर सकने में सक्षम होती है। अभी कविताओं को जनता के घरों में पहुंचते-पहुंचते वर्षों लग जायेगें और तब जाकर इसकी सम्भावना है कि यह कविता जनप्रिय हो सके। यदि ऐसा न हो सका तो निश्चय ही आज की कविता वैयक्तिक सम्पत्ति मात्र होकर पड़ी रह जायेगी और उसका कोई भी उत्तराधिकारी न हो सकेगा। इसके प्रचार के लिये छोटी-छोटी पत्रिकाओं के प्रकाशन की बड़ी आवश्यकता है और उनके प्रकाशन से ही आज की कविता सबकी कविता हो सकेगी. कोई भी कविता हो, उसका मूल्य तभी निखरता है जब वह जनता तक पहुंचती है और जनता उसे अपनाती है. कविता कोई वैज्ञानिक फारमूला नहीं है कि उसके बल पर कोई नई मशीन ईजाद की जाय जिसे देखकर लोग उस फारमूले के निकालने वाले को मान-सम्मान दें। कविता तो मानसिक इकाई बनती है और आदमी के मस्तिष्क की चेतना बनकर उसे प्रभावित करती है. इसलिये भी कविता को ग्रहणशील बनने में दीर्घ समय की प्रतीक्षा करना पड़ती है.

प्रश्न- राजनीति के साथ चलकर क्या कविता नारेबाज़ी का रूप नहीं ले सकती. इस बारें में आपका क्या कहना ?

उत्तर- नारेबाजी निःसंदेह कविता नहीं है लेकिन उसे भी एक स्तर पर कविता होने का श्रेय इसलिये मिल जाता है क्योंकि तब वह अपनी विशेष प्रकार की संकेतबद्धता से आन्दोलनकारियों के लिये प्रेरणाप्रद हो जाती है और अपने होने की सार्थकता सिद्ध करती है। वह नारेबाजी कविता के रूप में कलात्मक अभिव्यक्ति भले ही न हो लेकिन सहजस्फुरण की तात्कालिक वाणी होकर अपना काम कर देती है और लोग उसे भी उस स्तर पर कविता कहने लगते हैं.

प्रश्न- पुरस्कार के बारे में आपकी क्या धारणा है ?

उत्तर- पुरस्कार के लिये कोई कवि साधारण रूप से कविता नहीं लिखता. इसलिये कवि का ध्येय पुरस्कार प्राप्त करना नहीं होता. उसकी कविता पुरस्कार के लिये नहीं निःसृत होती. पुरस्कार तो कवि के कृतित्व के मूल्यांकन के रूप में ही दिया जा सकता है. जो पुरस्कार राजनीति के दांव-पेंच से प्रभावित होकर कवि विशेष को विशेष परिस्थितियों में अपना अनुगामी बनाने के लिये दिया जाता है, यह पुरस्कार कोई भी स्वाभिमानी कवि न लेगा और यदि लेता ही है तो अवश्य ही अपने को गिराता ही है. जनता से जो मान-सम्मान और पुरस्कार मिलता है वह उस पुरस्कार से महत्वपूर्ण होता है और इसीलिये ग्रहणीय भी

होता है क्योंकि उसकी कविता जनता की कविता हो चुकी होती है और वह स्वार्थसाधन के लिये नहीं दिया जाता। अब भी जो सरकों पुरस्कार देती हैं वह पूर्णतया जनता की अपनी सरकारें नहीं हैं बल्कि उन लोगों की सरकारें हैं जिनके अपने बड़े-बड़े देशव्यापी शोषक स्वार्थ होते हैं ! इसलिये अभी सरकार से पुरस्कार लेना मैं किसी स्वाभिमानी कवि के लिये अच्छा नहीं समझता.

प्रश्न- आप मार्क्सवादी हैं. लोगों का कहना है कि इससे आपकी कविता को नुकसान पहुंचा है. आप क्या समझते हैं ?

उत्तर- मार्क्सवाद का दर्शन जीवन का सबसे अधिक वैज्ञानिक दर्शन है जो आदमी और आदमी से सम्बन्धित सभी घटनाओं पर दिक और काल के परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सत्यान्वेषी है. मैं ऐसे दर्शन के बल पर ही अपने पूरे परिवेश को समझ सका हूँ और यह भी समझ सका हूँ कि परिवेश का प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ने से आदमी की चेतना को किस ओर जाना चाहिये और चेतना को कैसी भाषा में और किसके लिये व्यक्त होना चाहिये. मेरे लिये मार्क्सवाद दृढ़तम जीवन का दर्शन है. मैं इसे कतई मानने को तैयार नहीं हूँ कि मेरी कविता ऐसे दर्शन के कारण किसी तरह से पीड़ित या पराजित हुई है और उसके कथ्य या शिल्प या दोनों में विघटन हुआ है और ऐसे दर्शन से मेरी भाषा को रत्ती भर भी क्षति पहुंची है. वही एक ऐसा दर्शन है जो मेरी कविता को और मुझे जिलाए हुये हैं और मैं अब भी, इस उमर में, काव्य की उपलब्धियां करता-करता जी रहा हूँ. जीवन से बाहर या परिवेश से बाहर या दिक और काल से बाहर न कोई चेतना है, न थी, न होगी. इसलिये मेरे लिये मेरा 'मैं' जीवन से जुड़ा हुआ 'मैं' है जो परिवेश से उद्वेलित होता रहता है और कविता को जीवन और उसके परिवेश में ही पाता रहता है. न कोई 'आदिम आत्मा' है, न कोई 'आदिम अहं' है. कवि कों, पैदा होने के बाद, अपने अनुभव से अपनी तदनुरूप चेतना की उपलब्धि करते रहना पड़ता है, जो विकास-क्रम से बँधी हुई होती है और कभी भी एक अलग इकाई मुझसे अलग नहीं बनती. लोग जिसे 'आत्मा की आवाज़' कहते हैं वह आवाज़ किसी अलग 'मैं' की आवाज़ नहीं है। वह आवाज़ उसी बन रहे चेतना के अनुभूत दर्शन की आवाज़ होती हहै जो संकट के समय तीव्र वेग से सब पर्तें तोड़कर निकल पड़ती हैं. इसलिये मेरी कविता के बारे में लोगों का जो दृष्टिकोण है, वह सही नहीं है. निश्चय ही गलत आदमी की कविता गलत

सम्बन्धों की इकाई होगी और निश्चय ही वह समर्थ और सार्थक नहीं हो सकती.

प्रश्न- लोग कहते हैं कि प्रगतिवाद मर गया है. क्या आप भी ऐसा सोचते हैं ?

उत्तर- जो लोग ऐसा कहते हैं वे झूठ बोलते हैं। तब तक आदमी है, जब तक आदमी विभिन्न क्षेत्रों में उत्तरोत्तर एक-से-एक मानवीय उपलब्धियाँ प्राप्त करता जा रहा है और जब तक विश्व में विषमता, दयनीयता, शोषण, दुराचार, अत्याचार, हत्या, अपराध और निरंकुश शासन है तब तक प्रगतिवाद का खात्मा नहीं हो सकता. जब आदमी इन सबसे छुटकारा पा जायेगा, तब भी वह प्रगतिवाद की नई-नई कृतियाँ अविराम प्रस्तुत करता चलेगा. कविता तो चेतना के साथ सम्बद्ध है. इसलिये जहाँ भी चेतना नये आयाम ग्रहण करेगी, वहाँ प्रगतिवाद अवश्य रहेगा. प्रगतिवाद के बाद जो भी नई-नई विधाएँ निकली हैं वे सब प्रगतिवाद के विकास-क्रम की विधाएँ हैं. इस दृष्टिकोण के विपरीत कोई भी दूसरा दृष्टिकोण अपने साहित्य के विकास को एक सुसम्बद्ध रूप में नहीं देख सकता. वैसी दशा में साहित्य टूट-टूटकर खण्डित इकाइयों में विभाजित हो जाता है और मानव के विकास का बोध करा सकने में असमर्थ होता है. मैं ऐसे दृष्टिकोणों का घोर विरोधी हूँ. इसीलिये मेरे लिये अपने साहित्य का ऐसा ही ऐतिहासिक विवेचन सार्थक मालूम होता है.

डॉ. शर्मा और मेरे विचारों का दार्शनिक आधार एक सा ही था

हिन्दी आलोचना के शीर्ष पुरुष, चिन्तक एवं प्रखर भाषाविद डॉ. रामविलास शर्मा अभी कुछ दिन पूर्व नहीं रहे हैं, आपकी उनसे अभिन्न रूप से मित्रता रही है, उनके न रहने पर आप कैसा महसूस कर रहे हैं ?

केदारनाथ जी- उनकी मृत्यु की कल्पना मैं अभी नहीं करता था क्योंकि वे मुझसे छोटे एवं मज़बूत शरीर के थे, किन्तु उनकी बीमारी ने उन्हें न जीने दिया और वे चल बसे, उनके जीवन में उनका चिन्तनपरक जीवन व्यक्त हुआ है जो वैज्ञानिक एवं दार्शनिक दृष्टि से नितान्त मौलिक है. उनके न रहने पर मैं यही महसूस करता हूँ कि मेरा एक प्रगाढ़ मित्र चला गया और मैं अकेला हो गया, दूसरा कोई उनकी तरह का मित्र मुझे नहीं दिखाई दे रहा है. जो सबसे बड़ी बात थी कि वे किसी के बहकावे में नहीं आते थे. न ही अपने चिन्तन को उससे प्रभावित होने देते थे. असल में अब हिन्दी प्रेमियों को उनके साहित्य का विवेकपूर्ण

अध्ययन करना चाहिये, ताकि हिन्दी के पाठक अपनी मानसिकता ठीक कर सकें.

उनकी मानसिक पकड़ अभी कुछ दिन तक, दूसरों की मानसिकता को प्रभावित करती रहेगी और लोग भी साहित्य की कुछ समस्याओं पर चिन्तन मनन करते रहेंगे.

डॉ॰ शर्मा से आपकी पहली मुलाकात कब और किन स्थितियों में हुई, और उनसे किस प्रकार आप प्रभावित हुये और यह प्रभाव प्रगाढ़ मित्रता में कैसे बदल गया ?

केदार जी- मेरी पहली मुलाकात सन १९३५-३६ में भूसामण्डी लखनऊ में निराला जी के यहाँ हुई थी, वे सद्-चरित्र आदमी थे, साहित्य की विवेकपूर्ण दृष्टि से प्रभावित हुआ, वे भाषा को भाषा के लिये प्रयोग नहीं करते थे, वे मानव की अभिव्यक्ति की भाषा के पक्षधर थे, इसकी वजह से मैं लगातार उनके सम्पर्क में बना रहा, हम दोनों ने तय कर लिया था कि कभी एक-दूसरे को भ्रम में नहीं रखेंगे, हमेशा, साफ एवं सच बोलेंगे, इससे हुआ यह कि हम दोनों की भिन्नता धीरे-धीरे प्रगाढ़ होती गयी, उनकी मेरी कविताओं के प्रति बहुत ही साफ दृष्टि थी, उनकी कमियों की तरफ वे बहुत स्पष्ट रूप से लिखते थे। "मित्र संवाद" मे मेरे और उनके पत्र संग्रहीत है, उनको पढ़कर सहज ही जाना जा सकता है. मैं या वे दोनों एक-दूसरे की राय सहज ही वैसे ही नहीं मान लेते थे, बाकायदा पत्रों के द्वारा दोनों एक-दूसरे से बहस करते थे और निष्कर्ष पर पहुंचकर ही मानते थे. इस तरह हम दोनों एक दूसरे के नज़दीक आते गये।

लोगों का मानना है कि डॉ॰ शर्मा ने जहाँ यशपाल को उच्छृंखलता के कारण, बड़ा उपन्यासकार नहीं माना वहीं स्वकीया प्रेम के कारण आपको हिन्दी कविता का सबसे बड़ा कवि घोषित किया, इससे आप किस हद तक सहमत है ?

केदारजी- मैंने यशपाल का कोई साहित्य नहीं पढ़ा. इसलिये मैं नहीं कह सकता है कि रामविलास ने सही कहा या गलत कहा. मैं बड़या या छोटा कवि होने की दृष्टि से बात नहीं करता बस केवल यह कहता हूँ कि मैंने जिस प्रकार की मानवीय बोध की कविताएं लिखना शुरू की और निरन्तर विकसित होते-होते, इसी बोध से स्वयं एवं अपनी कविताओं का विकास करता पाया। मैं केवल भाव प्रधान कविता की महत्ता आदमी के लिये अति-आवश्यक नहीं समझता, भाव और विचार जो कवि व्यक्त करे, वह मानवीय एवं आत्मीय अवश्य हो और अन्य प्रकार के आकर्षणों से प्रभावित न होकर, अपनी गम्भीरता को बनाये

रख सकें। कवि की प्रत्येक कविता प्रारम्भिक पंक्ति से लेकर अन्तिम पंक्ति तक ज्यों की त्यों बनी रहे और व्यक्त होती रहे यह बहुत आवश्यक है. इसका मूल उद्देश्य कवि की मानवीय क्षमता को उत्तरोत्तर विकसित करने में है.

मुक्तिबोध को लेकर आपके एवं डॉ॰ शर्मा के विचार लगभग एक जैसे हैं ? इस साम्य के पीछे क्या आपसी कोई सहमति थी।

केदारजी- मुक्तिबोध तर्क-वितर्क एवं दार्शनिक प्रवृत्तियों के महाजाल में शुरू से आखीर तक कैसे रहे हैं इसीलिये वह सार्थक और सप्राण कवि नहीं बन सके. उनकी वैचारिकता भी अपना विकास नहीं पा सकी. इस सम्बन्ध में कोई सहमति या असहमति होने का कोई प्रश्न नहीं उठता मूलतः हम दोनों अपने-अपने चिन्तन के आधार पर एक ही निष्कर्ष पर पहुंचे थे.

"मित्र संवाद" को पढ़कर ऐसा लगता है कि डॉ॰ शर्मा हर वक्त आपके सामने रहते थे, रचना में यह अनुभूति किस तरह आपकी सहायक हुई ?

केदारजी- हम दोनों का मानसिक विकास एवं काव्यात्मक विकास अपने-अपने जीवन बोध के स्वभाव और स्वरूप से एक ही तरह से होता रहा है एवं डॉ॰ शर्मा और मेरे विचारों का दार्शनिक आधार एक सा ही था- इसीलिये मैं भी अपने लेखन में उसी दिशा एवं बोध से प्रेरित होकर लिखता रहा और डॉ॰ शर्मा विद्वान आदमी थे, अपने अनुभवों से लेखन को बराबर पुष्ट करते रहे.

जब हम उनके पास लखनऊ व आगरा गये तब वे बड़े-बड़े कवियों की, शेक्सपीयर, कीट्स आदि को पढ़कर खूब सुनाते थे.

आपने एक जगह कहीं कहा है रामविलास जी का असर मेरे जीवन में है- वह किस रूप में है ?

केदारजी- उनके जीवन का चिन्तन जिस दिशा में जा रहा था, उसी दिशा में मेरा भी चिन्तन जा रहा था. जब डॉ॰ शर्मा अपनी थीसिस लिख रहे थे उस दौर में मैं लखनऊ जाता था, उनके साथ बैठकर तब कविता पर लम्बी चर्चा होती थी, कविता पर वे हमेशा सच्ची एवं सही सलाह देते थे. उनकी मेहनत एवं ईमानदारी का प्रभाव, उनकी निश्छलता का प्रभाव पड़ा.

डॉ. शर्मा के संसर्ग का प्रभाव आपकी कविता में है ?

केदारजी- हम लोगों की चिन्तन एवं जीवन-पद्धति लगभग एक ही प्रकार से चल रही थी इसलिये ऐसा लगता है कि उन्होंने मुझ पर प्रभाव डाला, मैं तो ऐतिहासिक द्वन्दात्मक भौतिकवाद से प्रभावित रहा हूँ, उसी के प्रभाव से मेरी काव्य रचना होती रही है.

अध्याय षष्ठम्

केदार का
पत्र-साहित्य

"पत्र लेखन" को हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा माना जाता है। कवि केदार जी के सबसे अन्तरंग मित्र डॉ॰ राम विलास शर्मा रहे हैं। इन दोनों के पत्रों को हिन्दी गद्य साहित्य की अमूल्य निधि माना गया है। इन पत्रों में उनकी विकटता व सहजता का बोध होने के अतिरिक्त मानवता भी सजीव बिम्बित हो जाती है। ये पत्र मूल रूप में कुछ लेटर पैड में हैं, कुछ अन्तर्दशीय पर व कुछ पोस्ट कार्ड में हैं। कुछ व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियाँ यद्यपि पत्रों में हैं तथापि मूल-स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं किया ताकि भाव तिरोहित न हो जायें। ये पत्र 'मित्र-संवाद' में संकलित हैं। साहित्यिक दृष्टि व विवेचना की दृष्टि से महत्वपूर्ण पत्रों को मैंने लिया है। यद्यपि इनके मध्य पत्रों का सिलसिला जुलाई १९३५ से शुरू हो जाता है किन्तु केदार जी के प्रारम्भिक पत्र नष्ट हो जाने के कारण (राम विलास जी द्वारा गुम हो जाने के कारण) यह सन १९४३ से मिलते हैं। हाँ शर्मा जी द्वारा केदार को लिखे गये पत्र जरूर है। बाबू केदार नाथ अग्रवाल द्वारा पत्र लेखन सिलसिलों को लेकर डॉ॰ राम विलास शर्मा कहते हैं- "सन ३५ में जब उनसे मेरा परिचय हुआ, तब वह कानपुर में वकालत पढ़ रहे थे, मैं क्लास वाली पढ़ाई पूरी करके 'रिसर्च' कर रहा था, शायद इस कारण मुझमें बड़प्पन का भाव आ गया था। बहुत दिनों के बाद मैंने इस पर ध्यान दिया कि वह उम्र में मुझसे बड़े हैं, बातचीत ओर पत्र व्यवहार में मुझे उनके बड़प्पन का ध्यान रखना चाहिए। पर ऐसा कभी हुआ नहीं, अधिक से अधिक यह हुआ कि बड़प्पन-छुटपन की बात छोड़कर हम लोग बराबरी के स्तर पर आ गये। फिर भी मेरे पत्रों में 'प्रिय केदार' तो बराबर मिलेगा केदार के पत्रों में 'प्रिय राम विलास' एक बार भी नहीं। कहीं-कहीं प्रिय शर्मा, नहीं तो प्रिय डॉक्टर ही मिला।"[१]

डॉ॰ शर्मा केदार की कविता से अधिक उनके गद्य की तारीफ करते नहीं अघाते, उनकी सहजता राम विलास जी बेहद पसन्त करते हैं। "केदार अपने पत्रों में जिस तरह का गद्य लिखते हैं उस तरह का गद्य हिन्दी में आज तक किसी ने नहीं लिखा। दरअसल केदार अपने हुनर से बेखबर हैं, जो सहज हैं उसे ऐसा होना ही चाहिये। केदार में आस-पास की चीजों को देखने और उनका वर्णन करने की अद्भुत क्षमता देखी जा सकती है, ऐसे पत्रों का

१- मित्र संवाद, डॉ॰ राम विलास शर्मा, पृ.सं. १२

ऐतिहासिक महत्व है।"[1]

दोनों मित्रों के बीच कई बार वैचारिक संघर्ष हुआ है और खूबी यह रही कि जितने बार यह द्वन्द हुआ है, मित्रता की नींव उतनी ही पुख्ता हुयी है, उसक़ी इमारत उतनी हीं बुलन्द हुयी हैं ये पत्र हैं तो सिर्फ दो व्यक्तियों के, लेकिन इनमें दुनियाँ-जहान की बातें मिलेगी, तटस्थता के साथ ही नहीं एक गहरे सरोकार के साथ। दुनियाँ में क्या हो रहा है और मनुष्यता के साथ उसका कैसा रिश्ता बन रहा है-मनुष्य पर उसका क्या प्रभाव पड़ा है, इस घटनाओं पर इनकी सार्थक टिप्पणियाँ भी हैं। दोनों मित्र प्रकृति प्रेमी हैं, गेंदा दोनों को बहुत प्रिय है, सरसों बारह मासों दोनों के हृदय में सरसराती झूमती है। प्रकृति की एक-एक हरकत को दोनों मित्र बड़ी पैंनी निगाह से देखते हैं।

मैं स्वयं इन पत्रों के गद्य पर अपनी प्रतिक्रिया दर्ज नहीं कर रहा हूँ, केदार जी के गद्य पर स्वयं राम विलास जी ने टिप्पणी की है। ये पत्र सच्ची मित्रता, निष्ठा, निश्छता, सहजता की जीती जागती मिसाल है। सच्ची मित्रता के सही मानदण्ड ये पत्र स्थापित करते हैं। मानवीय स्तर पर महत्व के साथ-साथ इन पत्रों का साहित्यिक महत्व भी है। ये पत्र हिन्दी साहित्य जगत की अमूल्य निधि हैं।

१- मित्र संवाद, डॉ॰ राम विलास शर्मा, पृ.सं. १२

५८, नारियल वाली गली

लखनऊ

२९.०७.३५

प्रिय भाई केदार,

तुम्हारा कार्ड मिला। यथावकाश निराला जी को लेकर पं. शुकदेव बिहारी जी मिश्र के यहाँ कल सायंकाल गया था। निराला जी के लिखाये लेख पर उन्होंने हस्ताक्षर कर दिए हैं। पहले वाक्य पर उन्होंने आपत्ति की थी कि उनका आपसे कोई व्यक्तिगत परिचय न था। अस्तु, वह सब ठीक हो गया। किस जगह तुम कोशिश कर रहे हो? आशा है, इससे तुम्हारा काम चल जाएगा, साथ में भेज रहा हूँ।

और अपने विषय में लिखना हम सब लोग अच्छी तरह है।

तुम्हारा

रामविलास शर्मा

112 Maqboolganj

Lucknow

13.08.35

प्रिय भाई केदार,

तुम्हारा कार्ड मिला। कानपुर में रहकर अपना खर्च चलाने के साधन क्या तुम्हें कुछ मिले हैं? तुमने अपनी पुस्तक की भूमिका लिखने के लिए मुझे लिखा था या निराला जी को। इस समय तुम्हारा वह कार्ड पास नहीं। मेरे लिखने के विषय में तो पूछना आवश्यक है। कहोगे तो लिख ही दूँगा किन्तु इससे तुम हास्यास्पद तो न बनोगे? तुम्हारी पुस्तक कहाँ से छप रही हैं, क्या Terms तय हुए हैं, in detail लिखो। ता. ७ को हम निराला जी के यहाँ से उठ आए हैं, ऊपर के पते पर निाराला जी अभी वहीं हैं। अपने हालचाल और खिलना। कोई कविता नई लिखी हो तो भेजना-बस।

तुम्हारा

रामविलास शर्मा

112, Maqbool Ganj

Lucknow

03.03.1936

प्रिय मित्र बालेंदु,

आज इतने दिनों के बाद लिखने बैठा हूँ। शायद परीक्षा समाप्त होने पर तुम घर चले गए होंगे; मैं नहीं जानता, तुम्हें किस पते से यह पत्र भेजूँगा। तुम्हारा पत्र ०९.०३.३६ का सामने है। रानी ने कैसा परीक्षफल दिया? मालकिन ने पुत्र रत्न को जन्म दिया है।

माधुरी के मार्च-अप्रैल के अंकों में क्रमशः तुम्हारे लेख और कविता प्रकाशित हो चुके हैं तुम्हें शायद मालूम हो। मैं माधुरी आफिर मुद्दतों से नहीं गया, न संपादकों के दर्शकों की इच्छा होती है। अपने आप तुम्हारी चीजें छप जाने से बड़ी प्रसन्नता का अनुभव हुआ, न जाने से जो Pricks of Consicience होते थे, उनसे पीछा छूटा।

निराला जी कुछ दिन इलाहाबाद रहे; उसके बाद मार्च के अंत में यहाँ आ गए, तब से यहीं हैं। उनका उपन्यास प्रभावती लखनऊ के सरस्वती पुस्तक भंडार से निकल चुका है। 'निरुपमा' दूसरा लिख रहे हैं; अलाहाबाद, शायद लीडर प्रेस में छपेगा। वहीं से उनकी गीतिका भी।

मैं गर्मी की छुट्टियों में यहीं रहूँगा। जून के आरंभ में शायद कुछ दिन को घर जाऊ।

शेष कुशल। अपने ओर घरवालों की हाल देना।

तुम्हारा लेख मुझे और अनेक मित्रों को यहाँ बहुत पसंद आया।

बस, तुम्हारा ही

रामविलास शर्मा

112, Maqbool Ganj

Lucknow

06.09.1938

.... आप भी क्या मौके से चिट्ठी लिखने बैठे थे जब जवाब आने ही वाला था। और आपकी समझदारी की तारीफ करूँ। समझते हैं कि चिट्ठी पढ़ने की फर्सत भी न मिलेगी। जब कि दो दफे तो अभी ही उसे पढ़ गया हूँ.......। तुम्हारे पत्रों में भला क्या रिसर्च करूँगा? जितने पुराने पड़ गये, वह तक याद है। टेढ़े हर्फों वाले१ मसूरी में मिले, रेल की पटली की (के) किनारे के....।

पद्य न मिलने से तुम्हारे गद्य-काव्य से ही संतोष, पर आगे ऐसी गुस्ताखी न करना। तुम गद्य बहुत सुंदर लिखते हो, कुछ Discriptive Essays लिख रखे। जब प्रकाशन शुरू होगा तब धड़ल्ले से। इक दम से हिंदी संसार को सर पर उठा लेंगे (चाहे वह हमें पैरों के नीचे ही कुचलना चाहे।) !...........

चकल्लस भिजवाने का प्रबंध करूँगा। उसी में उच्छृंखन का विज्ञापन हैं, तुमने उसका नक्कारा न सुना हो तो आश्चर्य क्या जब भावी अंक ही नहीं देखा। थीसिस खुद छापने का दम नहीं, इसलिए एक साब के मार्फत कुछ पैसा देकर छापने क लिए दे रहा हैं। वाकई, इस बला से आजिज आ गया हूँ......।

तुम्हें वकालत में दिलचस्पी है, यह सुनकर प्रसन्नता हुई। यहाँ तो युनिवर्सिटी जाना भी खलता है। आराम से लेटना, पढ़ना लिखना, घूमना, सब पर प्रतिबंध लगा है। सोचता हूँ, क्या ऐसे ही जीवन गुजारना पड़ेगा! ....

(रामविलास शर्मा)

दोस्त-

२३ तक रहेंगे। यह तार पाते ही घर से कोर्ट से कर्वी से लीडर प्रेस इलाहाबाद चले आओ।

आज सबेरे यहाँ आया हूँ

तुम्हारा

रामविलास

112, Maqbool Ganj

Lucknow

18.10.39

प्रिय श्री केदार दोस्त,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। न मिल सकने योग्य रहने पर भी लिखवाने के लिए, लिखने वाले को भी धन्यवाद। थीसिस में फँसा रहने से जल्दी जवाब न दे सका। उम्मीद हैं दिसम्बर के अंत तक सब खत्म हो जाएगा। इधर झाँसी आऊँगा और तुम्हें देखने भी। केन देखने की बड़ी इच्छा है। निराला जी मेरे उस मकान में रहते हैं, जिसमें तुम मुझसे मिले थे; मैं पास के दूसरे मकान में। बीवी-बच्चों के साथ। चौबे मजे में हैं।

तुम्हारा

रामविलास

कैलाश चंद्र दे लेन-सुंदरबाग,

लखनऊ

३०.१२.४०

प्रिय केदार,

पत्र मिला। आनंद हुआ। अपनी-अपनी मुसीबत सबके साथ है। यही देखों, पत्र लिखने के लिए भी कठिनता से समय निकाल पता हूँ। आज रेडियों पर निराला जी की Talk है। पता नहीं तुम सुनोगे या नहीं।

चौबे आज काशी गया है। एम.ए. के एक पेपर के लिए थीसिस लिख रहा है, उसी के लिए पुस्तकें देखने। "हंस" वालों से "प्रेमचंद" पर बातचीत चल रही हैं। उन्हें पुस्तक भेज दी है। उसी को ठीक करने में इधर लगा हुआ था। ६ जनवरी को भारतेन्दु पर रेडियो से Talk है, कल उसे लिखना है। जनवरी के "हंस" में शरत के उपन्यासों पर मेरा एक लेख छप रहा है। पढ़ना। यूरोप के साहित्य का आदि से अध्ययन कर हा हूँ। उस पर एक पुस्तक लिखने का विचार है। अपनी रचनाएँ भेजो तो कुछ कविताएँ मैं भी भेजूँगा।

तुम्हारा

रामविलास शर्मा

Banda

02.11.43

प्रिय शर्मा,

पत्र मिल गया पर लखनऊ न आ सका। क्योंकि फिर से ज्वर महाराज ने चार दिन तक कृपा कर दी थी। आज अभी तक बचा हूँ-शाम की राम जाने पर विश्वास है कि मरूँगा नहीं। काम काफी करना है।

मेरी पुस्तक तैयार हैं निराला जी ने कहा था कि वह युग मंदिर से छपवायेंगे। क्या यह उचित होगा? कुछ Payment हो जाए तो अच्छा है। पर इसकी चरचा नहीं की। यदि तुम कोई प्रकाशक तय करो तो उसे दूँ पर पेमेंट कराना। Dedicate तुम्हें हुई है।लाजवाब पुस्तक है दोस्त। तुम्हारे छमाही प्रकाशन१ के लिए भी कई रचनाएँ (तुकान्त) तैयार कर ली है। मेरी समझ में वे अपनी ही चीजें हैं-खूब हैं। तुम्हें भेजूंगा जैसे ही तालक आई। स्केच भेजूँगा। एक गाँधी पर किसान की दृष्टि से लिखी है। १०० पंक्तियां अतुकांत हैं दूसरी किसान पर है-करीब उतनी ही।

तुम्हारा

केदार

बाँदा

११.११.४३

प्रिय शर्मा,

मेरी पुस्तक-पहला कविता संग्रह-तयार (तैयार) हैं पांडुलिपि के रूप में। तुम्हें देखने को भेजूंगा तुम्हारा उत्तर आते ही। उसकी रूपरेखा देखना।

यह (ये) कई रचनाएं भेजता हूँ। जो अच्छी लगें छमाही प्रकाशन के लिए रख लो। जो न जंचे उन्हें 'हंस' में न देना क्योंकि दूसरा संग्रह अप्रकाशित कविताओं का निकलवाना चाहता हूँ। इन रचनाओं पर अपनी राय भेजना।

निराला पंत-महादेवी के Sketches ही तैयार कर सका हूँ-कहो तो भेजूँ। उत्तम ही है। नई दृष्टि की नई जबान है।

कोई प्रकाशक मेरे पहले संग्रह के लिए खोजो। मैं मूल्य लूँगा अवश्य। मुफ्त न दूँगा।

यह समझे रहना।

तुम्हारी Talk Radio में सुनूँगा १५.११.४३ को दिल्ली से। क्या तुम लखनऊ दिवाली में आये थे? मैं नहीं जा सका।

आजकल श्रीमती जी वहीं हैं। अकेला हूँ इसी से साहित्य लिख-पढ़ लेता हूँ। कुशल है। स्वस्थ तो क्या हूँ पर चल फिर लेता हूँ।

तुम्हारा

केदार

बाँदा

१०.०२.४४

प्रिय शर्मा,

तुम्हारा (कार्ड) परसों दस बजे मिल गया था। इसी से दो कविताएं नकल करके तुरंत ही तुम्हारे पास भेज रहा हूँ-किन्तु वही अतुकांत है। शायद तुम पसंद करो। बहुत जोरदार तो नहीं हैं फिर भी नए touches जरूर हैं। लिखना कैसी है।

दोस्त यदि हो सका तो एक दिन को आगरे आऊँगा २६ के इधर-उधर अकेले या बहन के साथ। ठहरूँगा तुम्हारे ही पास। केवल तुमसे मिलना है। कहो घर का पता क्या है! जल्दी ही भेजो। क्योंकि मुझे तुम्हारा पत्र मेरठ जाने से पहले ही मिल जाना चाहिए।

शेष कुशल है।

कानपुर में कोई प्रगतिशीलों की बैठक क्राइस्ट चर्च में हो रही है। पत्र आया था। मैंने इन्कार कर दिय है। क्या बात है?

शायद बीबी (बीबी) बच्चे आगरे पहुँच गए है इसी से एक पंक्ति का पोस्ट कार्ड भेजा हैं आपने। मैंने भी सोचा था कि केवल कविताएं भेजूं-कुछ भी ओर न लिखूँ।

इधर कोई Radio Talk नहीं हो रही हैं?

तुम्हारा ही

केदार

Banda

20.02.44

प्रिय शर्मा,

मैं बाँदा से ३६.०२.४४ को रात को चलूंगा और निश्चित रूप से आगरा २७.०२.४४ को तुम्हारे घर पहुंचूंगा। राजा मण्डी उतरूँगा।. सम्भवतः वहाँ से तुम्हारा घर निकट ही होगा। "हंस" मिला। कविताएं देखीं। तुम से बात करूँगा। मैं सानंद हूँ। निराला जी का पत्र आया है वे सानंद हैं।

तुम्हारा

केदार

KEDAR NATH AGRAWAL
B.A.LL. B.

BANDA (U.P.)

विजय दशमी

Dated 26.09.1944

प्रिय शर्मा,

"भूखा बंगाल" कविता भेज ही चुका हूँ। पहुँच ही गई होगी।

मेरा (मेरे) कविता संग्रह का प्रकाशन निन्यान्वे फीसदी सम्भव हो गया है। एक आर्टिस्ट भी चित्रित करने को मिल गए हैं। विश्वास है कि संग्रह सुन्दर निकलेगा। प्रकाशक मेरे सम्बन्धी और मित्र नैनी वाले श्री सीताराम जी हैं। उन्हें कला से प्रेम है। उन्होंने स्वयं मुझसे मेरी कविताओं के प्रकाशित होने के बारे में चर्चा की थी। इसी से मैंने अपनी पांडुलिपि उनके पास भेज दी है। आज ही उनका पत्र आया है कि मैं तुम्हारा एक उत्तम चित्र भेजूं क्योंकि वह पुस्तक में जा रहा है। कृपया मेरे खातिर अपना एक हाल का चित्र शीघ्र ही भज दो ताकि मैं उसे उनके पास भेज दूँ। वह Block बनाने बगैरहा को दे दें। पुस्तक तुम्हीं को समर्पित हैं।

मालुम होता है तुम बाँदा न जाओगे। दिवाली में ही आ जाओ।

बीबी (बीबी) लखनऊ जाने वाली हैं। तब कहीं फिर कविता और कहानी के पीछ पड़ूंगा। अभी तो वकालत और श्रीमती से घिरा रहता हूँ। बच्चों को प्यार। मालकिन को

सादर नमस्ते। चौबे कहाँ है?

पत्र व फोटो भेजो।

तुम्हारा

केदार

06.10.44

My Dear Kedar,

Got your (Letters) after coming from Lucknow. Dedication to me wrong. I have already dedicated one to you. This mutual respect quite wrong. Send the mss. (manuscript) to me if possible before sending to press. Take suggestions from as many friends as possible. I offer my self as one.

Your,

Rambilas

Banda

10.10.44

My Dear Sharma,

I am in receipt of your two letters, one from LKO and the other from Agra. I must tell you that I am very busy for the whole month and there is no possibility at present that I should join the gathering on 21 & 22/10-44 at Lucknow. I express my sincere request. I hope you will excuse me, I hsall send my typed suggestions on जनपद & Failure of Gandhi & Jinna Talks.

you know that I had already dedicated the book to you 4 or 5 yrs ago. I can not change that dedication. It is a crime, I think, to dedicate it some other person. And there is no other friend of mine better than you. I can't throw my book to any and every body. I am not at all araid of what others will say about

oru mutual appriciation of eath other. It is by the way that I informed you about this dedication. In fact I had taken your permission nearly 5 yrs back. You cant retrach and wtih draw it. Do approve and send a copy of your latest photo Don't forget you will simply harm me by not sending it. I had send th message to the man concerned. You will see it before finally it takes the printed form.

Nagar has already seen it. Niralji will see at Allahabad. Who else is there whom I should show. Reply soon & send Photo soon.

Yours

Kedar Nath Agrawal

Banda

23.07.45

प्रिय शर्मा,

तुमने यह दुखद समाचार सुनाया कि युकलप्टस के पेड़ों वाला सुन्दर मकान बदलना पड़ा और अब तुम उस जगह पहुंच गये हो जहां कब्रें हैं और गधे हैं। यह भारतीय जीवन के अनुपम प्रतीक हैं।

जब तुम मेरे लिए तसवीर खिंचवाते हो तब अच्छी नहीं आती। आशा है कि तुम झूठ न बोलोगे और न बहाना करोगे। यह Chance ही है कि खराब हो ही जाती है। भई, जैसे हो वैसी ही तो आवेगी। मैं तो वैसी ही एक चाहता हूँ। मेरे (मेरी) पुस्तक के चित्रकार न दगा दिया और अब संग्रह भी रुक गया है। कोई प्रकाशक खाजो तब काम बने। मैं तो किसी हरामजादे को नहीं जानता। गाली दे गया माफ करना।

मेंने जो लिखा वह "नया साहित्य" में भेज चुका हूँ देखोगे ही। तुम्हारा नाम भी हैं निराला जी का पत्र आय है। अब पानी बरसा या नहीं?

दोनों श्रीमान-श्रीमती वीरेश्वर से नमस्ते कह दिया है। तुमने क्या लिखा? "हंस" देखा होगा?

केदार

RAM BILAS SHARMA

M.A. Ph.D.

Head of the English Department

B.R. College

Agra ____194

महताब भवन,

बजीरपुरा, आगरा

१२.०३.४६

प्रिय भाई,

बहुत दिनों से तुम्हारा कोई समाचार नहीं मिला। क्या लिख रहे हो, क्या पढ़ रहे हो? पार्टी का नया साहित्य तुमने क्या-क्या पढ़ा है ओर वह कैसा लगा? निराला जी की हालत काफी खराब है। रामकृष्ण वहीं जा कर रहेंगे और उनकी देखभाल करेंगे। इसके लिए मैं मित्रों में धन संग्रह कर रहा हूँ। क्या तुम कुछ भेज सकते हो? भेजना तो यहीं मेरे पते से और उसे अपने तक रखना। यह प्रबन्ध निराला जी से गोप्य रखा जायेगा।

तु॰

रामविलास

Agra

15.01.47

प्रिय केदार,

इस समय कालेज में बैठे हुए हम तुम्हें खत लिख रहे हैं। बहुत ही मनहूस वातावरण है। ८० लड़के इम्तहान दे रहे हैं। यानी मेरी आँख बचा कर बात करने, डेस्क में रखी हुई किताब देखने ओर जेब से कागज निकालने की कोशिश कर रहे हैं। कुछ लोग छत की तरफ देख रहे हैं। कुछ रात की घोटी हुई चीजें जल्दी से कागज पर उतारने की कोशिश में हैं।

नन्ददुलारे जी का कोई खत इधर नहीं आया, उम्मीद है निराला जी का अभिनन्दन विज्ञाप्ति तिथि को हो जायेगा। क्या तुम काशी जाओगे? मुझे भरभूर आशा है कि मैं खुद जरूर पहुंचूंगा। आओ तो वहाँ बातचीत हो।

Wife की तबियत अब ठीक है। खाना पकाने के लिए मिसरानी रख ली है। चौका बर्तन को एक मेहरी लेकिन पहले के Strain से मेरी एक आँख में तकलीफ हो गई और १० दिन बीतने पर अभी भी ठीक नहीं हुई। इसलिए तुम्हें और जल्दी खत भी न लिख पाया।

मैं समझता थ कि तुम्हारा वकील दिमाग कुछ काम करेगा और तुम फोरन कागज वगैरह का इन्तजाम कर सकोगे। लेकिन तुम भी निकले साहित्यिक ! मैं तुमसे सलाह ले रहा हूँ और तुम उल्टा मुझसे सवाल कर रहे हो।

तो इलाहाबाद में होगा। सबसे पहले जरूरी चीज यह है कि हम लोग शुरू करने की अनुमति प्राप्त कर लें। इसके लिए यह जरूरी है कि हम लाग एक कंपनी या अपनी प्रकाशन-संस्था वगैरह बनायें। क्या तुम्हारे साहित्य-परिषद बाँदा को पेपर कोटा मिल सकता है? पता लगाओ।

मैं चाहता हूँ कि तुम काननूी शब्दावली में अपनी प्रकाशन संस्था का मसौदा बना लो जिसे हम लोग विज्ञाप्ति आदि कर सकें।

शेष कुशल

Remember me to Vireshwar

तु॰ रामविलास

प्रिय मित्र,

कविता की साध इस पत्र से ही पूरी हो। पूरी हो तुम्हारे प्रिय मुक्त वर्णवृत्त में।

पढ़ता था पत्र कुछ पुराने जब
देखा एक लम्बा सा defence मुक्तछंद का
दे रहा हूँ वैसे कुछ पत्र एक संग्रह में।
पत्र हैं निराला के,
स्वयं में खोये हुए,
सधे हुए, मोतियां से अक्षर रचे हुए,
कविवर गंगा के किनारे जहाँ
बैठ कर झरोखे से देखते हैं नीलाकाश!

पत्र है कविवर पंत के,
सन् २६ के, छायापवादी प्रत्यूष काल के,
पत्र और पुष्प जैसे आये जब हिन्दी
के उद्यान में,
कोमलकांत कवि पंत रुपहले बौर लिये,
महाकवि निराला-एक कान पर शेफाली
दूसरे पर अमल-
कोमल-तनु तरुणी-जुही की कली।
डूबे हुए प्रथम नवयौवन के स्नेह में,
पुलकित हो उठोगे पढ़ कर तुम वह
उत्कट आत्मनिवेदन!
पत्र है नरोत्तम के,
सफल जो शास्त्रकार शुतुर्मुर्ग पुराण का,
जीवन की मही में तप कर जो बन गया है
मानव प्रगतिशील!
गोर्की के जीवन का चित्र देख कर जिस
हो गया था ज्ञान, कैसे स्वर्ग का निर्माण होगा
उसी संसार में।
पत्र है अमृत के-अमृतलाल नागर के-
जीवन की नदी में पैठ गया मित्र वह
गहरे में,
मोतियों के साथ ही बघेर लाया ढेर सारी,
गीली रेत !
अपने ही जीवन के कर्दम को अर्पित किय
मुझे-
बाट जोहता है कब खिले इस पंक से........

पंकज साहित्य का !

- इसी समय छोटी बिटिया मेरी-

नाम है सेवा, लोग कहते हैं पप्पन या पपुआ उसे,

पञ्चम में गा रही है राग स्वच्छंदता का।

सुनता हूँ उसे और याद आ जाती है

कविता तुम्हारी मुझे।

वैसी ही स्वाभाविक, बिखरी हुई लड़ियाँ हैं

इस मुक्त काव्य की !

पत्र है तुम्हारे भी-

प्रेम भरे, हठ भरे, कहीं-कहीं रोष भरे,

हर जगह जीवन से भरे हुए, बोलते से

अक्षरों में, पंक्तियों में और शब्द-शब्द में !

सोच लो,

गुणात्मक रूप से तो

बहुमूल्य होगा यह पत्र संग्रह,१

किन्तु परिणाम में, अभी है अवतार वामन का

दिखाओ चाँद इसे

उठाये बाँह और विस्तृत आकार करें।

'भूतो ने भविष्यति'.... कह उठें लोग सब,

तब तो तारीफ है मेरे संपादन की,

वर्ना तो घास कूड़ा रोज छपा करता है।

लेख 'पारिजात' का

एक ही देख पाया

आता है कालिज में

मार ले जाते हैं मित्र लोग !

लेख वह अच्छा था

किन्तु अब खो गया है स्मृति के उस पार!

आशा है प्रसन्न हो।

देर तक रात में लैम्प जले कवि का,

मायावी मारीचिकाएँ जीवन से दूर हों।

तथास्तु ! एवमस्तु ! मित्रवर !

तुम्हारा

रामविलास शर्मा

Banda

17.07.47

प्रिय मुंशी,

मुझे उतना दुख है जितना तुम्हें भी न होगा क्योंकि मैं तुम्हारी शादी में शरीक न हो सका। इतना सुंदर अवसर था कि शायद अब इस जिन्दगी में कभी न आयेगा।

अगर बाँदा में 'इप्टा' देखने तक ही बात होती तो मैं आगरा को चल देता लेकिन उसे तो मैंने ही यहांके वातावरण में जान और हिम्मत डालने को निमंत्रित किया था। मैं ही अगर न रहता तो फिर बड़ी भद्द होती। मुझे नागर ने सब हाल बताया तुम्हारी शादी का। खूब मजा आया उसे सुन कर।

मेरा रोब तो मेरी बीबी नहीं मानती तब तुम ओर दूसरे लोग क्यो मानेंगे। कहती हैं इन किताबों को बाहर रख कर आया करो। आँखें बहुत फालतू नहीं हैं। भैया चुप रह जाता हूँ। घर की आग बड़ी बुरी हो सकती है।

तुम सब का केदार कभी भी रोब नहीं गाँठता। वहीं बुद्धू की तरह चुप रहना जानता है।

बहुत आकुल हूँ कि तुम कभी तो मेरे पास भी पत्र लिख दिया करो। नागर के पास लिखते हो पर वह दूर हैं इससे पता नहीं चलता। बहुत बड़े पत्र भेजो। क्या लिखा है? जरूर लिखो। अब की बार तस्वीर देखी जनयुग में।

सस्नेह केदार

डियर दोस्त

तुम्हारी चिंता बिल्कुल बेकार थी कि मैं आगरा पहुँचा कि नहीं। जिनकी तकदीर में आगरे रहना लिखा है, उन्हें जंजीर खींचकर कौन रोक सकता है?

ज्वर तो उतर गया है लेकिन, खुमार बाकी है। मालकिन के शरीर में खून.की कमी है। दवादारू कर रहा हूँ। पंत जी से मुलाकात हुई। अरविन्द घोष से नई-नई बातें सीख कर आए है। 'लोकायतन' खोलेंगे जिसमें ज्योतिद्वार, संस्कृति-द्वार, साहित्यद्वार आदि अनेक द्वार होंगे.....पंत जी खुद हैड जमादार। उम्मीदवारों में मेरा भी नाम लिख लिया है लेकिन मैं यहीं से काम करना चाहता हूँ।

रस के बारे में- उसके मनोरंजन पक्ष को हम स्वीकार करते हैं। लेकिन वह लोकोत्तर आनंद ऐसा है कि उससे सामाजिक संस्कार नहीं बनते, इसे गलत मानते हैं। मुझे नहीं मालूम साहित्य की वर्तमान दशा के बारे में रमेश ने क्या कहा था। तुम विस्तार से लिखो, खास तौर से जो तुम खुद सोचते है तो मैं उस पर राय दूँ। वीरेश्वर से तय हो गया था कि बाँदा नहीं आऊँगा। हमारी तरफ से भेंट-भेंट कहना।

तुम्हारा

रामविलास

मुख्य-केन्द्र-भवन

हिन्दी-साहित्य-परिषद

बाँदा

०४.१२.४७

प्रिय भाई,

तुम्हारी भेजी पुस्तक यथासमय मिल गयी थी। पढ़ रहा हूँ। पहले भी लिख चुका हूँ।

इधर कई कविताएँ लिखी हैं। तुम होते तो तुम्हें सुना कर गालियाँ सुनता। कुछ अच्छी, कुछ खराब हैं। पर प्रायः सभी तुकान्त हैं। यही बुरी बात है!!

इस वर्ष राहुल जी ने हमारी परिषद् का सभापति होना स्वीकार कर लिया है। कल स्वीकृति आ गयी है। कृपया लिखो क्या कार्य परिषद की ओर स स्रांस्कृतिक क्षेत्र में किया

जाय? कुछ तो राय दो।

अब नागर "हंस" में आ गया है। पर कब तक रह पावेगा, राम ही जाने।

तुमसे एक कहानी माँगी थी। क्या भेजोगे? संग्रह छपेगा ही। भेज दो तो अच्छा हो।

"नींद के बादल" को देखा या नहीं? मेरा विकास स्पष्ट हो जाता होगा।

कब आ रहे हो इधर सैर-सपाटे को। क्या बम्बई जाओगे साहित्य सम्मेलन में ? लिखना।

तु॰

केदारनाथ

गोकुलपुरा, आगरा

०९.१२.४७

प्रिय केदार,

कल तुम्हारा कार्ड मिला। 'नींद के बादल' छुप कर उड़ने लगे, यह जान कर खुशी हुई। लेकिन अभी तक हमारे पास नहीं आये। नरोत्तम हंस में पहुँच गया है। अमृत नागर का यहाँ काफी साथ रहा लेकिन आजकल वह लखनऊ में हैं। वीरेश्वर से अपनी कवितायें भेजन को बहुत कहा लेकिन वह न पसीजा। 'जनयुग' पर बम्बई के ban की बात सुनी होगी। एक महीने के ban से ताकत आजमाना चाहते हैं जिससे कि अगले हमले की तैयारी कर सकें। विप्लव में शुभकामनायें और 'हंस' में शिवचन्द्र की आलोचना वाले लेख देखे या नहीं। रानी में तुम्हारी गंगा की शुभ आलोचना निकली हैं। न देखी हो तो कटिंग भेज दूँ। साहित्य परिषद में जाना इस बात पर निर्भर है कि बड़े दिन की छुट्टियों में वाइफ के पेट का Operation होना है या नहीं । परिषद के साथ-साथ ग्राम कवि सम्मेलन जरूर करना।

बाकी कुशल है।

तुम्हारा

रामविलास

बाँदा

०८.०५.५६

प्रिय डाक्टर,

तुम्हें पत्र लिख रहा हूँ कि मैं अपनी प्रिय पुत्री किरन का पति खो बैठा, अभी इसी हफ्ते। यह वज्रपात मुझे ढहा रहा है। रोता हूँ। केवल इसलिए पत्र लिख रहा हूँ कि तुम्हारी सहानुभूति पा कर शांति पा सकूँ। परसाल ही तो शादी की थी।

अभी भी कमला नेहरू अस्पताल में आपरेशन कराये पड़ी। ज्वर भी हैं। अभी आज ही प्रयाग से लौटा हूँ। अभी उसे यह दुखद समाचार नहीं बता पाया था। परन्तु हल्का-सा आभास दे आया था।

दामाद जबलपुर में जंगल विभाग में अफसर था। ३/४ दिन के भीतर ही cerebral हैमरेज के कारण मृत्यु हो गई नागपुर की Lunatic Asylum में बल और विश्वास से प्रेरित करो कि इस दुख को झेल जाऊँ।

तु॰

केदार

गोकुलपुरा, आगरा

१६.०५.५६

प्रिय केदार,

तुम्हारा कार्ड मिला। पढ़ कर बहुत दुख हुआ। प्रियजन के वियोग के लिए कोई सांत्वना नहीं हैं। जब तक हम उन्हें प्यार करते रहते हैं, तब तक वे हमारे लिए मृत नहीं हैं लेकिन उनका अभाव हृदय को क्लेश देता ही है। मनुष्य का कर्म ही दुख का एकमात्र उपचार है। तुम्हें अपनी पुत्री के स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना चाहिए और उसके भविष्य की चिन्ता करनी चाहिए। इसके लिए धैर्य और परिश्रम दोनों आवश्यक होंगे। ये बड़ी निर्मम चोटें हैं लेकिन इन्हें सहना ही हो या और हृदय को दृढ़ करना ही होगा। दुख सहने से तुम्हें अपने और समाज के लिए शक्ति मिलेगी- दुख का संभवतः यही एक मात्र गुण हैं।

आँसू पोंछ डालो। तुम्हारे प्रियजन की स्मृति के साथ मैं भी तुम्हारे पास हूँ। मैं तुम्हें

हृदय से लगाता हूँ और कहता हूँ, प्रिय मित्र, तुम्हारे हृदय में शक्ति हैं, धैर्य है, उससे काम लो। तुम दुख का सामना करने वाले हों, उससे सिहरने वाले नहीं है।

तुम्हारा-रामविलास

बाँदा

१९.१०.५६

प्रिय डाक्टर,

'नागा बाबा' बाँदा आये और यहाँ ४ दिन रह कर फिर प्रयाग चले गये २४.०९.५६ को। हम लागों ने खूब घुल-मिल कर बातें कीं। बार-बार तुम याद आते रहे। काश साथ होते।

बाँदा से वापिस जा कर "नागा बाबा" ने "मैंने तुमको पहचाना" शीर्षक एक लम्बी-सी ९५ पंक्तियों की बड़ी शानदार प्यारी कविता लिखी हैं। नकल भेजूंगा। उन्होंने बाँदा को चमचमा दिया है। हम सब उनके कृतज्ञ हैं। फिर मेरे लिए तो उन्होंने कलम ही तोड़ दी हैं। इतना गौरव आब शायद मुझे कभी न मिलेगा। कभी-कभी उसे पढ़ कर यह अनुभव करता हूँ कि हम जन-कवियों सा इतना अटूट प्रेम शायद ही पिछले कवियों में रहा रहेगा। फिर इस कविता का स्वर इतना सरल और स्वाभाविक हैं कि मुग्ध हो गया मैं स्वयं ही अपने इस वर्णन पर? कुछ पंक्तियां हैं।

"श्याम सलिल सरवर हैं बाँदा!

नीलम की घाटी में उजला श्वेत कमल-कानन हैं बाँदा !

....

बाँदा नहीं, अरे यह तो गंधर्व नगर है !"

....

केनकूल की काली मिट्टी, वह भी तुम हो

कालिंजर का चौड़ा सीना, वह भी तुम हो

ग्राम वधू की दबी हुई कजरारी चितवन, वह भी तुम हो

कुपित कृषक की टेढ़ी भौहों, वह भी तुम हो

खड़ी सुनहली फसलों की छवि-छटा निराली, वह भी तुम हो

लाठी लेकर काल-रात्रि में करता जो उनकी रखवाली वह भी तुम हो।"

आदि-

मेरा ख्याल है कि वह अब तक आगरा पहुँच गये होंगे। उन्होंने कविता जरूर गुनाई होगी। कहो कैसी पसन्द आयी। प्यारे ! बड़ा मजा रहा। अविस्मरणीय थी हम दोनों की यह भेंट।

लिफाफा नहीं हैं शाम हो गई है। इसलिए अपने भाव मजबूर होकर पी॰सी॰ पर लिख रहा हूँ।

तु॰ केदार

R.B. Sharma
M.A., Ph. D. (Luck)

Head of The Department of English
B.R. College, Agra.

६.१२.१९५६

प्रिय केदार,

शाम की बदली है। फुहार भी पड़ रही है। Keats की कविताएँ तुम्हारे पास हैं या नहीं ? १८१७ के संग्रह में उसने अपने भाइयों पर एक Sonnet लिखा है। साधारण बातों को कविता में बांधने में एक ही है। Wordsworth की तरह गाँवों में या पहाड़ों पर जा कर नहीं, शहर के कमरे में fire place के पास। न पढ़ी हो तो पड़ता। जरूर, इस तरह की ज्यादा कविताएं उसने नहीं लिखी लकिन गतिशील क्षणों को पत्थर पर टाँक दिया है उस कवि ने।

विज्ञान वाले कहते हैं कि matter की गति को नापने का नाम हैं TIME कितनी देर यह गति रही-यह है काल। किन्तु यदि matter अनादि और अविनाशी है जैसा कि Engels ने माना है तो समय भी Matter का duration भी- अनादि और अनन्त है।।

Nature के संबंध में एक स्थापना यह हैः

"Nature is a whole, moveing in narrow circles and remaining immutable."

दूसरी स्थापना यह है : "Nature also has its history in time, the celestial

bodies, like the organic species.....coming into being and passing away (Anti Duhring का पहला अध्याय)

एंगेल्स ने पहली स्थापना का खंडन किया है दूसरे का समर्थन। अब बताओ, Nature has history in time, तो प्रकृति अनादि कैसे हुई? अगर Celestial- bodies और organic being का passing away निश्चित है तो Tempest में Shakespeare की यह उक्ति ठीक नहीं है क्या?

The great globe it self,

Yea, all which it inherit, shall dissolve

and, like this in substantial pageant faded, leave not rack behind.

और Prospro कहता है:

"my old brain is troubled." अपना भी वही हाल है यद्यपि brain उतना old नहीं हैं।

तुमने Time को Eternal dimension माना है। इस dimension की व्याख्या तो करो, प्यारे। इसके लिए तुमने लिखा है, न आदि है, न अन्त है; न वह अनादि है अनन्त है। आदि भी नहीं है; फिर भी अनादि नहीं है, -यह कैसे समझ में आये?

तुम कहते हो Energy, Cunsume नहीं होती। जब सूर्य ठंडा हो जायगा, धरती जीवहीन हो जायगी-तब वह Energy परिवर्तित होकर कहाँ स्थित होगी?

इस विषय पर कुछ और पढ़ कर एकाध लेख-लिखूँगा तब तुम्हें विचार के लिए भेजूँगा। अच्छा, अब पकौड़ियाँ आ रही हैं। पहली तुम्हारे नाम की-गप।

रा.वि.

दिसंबर का अंतिम सप्ताह, १९५६

प्यारे दोस्त,

पत्र मिला। इस बार का विवेचन बहुत खूब है। अब तुम्हारी आलोचना से पूर्णतया सहमत हूँ। मालूम हो गया कि तुम काव्य के सिद्ध पारखी हो। सच मानो झूठ नहीं कहता, तुम्हारी इस कसौटी पर कस कर मेरी 'ताजमहल' की कविता अब अच्छी हो गयी है। अपनी

राय आवश्य देना। इस बार का प्रयास संतुष्ट तो कर ही देगा।

कुछ और भी स्फुट छंद भेज रहा हूँ। उन्हें भी देखना। निर्मम हो कर विवेचन करो, मुझे बल और विवेक मिलेगा। तुम ठीक ही लिखते हो कि तर्क काव्य नहीं हैं। मेरीं वकालत तुम्हारे सामने न चल सकी, यह मेरे हित में ही है। तुम जीते मैं हार कर भी न हारा क्योंकि नई कविता लिखने का मार्ग खुला।

कीट्स की पुस्तक लगभग रोज पढ़ता हूँ। रोज तुम्हें याद करता हूँ। बड़ा प्रभावपूर्ण काव्य है। इसकी शक्ति लाजवाब है। बायरन पर इसका सानेट गजब का है। राग मूर्तिमान हो जाते हैं। कहीं कुछ अनकहा नहीं रह जाता।

"Through the dark robe off amber rays prevail

And like fair veins in sable marble flow."

"शान्ति" पर भी उसका Sonnet खूब है। देखो न "Sooting with placid brow our late dstress" तुमने भी कहा है-भ्रूभंगों से सागर के शांत करने की बात अपनी "वंदिनी कोकिला' कविता में।

कीट्स का वह सानेट जो उसने रंगों पर लिखा है। पढ़ते-पढ़ते नील में डूब गया। रंगों का इतना चतुर चितेरा शायद ही कोई दूसरा हो।

तुम्हारी भेजी पुस्तक-कीट्स` संग्रह पर-पर मैंने यह चार पंक्तियां लिखी हैं।

साथी की यह भेंट मुझे साथी-सी भाती

कविताओं से भरी हुई है जिसकी छाती

मैं साथी को इस पुस्तक के हृदय लगाता

अपनी छाती को छंगों का निलय बनाता

२१.१२.५६

छुट्टी के दिन हैं। काव्य है और मैं हूँ। सब भूला हूँ।

नये साल की बधाई।

तु॰ केदार

१२, अशोक नगर, आगरा

१२.०९.५७

डियर वकील साहब,

दिल्ली का रास्ता आगरा हो कर है या? टूंडले से कानपुर गये हो तो भी लिख देते, मैं टूंडले आकर मिल लेता है। खैंर। कभी चित्रकूट चलोगे? मैंने देखा नहीं, देखने की इच्छा है। तुम्हारी कचहरी कब बंद होती है यदि कभी बंद होती भी हो तो?

मेरी पत्नी अब अच्छी है। चलती-फिरती है, घर का कामकाज भी थोड़ा-बहुत करने लगी है। महीने भर में-आशा है-ठीक ठाक हो जायँगी। तुम्हारी चिट्ठी सुन कर वह बहुत प्रसन्न हुई, मुझसे उसे 'सिहार के' रख देने को कहा।

देखो, तुम्हारा गद्य काव्य स्त्रियों को भी अच्छा लगता है।

ललित के चले आने पर तुम्हें बिल्कुल परेशान न होना चाहिए। मुझे अपने एक झाँसी के मित्र से उस कालेज का हाल मालूम हुआ। वहाँ प्रिसिपल महोदय सर्वेसर्वा। मंत्री महोदय ने अपनी सीमाएं तुम्हें न बता कर तुम्हारे अनुरोध की रक्षा करने का प्रयत्न किया। शिवजी कहते हैं-सुनो पार्वती-यह भी संसार है।

एक लेख 'आलोचना' के लिए लिखना है। एक कलकत्ते के 'सुप्रभात' के लिए। एक 'हिन्दुस्तान' के लिए। एक आगे-पीछे राजस्थान के 'विकास' के लिए। ये वे लेख हैं जिनसे बच नहीं सकता। और बहुत से मंसूख कर दिए। इस महीने सबको निबटा दूँगा। अब की दशहरे की छुट्टियों में यहीं रहने का इरादा है जिससे सन ५७ वाली पुस्तक शुरू हो जाय। संभवतः ८ अक्टूबर को ग्वालियर जाऊँगा वहाँ शरदुत्सव (शरदोत्सव) के लिए दूसरो बुलावा भी है। जौनपुर कालेज के साहित्य परिषद में बुलाया था, नहीं गया। 'नयापथ' में यशपाल ने मेरी दिव्य दृष्टि के दर्शन किए हैं। चन्द्रबली ने 'रूपतरंग' पर लेख लिख ही डाला है जो 'आज' में छपेगा; तुम्हें उसकी कटिंग भेजने को कहूँगा।

तुमने लिखा है-सूर को चाहिए था कि वह जलधरों को झुके हुए दिखाते, उनके बिबों से जमुना को दुगुनी प्रसन्न दिखाते, शायद सूर वह भूल गये थे।

तुम यह भूल गए हो कि इस समय जमुना और जलधर-दोनों ही आपा खोये-एक तीसरे ही आनंद में मग्न हैं। यह वही आनन्द है जिसने धेनु, गोपी, ग्वाल, अंकुरित पुन्य,

मदन और मनोज सभी को एक डोर में बांध दिया है। उसी डोर में जमुना और जधर भी बंधे हैं। फिर जलधरों को क्या पड़ी है जो जमुना पर झुके; वहाँ तो जमुना ही-रात्रि को लैप बुझाती हुई कवि-पत्नी की तरह उमँग रही हैं। और यह बताओ, 'कारे भारे जूथ' आकाश में मील-भर ऊपर उड़ेंगे कि जमुना पर झुके होंगे? जमुना और जलधरों की श्यामता के साथ कुंज पुजों की हरीतिमा कैसी मिल गई है; साथ में इसकी कल्पना भी कर लो। सूर कवि है, टीकाकार नहीं! तुम मेरे पत्र की टीका उसके पद में ढूंढ़ते हो, सो कौंन मिले? लेकिन बीजरूप में सारा सौर्य घनीभूत है, मैंने अपनी तरफ से कुछ नहीं जोड़ा। और मिल्टन कितना पढ़ा?

तुम्हारा

रामविलास

समालोचक

(हिन्दी का प्रतिनिधि आलोचनात्मक मासिक पत्र)

१२, Ashok Nagar आगरा

ता॰ ५-९ (५८)

प्रिय केदार,

इस साल हर रोज सबेरे कालेज जाना पड़ता है। Postgraduate teaching का काम बढ़ गया है। ललित का M.A. है, शोभा का High School इस लिये घर पर भी मदरसा लगता है। फ़क़त अध्यापक रह गया हूँ। पी.पी.एच. के लिए निराला जी पर एक छोटी-सी पुस्तक बच्चों के लिए-लिख रहा हूँ। Historical Materialism पर पुस्तक की तैयारी है। इस वर्ष भाषा वाली पुस्तक भी पूरी करने का विचार है। बीच में मथुरा और दिल्ली की-पत्नीक-यात्रा भी की। कल शयद मुंशी और नागार्जुन यहाँ आये।

'रूपतरंग' पर तुमने लिखा, अच्छा किया। वैसे तुम्हारा कार्ड मेरे लिए काफी था। इस वक्त जरूरत है 'समालोक' में लिखने की, मुझ पर नहीं, हिन्दी की अनेक प्रमुख समस्याओं पर। इस पत्र को प्रयोगवाद और प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध स्वस्थ राष्ट्रीय और जनवादी विचारधारा का प्रबल समर्थक बनना चाहिए। इसमें तुम सहायता दे सकते हो। हम

लोग 'यथार्थवाद और साहित्य' पर विशेषांक निकालने जा रहे हैं। तुम Whitman पर, निराला जी के गद्य पर, रोमांटिक कविता में यथार्थवाद-किसी पर लिख सकते हो। हम यथार्थवाद के सैद्धान्तिक पक्ष और कलात्मक साहित्य में उसके विकास-दोनों पर लेख छापेंगे। आशा है तुम एक महीने में कुछ न कुछ जरूर भेजोगे।

तु॰ रामविलास

बाँदा

१५.०९.५८

डियर डाक्टर,

पत्र मिला था। जरूर कुछ लिखूँगा। विषय तुमने Suggest ही कर दिये हैं। नागार्जुन का पत्र दिल्ली से आज आया है। मेरे बारे में खूब बातें हुई हैं, सुना। पर उन्होंने भी कुछ खास नहीं लिखा। हाँ मेरे कान उमेठने की बात उन्होंने की है। प्रयोगवादियों की ओर मेरा झुकाव हो रहा है, यह तुम सबको प्रतीत होता है। मेरी रचनाएं ऐसी हैं यह जान कर अचरज नहीं हुआ। खेद जरूर हुआ है।

यह मेरी समझ का फेर है। 'प्रयोगवाद' जो है वह तो मैंने कभी भी जाने में अनजाने में अपनाया नहीं। मैं स्वयं उसको पहचानता हूँ। मेर भाव और विचार उनसे स्पष्ट ही विलग हैं। बिम्ब भी बहुत साफ है। पता नहीं कि मेरी शैली से कुछ भ्रम हो गया। हाँ वस्तु-तत्व अवश्य ही बदला सा है। स्पष्ट लिखो कि क्या बात है। क्या कभी मिलने की व्यवस्था होगी।

हम सब अच्छे हैं।

शोभा और बेटियों को प्यार। बच्चों को आशीष। मालकिन को रामराम।

सस्नेह तु॰

केदार

प्रिय केदार,

अभी ललित ने नागार्जुन के संग्रह से कविता पढ़ कर सुनानी शुरू की जिसमें तुम्हारे पके बालों का जिक्र है और हमें भी अपने बाल याद आ रहे हैं। क्योंकि आज ४७ पूरे रहे हैं और साथ में चाँद भी गंजी होती जा रही है।

रेडियो में शहनाई बज रही हैं और श्रीमती चौके में सिवँइयाँ भून रहीं हैं। भूख भी लग रही है। दूध-सिवइयों के नाश्ते का इंतजार है। सबेरे घूमने गये। कसरत की। उसके बाद पहला काम तुम्हें पत्र लिखने का कर रहे हैं।

२४ अक्टूबर को हम दिल्ली होंगे। तुम कभी-कभी असंभावित रूप से उधर आ जाते हो-इसलिये पहले से लिख रहा हूँ कि शायद........। और नवंबर में तीन चार दिन के लिये झाँसी जाने का प्रोग्राम है। जब कालेज में परीक्षाएँ आरम्भ होंगी तब छुट्टी लेंगे। क्या तुम उधर....?

अगर आने की संभावना हो तो लिखना किन तारीखों में आ सकोगे। वर्मा जी के साथ नदी-झील-वन-पर्वतों की यात्रा का कार्यक्रम है।

तुम्हारी ताजी कविताएं पढ़ कर परम प्रसन्नता हुई। वे इतनी ताजी हैं मानों बाग से किसी ने गुलमेंहदी के दो फूल तोड़ कर मेज पर रख दिये हों। लेकिन अपन को तो Quality के साथ Quantity भी चाहिये। हे तम-बावृत घन, नभ-चारी प्राकृत घन-बरसो।

'सतरंगे पंखों वाली' के बारे में तुमने सब कुछ ठीक-सटीक लिखा है, इतना कि हमने अपनी रिव्यू में तुम्हारा पूरा पैरा उद्धृत कर दिया है। बस

मिलनोत्सुक

रामविलास

बाँदा

२३.०२.६०

प्रिय डाक्टर,

अब अधिक चुप नहीं रह सकता। तुम्हें जिन्दगी भर किताबें लिखना है। जिंदगी भर तुम शब्दों के धरातल पर रेंगोगे। मैंने सोचा कि पत्र भेज कर तुम्हें न छेडूं ओर अब तक चुप रहा। मगर तुम अपना काम छोड़ोगे नहीं और मैं हूँ कि अब मौन नहीं रह सकता। कैसे

मनहूस हो कि बंद कमरे में शब्दों के साथ खेलते-कूदते हो और बाहर के मैदान में आकाशी छलांग नहीं लगाते। देखो मौसम की मुसकान और रंगीन जामा। मस्त हो जाओंगे। दिन गरम होने लगे। जैसे तुम्हारे घर का गरम हलुआ। शामें दिल पर उतर आती हैं पंखों के रंग फड़फड़ा कर बसेरा लेने के लिए। सुबहें बड़े शर्म से लाल रहती हैं, रात कहीं बसी रहने के कारण हवा में और पानी में जो शीतलता रहती है वह बड़ी ही प्रिय है। काश मैं भी आगरे में होता तो तुम्हें घसीट ले जाता धूप के पास। अच्छा महाशय जी, अब किताब लिखना बंद कीजिए हम ऊब रहे हैं।

सस्नेह तु॰

केदार

बाँदा

१५.०४.६०

हाँ जी जनाब प्रोफेसर साहब,

तो आप १९/४ को दिल्ली पहुँच रहे हैं। हम यही कह सकते हैं कि बहुत खूब। आप वहां २३/४ तक ठहरेंगे भी। यह और भी बहुत खूब हैं। आप चाहते हैं कि हम भी वहाँ हाजिर हों सो यह नामुमकिन हैं। हम कचहरी की खाक छानने वाले भला दिल्ली की धूल क्य फाँकेगे। इस धूल में बड़े-बड़ों का धर्म-ईमान मिलता है। वहां तो खाक में खैरात बंटती है। हमें आप सुस्त न समझें, हम चुस्त हैं। वजह न आने की है। माकूल है। यही कि हम डैमफूल नहीं बनना चाहते है। अगर आप यह न समझें कि आप भी यही बन जायेंगे। आप आगरे के हैं। आग ले कर शुद्ध हो जायेंगे। हम बांदे से दौडेगे तो कचर जायेंगे। बड़ी लम्बी राह है जैसे किसी नेता के चौड़े कपार का विस्तार औ उसमें पड़ी रेखाओं में दौड़ रहा सारा देश।

आपने दिन को दो कर दिया। पुस्तक लेखन भी जरूरी है-कापियाँ जाचना भी। समय व्यस्त् हैं न। हम तो कुछ नहीं करते। धैर्यधन की तरह किसी मुअक्किल के आगमन में आँखे फैलाए रहते हे। अच्छा राम-राम। सबसे नमस्ते कहना डियर।

तु॰

केदार

बाँदा,

१४.०५.६०

प्रिय डाक्टर,

कल कचहरी से लौटा तो प्रिय ललित की शादी का सुन्दर सा निमंत्रण पत्र मिला। पढ़ कर पढ़ते ही रह गया। बहुत ही खुशी हुई। मैं चलूँ तो कैसे जब मुझे बम्बई जाने के लिए रोज पत्र या तार का इन्तजार है क्योंकि बेटी किरन के भावी पति रूमानिया से शायद १८ मई तक आने वाले हैं। तार मिलते ही बम्बई जाऊँगा। मुझे अफसोस है कि बारात में न जा पाऊंगा वरना तुम्हारा रोब-दाब देखता (।) चिरंजीव ललित और आयुष्मती दया शर्मा को मेरी ओर मेरे कुटम्ब के सदस्यों की बधाई और मंगल कामना।

वहाँ से लौट कर बारात के हाल-चाल लिखना। अब तो बहू के आ जाने पर जनाब का डेरा बाहर ही रहेगा?

सस्नेह तु॰

केदार

बाँदा

२४.०७.६०

प्रिय डाक्टर,

बेटी किरन का व्याह (ब्याह) दिनांक ०८.०८.६० को किसी समय दोपहर के पूर्व Special Marriage Act के अन्तर्गत हो रहा है। तुम्हारी उपस्थिति अनिवार्य तथा वांछनीय है। यह आग्रह विशेष है।

शेष सब वैसा ही है जैसा था। मैं २ दिन हुए २ दिन दिल्ली रह कर वहाँ से लौटा हूँ। मुशीं से भेंट की थीं। नागर जी भी मिले थे। हालचाल मालूम हुए थे। तुम्हारी पुस्तक वाप्सतरीव की कविताओं का अनुवाद, देखा था।

आशा है कि आनंद सहित हो।

सस्नेह तुम्हारा

केदार

१२, अशोक नगर,

आगरा, ३०.०७.६०

प्रिय केदार,

बेटी किरन के ब्याह का समाचार सुन कर प्रसन्नता हुई।

यहाँ पर लड़के नहीं हैं, केवल लड़कियाँ हैं और उनकी माँ हैं। हमारी कालोनी में दो-तीन जगह अभी हाल में चोरियाँ हुई हैं। सब लोग आतंकित हैं। इस समय इनको छोड़ कर कहीं जाना उचित न होगा। आशा है, परिस्थिति की यह विवशता समझ कर मुझे क्षमा करोगे।

तुम्हारा

रामविलास

बाँदा

०३.०८.६०

प्रिय डाक्टर

पत्र मिला। धक से रह गया कि तुम नहीं आ रहे। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ फिर आने को कहूं या नहीं। एक बात है कि तुम आ जाते तो फूल कर कुप्पा हो जाता और ऐसा लगता कि जीवन जीत लिया है। न आओगे तो मुरदार ही रहूंगा। ब्याह तो होगा ही। घर की मालिकिन से और बेटियों से प्रार्थना है कि वे तुम्हें ढकेल कर बाँदा भेज दें। मैं उनका आजन्म आभारी रहूंगा।

सस्नेह तु०

केदार

१२, अशोक नगर

आगरा

२६.०२.६१

प्यारे,

होली आई। बधाई लो। 'दरसन दै मुसकइयों को याद करके' तुम्हारे दरसन पा लेते

हैं। निराला जी पर तुम्हारी चिट्ठी जोरदार थी। उनके दिये हुए काम की एक किस्त पूरी हो गई है। मई में उधर आने का विचार है। क्या तुम इलाहाबाद आओगे? या मैं पहले बाँदा आऊँ? आज कल अमृत नागर यहीं हैं। रोज शाम को 'अनर्गल' साहित्य चर्चा का रस लेते हैं।

तुम्हारा

रामविलास

बाँदा

२८.०७.६१

प्रिय डाक्टर,

मुझे और मेरी बीबी को यह जान कर खुशी हुई कि सेवा अब पहले से अच्छी हो रही है। वह शीघ्र अच्छी हो हमारी कामना यही है।

निराला जी की हालत चिन्ताजनक है। ऐसा मालुम हुआ है। मैं भी इधर नहीं पहुंच सका और न अभी पहुंच पाऊँगा। दिल्ली जा रहा हूँ ३१/७ को। जयपुर तक जाना है। प्रोग्राम बन चुका है। ६/७ दिन लगेंगे सपरिवार प्रसन्न हूँ। इसमें कोई परिवर्तन नहीं होने का। द्रव्य देवता आते रहें वहाँ सब ठीक रहता है।

श्री नर्मदेश्वर उपाध्याय का पत्र इलाहाबाद से आया है कि वह वहां से दिल्ली को भेज दिए गए हैं। रेडियो में है। वह तुम्हें वहां बुलायेंगे ही। तुम जरूर जाना। मस्त आदमी है। आवाज तो बड़ी ही बढ़िया है। उसी ने लिखा कि इधर जनाब ने रेडियो से भाषा पर कुछ कहा था। हमें पता नहीं था। हम नहीं सुन सके। पुस्तक तो निकल ही गयाी होगी। यही (यहाँ) नहीं मिली। खैंर

सस्नेह तुम्हारा

केदार

बाँदा १५-१०-६१ रात ९-१/२ (साढ़े नौ) बजे

भाई,

वही हुआ जिसकी आशंका आजा सबेरे से थी। 'लीडर' में पढ़ा था कि उन्हें आक्सीजन दिया जा रहा है। दिन-भर अधीर ही रहा। रेडियों ने सूचित किया कि वह नहीं रहे। हिंदी का 'गरगज'.....कविता का दिग्गज उठ गया। क्या कहूँ। मैं तो दुखी हूँ ही। तुम भी विचलित पड़े होओगे। धैर्य धरो दोस्त। तुमने तो उन्हें अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति 'भाषा और समाज' समपर्ति करके अपना ऋण चुकाया। मगर सौजन्यप्रिय सरकार उन्हें मान-सम्मान न दे सकी। कितनी विदग्धता है इस व्यवहार में। काश तुम गये होते और महाकवि को देख आये होते।

बेचारा जयविशाल! तड़प गया होगा। मैंने उसे महाकवि के इस महासंकट के काल में, उनके पाँव चापते और उन्हें मुग्ध करते देखा है, अभी कुछ दिन पूर्व।

तु॰ केदार

३०, नयी राजामंडी

आगरा

२०.१०.६१

हाँ प्यारे, निराला जी अब नहीं रहे। न रोता हूँ, न हँसी आती है। कोलरिज के शब्दों A grief without pang, void, dark and drear में का अनुभव करता हूँ। बीच-बीच में एक लंबी सांस ले लेता हूँ। बस।

इस बात का अफसोस नहीं है कि उन्हें इन दिनों देख न पाया। उन्हें जितना पहले देखा था, वहीं दिल कचोटने के लिये काफी है। जिस निराला ने मेरी आँखों के सामने गीतिका के गीत, राम की शक्तिपूजा, तुलसीदास, कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा की रचना की थी, वह जीते जी ही मिट गया था। अंतिम बार जब मैंने देखा तब कुछ घंटों के लिये मानों वह निराला लौट आया था। उस दिन कवि ने रवि ठाकुर के अपने प्रिय परिचित गीत गाये, अपनी रचनाओं को भी गाया, सुनाया, कालिदास काव्य चर्चा की, मुझसे मिल्टन पढ़वा कर सुना। उनके ओठों पर उस दिन वहीं पुरानी मुस्कान थी, आँखों मं वही आत्मीयता

का भाव था।

दोस्त, यहाँ ७५ वर्ष के एक ठाकुर टीकम सिंह हैं। इनका लड़का तारा सिंह हमारे साथ अध्यापक था। उम्र में मुझसे कम, उस इकलौते की अकाल मृत्यु हो गई। शव पड़ा था। लोग रो रहे थे। बूढ़ा गाँव से आया। सब को ढाढ़स बँधाने लगा। किसी ने कहा-चादर हटा कर बेटे का मुँह देख लो। बोले-इस मुँह को क्या देखना? वह हंसता-बोलता चेहरा मन में बना है, वहीं बना रहे।

प्यारे, अपने मन की भी वही हालत है। उस दिन वह जो गीतिका और तुलसीदास का निराला लौट आया था उसी को, अंतिम स्मृति की तरह, मैं सुरक्षित रखूँगा।

मुक्ति मिली, विलंब से पूर्ण नरकत्रास उन्हें यहां मिल गया। लेकिन वीर आखिर तक लड़ा। पूर्ण विजयी हो कर गया-रोग पर विजयी हो कर नहीं, विरोध पर विजयी हो कर, सबको अपना बना कर।

मृत्यु पर उन्होंने बहुत सोचा, बहुत लिखा। सन २४ और ५६ तक लिखा। मृत्यु को जीवन में देखा, और जो किसी ने नहीं देखा, वह देख कर उन्होंने उस पर गीत रचे। वे अपनी वेदना और दुःख को कच्चे माल की तरह काव्य कृतियों के लिए काम में लाते रहे।

प्यारे, तुलसीदास के बाद अब तक ऐसी अमोघ प्रतिभा का साहित्यकार हिन्दी में न आया था। वाल्मीकि, तुलसीदास, निराला-तीनों तीन तरह के, लेकिन तीनों गरल पीने वाले वीर थे, दुख पर रोने वाले नहीं; ओज गुण की सृष्टि करने वाले, सच्चे अर्थों में वीर रस के कवि।

मुझे उनका साहचर्य प्राप्त हुआ, यह मेरे जीवन का सबसे बड़ा पुण्य था।

रामविलास शर्मा

बाँदा

१६.०३.६२

प्रिय डाक्टर,

अफसोस है कि उत्तर में विलंब हुआ। कारण थे। मेरे पिता जी के गाँव के घर में डाका पड़ गया है। परेशान हूँ। वह न थे। नौकर तथा घर मालकिन मारे गए हैं। चोटें हैं पर

जान नहीं जाने पायी। विशेष समाचार की प्रतीक्षा है। पिता जी वहां गये हैं। हम लोग शादी में इलाहाबाद गये हुए थे।

निराला जी के ३/४ पत्र हैं। छांट चुका हूँ। तुम्हारे पत्र भी छंटे रखे हैं। चाहों तो आ कर देख लो, चाहो तो भेज दूं। मुझे इंकार कभी नहीं है। विशेष सामग्री नहीं है।

हां त्रिलोचन आए थे। शायद तुम्हें सूचना देना भूल गया हाऊँगा। दो दिन ठीक से गुजरे थे।

जी मिलने को ललक रहा है। उर्वशी पर जनाब का लेख देखा-दोनों किश्तों में। हम ऐसे लेखों से कुछ भी प्रभावित नहीं हुए। पुस्तक खरीद ली है। बड़े प्रश्न उठते है। कला के नाम पर मैथिलीशरण शैली का निर्वाह है। टकसाली माल न है। न हो सकता है। इस पर लम्बा पत्र लिखूँगा। तुमने तो रस्म अदायगी की है। कुछ भी नहीं लिखा।

सस्नेह तु॰

केदार

बाँदा

१९.०४.६४

५ बजे शाम

प्यारे दोस्त,

अब तो काफी दिन ढरक कर चले गये-हाथ की पट्टी उतर गयी होगी-चोट ठीक हो गयी होगी। निश्चय ही अब अच्छी तरह से लेट सकते होओंगे। कुछ समाचार तो लिखवा भजो। जी हल्का हो।

डा॰ गुलाब राय नहीं रहे। उधर राहुल जी चल बसे। कल पढ़ा कि गोपाल सिंह नेपाली भी उठ गये। यह बड़े खराब समाचार आ रहे हैं। हिन्दी का हित नष्ट हो रहा है। फिर (भी) बल और विश्वास से हम सब को काम करते चलना है चाहे जितनी गाज गिरे और अहित हो रहा हो। घर में सब लोग आनंद पूर्वक होंगे ही। यहां भी ठीक-ठाक है। बच्चे बीमार चल रहे हैं। दवा हो रही है। ठीक हो जायेंगे। चिंता कुछ भी नहीं है। हमने भी सरकारी वकील बनने की दरख्वास्त दी है। मसला पेचीदा है। देखो क्या होता है? जो पहले थे वह अब वहाँ नहीं रहे। सरकार ने उन्हें हटा दिया है। मौसम माकूल जा रहा है यहाँ तो।

ऊपर जा कर चाहे जैसा रहे।

मेमसाहब को सलाम। बेटियों को प्यार।

सस्नेह तुम्हारा

केदार

३०, नयी राजामंडी

आगरा

०८.०७.६३

प्रिय वकील साहब,

पहले आप महज वकील थे, अब सरकारी वकील हुए; इस पर दिलोजान से बधाई!

सेवा चलने-फिरने लगी है और धीरे-धीरे कालेज भी जाने लगेगी। मेरा हाथ ठीक है, सिर्फ पीछे की तरफ मुड़ता कम है। जनाब पिछले हफ्ते वह गर्मी पड़ी कि मानो मई जून का सत निकाल लिया हो। बूँदी बादर का नाम नहीं। निराला वाली पोथी अभी सामग्री संग्रह की मंजिल से आगे नहीं बढ़ी। आज कल सुधा की फाइलें पलट रहा हूँ। जरा दौंगरा गिरे तो लिखना शुरू करें। आज से कालेज खुल रहा है। हमारा सेशन इजलास शुरू।

तु०

रामविलास

बाँदा

०५.११.६३

प्रिय डाक्टर,

इधर काफी अर्से से कोई समाचार नहीं मिला। आशा है कि सब ठीक है। अब तो चोट चल बसी होगी। पत्र देना और सूचित करना।

कल नागार्जुन आने वाले थे-दो दिन ठहरने के लिए। पर न कल आये-न आज।

हम लोग ठीक हैं।

कचहरी के कम में व्यस्त रहता हूँ। पर्याप्त परिश्रम करना पड़ता है। लेकिन मुकदमें

ऐसे सड़ियल आते हैं कि छूट जाते हैं। कहीं गवाह टूट जाते हैं-कहीं डाक्टर चौपट किये रहते हैं। कहीं तफतीश कारिंदा बंटाधार किये रहते हैं। हम हैं कि अपनी मेहनत करते रहे हैं। बड़ा कठिन है न्याय सफल हो।

बेटा अशोक मद्रास गया है। ३ वर्ष के कोर्स के लिए Technical Institute में पढ़ने। Film Photography के लिए। अभी दशहरे में आया था। लौट गया। देखो वह किस राह पर चलता है।

बच्चों को प्यार।

सस्नेह तु.
केदार

१४.११.६४

प्रिय केदार,

पिछले दिनों बाँदा में डिग्री कालेज के प्रिंसिपल मिले। यानि हमारे यहां के मछिन्दर नाथ दुबे। उन्होंने बाँदा आने का निमंत्रण दिया हैं यदि कार्यक्रम तै हो गया तो मैं २४ या २६ दिसम्बर को उधर जाऊंगा। झाँसी और सागर जाने का कार्यक्रम भी बना रहा हूँ और सब ठीक ।

आजकल घर में फ्लश का काम चालू है- खट् खुट, घङ् टङ। इति।

तु. रामविलास शर्मा

१५.१२.६४

प्रिय केदार,

मछिन्दरनाथ, गुरू ठहरे! यहां कह गये थे, जा कर निमंत्रण भेजूँगा। सो अभी तक आ रहा है। सोचा होगा, बुलायेंगे तो पैसे देने पड़ेगे। इसलिए हमने सोचा है कि बाँदा तब आयेंगे जब वहां का कालेज बंद होगा।

२२ दिस. को हम झाँसी में होंगे, २३-२४ को सागर में, २५ को वहां से चल कर २६ दिल्ली और वहां से २९ के आसपास यहाँ। अब छुट्टियों में हम आना भी चाहें तो दो

दिन से अधिक नहीं बचते। इसलिए जरा फुर्सत से हो आने का विचार हैं दिल्ली जाने का कार्यक्रम अचानक बनाना पड़ा। वर्ना २६ के आसपास अभी बाँदा आते।

इलस्ट्रेटेड वाला लेख देखा है। लिखने वाला विद्यानिवास से ज्यादा समझदार है।

तुम्हारा

रामविलास

७.१०.६५

प्रिय केदार,

अभी इलाहाबाद के एक निमंत्रण पत्र से मालूम हुआ कि तुम्हारा वृहत कविता-संकलन वहां से निकल रहा है।

बधाई।

१० अक्टूबर को मेरे जन्म दिवस पर उसकी धूमधाम से परिचर्चा होगी- बड़ी प्रसन्नता की बात है। फलो फला, वकील और कवि दोनों रूपों में। फूल भी बोलें, रंग भी बोलें।

तुम्हारा

रामविलास

बाँदा

१३.१०.६५

रात, ११-बजे

प्रिय डाक्टर,

पाई चिट्ठी/हुआ प्रसन्न/

तुमने तोड़ा मौन/मैंने खाई खीर/स्वाद बन गया/वक्ष तन गया/गया इलाहाबाद/पुस्तक देखी/आंखें चमकी/बहुत समय पर मेरी कविता बाहर आयी/छपने पर वह और हो गयी/सब को भायी/समारोह भी रहा सुहाना/सब से मुझ को, मैंने सब को जाना/मन गाता था गाना/मैं पहने था माला/चलता था चौताला/लिख पड़े लोगों ने डट कर/सबने काव्य

सराहा/पंत, महादेवी के भाषण भाव भरे थे/दास / हुलास भरे थे अमरित / ने अमरित बरसाया-/

अब फिर बाँदा-/वहीं कचहरी--/वहीं वकालत--/वहीं कटाकट।/

शेष कुशल है।

मैं केदार तुम्हारा

"चिन्तन"

साहित्यिक-संस्था, बाँदा (उ.प्र.)

फोन नं. २५

अध्यक्ष कार्यालय

केदारनाथ अग्रवाल

मंत्री- देव कुमार यादव

स्टेशन रोड, बाँदा

दिनांक : १६.१.६६

प्रिय डाक्टर,

नेहरू डिग्री काजेल बाँदा में २६/१ को बसंत पंचमी के अवसर पर 'निराला' जयंती मनायी जा रही है। प्रमुख वक्ता जनाब रामविलास शर्मा हैं। फर्स्टक्लास का रिटर्न टिकट का व्यय मिलेगा। इस व्यय के देने की जरूरत न थी पर देना उत्तरदायित्व से मुक्ति पाना है।

डिग्री कालेज के प्रिंसपल महोदय स्वयं पत्र लिख चुके होंगे। न मिला हो तो मिल रहा होगा।

यहां लोगों की उत्सुकता बढ़ गयी है तुम्हें देखने-सुनने की। नौजवान लोग खूब बात करना चाहते हैं-सोचना-समझना चाहते हैं। न आये तो उनकी भावनाओं का निधन होगा। यों ही वे शास्त्री जी के निधन से उबर-उबर रहे हैं।

मौंन टूटेगा कि नहीं? आगमन होगा कि नहीं?

वैसे वादा बहुत पुराना है। उसके पूर्ति की कोई मियाद नहीं है। परन्तु अत्यधिक समय बीत चुका है। शुभागमन है। 'टूटें न तार तने जीवन सितार के'। कुछ ऐसी ही आशा

है और विश्वास है।

निराला के जीवन पक्ष को समेट कर उनके सुगम और कठिन काव्य-पक्षों को उधार कर, नये युग बोध के संदर्भ में, तुम्हें दृढ़ता पूर्वक तकरीर करनी है- सोदाहरण। उनकी रचनाओं की महत्ता आज तो और भी अधिक सत्य को साकार करती है। देखते हो न कि 'नयी कविता' बजाय जिंदगी के निकट आने के, उससे दूर खिसकती चली जा रही है- अहित की ओर। क्या नवोन्मेष अन्तर्मुखी हो कर गुहा गर्त में नहीं घुसता चला जा रहा? युगबोध भी वैसा नहीं है जैसा चित्रित किया जा रहा है। केवल उधार ली गयी काव्य-शैलियां भारतीय भाव-भूमि पर खेत में खड़े धोखा का प्रदर्शन करती हैं-महा कुरूप-निर्जीव। यह जो नये के नाम पर नकारात्मक रचनाएं धुएं की जैसे फैलती जा रही हैं वह वास्तव में यथार्थ की सहज मानसिक प्रक्रियाओं को व्यक्त नहीं करतीं। डूबते-टूटते मनो-खंड मात्र ही दिखते हैं।

वैसे ठीक हूँ। तब तक पूरा ठीक न हो सकूँगा जब तक तुम न आओगे। बच्चों को प्यार।

सस्नेह तुम्हारा

केदारनाथ अग्रवाल

पुनश्च-

प्रिंसपल महोदय से अभी बात करके लौटा हूँ कि उन्होंने आज ही पत्र लिखा हैं। वह भी शायद इसी पत्र के साथ मिले। अपनी स्वीकृति तार से भेज दो।

विषय चाहे जैसा हो- अपने मन के विषय पर ही बोलना। कोई प्रतिबंध नहीं है। कम से कम ३ दिन लगेंगे। एक दिन निराला। एक दिन शेक्सपियर। एक दिन और चिंतन में।

सस्नेह तु.

केदार

१४.०३.६६

प्रिय केदार,

तुम्हारा कार्ड मिला।

तुम्हारी अच्छी कविताएँ मुझे इतनी अच्छी लगती है कि मैं उनसे अच्छी कविताओं की कल्पना नहीं कर सकता। इस तरह की रचनाओं का एक नमूना है-धूप धरा पर उतरी। कविता लगभग धूप के समान ही निरलंकार और सुन्दर है। प्रकृति संबंधी कविताओं में कहीं-कहीं Conceils है जैसे-

जल रहा है

जवान हो कर गुलाब;

खोल कर होंठ :

जैसे आग

गा रही है फाग ।

यह Conceil बहुत ही सुंदर है क्योंकि उसमें इन्द्रियबोध कापूर्ण उदात्तीकरण है-आग से लते हुए रंग का बोध है।

तुम्हारी व्यंग्य वाली कविताएँ मुझे बेहद पसंद है जैसे धोबी गया घाट पर (पृ. ९६) इसकी वक्र व्यंजना में अगाध वेदना छिपी हुई है-इसीलिये इतनी मार्मिक है।

व्यंग्य हीन उदात्त घोषणाएँ व्यक्तित्व के (की) सामर्थ्य से ही कविताएँ बन गई हैं जैसे "मैं हूँ अनास्था पर लिखा" आदि (पृ. १४८)।

कानपुर, बुन्देलखण्ड के आदमी जैसी कविताओं में घन की चोट है : यथार्थ का रंग, सादगी में भी वीरतापूर्ण। तुम्हारी कवितओं की भाषा शैली व्यंजना का ढंग सब ऐसे हैं जो एक लोक कवि को ही-और संसार के थोड़े से बहुत बड़े-बड़े कवियां को ही-सुलभ होते हैं। इनमें जहाँ तहाँ -एकाध पंक्ति में-कुछ भारी भरकम शब्द आ जाते हैं जो लोक रस में बाधक होते हैं। ऐसा बहुत कम होता है-यद्यपि होता अवश्य है।

तुम्हारा इन्द्रिय बोध तगड़ा; वैसा ही दृढ़ भाव बोध भी है किन्तु इनके साथ विचार ओर चिन्तन की वह गहराई नहीं है जो दान्ते, शेक्सपियर आदि उच्चतम कवियों में है। इसलिये कि तुम सहज कवित हो, दार्शनिक नहीं। आधुनिक हिन्दी में- नयी पीढ़ी और

दिनकर-बच्चन वाली पुरानी पीढ़ी दोनों में-तुम सर्वश्रेष्ठ कवि हो। इन्द्रियबोध के टक्कर की विचार-गरिमा हो तो तुम शेक्सपियर और दान्ते की तरह विश्वबन्ध्य हो जाओ। अब तुम कहो कि इससे मुझे खुशी नहीं हुई तो संभव है, न हुई हो। लेकिन मेरा आशय स्पष्ट है, यह शिकायत न रहेगी।

और सब ठीक-

तुम्हारा
रामविलास शर्मा

३०, नई राजामण्डी,
आगरा-२
२८-१-६८

प्रिय केदार,

वसन्त पंचमी पर तो न आ सकूँगा पर इस वर्ष आऊंगा जरूर - अप्रैल या मई में और दो-तीन दिन रहूँगा। निश्चित।

दिल्ली से नरोत्तम ने यह समाचार दिया है कि उन्हें दिल का दौरा पड़ा था। इधर वह बेहद मानसिक चिन्ताओं से ग्रस्त रहे। हिन्दी टाइम्स बन्द हो गया; वह सिलसिला भी टूट गया। बुढ़ापा और अनिश्चित जीवन; अकेलेपन और टूटने की बातें करते हैं डालमिया के वेतनभोगी पत्रकार।

इधर सर्दी बहुत पड़ी। कुछ सर्दी, कुछ व्यर्थ के सांस्कृतिक समारोह। बड़ा समय नष्ट हुआ। अब पुस्तक में फिर जुट रहा हूँ। 'धर्मयुग' में मेरा लेख न देखा हो तो देखना। शेष कुशल।

तुम्हारा
रामविलास शर्मा

(फर्वरी १९६८)

सुना तुमने - अब नरोत्तम नहीं रहे। ५/२ को ४-१/२ (साढ़े चार) बजे शाम घर छोड़ कर अनंत की यात्रा में चले गये। यह क्या हो गया? अब मौत हम लोगों की तरफ बढ़ रही है। जुझारू दोस्त को अचानक ले गयी। वह शायद बेकार होते ही दिल तोड़ बैठे थे। वैसे दमदार आदमी थे और अभी जीने की इच्छा रखते थे। उनके बेटे प्रिय विजय का पत्र कल शाम मिला और तभी यह शोक संवाद मिला। तुम्हारे पत्र से यह तो मालूम हुआ था कि वह बहुत परेशान हैं पर यह आभास नहीं हुआ था कि परेशानी जानलेवा परेशानी हो चुकी है। तुम भी उनके बेटे को धैर्य बंधाना। समय मिलते ही वहाँ जाना चाहूँगा। वह बड़ा अक्खड़ और फक्कड़ था। पुरानी यादें ताजा हो गयी हैं। एक-एक बात याद कर रहा हूँ और उनका चल-चित्र देख रहा हूँ। अन्त में वह टिटिहरी शरीर टूट ही तो गया। कोई भी दिल्ली में उस टूट रहे शरीर को टूटने से न बचा सका। बस।

तुम्हारा सस्नेह

केदार

१९-३-६८

प्रिय केदार,

१४/३ का कार्ड मिला। दो-तीन ठहरते तो जरूर ज्यादा मजा आता लेकिन हम लोग प्रसार की जगह घनत्व से काम ले लेंगे। और कोई कार्यक्रम नहीं, केवल तुम्हें देखना, तुम्हारी बातें सुनना। चित्रकूट वगैरह फिर देखा जाएगा। नागा॰ का जवाब नहीं आया। इससे उनके बाँदा आने के बारे में थोड़ा संशय हो रहा है।गाड़ी नहीं जाती मानिकपुर में बदले बिना, कोई सीधी बोगी? हो तो २८ मार्च की रात के लिए (फर्स्ट) में इलाहाबाद का रिजर्वेशन करा लेना। दूसरे दिन शाम को इलाहाबाद से लौटूंगा, इसलिए वहां के लिए एक दिन मिल जाय तो ठीक। वर्ना सबेरे की बस। बस

तुम्हारा

रामविलास

बाँदा

१-५-६९, रात ९ बजे

प्रिय भाई,

इलाहाबाद रेडियो से आज ८ बजे रात तुम्हारी पुस्तक पर श्री लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय की टिप्पणी सुनी। श्री नर्मदेश्वर उपाध्याय ने सूचना दी थी। मुझे कतई अच्छी न लगी। बहुत सतही और जांगरचोर आलोचना थी। मैंने अपनी प्रक्रिया (प्रतिक्रिया) नर्मदेश्वर को अभी लिख भेजी है।

पंज जी को ज्ञानपीठ का लाखिया पुरस्कार मिला। अब सोने की डाल पर शुक बैठेगा।

बधाई देने का मन करता है। पर पता नहीं मालूम। इसलिए चुप हूँ।

नागार्जुन इलाहाबाद हैं। मैंने बुलाया था। न आये। न पत्र ही आया। मैं "निराला मेरे प्रिय कवि" पर एक वार्ता दूंगा जून में। रिकार्डिंग २५/५ को इलाहाबाद में होगी। स्क्रिप्ट भेज दूंगा। और सब ठीक है। आशा हे कि सब कोई प्रसन्न होंगे।

सस्नेह तु.

केदार

१२-५-६९

प्रिय केदार,

विश्वविद्यालयों के द्वारपाल निराला के विरुद्ध लाठी ले कर खड़े रहे कि कहीं भीतर न घुस आयें। जब वह न रहे, तब सन्त और ऋषि बनाकर उन्हें पूजने लगे। सत्य से आंखें मिलाने का साहस उनमें नहीं है। इसलिये लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने मेरी किताब पर जो कुछ कहा होगा, जरूर सतही रहा होगा। पंत जी ने लिखा था कि उनके सम्बन्ध में अतिरंजना से काम लिया गया है, मेरी पुस्तक में, और उनका निराकरण करते हुए वह कुछ लिखेंगे। ज्ञानपीठ पुरस्कार पर बधाई भेज दी थी। पताः १८/बी.७, कस्तूरबा मार्ग, इला. है। और सब ठीक है।

तु.

रामविलास

२६-६-७०

प्रिय केदार,

ललित जयपुर गये, विजय दिल्ली में हैं, भुवन अपनी पत्नी को ससुराल घुमाने ले गये हैं, लौट कर बनारस जायेंगे। शोभा अपनी पति के साथ बंबई घूम रही है। स्वाति किसी नौकरी के लिए मेरठ जाने वाली है, इंटरव्यू के लिये। सेवा इधर-उधर अर्जियां भेज रही है, इन्टरव्यू के बुलावे की राह देखते हुए। मेरी पत्नी को ब्लड प्रेशर है।

अब अगर विजय यहाँ ६-७ जुलाई को आ गये तो बाँदा आऊँगा, वर्ना कोई सूरत नहीं है वहाँ पहुँचने की। यद्यपि पत्नी कहती है, चले जाओ किन्तु सेवा अकेले घबड़ा न जाय - इनके स्वास्थ्य में किसी तरह की गड़बड़ी से - इसलिये मैं इन्हें यहाँ किसी लड़के के आये बिना, छोड़ कर कहीं जाना नहीं चाहता। दो एक Ph.D. के Viva थे। मैंने युनिवर्सिटियों को लिख दिया, छात्र और दूसरे परीक्षक को यहीं भेज दो। अंचल जी इसी सिलसिले में दर्शन दे गये हैं। एक अध्यापक अंग्रेजी के मेरठ से आ चुके हैं। एक हिन्दी के मसूरी से आने वाले हैं।

एक दिक्कत छोटी-सी यह भी है कि पहली जुलाई से हमारे यहाँ भर्ती शुरु होती है, बी.ए., एम.ए. के बहुत से फार्म निपटने होते हैं।

खैर, ५ जुलाई के 'धर्मयुग' में अपनी और मेरी निगाहों से खुद को देखना। 'मेलजोल' को भी एक छोटा सा लेख भेजा था, पर उन लोगों ने पहुँच की सूचना नहीं दी। याद तो तुम्हें हम रोज करते हैं, या यों कहो, निराला पर लिखते समय तुम रोज याद आते हो लेकिन लगता है, दीदार में थोड़ी देर है अभी।

तुम्हारा - रामविलास

२१-१-७२

प्रिय भाई,

वसंत की बधाई लो। बराम्दे में आधी धूप, आधी छाया में तुम्हें कार्ड लिख रहे हैं। कार्ड लिखते समय याद आया, इस बार खेतों में सरसों देखने नहीं गये। आज जायेंगे। सबेरे घूमने जाते हैं। मुँह अंधेरे। शाम को क.मु. विद्यापीठ से लौटते हैं ६ बजे तक जब फिर

अंधेरा हो जाता है। इसीलिए सरसों दर्शन से वंचित रहे। दो साल से गेंदे भी नहीं लगाये। गुलाब अलबत्ता गहगहा रहा है। आज कल हम कुछ भाषा विज्ञान की पढ़ाई कर रहे हैं। उस भाषा का इतिहास समझने के लिए जिसे हम तुम लिखते बोलते हैं। तुम्हारी बुढ़ाई का क्या हाल है? कितने अंगो में उतरी? पीठ का दर्द अब कैसा है? शरीर की मालिश कब से नहीं कराई? मुजीब का ढाका वाला भाषण सुना था? भाव विह्वलता की हद थी; फिर भी भीतर से उसका मन सधा हुआ था।

तु॰ रामविलास

बांदा

२४-१२-७९

प्रिय डॉक्टर,

रेडियो में सूचना मिली कि पंद्रह हजार का पुरस्कार पा गये हो। बेहद खुशी हुई। हार्दिक बधाई।

और क्या हाल है?

मैं तो बाँदा से बाहर अब जा ही नहीं सकता पत्नी के कारण। कभी-कभी पत्र लिख दिया करो।

घर के हालचाल ठीक ही होंगे। तुम्हारी पुस्तक तो अब पूरी हो गयी होगी?

यहाँ शीत प्रकोप भरपूर चल रहा है। आगरा भी इसमें बहादुरी दिखा रहा होगा।

सस्नेह तु॰

केदारनाथ अग्रवाल

केदारनाथ अग्रवाल

एडवोकेट

सिविल लाइन्स

बाँदा (उ॰प्र॰)

दिनाँक ११-२-८२

प्रिय डाक्टर,

पहले वाला पत्र मिल गया था। आज फिर १/२ का पत्र मिला।

हार्दिक प्रसन्नता हुई कि मालकिन की हालत ठीक चल रही है और इससे बढ़कर दूसरी बात हो ही क्या सकती है।

अपने बारे में कुछ न लिखूंगा। नीचे लिखी कतिवाएं भेजता हूँ। वही मेरी मनोदशा की साक्षी हैं-

१- गये लौट चार दिन के बाद / घिरे घुमड़े, भीड़ का मंडल
बनाये, कर रहे उत्पात / दीप्त मंदिर मारतंडी को छिपाये /
श्याम वर्णी आसुरी आकाश में सिक्का जमाये / गाजते हैं
वरुण के बदमाश बेटे मेघ।

२- झरने-झरने को गुलाब है झुका हुआ / केवल अनुमोदन
पाने को रुका हुआ ।

३- मुग्ध ठगा-का-ठगा खड़ा मैं / चांद देखता रहा, हृदय की
आँखे खोले / बँधा-बिंधा प्राकृत प्रकाश के / अनपाये
प्रिय को अपनाये / जैसे पहली बार।

और रुका-का-रुका रहा शशि / मुझे देखता हुआ,
मंडलाकार प्रदीपित, / बँधा-बिंधा भू की प्रतिभा के
अनपाये कवि को अपनाये / जैसे पहली बार!

४- मैंने आँख लड़ाई / गगन - विराजे राजे रवि से, शौर्य में/
धरती की ममता के बल पर / मैंने ऐसी क्षमता पाई।

मैंने आँख लड़ाई / शेषनाग से, अंधकार के द्रोह में/
जीवन की प्रभुता के बल पर / मैंने ऐसी दृढ़ता पाई।

मैंने आँख लड़ाई / महाकाल से, मृत्युंजय के मोद में /

अजर-अमर कविता के बल पर /

मैंने ऐसी विभुता पाई

५- तुमने / हमको मारा / मार-मार कर फिर-फिर मारा/

हमें मार कर तुमने अपना स्वाँग सँवारा /

और हमारा स्वांग उतारा /

अरे, विदूषक !

हिंसक है हठ योग तुम्हारा /

दारूण है दुख-योग हमारा।।

बस डियर ! इस वक्त इतना ही। कलम चलाने में अंगुलियाँ सरकने लगती हैं। आज फिर सबेरे से वही बादली शीत जम कर हैरान किये हैं। जरा देर को सौभाग्य से, सूरज ने ११ बजे दिन को, अपनी मुड़िया निकाली है तो हमने धूप लोकी और कपड़े उतार कर नहाये; फिर वहीं मुंह चोरव्वल शुरु हुई और अब भी नजर नहीं आ रहे गरम मिजाज सूर्य। पत्र पा कर समय हो तो, कुछ जुमले भेज देना। थोड़े लिखे को बहुत समझ लूंगा। सब को सस्नेह नमस्कार।

तु॰

केदारनाथ अग्रवाल

सी-३५८, विकास पुरी

नयी दिल्ली ११००१८

७-११-८५

प्रिय केदार,

आज शाम को हम मॉस्को रेडियो सुन रहे थे। परेड, भाषण, गाने इत्यादि। गर्बाच्योव के आने के बाद सोवियत संघ के साम्राज्य विरोधी स्वर में कुछ तेजी आई है। तुम अब तक मद्रास पहुँच गये हो गे। मधुमेह और रक्तचाप से मुक्त हैं, यह बहुत अच्छा समाचार है। प्लास्टर से कष्ट होता है पर आजकल के मौसम में कुछ कम हो गा। गर्मियों में खुजली-सी

होने लगती है। प्लास्टर तो कुछ समय बाद कट जायेगा। उसके बाद वह बेटा बहू के पास ही रहें तो अच्छा है। दरअसल एक आदमी तुम्हारी देखभाल के लिए चाहिए। बुढ़ापे में दूसरे की देखभाल करना बहुत कठिन होता है।

अब स्थिति कैसी है। संक्षेप में दो लाइन लिख कर भेज देना।

तुम्हारा

रामविलास

बड़े दुख के साथ सूचित करता हूं कि दिनाँक २८/१ को सायंकाल ६ बजकर १५ मिनट पर मेरी धर्मपत्नी श्रीमती पार्वती देवी अग्रवाल का निधन यहाँ मद्रास में हो गया। तेरही ९/२ को है।

केदारनाथ अग्रवाल

19, Thirumoorthy Street

T Nagar, Madras 17

काशी

५-२-८६

प्रिय केदार,

जिस दुःखद घटना की आशंका थी, उसकी सूचना मिल गयी। पिछले कुछ वर्षों में प्रत्येक क्षण तुमने कितने मानसिक क्लेश में बिताया होगा। पुरुष समर्थ है। बहुत कुछ सह सकता है। उसके लिए पत्नी है, संसार है। पत्नी का संसार उसका पति है। तुम्हें अपना स्नेह दे कर वह तुम्हारी कविता को नयी शक्ति दे गयीं, स्वयं उसमें अमर हो गयीं। यह क्षति केवल तुम्हारी नहीं, समस्त हिन्दी संसार की है। इस शोक की घड़ी में तुम्हारे मित्र और प्रशंसक, हम सब तुम्हारे साथ हैं।

तुम्हारा

रामविलास शर्मा

न्यू जी-३३, हैदराबाद,

बी॰एच॰यू॰ वाराणसी

२६-२-८६

प्रिय केदार,

कहां हो? कहां रहने का विचार है? अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना। दो पंक्तियों में अपना समाचार लिख भेजना।

सस्नेह

रामविलास

19, Thirumoorthy Street

T Nagar, Madras 17

4-3-86 / 11 AM

प्रिय डाक्टर,

२६/२ का तुम्हारा पोस्टकार्ड आज मुझे यहाँ डाक से मिला। पढ़ने के बाद ही इसी क्षण उत्तर दे रहा हूँ। क्योंकि तुम्हें मेरी चिन्ता सता रही है। स्वाभाविक भी है।

मैं मार्च के अन्त तक ही शायद यहाँ रहूँ। मेरी बड़ी बिटिया आई थी। उसे वापस इलाहाबाद ले जाऊँगा। उसका बेटा यहाँ २ दिन रह कर चला गया। बिटिया का इलाज चल रहा है। फायदा हो रहा है। इसी से रुका हूँ। उसका इलाहाबाद जाना जरूरी है। मुझे वापस जाना है तो मेरे ही साथ चली जायेगी। फिर वहाँ लखनऊ-बाँदा-गाजियाबाद और एक दिन अपने गाँव भी जाऊँगा।

मैं अपने को सम्हाले तो हूं पर सब कुछ तो मुझ पर ही नहीं है। महाकाल की कुमति करनी का कोई भरोसा नहीं कि कब पकड़ ले जाये। वैसे उन्हें मैं हड़काये रहता हूँ। प्रिया प्रियम्वद पार्वती तो प्रेमयोगिनी थीं। उनकी मूर्ति बराबर सामने आती है। वह मरी नहीं। उनका चेतन रूप मेरे दिल में है। काव्य बन गई हैं।

सस्नेह

केदार

काशी

१-४-८६

प्रिय केदार,

२५/३ का कार्ड मिला।

अकेले यात्रा करना अब संभव नहीं है। नवम्बर में विजय यहाँ छोड़ गये थे, इस महीने अपनी सुविधानुसार ले जायेंगे। दिल्ली पहुँच कर अजय तिवारी से बात करूंगा। वह इलाहाबाद जाते रहते हैं। शिवकुमार सहाय और अजय तुम्हारी ७५वीं वर्ष गाँठ मनाने की योजना बना रहे हैं। उसमें मुझे ले चलने की बात भी हुई थी। संभव है, वैसा कोई आयोजन हो, तो देर सबेर भेंट हो गी।

आज तुम्हारा जन्मदिन है। तुम्हें आज दिन भर याद करूंगा। बहुत-बहुत प्यार के साथ।

तुम्हारा

रामविलास

बाँदा (उ.प्र.)

पिन २१०००१

२१-१०-८६

रात ८ बजे

प्रिय डाक्टर,

दिनाँक ६-१०-८६ का पोस्ट कार्ड मिला। तुम दिल्ली पहुंचकर फिर काम में लगे। यही होना चाहिए।

उस दिन मैं स्टेशन नहीं जा सकता था। वहां पहुँचकर ट्रेन चलते समय फूट-फूट कर रो पड़ता। सम्हाल न पाता। घर में भी बड़ी कड़ाई से रोके रहा और किवांड़ा बन्द करके लेट गया। क्या कहूं। रात भर जागता रहा। ऐसा न होना चाहिए था। पर स्वभाव से विवश हूँ। कैसे इस बार ८ दिन रहकर तुमने रेकार्ड तोड़ा और मुझे अपना बनाये रहे। यह चिरस्मरणीय रहेगा।

मेरा हीटर वाला यंत्र (गीजर) मिल गया। अभी बाथरूम में लग नहीं पाया।

लोग याद करते हैं वे गये दिनो की बातें। खूब खुश हैं बाँदा के लोग। TV को देख-देख कर विभोर हैं।

सस्नेह तु॰

केदारनाथ अग्रवाल

नयी दिल्ली-१८

४-११-८६

प्रिय केदार,

कवि और आलोचक में यही फर्क है। तुम किवाड़ें बन्द करके लेट गये और रात भर जागते रहे, और हम गाड़ी में बर्थ पर पैर फैलाते ही सो गये और ऐसे सोये कि जब आगरा थोड़ी दूर रह गया, तभी आँख खुली। तुम स्टेशन न आये, यह बहुत अच्छा किया। चलने को होते तो मैं अवश्य मना कर देता। तुम १३-१४ की रात को ढाई बजे स्टेशन आये, यह भी मेरी इच्छा के विरुद्ध हुआ। मैं चाहता हूँ कि तुम अपने शरीर और मन को अनावश्यक तनाव और थकान से बराबर बचाते रहो।

हमने तो टी॰वी॰ में कुछ देखा नहीं। सुना है, कई किश्तों में समारोह दिखाया गया है। खैर, टी॰वी॰ के बिना ही हम जब चाहते हैं, मन की सुई बाँदा की तरफ घुमा कर सब कुछ देख लेते हैं। आंखें बन्द करने की जरूरत भी नहीं होती। एक ही मुसीबत है कि बार-बार हम खुद को तुम्हारे साथ आंगन में ही बैठा देखते हैं। भोर के समय तुम्हारा आँगन इस से ज्यादा खूबसूरत जगह दिमाग में नहीं आती। तुम्हारे साथ जिन जिन को देखा, सब याद आते हैं। तुम्हारे साथ उन्हें भी प्यार।

रामविलास

नयी दिल्ली १८

१५-१२-८६

प्रिय केदार,

आज विजय ने अखबार पढ़ते हुये तुम्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार मिलने की बात कही तो मैंने छूटते ही कहा - उन्हें तो पहले मिल चुका है। पर अकादमी पुरस्कार दो बार नहीं मिलता। इसलिए मानना पड़ा कि तुम्हें विलंब से, झखमार कर, पुरस्कार दे रहे हैं। इस पर तुम्हें बधाई तो क्या दें पर वे पुरस्कार को बाध्य हुए, इस पर प्रसन्नता है।

अजय से गाजियाबाद का पता जाना। सम्भव है, अभी वहीं हो।

मुंशी भी सम्पर्क स्थापित करने के प्रयत्न में हैं। पुत्री और परिवार के सभी लोगों को स्नेह सहित-

रा.वि. शर्मा

बाँदा २०-१२-८६ / १०-१/४ (सवा दस) बजे दिन।

प्रिय मुंशी,

मैं २९-१२-८६ को सबेरे पौने तीन बजे बाँदा स्टेशन पर सकुशल पहुंच गया। घर के लोग आ गये थे। रास्ते में यात्रा सुखद रही। कोई कष्ट नहीं हुआ। यहाँ भी ठंड है। धूप में बैठा बधाई के पत्रों का उत्तर दे रहा हूं।

डॉ. शर्मा को फोन कर देना। मेरा यही समाचार बता देना। उन्हें पत्र बाद को लिखूंगा।[1] नमस्कार भी कह देना। विजय से भेंट न हुई वहाँ गोष्ठी कक्ष में भी।

पत्र तो कभी-कभी लिख दिया करो। राजीव सक्सेना - खगेन्द्र ठाकुर - महादेव साहा भी गोष्ठी में थे। भेंट हुई। अन्य लोग भी मिले। गोष्ठी ठीक ही रही।

अपनी पत्नी से मेरा नमस्कार कहना। बच्चों को भी प्यार देना।

स्वाती का पत्र भी बधाई का आया है। उत्तर दूंगा।

सस्नेह तु.

केदारनाथ अग्रवाल

बाँदा/३०-१२-८६ / १०-३५ मिनट प्रातः

प्रिय डाक्टर,

उस दिन गोष्ठी में भी विजय से भेंट न हो सकी।

मैं यहाँ २९-१२-८६ को सबेरे पहर २:४५ बजे स्टेशन बाँदा पर सकुशलता पूर्वक उतरा घर के लोग आ गये थे। कोई कष्ट नहीं हुआ। यहाँ भी ठंड है। चिन्ता की बात नहीं है। सब कुछ पूर्ववत है। ठीक ठाक है।

बधाइयों के पत्रों, तारों का उत्तर दे रहा हूँ। यह तो जानलेवा काम है। करना तो पड़ेगा ही।

१० और ११ को पन्ना में रहना है। यदि कोई आ कर लिवा गया (तो) जाऊंगा (।)

मुंशी को भी अभी पत्र लिख चुका हूँ। नागार्जुन को भी।

तुम अपने हर पत्र में अपने घर का पता जरूर लिख दिया करो। फोन नम्बर भी। मेरे भतीजों का फोन नं. १३६ है।

सबको यथायोग्य। प्रिय स्वाती का पत्र आया था। उत्तर दूंगा।

सस्नेह तु.

केदार

बाँदा

१७-११-८७

प्रिय डाक्टर

१२-११ का पोस्टकार्ड मिला।

श्री वीरेन्द्र यादव ने (सी. ८५५ इन्दिरा नगर, लखनऊ, २२६०१६ से) लिखा है कि मैं तुम्हारी १२-१५ कविताएं (अपनी पसंद की) 'प्रयोजन' पत्रिका के लिए भेज दूं। 'रूपतरंग' तो है मेरे पास। मैंने आज ही लिखा है कि वह स्वयं तुम्हारे ऊपर के पते पर इसके लिए लिखें। मैं न दे सकूंगा। वह 'प्रयोजन' के एक अंक को तुम पर केन्द्रित करना चाहते हैं।

मैं २६/११ को कुतुब से दिल्ली जा रहा हूं। वहां साहित्य अकादमी के उस आयोजन में दिनाँक २८/११ को (५-१/२ (साढ़े पाँच) P.M.) सम्मिलित होना है। बच्चन का जन्म-दिन मनाया जा रहा है। बच्चन ने मुझे बुलवाने को कहा था। जाना पड़ रहा है। आरक्षण

करा लिया है।

विकास पुरी में सब ठीक होगा। शायद ही मैं वहां इस बार जा सकूं।

सबको यथायोग्य। परिवार के सदस्यों को और तुम्हारे पास के लोगों को।

सस्नेह तु॰

केदार

बाँदा

५-१२-८७

प्रिय डाक्टर,

आज सबेरे ३ बजे यहाँ सकुशल आ गया। अजय वहाँ आते रहे। स्टेशन भी आये। ठीक है। वहां का कार्यक्रम ठीक ही रहा। राजन के घर की गोष्ठी में प्रिय विजय भी आये रहे। बड़ी खुशी हुई। वह सकुशल हैं। प्रसन्न थे।

अच्छा हुआ कि तुमने यादव को अनुमति दे दी।

खूब जम कर लिखो- हमें भी पढ़ने को मिलेगा।

बच्चन कमजोर हैं। पर गोष्ठी में भी अपने आप सपत्नीक आये थे। तेजी जी ने उनकी कविताएं सुनाईं एक गीत भी सस्वर सुनाया। नामवर भी - केदार नाथ सिंह भी - कन्हैयालाल नन्दन - रमानाथ अवस्थी भी आये रहे। मैंने भी नयी कविताएं सुनाईं। बेटी के पास न जा सका।

मेरा जाना जरूरी था। न जाता तो बच्चन को दुख होता।

सस्नेह तु॰

केदार

बाँदा

६-१२-८७

प्रिय डाक्टर,

आज रेडियो से समाचार मिला कि तुम्हें D.Lit. की मानद उपाधि से विभूषित किया

गया है। सच तो होगा ही। हार्दिक बधाई लो। एक पत्र परसों लिख चुका था। मिला होगा।

सब को यथायोग्य।

सस्नेह तु.

केदारनाथ अग्रवाल

न्यू जी ३३/ हैदराबाद

काशी ८-१-८८

प्रिय केदार

तुम्हारा २६/१२ का कार्ड मिल गया था। एक दिन टी.वी. पर शमशेर और त्रिलोचन को देखा। शमशेर काफी कमजोर लगे। उन पर शोध करने वाली महिला उन्हें चम्मच से खाना खिला रही थी। तुम्हारे प्रकाशक ने तुम्हारे लिए टी.वी. की व्यवस्था कर दी। बहुत अच्छा हुआ। टी.वी. में जो कुछ तुम देखोगे, उससे तो एकाकीपन टूटेगा ही, कुछ लोग टी.वी. देखने जरूर आयेंगे। वे भी एकाकीपन तोड़ेंगे। तुम्हारी कविताओं की पाण्डुलिपि इलाहाबाद के लोग ले गये और भूमिका भी तैयार हो गयी, यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुयी।

विजय, सन्तोष, तन्मय, चिन्मय यहाँ पहली जनवरी को कलकत्ता, पुरी घूमते हुए आये थे। चार को वापस गये। गाड़ी उस दिन चार घंटे लेट थी, आधी रात को दिल्ली पहुँचे होंगे। यहाँ विश्वविद्यालय के शिव मंदिर में बाहर के बहुत दर्शनार्थी, बसों में, बैलगाड़ियों में आते हैं। रात को जमीन पर रजाई ओढ़ कर सो जाते हैं। ईंटों के चूल्हे बना कर खाना पकाते हैं। आस-पास सड़क किनारे हाजत रफा करते हैं।

तुम्हारा

रामविलास

बाँदा (उ.प्र.)

पिन-२१०००१

०९.०५.८८

प्रिय डाक्टर,

अब तुम व्यवस्थित हो गये हो।

-दिल्ली में पानी का संकट है, ऐसा रेडियो से पता चला था। मैं समझता कि तुम लोग भी इस संकट के शिकार हुए होओगे। अब कैसी स्थिति है। हमारे घर में तो ऐसा कोई संकट नहीं है। भतीजों के घर में ट्यूब वेल से बराबर पानी आता रहता हैं बिजली भी कम नखरे करती हैं।

'सचेतक' के दो अंक मिले। पर मुंशी का इधर बहुत दिनों से एक पत्र भी नहीं आया। तबियत तो ठीक है न? तुम्हारे परिवार के और मुंशी के परिवार के सभी सदस्य स्वस्थ और प्रसन्न होंगे। तुम सबाके मेरा यथायोग्य।

-तुम्हारे काव्य-संग्रह की सभी कविताएं पढ़ गया। तब की राजनीति का परिवेश फिर आँखों के सामने आ गया। तब की साहित्यिक चेतना ने पुनः धर दबोचा। इन कविताओं का सामने आना अत्यंत आवश्यक था। इनका महत्व बहुत है।

नागार्जुन और शमशेर भी दिल्ली पहुंच गये होंगे। उनकी याद आती हैं पर पहुंच नहीं सकता।

सस्नेह तु.

बाँदा (उ.प्र.)

पिन-२१०००१

०२.०१.८९

डियर,

नये साल की शुभकामनाएं। आजकल मद्रास से बहू और पोते आये हुए हैं। ४/१ को इलाहाबाद जायेंगे-वहां से ९/१ को मद्रास वापस जायेंगे। दिनांक १२/१२ के पत्र का उत्तर इसीलिए विलम्ब से दे रहा हूं।

शरीर को साधे रखता हूं।

चहल-पहल है घर में।

क्या पढ़-लिख रहे हो?

दिल्ली भी खूब ठंडी होगी।

बांदा भी गल रहा है मारे जाड़े के।

इधर कुछ लिख नहीं सका। एकाग्र होने पर फिर लिखूंगा।

रामजी पाण्डेय ने महादेवी के बारे में मुझ से संस्मरण मांगे थे। लिख कर भेज चुका हूं। उनकी तब की फोटो भेजना है। तयार होने पर भेज दूंगा। मुंशी महाशय क्या कहीं खो गये है? कुछ पता नहीं चला। सबको यथायोग्य।

सस्नेह तु॰

केदारनाथ अग्रवाल

नयी दिल्ली-१८

२४.०८.८९

प्रिय केदार,

तुम्हारे ७ और १६/८ के कार्ड यथासमय मिले। विकासपुरी के ऊपर से बादल निकल गये, दिल्ली में पानी खूब बरसा, इतना कि जमुना खतरे के निशान से ऊपर बह रही है! ३० सितम्बर के भारत बंध (बंद) का मुकाबला करने के लिए सरकारी कर्मचारियों को आदेश है कि परिवहन की असुविधा का भय हो तो २९ को अपने दफ्तरों में सो रहे!- यह समाचार से सुना। आज बेटी आरती के साथ अमृतलाल नागर आये। मुंशी भी सपरिवार आ गये थे। पहले से से अच्छे हैं वृंदावनलाल वर्मा समारोह में अगले महीने फिर आयेंगे। कोई चीज वाणी प्रकाशन को दे रहे हैं। 'रूपतरंग' में नरेन्द्र शर्मा का चित्र दे कर उसके साथ उन पर लिखा संस्मरण देने का विचार है। राजकमल बोले 'आस्था और सौन्दर्य' छापना चाहते हैं मैंने हाँ कह दिया है। शेष कुशल।

सस्नेह रा.वि.

नयी दिल्ली-१८

२६.११.९०

प्रिय केदार,

कल विजय ने 'हिन्दू' में पढ़ कर सुनाया, तुम्हें म.प्र. सरकार का मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार मिला है। बहरे सुनने लगे, अंधे देखने लगे, हार्दिक बधाई।

एक प्रकाशक हमारे राजनीतिक निबंध छाप रहा हैं उस संकलन के लिए हमने एक नया निबंध लिखा है : 'स्वाधीनता आन्दोलन की गदर परम्परा और स्वदेशी।' इसमें गदर से ले कर गाँधी जी तक स्वदेशी आन्दोलन की रूप रेखा है तथा वर्तमान परिस्थितियों में उसकी प्रासंगिकता का विवेचन है। आरक्षणगत जातिवाद, संप्रदायवाद और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों पर भी कुछ बातें कहीं हैं। राजपाल एण्ड संस अमृतलाल नागर की रचनावाली छाप रहे हैं। इसकी भूमिका लिखनी हैं आधी लिख ली है। दो एक अच्छी पुस्तकें दर्शन और पुरातत्व की मिल गयीं। उन्हें पढ़ कर टिप्पणी लिख रहा हूं। उसे इतिहास-दर्शन पुस्तक में शामिल कर लूंगा। लगता है, राजीव गांधी के दबाव से सरकार की पंजबा संबंधी नीति बदली है।

शेष कुशल/सस्नेह

रामविलास

बाँदा ०१.१२.९०/पिन-२१०००१

-तुम्हारा एक पत्र १६/११ का और दूसरा २६/११ का मुझे मिला।

-तुम ठीक हो। काम कर रहे हो। यह जान कर बेहद खुशी हुई। मैं तो तुम्हारे मौंन से त्रस्त हो गया था। अब पत्र पाकर खिल उठा कि तुम न रुष्ट हो, न उदासीन। तुम्हें मेरा ध्यान सदैव बना रहता है। डियर, यही तो मेरे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। कि मैं तुम्हें पा सका और आदमी बन सका। न भ्रष्ट हो सका-न गर्त में गिर सका। तुम्हारी पुस्तकें समय-समय पर फिर-फिर यहां-वहां से पढ़ लिया करता हूं और भ्रम और भटकाव से बचा रहता हूं।

-पुरस्कार की तुम्हारी बधाई भी बेहद प्यारी रही और हृदय को झनझना गई। वैसे मुझे किसी सम्मान या पुरस्कार की लालसा कभी नहीं रही। मेरे पास तो तुम हो। यही मेरे

जीवन का लक्ष्य था-मैंने पा लिया है।

-हाँ, जो पुस्तकें तुम प्रकाशित करो उनकी एक-एक प्रति अवश्य भेजवाना। पढ़ूंगा ही। अपनी मानसिकता सुधारूंगा ही। सब को यथायोग्य। मुंशी को भी नमस्कार कहना।

सस्नेह तुम्हारा केदारनाथ अग्रवाल

बाँदा (उ.प्र.) पिन-२१०००१

दिनांक १४.०३.९१

प्रिय डाक्टर,

- २९/२ का पोस्ट कार्ड मिला।

- खाड़ी युद्ध खा गया आदमियों को। ध्वंस कर धरती का तेल क्षेत्र, अमरीका ने अपना नरसंहारी रूप प्रकट कर दिया और अब तो दुष्टों का सरदान बन कर विश्व को हथिया रहा है। मुझे तो शुरू से इसके शासनाध्यक्षों से घृणा रही हैं 'झाड़ी' ने हद कर दी। हवाई बमबारी से तबाही ला दी। उधर गोर्बाचोव पर आफत आये दिन मंडराती है। वाह रे वहां के उद्दंड निवासी जो सो.सं. छोड़ कर अपना स्वतंत्र राज्य बनाना चाहते हैं। भला कहां रह पायेंगे ये अकेले पड़ गये लोग? वह भी विदेशी पेट में एक-न-एक दिन समा जायेंगे।

पर द्वन्द्व तो निरंतर चलता ही रहेगा। कभी कम या ज्यादा क्या कोई भी सिद्धान्त न जी सकेगा-न जिला सकेगा? वाह रे आदमी। वाह रे पेट-पूजा- वाहरे व्यक्ति स्वातंत्र्य? राम बचाये हमको इस बीमारी से। जब तक जियें उन्नत मस्तक सत्यार्थी रह कर जियें।

ठीक हूँ। पर ढलता सूर्य हूं। देखो कब तक टिका रहता हूं। जीने की लालसा और संसार का अनुराग बरकरार है। सबको यथायोग्य।

सस्नेह केदार

प्रिय केदार,

पहली अप्रैल जिंदाबाद! अशोक त्रिपाठी ने लिखा है कि उस दिन वहा बांदा पहुंचेगे। उनके साथ कुछ लोग अवश्य आयेंगे। बांदा के मित्र भी इकट्ठे होंगे। आशा है। दिन अच्छा बीतेगा। हम उस दिन स्वाति के पास जयपुर में होंगे। और तुम्हें याद करके मिठाई खायेंगे।

२७/३ को चिन्मय यहां आ रहे हैं। ३१/३ को हम उनके साथ जायेंगे, दस बारह दिन में लौट आयेंगे। तुम्हारा १४/३ का कार्ड मिला। सोवियत संघ में गोर्बाचेव गणतंत्रों की आर्थिक स्वाधीनता का समर्थन करते हैं। उनकी अलग अलग कम्युनिस्ट पार्टियां बनाने का समर्थन करते हैं-सावियत पार्टी से पृथक रूस ने अपनी पार्टी बना ली है। सोवियत पार्टी अब अनेक कम्युनिस्ट पार्टियों का ढीला-ढाला संघ रह गयी है। इसी तरह सोवियत संघ गणतंत्रों का ढीला ढाला संघ है। जो चाहे रहे, जो चाहे न रहे। योजनाबद्ध विकास का सबसे ज्यादा विरोध गोर्बाचेव करते हैं २७वीं और २८वीं पार्टी कांग्रेसों में बोर्वाचेव की रिपोर्टों में जमीन आसमान का फर्क है। एक में समाजवादी है, दूसरी में उसकी शव यात्रा।

सस्नेह रामविलास

बाँदा/२५.०४.९१

प्रिय डाक्टर,

- मद्रास से मेरी बहू ज्योति और मेरा पोता समीर हवाई जहाज से बांदा आये।

- खजुराहो तक प्लेन में-फिर वहां से यहां तक भतीजे की कार में। १० दिन रहे। आज सबेरे ४ बजे की ट्रेन से दोनों कानपुर गये। वहां ज्योति की बड़ी बहन तिलक नगर में रहती है। परसों दोसा बनाया खिलाया, इडली भी खाई। सांभर भी बना। स्वाद से खाया। मौसम गरम है। बिजली कभी-कभी दगा दे जाती है। पर आ जाती है। कूलर जल गया था। सात दिन बाद कूलर बन कर लग गया। अब चलाऊंगा। वैसे मैं कम ही चलाता हूं। ठीक हूं।

इधर पहली अप्रैल को जन्म दिन मनाया गया। इलाहाबाद से दूधनाथ सिंह आ गये थे- प्रकाशक और डा॰ अशोक त्रिपाठी। रात ग्यारह बजे तक कार्यक्रम चला। ठीक रहा। मना किया था पर यहां के मित्र न माने। फिर १४/४ को दूसरा कार्यक्रम रहा। तीन सत्र में डा॰ कमला प्रसाद, डा॰ मोहन अवस्थी आये थे। पाठशाला में यह कार्यक्रम हुआ डा॰ द्विवेदी उरई से आये थे। चर्चा होती रही। हां यहां के जड़िया ने गीत शास्त्रीय स्वर में गाया- 'मैं घूमूंगा केन किनारे'। बड़ा बढ़िया गायन हुआ। मुग्ध हो गये लोग। मैं भी गदगद हो गया।

आशा है कि सपरिवार सकुशल होओगे। मुंशी की याद आती हैं कह देना।

तु॰ केदार

कवि केदार व डॉ॰ राम विलास शर्मा के पत्रों का विशिष्ट साहित्यिक महत्व है। यह पत्र केदार जी के व राम विलास जी के गहन अन्तरंग सम्बन्धों को बखूबी व्यक्त करते हैं।

अध्याय सप्तम्

उपसंहार एवं मूल्यांकन

उपसंहार

'अपारे काव्य संसारे कवि रेव प्रजापति' में सुभाषित कार ने कवि को क्रान्तिदृष्टा, परिभू, कहा है। बात वस्तुतः यह है कि साहित्यकार ने हृदय अनुभूतियों का रागात्मक अभिव्यंजन अपने साहित्य में करता है। वह सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज की अनेक घटनाओं से प्रभावित होता है, सामाजिक क्रिया-कलापों को सम्पादित करते हुये उसका परिचय अच्छे, बुरे लोगों से होता है। जिसका चित्रांकन वह अपनी रचनाओं में करता है, जो कि विविध रूपों में हमारे समक्ष आता है।

केदारनाथ अग्रवाल हिन्दी की प्रगतिवादी विचारधारा के श्रेष्ठ कवि हैं। उनकी कवितायें सामाजिक जिम्मेदारियों का तीव्रता से एहसास कराती हैं, कई अर्थों में वे महत्वपूर्ण एवं अविभाज्य युग सत्य है, प्रगतिशील धारा के कवि केदारनाथ अग्रवाल उत्तर प्रदेश के सबसे पिछड़े, पथरीले और अशिक्षित भीड़ के बीच अपने मनः परिवेश को अपने संकल्पों के अनुरूप गढ़ने एवं क्रान्ति की ललकार लगाने वाले शोषितों और दलितों को हिमालय सा दृढ़ और महान बनाने वाले तथा 'नींद के बादल' को दिन के लाल सबेरे के साथ जन-मन के बीच युग की गंगा प्रवाहित करने वाले कवि व लेखक केदार प्रगतिशील काव्य भवन के एक प्रमुख स्तम्भ हैं। उन्होंने हिन्दी कविता को न केवल जनसाधारण की ज़िन्दगी का प्रतिबिम्ब बनाया है वरन नई जिन्दगी के निर्माण का एक पैना औज़ार भी।

नागार्जुन ने केदार के लिये कहा है-

जन-गण-मन के जाग्रत शिल्पी
तुम धरती के पुत्र
गगन के तुम जमाता
नक्षत्र के स्वजन कुटम्बी
सगे बन्धु तुम, नद नदियों के।

सचमुच ही केदार जन-गण-मन के जागृत शिल्पी व धरती के वरद पुत्र हैं। केदार सहज़ हृदय के कवि हैं। वे अपनी काव्य यात्रा के आरम्भ से लेकर अन्त तक प्रगतिवादी विचारों से आप्लावित रहे हैं एवं मार्क्सवादी दर्शन को जीवन का सर्वश्रेष्ठ दर्शन मानते रहे

हैं। केदार जी को जीवन और जगत से गहरी आस्था है, उसमें प्रबल जिजीविषा है। उन्होंने जीवन के अक्षय कोष से अभिव्यक्तियों के रत्न निकाले हैं, उनका काव्य जीवन और जगत का काव्य है। लौकिकी और भौतिकी काव्य है, अलौकिकी और अभौतिकी नहीं, उनका साहित्य निरन्तर जगाने के लिये है, जीवन के सत्य को उद्घाटित करने के लिये ही उनका समस्त साहित्य विशेषतयाः काव्य नवीन युग का बोध कराता है लोक जीवन से निकट्य यथार्थ भेदिनी दृष्टि, और उनका महान जनवादी दृष्टिकोण उन्हें उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करता है। उनकी कविताएं जहां एक ओर युगीन जीवन का मुखर चित्र प्रस्तुत करती है, वैषम्य की छाती में तीक्ष्ण व्यंग्य के बाण भेदती है और क्रान्ति के स्वर को बुलन्द करती है। वहीं दूसरी ओर प्रणय प्रसंगों से लेकर मादक, मधुर एवं कोमल उद्भावनाओं से हृदय को भी गुदगुदाती है। ऐसी ही कतिपय विशिष्टताओं के कारण केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी कवियों में औरों से अलग दिखाई पड़ते हैं। कवि स्वयं कहते हैं- "मैं कविता मार्क्सवादी जीवन-दर्शन से प्रभावित होकर लिखता हूँ और इसलिये लिखता हूँ कि मुझे वह जीवन-दर्शन आदमी बनाता है।

समाज को प्रगतिपथ पर लाने के लिये सार्थक ढंग से लिखता हूँ यही मेरी मूल रचना धर्मिता है।"[1] कवि केदारनाथ अग्रवाल की कविता का मूल स्वर- संघर्ष का है। पूँजीवाद, साम्राज्यवाद की दीवार को ध्वस्त करके, कवि समाजवाद की पुष्ट नींव रखना चाहता है। इस परिप्रेक्ष्य में बालकृष्ण पाण्डेय का यह अभिमत उल्लेखनीय है- "पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, शोषण और दमन से दबी मानवता के आर्तनाद से उनकी आत्मा कराह उठती है। तब केदारबाबू उस समाजवाद की कल्पना साकार करने को सक्रिय हो जाते हैं, जहां शोषित और शोषक न होवे वे ऐसे समाजवाद की तलाश करते हैं, जहां मुट्ठीभर शक्तिशाली लोग स्वार्थी उद्देश्यों के लिये सामाजिक सम्पदा को हथियाने की कुचेष्टा करते हैं।"[2] केदार हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार है, प्रगतिवादी कवि के रूप में उनका योगदान हिन्दी काव्य के लिये महत्वपूर्ण उपलब्धि है। वे हिन्दी कविता के प्रमुख व्यंगकार हैं, व्यंग्य की विभिन्न शैलियों को अपनाकर उन्होंने सामाजिक एवं आर्थिक पथ, भ्रष्ट नेताओं आदि पर करारा

१. सम्मान- केदारनाथ अग्रवाल, सं. डॉ. अशोक त्रिपाठी, पृ.सं. ६

२. समीक्षायें एवं मूल्यांकन- डॉ. रामचन्द्र मालवीय, पृ.सं. २०

व्यंग्य किया है। केदार में वस्तुतः प्रगतिशील और क्रान्तिकारी सत्याग्रह है। प्रत्यक्षता है, अभिद्येयता है, बनाव या बुनावट रहित, हकीकत से सीधी मुलाकात है और चूँकि इस सामाजिक यथार्थ में सच्चाई है, बहुजन हित इसमें छिपा हुआ है, सम्पन्नों की सभ्यता और उनको सहलाने वाले बनाव, श्रंगार, व्यक्तिग्रस्तता और हावभाव या कला का तिरस्कार है, वर्ग शत्रु के प्रति प्रतिशोध और तिलमिलाऊ तमाचा है। केदार जनकवि हैं, बल्कि स्वयं जन ही है। उन्हें देखकर जन का बोध होता है, वह साधनहीन, सुखहीन, पदहीन, जनसाधारण के रूप का बाहक है और ऐसा व्यक्ति स्वयं अपनी प्रतिष्ठा ख्याति या कुछ साधन जुट जाने, इनाम-इकराम पा लेने से संतुष्ट नहीं होता क्यों जनदुख, जन-विक्षोभ को कविता में बुनने वाला रचनाकार या आन्दोलक उस सिद्ध परम्परा से परिचित है जो प्रतिष्ठा को सत्य कथन में बाधक मानते हैं।

रचना प्रक्रिया में कवि के व्यक्तित्व का सर्वाधिक मूल्य है, क्योंकि कवि व्यक्तित्व के अनुसार ही किसी रचना का स्वरूप निर्धारण होता है। साहित्यकार के इस व्यक्तित्व का महत्व आँकते हुये नामवर सिंह ने लिखा है- "साहित्य के रूप में समाज की जो छाया प्रगट होती है, वह लेखक के व्यक्तित्व के माध्यम से ही आती है। साहित्य के निर्माण में इस बीच की, लेखक के व्यक्तित्व का बहुत महत्व है और इस महत्व की महत्ता इस बात में है कि एक ओर इसका सम्बद्ध समाज से होता है, तो दूसरी ओर साहित्य से। साहित्य रचना की प्रक्रिया में समाज-लेखक और साहित्य परस्पर एक दूसरे को इस तरह प्रभावित करते हैं कि इसमें से प्रत्येक क्रमशः परिवर्तित और विकसित होता रहता है- समाज से लेखक, लेखक से साहित्य और साहित्य से पुनः समाज।"[१] द्वन्दात्मक भौतिकवाद एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद दोनों को ही केदार ने अपने काव्य में स्थान दिया। वे मार्क्स के अनुसार ही नया समाज, नई अर्थव्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था के हिमायती हैं। इसका संकेत कवि ने अपने काव्य में दिया है।

मगन मस्त चोला, / बनाओ - बनाओ

दियों की दिवाला, / हियो में जलाओ।[२]

---

१. इतिहास और आलोचना- नामवर सिंह, पृ.- ४६

२. समीक्षाएं एवं मूल्यांकन, डॉ. रामचन्द्र मालवीय, पृ.सं.-९०

कवि में गहरी जिजीविषा है। उसे धरती में आगाध प्रेम है। इस वसुधा को छोड़कर वह कहीं जाना नहीं चाहता है। कवि को महाकाल बुलाता है वह कहता है- इस ज़मीन को छोड़कर चलो-चलें किसी और दुनियाँ में किन्तु कवि में काल को भी धक्का देकर अपने पास से भगाने का विकट साहस है। वह काल से तनिक भी नहीं घबराता। कवि कहता है कि काल को थकियाने के लिये उसका एक बाल की काफी है।

खट - खुट
खट - खुट
कर रहा है काल
मेरे कान के पास
ज़मीन छोड़कर
जल्द चलने के लिये
धक्का दे रहा है
उसे
मेरा एक बाल
मुझसे अलग रहने के लिये
तमाम उम्र
इन्तज़ार में खड़ा रहने के लिये।[१]

निष्कर्ष और समापन

प्रगतिवाद कविता बीसवीं शताब्दी के भयावह यथार्थ की कविता है। बीसवीं शताब्दी का आरम्भ ही विश्व में युद्धों से हुआ। एक ओर महान शक्तियाँ थीं जो नये-नये वैज्ञानिक अविष्कार कर रहीं थीं। उनका प्रयोग छोटे-छोटे राष्ट्रों को नष्ट करने में किया जा रहा था। दूसरी ओर साम्राज्यवाद भी अपने पंजे तेजी से फैला रहा था। देश की जनता साम्राज्यवाद के घिनौने कार्यकलापों से तंग आ चुकी थीं। अतः विश्व के अधिकांश गुलाम देश आजादी के लिये संघर्ष कर रहे थे। इस तरह बीसवीं शताब्दी एक ओर वैज्ञानिक आविष्कारों के नये-

१. आग का आइना, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.सं.- ९०

नये प्रयोगों से समृद्ध हो रही थी तो दूसरी ओर साम्राज्यवाद से संघर्ष कर रही थी। कुल मिलाकर विश्व की जनता इन दोनों से ही परेशान थी। दो विश्व युद्धों ने अपनी यह भयावहता स्पष्ट कर दी। प्रगतिशील कविता विश्व समाज की यह भयावहता देख रही थी और इसलिये अपने युग के लिये चिन्तित थी। प्रगतिवादी कवि समाज के लिये चिन्तित थे।

केदारनाथ अग्रवाल की कविता में समाज और मनुष्य की चिन्ता व्यक्त की गयी है। एक प्रगतिवादी कवि होने के नाते केदार समाज के विघटन और मानव मूल्यों के पतन पर गहरी चिन्ता व्यक्त करते हैं। यह समाज विविधतापूर्ण और बहुआयामी है। समाज के बहुआयामी स्वरूप को एक सुन्दर समाज में गढ़ने का प्रयास और मानव जीवन के संघर्ष को स्पष्ट करने में ही केदार सौन्दर्य बोध की सृष्टि करते हैं। यही केदार के सौन्दर्यबोध का प्रमुख आधार है। आज समाज में संघर्ष का जो स्वरूप देखने को मिलता है वह राजनीति और अर्थनीति युक्त है। इस कारण संघर्ष और तीव्र हो जाता है। कवि अपनी परम्परा और परिवेश से बहुत कुछ ग्रहण करता है तथा उन्हें तराशकर नये समाज़ की रचना करना चाहता है। इसी नये समाज में अपनी पहचान बनाना चाहता है। केदार का सौन्दर्य-बोध समाज का सौन्दर्य-बोध है।

आम मज़दूर का जीवन-संघर्ष का जीवन है। केदार की कविता का सौन्दर्य कड़ी धूप में संघर्ष करने वाले आदमी का सौन्दर्य है। "आदमी" शीर्षक कविता इसी ओर संकेत करती है-

"भरा ठेला खींचता हूँ/ हाथ में गट्ठे पड़े हैं
पाँव में ठट्ठे पड़े हैं/और इस पर तर पसीने से अकेला खींचता हूँ"

केदार की कविता में किसानों, मज़दूरों के संघर्ष की कहानी है। शोषण, अत्याचार, अन्याय आदि से परेशान आम आदमी का जीवन केदार की कविता का विषय बनता है। उनकी कविता में गाँव का किसान, शहर का श्रमिक है तो दूसरी ओर महाजन भी है और पूंजीपति भी। एक तरफ शोषण हो रहा है और दूसरी तरफ शोषण सहा भी जा रहा है। उनकी कविता में मालिक भी है और नौकर भी, शासक भी है और शासित भी। गाँव में आया थानेदार भी है तो गाँव में ही बिना कसूर पकड़ा गया कोई मज़दूर भी। राजनीति और पूंजी की आपसी साँठ-गाँठ से उत्पन्न समस्याओं को केदार ने अपनी कविताओं में उठाया है।

आज दिल्ली सिर्फ नेताओं के लिये ही एक संकेत बनकर रह गयी है। आज का जीवन बिना राजनेताओं के सम्पर्क में आये गुज़ारना संभव नहीं रह गया। इसलिये केदार संसद के नेताओं को देवी-देवताओं की संज्ञा देते हैं। 'कहे केदार खरी-खरी' काव्य संग्रह का पूरा राजनीतिक कविताओं का संग्रह है। इसके अलावा भी प्रायः सभी काव्य-संग्रहों में केदार ने राजनीतिक समस्याओं को उठाया है। केदार आम-आदमी के पक्षधर कवि हैं। आज का आदमी काँच के समान कमज़ोर हो चुका है जो एक ही ठोकर में टूटकर बिखर जाता है। केदार अपनी कविता में इस आदमी का वर्णन करते हैं-

"अब भी बोलता है/करकते ओठों से/काँच-काँच का टूटा आदमी।
न टूटे इन्सान की तरह/जीवन जयी बोल/दर्द की दुनिया में।
गिरा/पड़ा और बिखरा। (अपूर्वा, पृ० ७०)

केदार श्रमिकों और मानवता के कवि हैं। जहाँ भी उन्हें अमानवीयता और शोषण दिखायी देता है, वहाँ वे इस सब पर कविता के द्वारा प्रहार करते हैं। एक ओर जहाँ वे अन्याय करने वालों, शोषको, अत्याचारों पर एकदम कठोर हो उठते हैं वहीं दूसरी ओर दुखियों के दुःख देखकर द्रवित हो जाते हैं। वे सच्चे अर्थों में जनता के कवि हैं। उस जनता के जो दुखी हैं अन्याय सह रही है। केदार की कविता में शोषित जनता का चित्रण मिलता है तो शोषण करने वालों का भी। वे इस दोनों के द्वन्द्व को कविता के द्वारा उज़ागर कर देते हैं। अन्याय और अत्याचार के विरोध में वे हमेशा खड़े दिखायी देते हैं। इसलिये वे हमेशा लिखने की बात कहते हैं, क्योंकि उनका लिखना वास्तव में सत्य लिखना है। वे जो देखते हैं उसी को कविता में लिखते हैं-

"लिखूँगा मैं/फिर-पिर वही/काव्य की कही/सो फी सदी सही,
नहीं....नहीं...../असत्य की कही नहीं" (बोले बोल अबोल, पू० २२)

केदार देश की जनता की मुक्ति के लिये काव्य रचना करते हैं। उनका काव्य देश की जनता के लिये संघर्ष की प्रेरणा बनकर आता है और इस प्रकार उनके काव्य का संघर्ष देश की शोषित, उपेक्षित जनता का संघर्ष बन जाता है। इस संघर्ष में देश की जनता की मुक्ति का स्वर सुनायी देता है। यह स्वर समाज में हो रहे तीव्रता के साथ परिवर्तन के पक्ष में भी होता है और विपक्ष में भी। जहाँ सामाजिक सांस्कृतिक स्तर पर समाज अपनी पहचान

खोने लगता, वहीं यह स्वर कड़वाहट से भर जाता है और जहाँ रूढ़िवादी परम्परा का त्याग कर समाज विकास के मार्ग पर चलता दिखाई देता है वहां सहानुभूति का स्वर सुनायी देता है। एक प्रकार से केदार की कविता समाज में परिवर्तन चाहती है। परिवर्तन का स्वर समाज में एक बेहतर परिवेश की माँग करता दिखाई देता है। यह माँग तभी पूरी हो सकती है जब उसमें देश भर के सभी नौज़वान आकर एक स्वर में इस परिवर्तन की माँग में अपना स्वर मिलायेंगे। इसलिये केदार की कविता में परिवर्तन की माँग करने वाले पात्रों में गाँव का किसान, शहर का श्रमिक, कॉलेज का छात्र, अध्यापक, क्लर्क आदि आते हैं।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि समाज में अग्रणी रूप से वही पहचान बना पाते हैं जो जीवन में संघर्ष करते हैं। इतिहास के पन्ने यदि पलटाये जायें तो हमें पता चलता है कि जो महापुरुष हुये हैं उन्होंने अपने जीवन में कठोर संघर्ष किया है। यदि राम ने चौदह वर्षों का वनवास न झोला होता तो शायद वे राम न होते। केदार इसी पहचान की बात करते हैं। इसी संघर्ष के द्वारा इतिहास को दुहराने की बात करते हैं। संवेदना, ज्ञान, तर्क और दर्शन के द्वारा समाज को बेहतर परिवेश का मार्ग दिखाना यही आधुनिकता है, यही प्रगतिवादिता है और जहाँ तक केदार की बात है तो वे इस कसौटी पर भी खरे उतरते हैं उनकी कविता समाज को एक बेहकर परिवेश का मार्ग दिखाती है। अपनी कविता में केदार मिथक, प्रतीक, विश्व के द्वारा संकेत रूप में जीवन की उच्चता की ओर इशारा करते हैं। केदार इसके लिये परम्परा से भी कुछ ग्रहण करते हैं और आधुनिकता से भी। केदार समाज में जब मानव-मूल्यों का विघटित रूप देखते हैं तो दुःखी होते हैं। इसलिये केदार देश में समाजवाद लाने की बात करते हैं।

आजादी के पूर्व देश के नेताओं ने आज़ाद भारत का जो स्वप्न देखा था, आज़ादी मिलते ही देश दो टुकड़ों में बट गया। गाँधी जी की हत्या कर दी गयी। देश को आज़ादी तो मिली पर उस आज़ादी का उपभोग सत्ता से जुड़े नेताओं और नेताओं से सम्बन्धित पूँजीपतियों ने ही किया। इस प्रकार देश की अधिकांश जनता एक विदेशी सत्ता से मुक्त होकर स्वयं की सरकार की गुलामी में फँस गयी। आजादी के पूर्व देश के पूँजीपतियों शोषकों पर विदेशी सत्ता का एक अंकुश था जो आज़ादी के साथ ही उठ गया। केदार अपनी कविताओं में देश की गरीब जनता की दोहरी मार को व्यक्त करते हैं। एक ओर शोषक वर्ग है ओर दूसरी ओर

नेता प्रशासनिक अधिकारी हैं। सब के सब जनता का शोषण कर रहे हैं। केदार गाँव के थाने की बात करते हैं जहाँ सिपाही जनता को परेशान किये हुये हैं। जब सिपाही इस तरह का भ्रष्टाचार मचाये हैं तब थाने की बात क्या कही जा सकती है-

"गाँवों में थाने/और थाने में सिपाही है।

थानों के जियायें/राजतंत्र से सिपाही है।

जनता को मिटाये/मार-तंत्र से सिपाही है।" (अपूर्वा, पृ० ६१)

केदार की कविता किसान, मज़दूर वर्ग की कविता है, समाज के पतन की ओर इशारा करने वाली कविता है। आज़ादी के पहले अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ विद्रोह करने वाली कविता, आज़ादी के बाद देश के नेताओं का विरोध करने मे भी नहीं चूकती। कवि की दृष्टि गाँव के किसानों का अवलोकन कभी करती है और सामन्त-ज़मीदारों का भी, साथ शहर के पूंजीशाहों का भी और मज़दूरों का भी। केदार राजनीतिक कविताओं में भी व्यंग्य से काम लेते हैं। वे अपने व्यंग्य के द्वारा सत्ता से जुड़े लोगों की जमकर खिंचाई करते हैं। इसी प्रकार धर्म के बाह्याडाम्बर पर भी प्रहार करते हैं। पूँजीपतियों, सामन्तों का धार्मिक यात्रा पर निकल पड़ना साफ ज़ाहिर करता है कि ये अत्याचारी रहे होंगे जो ज़िन्दगी भर अत्याचार शोषण करते रहे हैं अब अपने गुनाहों को धोने तीर्थ यात्रा पर निकल पड़ते हैं। इससे बड़ा व्यंग्य क्या होगा। इसी प्रकार आजादी की दुहाई देने वाली ही अगर मालिकाना हक जमाने लगे तो देश की जनता कहाँ जायेगी और देश में हो यही रहा है।

केदार अपनी काव्य-यात्रा में कई जगह कवि और लेखकों के उद्देश्य को स्पष्ट करते हैं क्योंकि कवि और लेखक अपना व्यक्तित्व भूलते जा रहे हैं। लेखक और कवि को वे समाज का वह वर्ग दिखाते हैं जो समाज में उपेक्षित और शोषित हैं क्योंकि कवि समाज में उच्च वर्ग का वर्चस्व होने के कारण, हर क्षेत्र में उसका साम्राज्य फैलता जा रहा है। वह चाहे समाज का सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश हो या साहित्यिक परिवेश हो। केदार लोक-संस्कृति का स्वरूप अपनी कविताओं में स्पष्ट करते हैं और इस स्वरूप को जन-समुदाय के बीच रखने का प्रयास करते हैं। केदार एक ओर सामाजिक परिवेश को कविता में स्थान देते हैं, जिसमें राजनीति, अर्थनीति आदि सभी आ जाते हैं और दूसरी ओर प्रकृति के मनोरंजन दृश्य भी अपनी कविता में उतार देते हैं जिसमें नदी, पहाड़, पेड़ पौधे आदि सभी का वर्णन

करते हैं। वहीं उनकी कविता में प्रेम का भी विस्तृत रूप देखने को मिलता है। यह प्रेम प्रकृति से भी है, पारिवारिक जीवन से भी है, समाज के उपेक्षित दलित समाज में भी है। केदार की कविता प्रेम को विस्तृत फलक में देखती है।

केदार समाज के हर क्षेत्र का जायज़ा लेते हैं। इस प्रकार के प्रगतिशील काव्यधारा के कवि होने के कारण प्रगतिशीलता को अपनी कविता में महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। केदार की कविता सामाजिक धरातल पर उतरती है जहाँ वे सामाजिक परिवेश का वर्णन अपनी कविता में करते हैं, वहीं राष्ट्रीय समस्याओं को भी उठाते हैं। कहीं-कहीं तो वे अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को भी अपनी कविता का विषय बनाते हैं। इस प्रकार वे 'वसुधैव कुटुम्बकम' वाली उक्ति को चरितार्थ करते हैं।

केदार कविता के बाह्य और आन्तरिक दोनों अन्तर्द्वन्द्वों को सफलतापूर्वक अपनी कविता में स्पष्ट करते हैं। वस्तु और रूप का द्वन्द्व कविता की एक बुनियादी समस्या रहती है। इन्हीं दो तत्वों को लेकर संघर्ष चलता रहता है। इस संघर्ष को केदार समाप्त करना चाहते हैं क्योंकि वास्तव में रूप और वस्तु कविता के अलग-अलग तत्व नहीं वरन एक ही सिक्के के दो पहलू है। जो एक दूसरे पर आश्रित है। किसी भी कला के लिये वह चाहे साहित्य हो या अन्य कलायें हों, वस्तु और रूप दोनों आवश्यक होते हैं।

केदार की विशेषता यह है कि इन्होंने कविता को यथार्थवादी धरातल से जोड़ने का प्रयास किया है। इस प्रकार केदार सौन्दर्य-बोध को यथार्थ से जोड़ने का प्रयास क़रते हैं। कविता को जनवादी यथार्थ परिवेश देकर, कविता की नई संभावनाओं की खोज कवि ने की है। प्रगतिवादी कवियों ने मुक्ति-बोध नागार्जुन, त्रिलोच भी इन्हीं की परम्परा में आते हैं, जो कविता को सामाजिक सांस्कृतिक यथार्थवादी परम्परा से जोड़ने का प्रयास करते हैं।

केदार की आरम्भिक कविताओं में छायावाद का प्रभाव होने के कारण उनका आधार प्रेम और प्रणय रहा है। प्रेम और प्रणय का स्वरूप उनकी कविता में विस्तृत रूप से आया है। बाद की कविताओं में भी प्रेम का यही रूप दिखायी देता है। केदार की सृष्टि नारी और प्रेम के सम्बन्ध में शरीर एवं मांसल रही है उनका प्रथम काव्य संकलन 'नींद के बादल' प्रेम और नारी के मुक्त मांसल रूप का खुला वर्णन है। जिस समय केदार ने अपनी काव्य-यात्रा आरम्भ की थी वह समय छायावाद के सूक्ष्म अशरीरी नारियों के चित्रण का समय था

जिसका केदार ने खुला विरोध किया और उसके स्थान पर वासनात्मक दैहिक प्रेम को स्वीकार किया है। यह प्रेम उन्हें सारी सृष्टि में दिखाई देता है-

"तरु में प्रेम विकार/लता में/पुलक वासना भार रहे,

हम तुम दोनों को मद विह्वल/चुम्बन का अधिकार रहे।

(फूल नहीं रंग बोलते हैं/ पृ० १२२)

केदार प्रेम और प्रणय की जहां चर्चा करते हैं वहां वे सारे नियमों का विरोध करते हुये दिखायी देते हैं। प्रेम को स्वच्छन्द रूप में देखते हैं। बंधन उन्हें स्वीकार्य नहीं है। दूसरी ओर वे मिलन को अधिक महत्व देते हैं, वियोग में उन्हें कहीं भी श्रेष्ठता दिखाई नहीं देती-

"प्रेम हरिण सुकुमार/नियम बाधित अनुदार

मिलन प्रणय की पूर्ति/विषम वियोग अपूर्ति

नियम के पिंजड़े में पड़क/प्रेम का कोकिल है अनमन कर

खोल दो द्वार खोल दो द्वार/सुनावें फिर वह मधुर रस।"

(नींद के बादल/पृ० ३)

केदार की कविता में जहां प्रेम और प्रणय की कविताएं मिलती हैं वहीं इसी से जुड़ी प्रकृति की कविताएं भी हैं। प्रकृति का चित्रण करते समय उन्हें अलग से प्राकृतिक दृश्यों को नहीं खोजना पड़ता वरन् अपनी सामान्य कविताओं में भी प्रकृति का रंग भर देते हैं। पेड़-पौधे, हवा, नदी, पहाड़, वन-वनस्पति, सूरज-चाँद, तारे आदि सभी उनकी कविता में आ जाते हैं। हवा का एक दृश्य देखिये-

चढ़ी पेड़ महुआ/थपाथप मचाया/गिरी धम्म से/फिर चढ़ी आम ऊपर उसे भी झकोा/ किया कान में 'कू'/उतर कर भगी में हरे खेत पहुंची- वहाँ गेहुँओं में लहर खूब मारी/पहर दो पहर क्या अनेकों पहर/इसी में रही में।

केदार प्रकृति के अनेकों चित्रों को अपनी कविता में उतारते हैं। फागुन, बसन्त आदि ऋतुओं का जो चित्रण केदार करते हैं वह देखते ही बनता है। प्रकृति चित्रण में केदार ने सौन्दर्य के उन समस्त पहलुओं को संयोजित किया है जो मानव जीवन को सहज उल्लास प्रदान करते हैं। मनुष्य जीवन के प्रसन्न क्षणों को दे प्रकृति के माध्यम से रेखांकित करते हैं। प्रकृति केदार के काव्य में सजीव रूप में आती है। प्रकृति के माध्यम से केदार मनुष्य जीवन

को एक नई चेतना देने का कार्य करते हैं। केदार की कविता में प्रकृति सजीव रूप में आ जाती है।

केदार मार्क्सवादी कवि होने के कारण समाज में वर्षों से चले आ रहे वर्ग संघर्ष को अपनी कविता का आधार बनाते हैं। एक ओर सामन्ती सभ्यता और पूँजीपति वर्ग है जो कि गरीब, कमज़ोर उपेक्षित वर्ग का शोषण करता है और दूसरी ओर शोषित वर्ग है जो अपने श्रम के द्वारा समाज को विकास की ओर से ले जाता है। समाज में होने वाले सारे उत्पादनों को वह अपने पसीने से पैदा करता है पर बदले में वह उन्हीं का उपयोग नहीं कर पाता। यह विडम्बना ही है जो हजारों बोरे अनाज पैदा करता है वही रात को भूखा सोता है। जो सैकड़ों मीटर कपड़ा बनाता है। वही उघड़ा-नंगा है। केदार समाज की इस व्यवस्था में उसी शोषित उपेक्षित वर्ग के साथ खड़े दिखाई देते हैं। केदार इस शोषण चक्र के गहरे अंधियारे को अपनी काव्य कला के द्वारा मिटा देना चाहते हैं-

"शोषण की प्रत्येक प्रथा का/अंधियार गहन मिटाये जा
नये जन्म का नया उजाला/धरती पर बरसाये जा।"

(गुलमेंहदी, पृ० १६१)

केदार वर्ग-संघर्ष में पूंजीपतियों का जमकर विरोध करते हैं, क्योंकि उनके सारे भोग विलास गरीबों के श्रम पर ही चलते हैं। श्रमजीवी हमेशा ईमानदारी के साथ श्रम करता है और यही शिक्षा अपने बच्चों को भी देता है जबकि पूंजीपति शोषण की शिक्षा ही अपने बच्चे को दे पाता है केदार इस शोषण का अन्त कर देना चाहते हैं।

केदार की कविता में प्रेम एवं प्रणय, प्रकृति तथा समाज में फैले वर्ग-संघर्ष के अलावा समाज के अन्य पक्षों का भी स्वरूप मिलता है। केदार समाज के प्रत्येक कोने का जायजा लेते हैं और उसे अपनी कविता में स्थान देते हैं। उनकी कविता में समाज का समग्र रूप दिखाई देता है। यह सब कुछ उनकी कविता में उनके अनुभव की उपज होता है। वे पहले जो स्वयं देखते हैं, अनुभव करते हैं तब उसे कविता में स्थान देते हैं। अतः कहा जा सकता है कि केदार की कविता उनके अनुभव की उपज है। इसलिये उनकी कविता समाज का समग्र आकलन करती है और समाज की अन्य समस्याएं भी केदार की कविता में आ जाती हैं।

इस प्रकार उपरोक्त, सम्यक विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि केदारनाथ अग्रवाल हिन्दी के यशस्वी साहित्यकार रहे हैं। उनकी कवितायें, निबन्ध कहानी, संस्मरण, उपन्यास आदि समस्त साहित्य में मानवतावादी दृष्टिकोण के दर्शन होते हैं। केदारजी की जीवन के विविध पक्षों पर गहरी पैठ रखते हें। शोषित एवं पीड़ित वर्ग में कवि को गहरी हमदर्दी है। केदार, समाज में, समता समानता लाना चाहते हैं। पूरी मानवता में जय को मंगलगान गाना चाहते हैं। केदार आने वलो समय में समाज की इस व्यवस्था को बदलना चाहते हैं और इस व्यवस्था को श्रमिक ही अपने संघर्ष से बदलकर नई व्यवस्था लाना चाहते हैं-

"विश्वास है मुझे। परिस्थितियां अवश्य बदलेंगी,
श्रमशील जनता अवश्य संघर्ष करेगी।
ध्वंश से संसार को बचायेगी। तब आदमी लगते आदमी थी
आदमी बनेंगे। तब यथार्थ का संसार
चेतना का श्रेष्ठ संसार बनेगा। प्रेम और सौन्दर्य का
जहाँ राज्य रहेगा।।।[1]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि केदारनाथ अग्रवाल हिन्दी के शीर्ष साहित्यकार, हिन्दी के व्यापक महत्व को प्रतिपादित करने में उनके योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। साहित्यिक मूल्यों के प्रति जवाबदेही भी इनके साहित्य में बखूबी देखी जा सकती है। बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी साहित्यकार का सहज सरल जीवन प्रशंसनीय हैं। साहित्य को प्रेम, प्रकृति व मानव से संयुक्त करने का प्रयास उत्कृष्ट है।

आत्मगंध, केदारनाथ अग्रवाल, पृ.- १७६

संदर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

केदारनाथ अग्रवाल की काव्य एवं अन्य कृतियाँ

१. काव्य संकलन

१. नींद के बादल-हिन्दी ज्ञान मंदिर लिंक बम्बई प्रथम

२. युग की गंगा हिन्दी ज्ञान मंदिर १९४७

३. लोक और आलोक, लहर प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण

४. फूल नहीं रंग बोलते, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण

५. आग का आईना, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९७०

६. देश-देश की कवितायें, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९७०

७. बम्बई का रक्त स्नान, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९७५

८. पंख और पतवार, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९७९

९. हे मेरी तुम, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९८१

१०. मार प्यार की थापे, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९८१

११. कहें केदार खरी-खरी, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९८३

१२. अपूर्वा, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९८४

१३. जमुन जल तुम, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९८४

१४. बोले-बोल अबोल, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९८५

१५. जो शिलायें तोड़ते हैं, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९८६

१६. आत्म गंध परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९८८

१७. खुली-आँखें, खुली डैने, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९९०

१८. पुष्पदीप, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९९३

१९. पुष्पदीप, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९९४

२०. बसन्त में प्रसन्न छुपी पृथ्वी, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९९६

२१. कुहकी कोयल-खड़े पेड़ की देह, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९९७

२. उपन्यास

१. पतिया, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९८५

२. बैल बाजी मार ले गये, अप्रकाशित व अपूर्ण

३. निबन्ध

१. समय-समय पर, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९७०

२. विचार बोध, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९८०

३. विवेक विवेचन, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९८१

४. यात्रा संस्मरण

१. बस्ती खिले गुलाबों की, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९७५

२. देश-देश की कवितायें, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष १९७०

सहायक ग्रन्थ

१. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प-कैलाश बाजपेयी आत्माराम ए. सन्स दिल्ली प्रथम संस्करण वर्ष १९६३

२. आधुनिक भारतीय कविता में बिम्ब विकास- डॉ. केदार नाथ सिंह, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण १९७१

३. आधुनिक हिन्दी काव्य में अप्रस्तुत विधान, डॉ. नरेन्द्र मोहन नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र.सं. १९७१

४. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना-डॉ. पुत्तू लाल शुक्ला, लखनऊ

५. अशुद्ध काव्य की संस्तुति में, डॉ. विजेन्द्र नारायण सिंह, परिमल प्रकाशन वर्ष १९८४

६. समकालीन काव्य में प्रगतिवादी-चेतना एस. रंगैया प्रथम संस्करण वर्ष १९८६

७. प्रतीक और प्रतीकवादी काव्य मूल्य-आधुनिक संदर्भ में डॉ. प्रभात प्र.सं. फरवरी १९८७

८. केदार नाथ अग्रवाल-सं. अजय तिवारी परिमल प्र. वर्ष १९८६

९. श्रम का सूरज सं.-डॉ. रामविलास शर्मा वर्ष १९८६

१०. कवि केदार-व्योम शेखर त्रिपाठी, द्विवेदी लोकलोक प्रकाशन, गाजियाबाद, प्र.सं. वर्ष १९८६

११. समीक्षायें एवं मूल्यांकन-केदारनाथ अग्रवाल, रामचन्द्र मालवीय, शब्द पीठ, इलाहाबाद, प्र.सं. १९८०

१२. मोओत्से-तुंग चुनी हुई कृतियाँ : अनु. रामआसरे, तीसरा ग्रन्थ विचार प्रकाशन कानपुर प्रथम संस्करण-१९८५

१३. मार्क्सवाद और कविता : जार्ज थाम्सन (अनु. रामनिहाल गंजन) चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण- १९९५

१४. मार्कसवादी साहितय चिन्तन : इतिहास तथा सिद्धान्त : जार्ज थाम्सन, पीपुल्स लिटरेसी, दिल्ली प्रथम हिन्दी संस्करण-१९८४

१५. मानवीय सारतत्त्व : जार्ज थाम्सन, पीपुल्स लिटरेसी, दिल्ली, प्रथम हिन्दी संस्करण-१९८४

१६. मानव सभ्यता का विकास : डॉ. रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

१७. राग-विराग : सं. नेमिचन्द्र जैन, पाँचवा खण्ड, राजकमल प्रकाशन, पेपरबैक्स-१९८५

१८. राग-विराग : सं. रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, षष्टम संस्करण, १९८०

१९. हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना : जनेश्वर वर्मा, ग्रन्थम, कानपुर प्रथम संस्करण १९७४

२०. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा काशी, अठारहवाँ संस्करण

२१. हिन्दी साहित्य की प्रगतिशील आलोचना : सं. श्याम कश्यप कमला प्रसाद, खगेन्द्र ठाकुर राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली पहला संस्करण, १९८६

२२. श्रम का सौन्दर्य शास्त्र और केदारनाथ अग्रवाल का काव्य : मधुछन्दा परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण-१९९२

२३. नयी कविता : डॉ. कान्ति कुमार मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल प्र.सं. १९७२

२४. नयी कविता : नये कवि- विशम्भर नाथ मानव लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद द्वितीय संस्करण १९६८

२५. परप्रेक्ष्य-डॉ. रणजीत, राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर १९६९
२६. प्रगतिवादी काव्य साहित्य-डॉ. कृष्णलाल हंस मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल १९७१
२७. ये सपने- ये प्रेत डॉ. रणजीत नवयुग ग्रंथ कटीर बीकानेर राजस्थान प्र.सं. १९६४
२८. हिन्दी कविता अधुनिक आयाम-डॉ. रामदरश मिश्र वाणी प्रकाशन दिल्ली प्र.सं. १९७८
२९. हिन्दी की प्रगति शील कविता - डॉ. रणजीत हिन्दी साहित्य संसार प्रगतिशील प्रकाशन दिल्ली प्र.सं. १९७१
३०. कृष्णलाल हंस-प्रगतिवादी काव्य साहित्य, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल १९७१
३१. को.अ. अंतोनोवा-भारत का इतिहास, प्रगति प्रकाशन मास्को, १९८४
३२. गोविन्द द्विवेदी-नये हिन्दी काव्य में यथार्थ के विविध रूपों का अनुशीलन (डी. लिट. शोध प्रबन्ध, हीरसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर)
३३. जैनेन्द्र कुमार-अप्रस्तुत प्रश्न, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली
३४. डॉ. जीवन सिंह-कविता की लोक प्रकृति, अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद
३५. चन्द्रकांत देवताले-मुक्तिबोध क चिन्तन और काव्य का मूल्यांकन, शोध प्रबंध सागर विश्वविद्यालय
३६. डॉ. नगेन्द्र-आस्था के चरण, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली १९७४
३७. नामवर सिंह-वाद विवाद संवाद, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, १९८९
३८. नामवर सिंह-इतिहास और आलोचना, नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद १९६२
३९. परमानन्द श्रीवास्तव-शब्द और मनुष्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली १९८८
४०. रामकीर्ति शुक्ल-सौन्दर्य का तात्पर्य, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, द्वितीय सं. १९८२

पत्रिकायें

१. पहल - अंक-१३, ३०, ई. १९८६
२. अतएव 'प्रवेशांक' जुलाई-सितम्बर-अंक-१, १९८७ ई., सं. ब्रजेश्वर वर्मा
३. दस्तावेज-१३/१४, अक्टूबर-१९८१, सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
४. साम्य, अंक-११, अक्टूबर-१९८८, सं. विजय गुप्त

५. वसुधा, सं॰ हरिशंकर परसाई

६. पूर्वग्रह, अंक-३४, सितम्बर-अक्टूबर, १९७९

७. आजकल, अंक-१२, अप्रैल-१९९५

८. हंस, सन १९३६

९. आलोचना

१०. नया पथ

११. पश्यन्ती

संस्कृत साहित्य-संदर्भ

१. अभिनव गुप्त-ध्वन्यलोक लोचन

२. कालिदास-अभिज्ञान शकुन्तलम (अनुवादक-सुबोधचंद पंत) चौक वाराणसी

३. कुमार संभव, विद्या विलास प्रेस वाराणसी, १९५७

४. दण्डी-काव्यादर्श

५. मम्टाचार्य-काव्य प्रकाश

६. काव्यांलंकार सूत्र

७. मेघदूतम, कालीदास

अंग्रेजी पुस्तकें

१. कैपिटल : कार्ल मार्क्स, (अनु॰) बेन फोकस, खण्ड-१, पैनगुन बुक, रिप्रिन्टिंग १९८२ आफ १९७६ एडीसन

२. डिक्शनरी ऑफ फिलासफी, सं॰ आई फ्रालाव, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को, दूसरा संशोधित संसकरण-१९८४

३. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ साइक्लॉजी, सं॰ रेमंड जे कासीनी, भाग-३, जान विली एण्ड सन्स, १९८४

४. सोशन बैकग्राउण्ड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म, डॉ॰ ए.आर॰ देसाई, बाम्बे पापुलर प्रकाशन, पाँचवाँ संस्करण, १९७६, पुनर्मुद्रण १९८४

५. प्राब्लेम्स आफ माडर्न एस्थेटिक्स, कलेक्शन ऑफ आर्टिकल्स प्रोग्रेस परिब्लशर्स, मास्को १९६९ में संकलित।